प्रद्युम्न-चरित काव्य-धारा

आस्था प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक : आस्था प्रकाशन
गोपालपुरा मार्ग, दुर्गापुरा रोड, जयपुर-302018

आवरण-शिल्पी : प्रेमचन्द गोस्वामी

मुद्रक : प्रद्युम्नकुमार शर्मा
बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम',
दुर्गापुरा रोड, जयपुर-18

Pradyumna-Charita Kavya-Dhara
(Hindi Critical Research)

Rs.-190·00

◎ पुरोवाक्

डॉ० मदनगोपाल शर्मा का शोध-प्रबन्ध 'प्रद्युम्न-चरित काव्य-धारा' ('प्रद्युम्न: देवत्व एव व्यक्तित्व' जिसका प्रथम खण्ड है) हिन्दी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान है। डॉ० शर्मा ने प्रद्युम्न चरित विषयक एक दीर्घ परम्परा का ही उद्घाटन नहीं किया है, अपितु प्रद्युम्न से सम्बन्धित सभी प्रश्नो और पक्षो पर ठोस अनुसधान के आधार पर विमर्श किया है। शोधकर्ता का प्रत्येक कथन सप्रमाण और सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। अनुसंधाता ने लगभग पच्चीस प्रद्युम्न चरित काव्यों का भी पता लगाया है जो अब तक पूर्णतः अज्ञात थे। 'प्रद्युम्न' अभिधान की मूल कल्पना के उत्स की तलस्पर्शी विवेचना करते हुए लेखक ने प्रद्युम्न के कामावतार या कामदेव रूप के साथ ही उसके देवता रूप तथा लौकिक चरित-नायक रूप का भी प्रामाणिक अनुसधान इस प्रबन्ध मे प्रस्तुत किया है। तदन्तर प्रद्युम्न-चरित की कथा-वस्तु और उसके स्रोतो का सन्धान करते हुए तथा सधारु-पूर्व प्रद्युम्न-चरित काव्यो का पर्यालोचन करते हुए लेखक ने सधारु के प्रद्युम्न-चरित का विस्तृत विश्लेषणपूर्ण अध्ययन किया है। अन्त में सधारु की परवर्ती प्रद्युम्न-चरित परम्परा का सागोपांग परिचयात्मक इतिहास दिया है। इनके अतिरिक्त प्रद्युम्न-चरित की कथा के विधात्मक स्वरूप एवं प्रद्युम्न कथा-वृत्त की कथानक-रूढ़ियों पर भी सम्यक् प्रकाश डाला गया है।

स्पष्ट है कि डॉ शर्मा ने परिश्रम एव मनोयोग पूर्वक प्रद्युम्न चरित का सर्वाङ्गीण अनुसन्धानपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होने एक ओर अज्ञात ग्रन्थो तथा नवीन रोचक तथ्यो का उद्घाटन कर तथ्यानुसन्धान के क्षेत्र मे श्लाघनीय कार्य किया है तो दूसरी ओर प्रद्युम्न-चरित के इतर पक्षो पर सम्यक् प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत कर नव-व्याख्या (निओ-क्रिटिसिज़्म) के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

परिपक्व विवेचना शक्ति और प्रखर तार्किकता के साथ ही शैली और भाषा-सौष्ठव लेखक की निजी विशिष्टता है। आधुनिक शोध-क्षेत्र में गणितीय भाषा का चलन दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है। शोधकर्ता ने इस प्रवाह में न बहते हुए इस साहित्यिक शोध-कृति मे लेखनी के कौशल और मार्दव को अक्षुण्ण रखा है जिससे यह कृति अपूर्व शोध-ग्रंथ बन गई है।

डॉ० सत्येन्द्र
(भूतपूर्व) आचार्य एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

जयपुर
5 2.80

◎ पूर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विवेच्य विषय-क्षेत्र प्रद्युम्न-चरित्र, वैष्णव तथा जैन चिन्तन-स्रोतो की उभय धाराओ से सिञ्चित रहा है। इन दोनो धाराओ मे से वैष्णव धारा प्राचीनतर है तथा प्रद्युम्न के देवत्व एवं चरित-नायक के रूप मे उसके कर्त्तृत्व के मूल बीजाकुरण और पल्लवन का श्रेय उसी को है तो दूसरी ओर जैन धारा उसे अधिक परिपुष्ट, सफल और समृद्ध बनाने के लिए साधुवाद की अधिकारिणी है। वैदिक स्रोत से प्रारंभ कर पौराणिक, महाकाव्यीय तथा वैष्णव संहिता-साहित्य के मुहाने तक यह प्रथम धारा प्राञ्जल रूप से प्रद्युम्न के देवत्व-विधान एवं उसके प्रणयी और पराक्रमी व्यक्तित्व की आधारभूत स्वरूप-रचना में संचरित रही तथापि न जाने क्यो दैववशात् सरस्वती की तरह सहसा ही लुप्त भी हो गई जिसकी क्षतिपूर्ति जैन-धारा ने की और अद्यावधि करती आ रही है। अत. प्रस्तुत अध्ययन से एक ओर जहाँ वैष्णव चिन्तन-धारा का अवगाहन हुआ है वही दूसरी ओर जैन काव्य-धारा का भी अनुशीलन हुआ है जिसके फलस्वरूप जैन साहित्य के एक अपेक्षाकृत अंग का उद्घाटन संभव हो सका है।

जैन-साहित्य का अनुसंधान करने तथा उसे प्रकाश मे लाने की दृष्टि से अनेक प्रयत्न हुए है जो स्तुत्य है। इस विषय मे रिचर्ड पिशेल, हरमन याकोबी, वेबर, व्हीलर, हार्नले आदि विदेशी विद्वानो के अतिरिक्त भारतीय विद्वानो मे चमनलाल डाह्याभाई दलाल, डा० पाण्डुरंग गुणे तथा पं० नाथूराम प्रेमी को प्रारम्भिक श्रेय दिया जा सकता है। प्रेमीजी ने सन् 1927 ई० मे 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' प्रकाशित कर प्रथम बार जैन-साहित्य का एक क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त उन्होने 'बनारसीविलास', 'अर्धकथानक' इत्यादि अनेक ग्रंथो के सम्पादन-प्रकाशन तथा उनकी भूमिकाओ और अन्यान्य निबंधों द्वारा अज्ञात जैन ग्रंथों और कृतिकारो का परिचय देने का श्लाघनीय कार्य किया।

बा० कामता प्रसाद जैन कृत 'हिन्दी जैनसाहित्य का संक्षिप्त-इतिहास' इसी क्रम की अगली कडी है। इसमे 11 वी सदी से

19वी सदी के पूर्वार्द्ध तक के जैन साहित्य का विहगावलोकन है। युगीन प्रवृत्तियो का गहन विश्लेषण न होते हुए भी ऐतिहासिक आधार पर इसे उपस्थापित किया गया है। 'अनेकान्त' मासिकपत्र के आधार पर प्रद्युम्न-चरित सम्बन्धी सूचनाएं, यद्यपि अपुष्ट और भ्रान्त किन्तु प्रथम बार, इसी इतिहासकृति मे प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् डा० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री ने 'हिन्दी जैन-साहित्य-परिशीलन' मे प्रद्युम्न-चरित सम्बन्धी कतिपय स्फुट विवरण दिये।

जैन-साहित्य की सतत साधना के क्षेत्र मे बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा की देन भी बहुमूल्य है। अपने सैकड़ो शोधपूर्ण निबन्धो तथा अनेक ग्रंथो द्वारा उन्होने हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरने मे महत् योग दिया है। प्रस्तुत शोध विषय की दृष्टि से नाहटाजी विशेष उल्लेखनीय है क्यो कि प्रद्युम्न-चरित की अनेक हस्तलिखित प्रतियो का प्रत्यक्ष अवलोकन कर इस कृति के सम्बन्ध मे फैली भ्रान्तियो का निराकरण करते हुए उन्होने ही यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया।

इन विद्वानो के अतिरिक्त डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, प. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, महापण्डित राहुल साकृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वानो ने भी प्राकृत और अपभ्रंश मे रचित जैन साहित्य के महत्त्व को उद्घाटित करने का स्तुत्य कार्य किया। डा० हीरालाल जैन ने भी इस साहित्य को प्रकाश मे लाने की दिशा मे प्रभूत श्रम किया। उनके द्वारा सपादित 'सुगधदशमीकथा' मे कथा के मूल स्रोतो को ढूंढने की दिशा मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण ग्रहीत किया गया। डा०पी०एल० वैद्य, मुनी जिनविजय, डा० आदिनाथ नेमीनाथ उपाध्याय, डा०जी०वी० तगारे, डा० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी, प० जुगलकिशोर मुख्तार, डा० प्रेमसागर जैन, डा० जगदीशचन्द्र जैन, डा० दशरथ शर्मा, डा० हरवश कोछड, डा० रामसिह तोमर तथा अन्यान्य विद्वानो ने भी प्राकृत-अपभ्रंश के जैन-साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र मे श्लाघनीय प्रयत्न किये।

आदरणीय (स्व०) प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ तथा डा० कस्तूरचद कासलीवाल की सेवाए भी जैन-साहित्य के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण है। इन्होने 'राजस्थान के जैनशास्त्र भण्डारो की सूची' चार भागो मे सम्पादित कर जैन-साहित्य के अनुसंधाताओ के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। इन्ही

विद्वद्वय के द्वारा सपादित 'सधारु रचित प्रद्युम्न-चरित' प्रस्तुत शोध-प्रवन्ध का प्रेरक आधार-ग्रंथ रहा है।

उपर्युक्त संक्षिप्त आकलन से स्पष्ट है कि हिन्दी जैन-साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र मे पुष्कल कार्य हुआ है। न तो अव हिन्दी-जगत मे जैन कृतिकारो के साहित्य को साम्प्रदायिक या नीरस ठहरा कर उसे साहित्य-परिधि से वाहर रखने के आग्रह का स्वर ही मुखर है न इस उपालंभ के लिए ही उचित आधार है कि हिन्दी विद्वानो द्वारा जैन-साहित्य की घोर उपेक्षा की गयी है। अब सभी विद्वान स्वीकार करते है कि जैन-साहित्य हिन्दी-साहित्य का ही अविच्छिन्न अंग है तथा हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग के स्वरूप-निर्धारण मे जैन-साहित्य का अन्यतम योगदान है। वस्तुत. पिछले दो-तीन दशकों मे जैन-सहित्य के अध्ययन और अनुसंधान का इतना कार्य जैन-अजैन विद्वानो द्वारा हुआ है तथा अव भी हो रहा है कि उस सवकी सूची ही वहुत लम्वी हो जाएगी।

प्रस्तुत शोध-प्रवन्ध के रूप मे वैदिक, पौराणिक तथा वैष्णव संहिता-साहित्य मे अनुस्यूत दार्शनिक चिन्तनाओ, कथा-वृत्तो तथा कथा-नायको के चरित्राङ्कन की विविध प्रवृत्तियो के अनुशीलन के साथ ही हिन्दी-साहित्य की जैनधारा के अध्ययन-अन्वेषण की परम्परा मे भी एक विनम्र योगदान संभव हुआ है। इसमे निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि रखने की पूरी चेष्टा की गयी है। इसका महत्त्व इस दृष्टि से विशेष है कि अव तक अपभ्रंश एवं प्राचीन हिन्दी के कृतित्व को प्रकाश मे लाने के जितने कार्य हुए है उनमे किसी एक कृति अथवा कृतिकार को पूर्णत प्रकाश मे लाने के ही प्रयत्न अधिकहुए हैं। किसी जैन प्रबंध-काव्य-परम्परा, विशेषत कथात्मक या चरितकाव्यात्मक प्रबंध-परम्परा के आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन का अभाव अभी तक वना हुआ था। जैन धर्म और उसके इतिहास का जितना अध्ययन हुआ है उसकी तुलना मे हमारे विद्वान उस अपभ्रंश साहित्य का पूर्ण अध्ययन और अन्वेषण नही कर सके है जो प्राचीन पुस्तक भंडारो में सुरक्षित है।[1] फिर जो अध्ययन हुआ भी है उसमे किसी एक परम्परा के तलस्पर्शी और विवेचनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति का और भी अभाव रहा है।

1 डॉ. रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ सस्करण, पृ० 70.

किया । अपने इस प्रबन्ध की कतिपय विशेषताओ की ओर मै नम्रतापूर्वक ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा—

1 प्रथम बार एक जैन प्रबंध-काव्य-परम्परा का तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन ।

2 'प्रद्युम्न' अभिधान के वैदिक उत्स से प्रारम्भ कर महाभारत, वैष्णव जैन पुराणो तथा संहिता-साहित्य के अन्तर्गत उपलब्ध प्रद्युम्न के कामदेवत्व, मौलिक देवत्व और लौकिक व्यक्तित्व का विस्तृत आकलन ।

3 वैष्णव, शैव तथा जैन कामकथा के रूपो और उनकी विशेषताओ का तात्त्विक एवं तुलनात्मक अध्ययन ।

4. प्रद्युम्न-चरित संज्ञक प्रबंध-काव्य-परम्परा के 11 वी० सदी से अद्यतन प्रवर्तमान होने के तथ्य की उद्भावना ।

5 प्रद्युम्न-चरित संज्ञक अनेक अज्ञात रचनाओ का अन्वेषण । अब तक डॉ० कासलीवाल ने 25 प्रद्युम्न-चरित सज्ञक कृतियो की बृहत्तम सूची दी है । उसके अतिरिक्त इतनी ही अन्य कृतियो का पता शोध-कर्ता को और चला है जिनका परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। (द्रष्टव्य परिशिष्ट 1 जहा कुल 52 कृतियो का विवरण है ।)

6 वैष्णव तथा जैन पुराणान्तर्गत प्रद्युम्न-कथा का तुलनात्मक अध्ययन ।

7 अनेक नये रोचक तथ्यो की सप्रमाण और सतर्क स्थापना यथा ताम्बूल-सेवन का प्रचलन उत्तरभारत मे संभवत प्रद्युम्न ने ही किया था, प्रद्युम्न को छालिक्य-गान मे विशेष पटुता प्राप्त थी, इत्यादि ।

8 प्रद्युम्न-चरित काव्यो के सम्बन्ध मे फैली अनेकानेक भ्रान्तियो का निराकरण कर तथ्यो का प्रकाशन, यथाप्रद्युम्न-चरितकाव्य सच्चे अर्थो मे न प्रेम-कथा है न काम-कथा, प्रद्युम्न-चरित को सतसई नही कहा जा सकता इत्यादि तथ्यो की स्थापना तथा जैन-चरित-काव्य धार्मिक सिद्धान्तो से सर्वथा मुक्त है और शुद्ध सामाजिक चरित्रो और परिस्थितियो का चित्रण करते है (हिन्दी-साहित्य, प्र० भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयोग, द्वितीय खण्ड, पृ० 518) इस आशय की धारणा का निराकरण तथा नवीन तथ्यो की उद्भावना यथास्थान की गयी है ।

9. कथानक-रूढियो और अद्भुत तत्वो की योजना की दृष्टि से प्रद्युम्न-चरित का अध्ययन इत्यादि ।

उक्त विशेषताओं के होते हुए इस प्रबध की अपनी कुछ सीमाएँ भी है, यथा पाठ-सम्पादन, भाषातात्त्विक इत्यादि दृष्टियों से प्रद्युम्न-चरित सज्ञक काव्य अभी अनुसंधेय है । आशा है कि प्रस्तुत कृति इस क्षेत्र में नवीन अनुसन्धानों की प्रेरक होगी ।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस शोधप्रबध के प्रणयन मे सर्वाधिक आभारी मै श्रद्धेय गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र का हूँ जिनके अनुग्रह से ही मै इसे सम्पन्न कर सका । स्व० प चैनसुखदासजी के प्रति किन शब्दो मे अपनी भावनाएँ व्यक्त करूँ ? मेरी एक गीत-पंक्ति 'जो भी वामन-रूप हो गया गौरव वही विराट् लगा' के मूर्तिमन्त प्रतीक उस निस्पृह व्यक्तित्व की निश्छल आत्मीयता मेरे लिए प्रेरणा थी और उनका निधन मेरे लिए आजीवन एक अपूरणीय क्षति रहेगा । उन्होने अपने आसन्न देहावसान के पूर्वाभास से मुझे सचेत भी कर दिया था । शायद इसका भी इलहाम उन्हे हो चुका था कि यदि यह शोध-प्रवन्ध उनके जीते-जी नही छप पाया तो फिर बरसों नही छप सकेगा । श्रद्धेय डॉ० सत्येन्द्र की संस्तुति पर सहर्ष अनुबन्ध सम्पन्न हो जाने पर भी इसका प्रकाशन हिन्दी के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक महोदय के आश्वासनों की अरगनी पर नौ वर्षों तक लटका रहा । मेरे दुर्भाग्यग्रस्त जीवन के प्रवंचना-पूर्ण अध्यायों में से एक यह प्रकरण भी है । किमधिकम् ? यही सन्तोष है कि अन्ततः यह कृति प्रकाशन का दिवालोक देख तो रही है ।

डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, श्री अनूपचंद न्यायतीर्थ, दिगम्बर अतिशय-क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रवन्ध समिति के सदस्यों तथा लालभवन के मानद निदेशक डॉ० नरेन्द्र भानावत एवं व्यवस्थापक श्री सोहनमलजी कोठारी का भी मै आभारी हूँ जिन्होंने सदैव सहयोग दिया ।

धन्यवाद जीवन-संगिनी उर्मिला को, जो इस कृति को प्रकाशित देखने की मुझसे भी अधिक अभिलाषी रही है । साधुवाद अपने बड़े पुत्र विनयकुमार का, इस प्रवन्ध के टंकण मे आंशिक श्रम और सहयोग के लिए ।

कार्य की गुरुता और सामर्थ्य की अल्पता के कारण मेरी भी मन-स्थिति पज्जुण्णचरिउ के रचयिता कविवर सिद्ध के शब्दों में कुछ-कुछ ऐसी ही थी—

तेण विहिणि चितनु अच्छमि । खुज्जुहो वि तालहलु वंछमि ।
अधु हो वि णवणट्ट पिच्छिरो । गेय सुणाणि वहिरो वि इच्छिरो ।।

किन्तु 'जाकी कृपा पगु गिरि लघै', उसी की कृपा से यह कार्य प्रारम्भ और सम्पन्न हुआ । गोविन्द के साथ ही गुरु-स्तवन के क्रम मे सबसे अन्त मे किन्तु सबसे अधिक कृतज्ञ हूँ मैं गुरुवर आचार्य जवाहिरलाल जैन का जिनका अहैतुक स्नेह मुझे विद्यार्थी-जीवन से ही प्राप्त होता रहा है । उनके उदार व्यक्तित्व के समक्ष सहज संकोचशील मेरी भावनाओं का 'बोल-अबोल मध्य' रह जाना ही श्रेयस्कर होगा । उन्होने ग्रथ-रूपी इस अकिचन श्रद्धा-सुमन का समर्पण स्वीकार कर मुझे कृतार्थ किया है ।

विदुषावशवद
—मदनगोपाल शर्मा

आभार-प्रदर्शन

इस कृति के प्रकाशन की प्रेरणा और मार्ग-दर्शन के लिए मैं स्नेह, सूझ-बूझ और सौजन्य के धनी श्री० चम्पालालजी राँका का अतीव आभारी हूँ । इसकी सज्जा के लिए डॉ० प्रेमचंद्र गोस्वामी तथा ब्लाक निर्माण एव मुद्रण के लिए क्रमशः अल्पना ब्लॉक्स के श्री० कैलाशचद्र तथा श्रीबालचंद्र मुद्रणालय के चि० प्रद्युम्नकुमार शर्मा को हार्दिक धन्यवाद जिनका तत्पर सहयोग सुखद रहा ।

□ मदनगोपाल शर्मा

प्रथम खण्ड

प्रद्युम्न : देवत्व एवं व्यक्तितत्व

श्रद्धेय गुरुवर

आचार्य जवाहिरलाल जैन

को

समर्पित
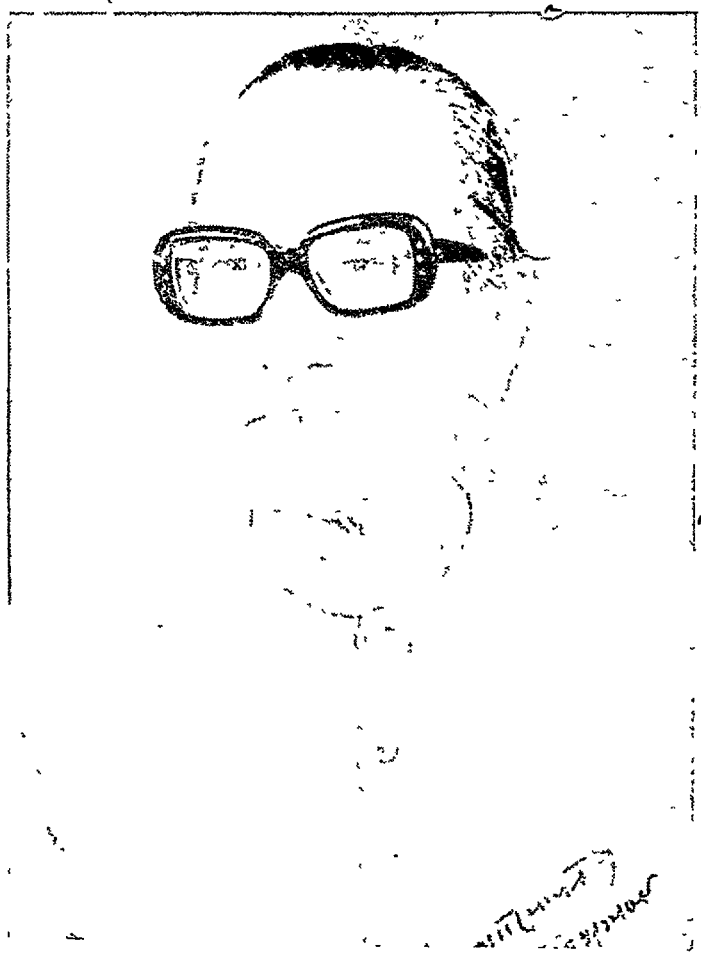
आचार्य जवाहिरलाल जैन

विषय-सूची

पुरोवाक् □ डॉ० सत्येन्द्र पृ० (अ)
पूर्वेक्षण □ लेखक पृ० (क–छ)
कृतज्ञता–ज्ञापन ,, पृ० (छ–ज)

□ विषय-वस्तु □ पृष्ठ-संख्या

अध्याय : एक/'प्रद्युम्न' : अभिधान और मूल कल्पना [1–15]

1 प्रद्युम्न कामदेव के अवतार (1) 2. 'काम' का ऋग्वेदीय रूप (1) 3. अथर्ववेद मे काम (2) 4 काम के विकास की क्रमिक अवस्थाएँ (3) 5 काम का महाकाव्यीय और पौराणिक स्वरूप (3) 6 काम का अवतारत्व तथा प्रद्युम्न-रूप (4) 7. 'प्रद्युम्न' अभिधान का उत्स और इतिहास (6) 8. महाभारत मे प्रद्युम्न का कामदेवत्व (9) 9. प्रद्युम्न और अग्नि तत्त्व (11) 10. प्रद्युम्न और कार्तिकेय (13) 11 निष्कर्ष (13)

.. ... .सन्दर्भ. अध्याय 1 [16–20

अध्याय · दो/प्रद्युम्न : कामदेव के अवतार रूप में [21–47

1. विश्वेदेवा 'काम' (22) 2 काम की अपत्यता (22) 3. काम : नाम तथा महिमा (23) 4 काम का पुनर्जन्म (24) 5. काम की विष्णु और प्रद्युम्न से एकरूपता (26) 6. काम की प्रतिमा तथा पूजा (27) 7 काम के महत्त्व का ह्रास (28) 8. काम और अग्नि : वैष्णव तथा शैव परम्परा मे (28) 9 प्रद्युम्न, कार्तिकेय, सनत्कुमार और सुवर्ण मे अभेद-स्थापन मे अग्नि और काम की हेतुता (33) 10 कार्तिकेय-कथा और प्रद्युम्न-कथा मे समसूत्रता (36) 11 काम-कथा के शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन रूप (38) 12. काम-कथा के वैष्णव रूप की विशेषताएँ (43) 13 कामदेवता लौकिक और शास्त्रीय रूप (45) 14. निष्कर्ष. काम-कथा का प्रद्युम्न-कथा पर प्रभाव (46)

.... . .सन्दर्भ अध्याय 2 [48–52

अध्याय तीन/प्रद्युम्न : देवता रूप में

1. देवत्व का स्रोत (53) 2. कृष्ण की देवत्व-प्राप्ति (53) 3. महाभारत मे कृष्ण का देवत्व (54) 4 महाभारत का रचना-काल (54) 5. कृष्ण की उपास्यता के अन्य प्रमाण तथा वीरवाद

(55) 6. प्रद्युम्न की उपास्यता तथा पच वशवीर (56) 7 चतुर्व्यूह-कल्पना का उत्स और विकास (57) 8 चतुर्व्यूह सिद्धान्त (59) 9 मोक्ष तथा प्रादुर्भाव सिद्धान्त (60) 10 प्रद्युम्न के देवता-रूप का विकास-काल (61) 11 वैष्णवपुराण तथा सहिता-साहित्य (62) 12 पुराणो की रचना-काल (63) 13 पौराणिक साहित्य मे प्रद्युम्न का देवता-रूप (68) 14 अवतारवाद का उत्स और विकास (71) 15 अवतार-कल्पना मे प्रद्युम्न का महत्त्व (72) 16 पाञ्चरात्र सहिता-साहित्य और उसका रचना-काल (72) 17 प्रद्युम्न-सहिता (74) 18 पाञ्चरात्र सहिता-साहित्य मे प्रद्युम्न का देवता-रूप (75) 19. परवर्ती उपनिषदो मे प्रद्युम्न का देवता-रूप (83) 20 चतुर्व्यूह-कल्पना का विकास-क्रम और प्रद्युम्न (84) 21 सृष्टि-कल्पना और प्रद्युम्न (86) 22 पुरुष-रूप प्रद्युम्न और अवान्तर व्यूह (87) 23 परवर्ती व्यूह-कल्पनाएं (91) 24 व्यूह-रूपो का सापेक्ष महत्त्व (93) 25 चतुर्व्यूह और चेतनावस्थाएं (94) 26 पुरुष-कल्पना की अर्थमत्ता (95) 27 विकासशील अवतार-कल्पना और प्रद्युम्न (95) 28 प्रद्युम्न और प्राकृत-प्रलय (96) 29 षाड्गुण्य विग्रह और प्रद्युम्न का वीरत्व (97) 30. प्रद्युम्न सम्बन्धी मत्र, तत्र और आयुध (98) 31 प्रद्युम्न-मूर्ति, तीर्थ, पीठ और राजधानी (101) 32 निष्कर्ष प्रद्युम्न के देवता रूप का महत्त्व और प्रद्युम्न चरित काव्यो पर प्रभाव (106) ... सदर्भ अध्याय 3 [114–124]

अध्याय . चार/प्रद्युम्न के व्यक्तित्व का लौकिक पक्ष [125–164]

1. चरित-नायको के लौकिक व्यक्तित्व का महत्त्व (125) 2. प्रद्युम्न-व्यक्तित्व के विविध रूप (126) 3 प्रद्युम्न का आकृति-सौन्दर्य (129) 4 प्रद्युम्न के भाई-बहिन (130) 5 साम्ब का विशेष महत्त्व (132) 6. विवाह तथा सन्तान सम्बन्धी विवरण (135) 7 प्रद्युम्न के चारित्रिक गुण और लौकिक क्रिया-कलाप (142) 8 प्रद्युम्न-चरित्र व्यजक प्रमुख कथा-वृत्त (146) 9 प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध (147) 10 इतर शौर्य-प्रसग व्यजक कथा-वृत्त. प्रद्युम्न-जयन्त युद्ध (150) 11 प्रद्युम्न-निकुभ युद्ध (151) 12 प्रद्युम्न-कार्तिकेय युद्ध (152) 13 प्रद्युम्न-जीवन के प्रमुख प्रणय-प्रसग (152) 14 इतिवृत्तात्मक प्रसगो मे प्रद्युम्न-चरित (156) 15 प्रद्युम्न के जीवन के अन्तिम काल की झलक (158) 16 निष्कर्ष प्रद्युम्न-चरित्र और काव्य-सृष्टि (161) . .सन्दर्भ अध्याय 4 [165–174]

परिशिष्ट (i) शब्दानुक्रमणी (ii) पुस्तक-सूची

प्रथम खण्ड
प्रद्युम्न : देवत्व एवं व्यक्तित्व

अध्याय : एक

卐

प्रद्युम्न : अभिधान और मूल कल्पना

भारतीय धर्म और साहित्य मे प्रद्युम्न की कल्पना और उसके व्यक्तित्व और चरित्र का क्रमिक विकास एक अत्यन्त रोचक और महत्त्वपूर्ण अनुसधेय विषय है। प्रद्युम्न कामदेव के अवतार और श्रीकृष्ण के पुत्र माने गये है। इसलिए, प्रद्युम्न-स्वरूप को समझने के लिए पहले 'काम' के सम्बन्ध मे जान लेना आवश्यक है।

1. प्रद्युम्न : कामदेव के अवतार

'काम' का प्रथम महत्त्वपूर्ण उल्लेख ऋग्वेद के नासदीय सूक्त मे उपलब्ध होता है—

2 काम का ऋग्वेदीय रूप

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुरसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।।[1]

यहा काम को सृष्टि के प्रारम्भ मे वह प्रथम स्पदन माना है जो सृजनार्थ ब्रह्म में चैतन्य आने पर उत्पन्न हुआ। 'काम' यहाँ सूक्ष्म मनस्तत्त्व के रूप मे प्रतिष्ठित है। काम का वासनामूलक स्थूल रूप तो गोचर होने से सर्वग्राह्य है ही किन्तु उस स्थूल रूप का मूल इस मनस्तत्त्व के रूप मे सूक्ष्म रूप से निहित है तथा 'काम' के इन स्थूल और सूक्ष्म (अथवा, व्यक्त और अव्यक्त, यहा-सत् और असत्) रूपो में परस्पर सम्बन्ध (वन्धु या सख्य भाव) है इसे चिंतन और अनुसंधान से मनीषी कवियो ने ही जाना है। 'सतो वधुरसति निरविन्दन्'-यह सूक्ताश सकेत रूप से उस मूल प्रेरणा का द्योतक है जिससे कि कवियो और मनीषियो ने न केवल स्थूल से सूक्ष्म का अनुसन्धान किया वल्कि इस मूक्ष्म मनोराग काम' को, जिसे मनोभव मनसिज आदि भी इसीलिए कहा गया, अपनी मनोरम कल्पनाओ से स्थूल दैहिक स्वरूप भी प्रदान किया। यह मूर्तरूप कैसे प्रारम्भ मे एक देवता–'कामदेवता' के रूप मे और आगे चल कर एक असाधारण वीर और सुन्दर लौकिक चरित-नायक 'प्रद्युम्न' के रूप मे विकसित हुआ, यह हम आगे देखेंगे किन्तु स्थूल और सूक्ष्म अथवा मूर्त और अमूर्त (यहा, 'सत्' और 'असत्') के बीच वन्धु या अभेद भाव की प्रतीति मानव को न हुई होती तो यह सूक्ष्म मनस्तत्त्वों के दैवी अथवा मानवीकरण का व्यापार सभव ही नहीं हुआ होता।

अब देखना चाहिए कि सूक्ष्म मनस्तत्त्व के रूप मे स्थापित 'काम' तत्त्व को किस प्रकार कल्पनाओ के द्वारा प्रतीको से मडित कर उसे अलौकिक व्यापारो के आरोप से एक दैवी स्वरूप प्रदान किया गया। अथर्ववेद मे 'काम' को सोम, मित्र, वरुण के साथ समभूमि पर स्थापित कर उसे देवता स्वीकार किया गया और उसे अग्नि रूप भी कहा गया।[2] इतना ही नही, उसे हवि अर्पण कर, जयी, सामर्थ्यवान्, उग्रयोद्धा आदि विशिष्ट सम्बोधनो से उसकी स्तुति कर, उससे हवि स्वीकार करने और यजमान को समृद्धि और ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई—'हे काम! वृहत् कामनाओ के वासी, अपने यजमान को समृद्धि और ऐश्वर्य प्रदान करो। हे काम, तुम जयी हो, प्रसिद्ध हो, सामर्थ्यवान् हो, अलौकिक (अद्भुत्) हो तथा सखाओ के सखा हो। हे उग्रयोद्धा-तथा सर्वजयी काम, यजमान को शक्ति और साहस प्रदान करो। हे काम, हम जिस किसी भी कामना से तुम्हे यह हवि अर्पित करे वह सम्पूर्ण हो। इस हवि को स्वीकार करो।[3]

इस स्तुति मे शक्ति, साहस, स्वर्गीय ज्योति, सामर्थ्य, जय, समृद्धि, ऐश्वर्य अलौकिकता (अद्भुतता) आदि गुणो से काम को सम्बोधित किया गया है। हम देखेगे कि किस प्रकार प्रद्युम्न के चरित्र-विकास मे भी यही तत्त्व आगे चलकर विकसित हुए हैं।

3 अथर्ववेद मे काम

अथर्ववेद मे काम को न केवल 'देवता' रूप मे प्रतिष्ठित ही किया गया है, उनके व्यक्तीकरण की चेष्टा भी इसमे दीख पडती है। उसके एक टोने मे काम के बाण और उससे प्रणयीजन के हृदय-वेध का उल्लेख है। इस मत्र मे कहा गया है कि शिकार के लिए एक बाण बनाया जाए काँटे और उल्लू के पख से, इस बाण से उस व्यक्ति के चित्र का हृदय-वेधन किया जाए जिसे वश मे करना है और इस आशय का मत्र पढा जाए—'वह प्रेम जो व्यग्र करने वाला है, तुझे व्यग्र कर दे। काम के विकट बाण से मैं तेरे हृदय को वेधता हूँ। इस बाण से जा कामना के पख से युक्त, और प्रेम से कटीला है तथा अचचल इच्छा ही जिसका फलक है उससे भली प्रकार लक्ष्य साध कर काम तेरे हृदय को वेध देगा।[4]

इससे स्पष्ट है कि काम-वासना की चेष्टाएँ ही निकटतम प्रतीक बनकर काम के दैवी स्वरूप का निर्माण करने लगी। काम मे जो प्रेमानुभूति की तीव्र वेदना है उसी को मूर्तरूप से 'बाण' के प्रतीक मे व्यक्त किया गया। प्रेम मे कल्पना की उडान है इसलिए बाण के पख लगाए गए और पख उल्लू के इसलिए कि उल्लू भी काम या प्रेम की भाति ही अधा होता है। आगे चल कर जब मनुष्य सभ्य और सुसस्कृत हो चला और उल्लू की सी अध और निशाचरी वृत्ति छोड गुहाकान्तार से निकल उपवनो और सुरम्य वनस्थलियो मे रहने लगा तो उल्लू हट गया और काम तथा प्रणय की कोमल सौम्य कल्पनाओ के अनुकूल ही 'कुसुमशर' की कल्पना विकसित हो चली

ग्रौर वसत तथा कोकिल ग्रा जुटे । ग्रथर्ववेद के इस काम-वाण के वशीकरण मंत्र मे ही 'पचशर' के विकसित स्वरूप का मूल विद्यमान है ।

इस प्रकार, डा० सत्येन्द्र के कथनानुमार, काम के विकास की तीन ग्रवस्थाएं हमे वेद मे ही मिल जाती है—

4 काम' के विकास की क्रमिक ग्रवस्थाएं

प्रथम कास—काम विषयक स्थूल ऐन्द्रिक भाव कामना

द्वितीय काम—काम-भाव का व्यक्तीकरण (परसोनिफिकेशन) । यहाँ काम व्यक्तित्व ग्रहण करता है । यहा काम के इस भाव के साथ स्त्रीत्व ग्रौर पुरुपत्व की यौन-क्रियाग्रो का उल्लेख यही सिद्ध करता है कि काम के साथ ऐन्द्रिक विलास का भाव सलग्न था। किन्तु इस दूसरी ग्रवस्था का काम व्यक्तित्व से सयुक्त होकर भावी देवत्व के लिए पथ प्रशस्त कर रहा था ।

तीसरी ग्रवस्था—काम देवता—जैसे कि पूर्वोक्त ग्रथर्ववेद के एक मत्र मे काम को सोम, मित्र तथा वरुण के साथ समभूमि पर रखा गया है जिससे उसका देवत्व सिद्ध है। समस्त देवताग्रो से प्रवलतर एव महान सृष्टि-शक्ति, जिसे कभी-कभी ग्रग्नि भी कहा गया है । [5]

चौथी ग्रवस्था-पुष्पधन्वा काम के पूर्वरूप का निर्माण । यह ग्रवस्था हमें ग्रथर्ववेद के उस पूर्वोक्त वशीकरण मत्र मे मिलती है । इन चारो ग्रवस्थाग्रो में काम का सम्वन्ध स्थूल शारीरिक तत्त्वो से है किन्तु काम ने धीरे-धीरे एक व्यक्तित्व प्राप्त किया ग्रौर तव देवत्व भी । इस प्रकार देव वनकर वह एक ग्रत्यन्त उच्च भूमि पर पहुच गया । यहाँ तक यह काम सूर्य, ग्रग्नि ग्रादि बाह्य प्रकृतिक तत्त्वो के समकक्ष ही मानव के प्रवल प्राकृतिक तत्त्व का प्रतिनिधान करने वाला वना । तव, ग्रवतारवाद के युग मे, काम के ग्रवतार की भी कल्पना हुई । यह भावना पुराणो मे विशेषत परिपुष्ट हुई ।[6]

'काम' के विकास की इन चारो स्थितियो को हम एक ही सज्ञा से ग्रभिहित कर सकते है—काम का वैदिक स्वरूप । काम के विकास

5 'काम' का महाकाव्यीय ग्रौर पौराणिक स्वरूप

की दूसरी ग्रवस्था हमे महाभारत ग्रौर पुराणो मे दीख पडती है जहा काम देवता मात्र नही है वल्कि मानव-देह धारण कर ग्रवतार रूप मे ग्रपनी लीलाएं प्रदर्शित करता है । काम के विकाम की इस महाकाव्यीय (एपिक) ग्रौर पौराणिक ग्रवस्था के भी हम दो स्थूल उपभेद कर सकते हैं—(1)जहा काम—कामदेव के रूप मे ग्रौर इसी नाम से है किंतु उसके ग्राचरण ग्रौर उसके लीला-व्यापार मनुष्यो जैसे है । इस कथा-चक्र मे काम का, व्रह्माजी के ग्राग्रह पर, शिव के हृदय मे पार्वती के प्रति काम-भाव जाग्रत करने के लिए जाना (जिससे तारकवध मे समर्थ कुमार कार्तिकेय का जन्म हो सके), घ्यानस्थ शिव को विचलित कर उनके कोप को ग्रामन्त्रित कर फल-

स्वरूप भस्म हो जाना, रति और सखा वसत का विलाप, रति की प्रार्थना पर शिव का प्रसन्न हो उसे जीवित करना और अनग रूप से ससार मे विचरण करने का वरदान इत्यादि कथा-सूत्र आते हैं जो महाभारत और अनेक पुराणो मे बिखरे पड़े है और जिन्हे पिरोकर कालिदास तथा अन्य बहुत से कवियो ने मनोरम काव्यो की रचना की है।

6 'काम' का अवतारत्व तथा प्रद्युम्न रूप

(2) दूसरी अवस्था वह है जहा भस्म होने के बाद काम को अनग रूप से नही अपितु कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप मे पुनर्जन्म ग्रहण करने का वरदान प्राप्त होता है। यहा, काम, प्रद्युम्न के रूप मे, एक असामान्य रूप से वीर और अद्भुत पराक्रमी चरितनायक बन कर अलौकिक कृत्य करता है। काम के इस प्रद्युम्न-स्वरूप को भी हम दो रूपो मे विभाजित कर सकते है—(1) वैष्णव पुराणो के अनुसार जिस पर वैष्णव धर्म और कल्पनाओ की छाप है तथा (2) जैन पुराण और जैन कल्पनानुसार विकसित प्रद्युम्नस्वरूप। यहा स्मरण रखना चाहिए कि काम-कथा केवल मात्र प्रद्युम्न-रूप मे ही विकसित नही हुई अपितु *मधुमालती एव माधवानल कामकन्दला* जैसे प्रेमाख्यानको मे मधु और माधव के रूप मे भी काम-कथा ही कही गई है। चतुर्भुजदास ने मधु को कामावतार ही बताया है—

काम अंस पूरन अवतारी।
याकी अकथ कथा है न्यारी॥
तीन लोक सारे इन जीते।
ऐसे करत बहुत दिन बीते॥
जोवन रूप जहा लौ होई।
सो प्रतिबिम्ब काम को होई॥[7]

यही नही, मधुमालती के कवि ने प्रद्युम्न को भी इसी प्रसग मे कामावतार के रूप मे स्मरण किया है—

प्रदमन देह किसन जिन्ह पाये।
सर भर करत कौन तिहिं साये॥[8]

इसी प्रकार 'माधवानल कामकदला' के कवि गणपति ने ग्रथ के मगल मे रतिरमण मदनदेव की पूजा इन शब्दो मे की है—

कुअर कमला रतिरमण मयरण महा भड नाम।
पकज पूरिय पयकमल प्रथम जि करू प्रणाम॥
सुरनर पन्नग पणि बली, लक्ष्य चउरासी लोय।
ब्रह्मा हरिहर कुसुमशरि, जिणि जीत्या सविकोय॥
चरणविहूणउ चिन्तवइ, ते सवि सीभइ काज।
कर-विण कलि वाघइ सहू जिन करहा-मुखि लाज॥

संभलज्यो सविसृस्टि तु, ऐ विणु आवइ छेह ।
कारण विश्व वधारवा, आदि उपायू एह ।।[9]

माधवानल की कथा मे माधव का जन्म सरपत कुल मे नदी किनारे अग्नि के बीच होता है। यहा हमे अथर्ववेद मे काम को अग्नि-रूप कहने की कल्पना की ही एक प्रकार से अभिनव पुनरभिव्यक्ति दीख पड़ती है। अग्नि से काम की एकरूपता या साहचर्य काम की उद्दीपकता के कारण है। 'कामाग्नि' शब्द भी इसी कल्पना का परिचायक है। इसी प्रकार काम का सम्बन्ध जल से भी विशेष रूप से है। काम मकरकेतन या मत्स्यकेतु है। विश्व की सभी प्राचीन जातीय दैवत–कल्पनाओ मे जल उर्वरकता का प्रतीक माना गया है अत: काम का जल से सम्बन्ध स्वाभाविक ही है। प्रद्युम्न रुक्मिणी के गर्भ से कृष्ण का पुत्र है फिर भी उसे मत्स्य के उदर मे से जन्म लेना पडा है। इसके अनेक कारणो मे से एक यह भी दीख पडता है कि काम के अवतार रूप होने के कारण जल से प्रद्युम्न का भी मौलिक सम्बन्ध आवश्यक हो जाता है। इस विषय की विस्तृत समीक्षा हम आगे प्रद्युम्न के स्वरूप-विश्लेषण मे यथाप्रसग करेंगे। यहा तो हमारा अभिप्राय यही व्यक्त करना है कि काम से कामदेव और कामदेव से प्रद्युम्न की कल्पना का विकास किस प्रकार हुआ और कैसे उसमें एक सम्बन्धसूत्रता अन्तर्निहित है जिसकी ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है।

इस प्रकार एक सुसम्बद्ध दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि 'काम' (कामना) से लेकर 'प्रद्युम्न' तक की काम-कल्पना के विकासक्रम को इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है —

काम

(एक) वैदिक कल्पना–रूप →
1 मूल मनस्तत्त्व—कामना-रूप
2 काम का व्यक्तस्वरूप—स्त्रीत्व और पुरुषत्व मे व्यक्त स्थूल स्वरूप
3 देवता-रूप (दैवीतत्त्व)
4. काम का व्यक्तीकृत (personified) रूप–पुष्पधन्वा का पूर्वरूप

(दो) महाकाव्यीय (epic) और पौराणिक रूप →
1 महाभारतीय तथा वैष्णवपुराणीय रूप
2. जैन पुराणीय रूप
3. बौद्ध कल्पना का रूप

(तीन) लौकिक प्रेमाख्यानक रूप

काम-कथा के विकासक्रम मे प्रद्युम्न-कल्पना की अवस्थिति दूसरे चरण के प्रथम उपपद मे है। दूसरे शब्दों मे, प्रद्युम्नरूप मे कृष्ण के पुत्र बनकर कामदेव

के जन्म लेने की कथा का प्रारम्भ एक ओर महाभारत और वैष्णव पुराणो तथा दूसरी ओर जैनपुराणो मे दीख पडता है। इन सब मे भी महाभारत ही वह केन्द्र-स्थल है जहा से यह कल्पना मूलत विकीर्ण हुई है । महाभारत मे ही हमे सर्वप्रथम न केवल प्रद्युम्न का नाम और कृष्ण रुक्मिणी का पुत्र होने का उल्लेख मिलता है, उसके विवाह और शम्बरासुर के वध आदि का वृत्तान्त भी प्राप्य है। प्रद्युम्न के इस कथानक को ही आगे पुराणो ने विकसित किया।

7 'प्रद्युम्न' अभिधान का उत्स और इतिहास

किन्तु इसी स्थल पर एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि अतत यह प्रद्युम्न नाम एकाएक कहा से आ गया ? क्या इस नाम का भी अपना कोई इतिहास नही है ? महाभारत-पूर्व वैदिक और औपनिषदिक साहित्य मे (अर्वाचीन उपनिषदो की बात छोडिए) प्रद्युम्न नाम खोजने पर भी नही मिलता। किन्तु 'द्युम्न' शब्द का प्रयोग बहुत बार बहुत स्थानो पर विविध अर्थो मे हुआ है। इनमे से कुछ स्थलो पर यह इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है कि बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेता है। ऋग्वेद मे एक जगह आया है—

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्य ।
विश्वेत् स धीभि सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्‌ग इव तारिषत् ।।[10]

अर्थात् जो मनुष्य इस अग्नि के शरीरो द्वारा, गार्हपत्यादिरूपो में विभक्त रूप मे वर्तमान अखण्डनीय अग्नि की प्रज्वलन हेतु समिधा आदि से परिचर्या करता है, कर्मो से वह 'सौभाग्यशाली' होता हुआ सभी मनुष्यो को 'द्युम्नै.' अर्थात् उज्ज्वल अन्न अथवा यश द्वारा जलो के समान अतिक्रमण कर जाता है। यहा, सायण के अनुसार द्युम्न का अर्थ 'उज्ज्वल अन्न' अथवा 'यश' है।[11]

इसी प्रकार—

तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासहत् सदने क चिदत्रिणम् ।
मन्यु जनस्य दूढ्य् . ।।

(हे अग्नि, उस सामर्थ्य को हमारे लिए ला जो कि घर मे वर्तमान किसी भी राक्षस आदि को अत्यन्त रूप से पराजित करे तथा पापबुद्धि शत्रुजन के क्रोध को भी पराजित कर दे। "सायणाचार्य के अनुसार, यहा 'द्युम्न' का अर्थ सामर्थ्य है, ऐसा सामर्थ्य जो राक्षसो आदि को पराजित करदे।)[12]

उपर्युक्त दोनो उद्धरणो से स्पष्ट है कि 'द्युम्न' शब्द का अर्थ उज्ज्वल अन्न अथवा यश है। यह स्तुति अपने आपमे एक पूर्ण विचारण अथवा पूर्ण कल्पना है जिसके आवयविक तत्व है—अग्नि, उज्ज्वल अन्न, यश, राक्षसो को पराजित करने का सामर्थ्य। आश्चर्य है कि प्रद्युम्न-कथा से इन चारो तत्वो का अटूट सम्बन्ध है जिसे यो प्रकट किया जा सकता है —

1 स्तुति अग्नि की है, अथर्ववेद मे काम को ही अग्नि कहा गया है अतः काम के अवतार प्रद्युम्न का अग्नि से सम्बन्ध स्पष्ट है।

2. अग्नि से उज्ज्वल अन्न अथवा यश की प्रार्थना की गई है। प्रद्युम्न-कथा मे भी प्रद्युम्न के सर्व अन्न भक्षण का उल्लेख है, सर्वत्र उसे निर्बाध जय और यश लाभ होता है।

3 अग्नि से राक्षसो को पराजित करने का सामर्थ्य प्रदान करने की कामना की गई है। प्रद्युम्न-कथा मे शम्बरासुर और अनेकानेक राक्षसो की पराजय का भी उल्लेख है।

इससे अग्नि (फलतः काम) तथा प्रद्युम्न का घनिष्ठ साहचर्य स्पष्ट है। अग्नि से चाहा गया है—हमारे लिए उस 'द्युम्न' को ला जो राक्षसो को पराजित करे। अग्नि (काम) तो है किन्तु उससे सर्वजयी यशस्वी द्युम्न की चाहना है। यह 'द्युम्न' अर्थात् सामर्थ्य ही प्रकृष्ट रूप से मूर्त रूप धर कर आई तो प्रद्युम्न के रूप मे अवतरित हुई।[13] उपासनाशील मतिष्क मे 'द्युम्न' (सामर्थ्य, साहस) की प्रबल आकाक्षा जागी। यह भाव इतना घनीभूत होता गया कि अमूर्त से मूर्त हो उठा। प्रथम दृष्टि मे ऐसी शका होगी कि यह दूर की कौडी या जबर्दस्ती की कल्पना है कि ऋग्वेद के 'द्युम्न' का सम्बन्ध इस प्रकार 'प्रद्युम्न' से जोडा जा रहा है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इसमे आश्चर्य की तनिक भी बात नही है। उपासनाशील मनीषी-मस्तिष्क सदा से ही इस प्रकार काम्य सूक्ष्म भावनाओ को स्थूल मानवीय रूप प्रदान करता आया है। फिर, जिस युग मे प्रद्युम्न रूप की अवतारणा हुई वह तो रूपक और कल्पना-प्रधान महाभारत और पौराणिक युग था जिसमे आगे चलकर अवतारवाद की भावना बलवती हो उठी थी। यह वह युग था जिसमे शायद ही कोई ऐसा सूक्ष्म मनोभाव बचा हो जिसका मानवीकरण न हुआ हो। यही नही, इन मानवीकृत सूक्ष्म मनोभावो के मनुष्योचित व्यवहारो—विवाह, वश, पारिवारिक सम्बन्धो आदि की भी कल्पना की गई। ऐसे युग मे 'द्युम्न' (सामर्थ्य) जैसा ओजस्वी और प्रकृष्ट मनोभाव ही उपेक्षित कैसे रह सकता था? पौराणिक युग की इस मनोवृत्ति पर डा० आर० सी० हाजरा ने अच्छा प्रकाश डाला है

"हमे केवल प्राकृतिक तत्त्वो ग्रहो, नक्षत्रो, पर्वतो, नदियों, वृक्षो, पौधो तथा देवताओ के गुणो एव विशेषणो इत्यादि का ही मानवीकरण नही मिलता अपितु प्रकृति के नियमो और शक्तियो (यथा नियति आदि) तथा अमूर्त विचारो, भावो एव मानव-मस्तिष्क की अदृश्य प्रेरणाओ और क्रियाओ का भी मानवीकरण प्रचुरता से मिलता है। इस प्रकार के अमूर्त तत्त्वो की, जिनका मानवीकरण महाकाव्यो और पुराणो मे किया गया है, लेखक ने एक लम्बी सूची दी है जिसमे 'काम' के साथ साथ मृत्यु, माया, क्षमा, धर्म, शम, दम, धृति, नीति, श्रद्धा, मैत्री, दया, शाति, तुष्टि, क्रोध, अधर्म, अनृत, दुख, नरक, निकृति आदि का परिगणन किया है।"[14]

महाकाव्यकार और पुराणकार इस मूर्तिकरण से ही सतुष्ट नही रह गए है अपितु इन मानवीकृत अमूर्त-भावो और तत्त्वो की मनुष्योचित वशपरम्परा और विवाहादि की भी कल्पना की गई है।[15]

विष्णुपुराण मे धर्म, रुचि और दक्ष की सतानो के रूप मे काम, श्रद्धा, धृति लक्ष्मी, तुष्टि, पुष्टि, दर्प, नियम, सतोष, लोभ, अनृत, भय, माया, वेदना, दुख आदि को गिनाया गया है तथा इनमे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी दिखाए गए हैं।[16]

उक्त लेखक का इस विषय मे आग्रह है कि ये सब दैवी अथवा ऐतिहासिक इस व्यक्ति नही है जिनका आगे जाकर नामवैशिष्ट्य के कारण मानवीकरण कर दिया गया है, किन्तु इन पात्रो का अस्तित्व ही इसलिए है कि मूलत ये प्रकृति के अदृश्य नियम अथवा मन के सूक्ष्म अमूर्त भाव ही है जिनका कि मानवीकरण किया गया है। प्राचीन परम्परावादी भी इस सत्य से परिचित थे, यह इन महाकाव्यो और पुराणो के व्याख्याकारो की टिप्पणियो से स्पष्ट है ।[17]

डॉ० हाजरा की दृष्टि में यह मानवीकरण चपल बालप्रयास नही है जिसके पीछे मात्र क्रीडा-कौतुक की भावना हो, अपितु इसके पीछे एक सुदृढ बौद्धिक आधार है और अपना एक दर्शन है। गीता के अनुसार भगवत् या परमात्मन् सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है अत समस्त सृष्टि चाहे वह भौतिक हो अथवा वैचारिक, मूर्त हो या अमूर्त उसी से उत्पन्न है और उतनी ही सचेतन है जितना वह स्वयं ।[18]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि अमूर्त भावो को मूर्त रूप देने और उनका मानवीकरण करने की प्रवृत्ति महाकाव्यीय और पौराणिक युग मे कितनी प्रबल और व्यापक रही है। अत. इस युग मे 'द्युम्न' नामक मनोभाव को भी मानवरूप प्रदान कर प्रद्युम्न के रूप मे प्रतिष्ठापित कर दिया गया है तो कोई आश्चर्य नही है। अत जिस प्रकार काम-भाव ही आगे 'कामदेव' के रूप मे व्यक्तीकृत हो गया उसी प्रकार प्रद्युम्न भी 'द्युम्न' (सामर्थ्य, साहस, यश) नामक मनोभाव का मानवीकृत (मूर्त) रूप है। 'प्रद्युम्न' शब्द ध्यानाकर्षक- और प्रभावोत्पादक होने से इस युग मे लोकप्रिय रहा भी है क्योकि हमे कृष्ण के पुत्र का ही प्रद्युम्न नाम नही मिलता अपितु प्रद्युम्न नाम के अन्य व्यक्तियो का भी उल्लेख हुआ है, यथा —

1 निमिवश मे भानुमान् के एक पुत्र का नाम प्रद्युम्न था ।[19]

2. अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर महाराज सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्नि-क्षेत्र का कर्षण किया उसी से सीता का जन्म हुआ। उस राजा सीरध्वज से भानुमान् का जन्म हुआ जो मैथिल नाम से विख्यात था। उस राजा भानुमान् का पुत्र प्रतापशाली प्रद्युम्न हुआ ।[20]

3 ध्रुव के वश मे उत्पन्न राजा चक्षुमनु की स्त्री नड्वला से बारह बालक हुए जिनमे प्रद्युम्न भी एक था ।[21]

4 प्रद्युम्न ही नही भिन्न उपसर्गीय समधात्विक धृष्टद्युम्न, सुद्युम्न, इन्द्रद्युम्न तथा शतद्युम्न आदि शब्द भी लोकप्रिय थे ।[22]

अवतारवाद का उद्भव महाकाव्यीय युग मे हुआ और उसका विकास पौराणिक युग मे। इन महाकाव्यो (रामायण और महाभारत) के सभी पात्र किसी न किसी देवता, उपदेवता अथवा अलौकिक शक्ति के व्यक्त रूप ही हैं ।[23]

यद्यपि यह सदिग्ध है कि इनमे मूर्तिपूजा का स्पष्ट विधान है। उपासना की रीति और कर्मकाण्ड का स्वरूप वैदिक ही रहा किन्तु जप (स्तुति) और तप से शिव

और विष्णु के आराधन का सर्वत्र उल्लेख है। इस प्रकार, इन दोनों महाकाव्यो मे वेदो की प्राचीन उपासना-विधि से एक पार्थक्य दीख पडता है। एक और विशेषता इन महाकाव्यो की है—निजधरी कथाओ की प्रचुरता जो हिन्दुओ के धार्मिक साहित्य की मुख्य उपजीव्य बनी।[24]

इस प्रकार हम देखते है कि महाकाव्यो मे हमें—(1) अवतारवाद की कल्पना (11) उपासना की रीति मे वैदिक परम्परा (यज्ञीय कर्मकाण्ड) से जपतपस्तुति की ओर झुकाव तथा (111) निजधरी कथानको की सृष्टि और विस्तार-जिनपर आगे पौराणिक हिन्दू-धर्म का ढाँचा मुख्यत खडा किया गया-ये तीन तत्त्व मिलते हैं। हम देखेंगे कि कामदेव का जो स्वरूप महाकाव्य मे है-वह इन तीनो तत्वो से प्रभावित था। जैसा कि हम देख चुके है अथर्ववेद मे काम के देवत्व ही नही परमदेवत्व (अन्य देव और पितर भी जिसकी समता नही कर सकते ऐसा) स्वरूप और अग्नि से उसके अभेद-की स्थापना हो गई थी। वह उल्लू के पख के फलक वाले कटीले बाण से प्रणयीजन का हृदय बेध सकता था। अत अथर्ववेद मे ही काम के व्यक्तीकरण (Personification) की कल्पना का बीज भी है। महाभारत मे इसीका परिष्कार दीख पडता है।

यद्यपि महाभारत मे, जैसा कि हम आगे देखेंगे, न केवल कामदेव के प्रद्युम्नरूप मे जन्म लेने की कथा है, प्रद्युम्न-चरित्र के समस्त प्रमुख व्यापारो की योजना भी है। प्रद्युम्न-चरित्र अपने पूर्ण व्यापकत्व और विस्तार के साथ सबसे पहली बार महाभारत मे ही दीख पड़ता है।

किन्तु वाल्मीकि रामायण मे भी हमे काम-दहन का प्रसग मिलता है। विश्वामित्र सरयूतट के तपोवनो को दिखाते हुए राम-लक्ष्मण से कहते है कि यही वह प्रदेश है जहा कामदेव ने स्थाणुरूप शिव के हृदय मे उमा के प्रति काम-भाव जाग्रत किया था जिस पर क्रुद्ध हो शिव ने काम के प्रत्येक अ ग को भस्म कर दिया था। तभी से उक्त प्रदेश अ ग नाम से प्रख्यात है।[25]

8. महाभारत में प्रद्युम्न का कामदेवत्व

महाभारत मे कामदेव और प्रद्युम्न सम्बन्धी कथाए और सदर्भ-उल्लेख पुष्कल मात्रा मे उपलब्ध है। यद्यपि, रुक्मिणी के पुत्रजन्म के अवसर पर महाभारत मे यह उल्लेख नही है कि रुक्मिणी का यह पुत्र प्रद्युम्न काम का ही अवतार है, वहाँ[26] कृष्ण-सतति के वर्णन-प्रसग मे प्रद्युम्न-जन्म का सामान्य रूप से उल्लेख है तथापि पारिजात-पुष्प प्रकरण मे कृष्ण द्वारा नारद प्रदत्त पारिजात पुष्प को रुक्मिणी को देते समय लिखा है कि 'कमल के समान नेत्रो वाली कामदेव की माता ने वह पुष्प लेकर अपने शिर मे लगा लिया।[27] यहाँ रुक्मिणी को प्रद्युम्न-माता न कहकर 'कामारणिर्नदिता' कहने से स्पष्ट है कि कामदेव ही प्रद्युम्न रूप मे

आविर्भूत हुआ था यह कल्पना महाभारतकार के मस्तिष्क मे थी। आगे महाभारतकार ने स्पष्ट घोषणा भी करदी है कि लक्ष्मी-रूपा रुक्मिणी मे कामदेव ही प्रद्युम्न के रूप मे अवतरित हुए थे।[28]

यही नही, आगे कहा गया है कि पुराणो मे यही प्रद्युम्नकुमार सनत्कुमार के नाम से भी जाने जाते है—'सनत्कुमार इति य पुराणे परिगीयते।' आगे शम्बरवध प्रकरण मे महाभारतकार ने न केवल प्रद्युम्न रूप मे काम के अवतारत्व को ही स्पष्ट किया है अपितु इस प्रसग के सारे कार्य-कारण-शृ खलाद्योतक कथानक-सूत्रो का भी एकत्र निरूपण कर दिया है। वहा लिखा है कि शम्बर के घर मायावती को प्रद्युम्न को देखकर काम-दहन और प्रद्युम्न के रूप मे जन्म लेने के शिव के वरदान का स्मरण हो जाता है। इसलिए वह धर्मसकट मे पड जाती है कि पत्नी होते हुए वह मातृस्थानीय धर्म का पालन कैसे करे? इसीलिए मायावती स्वय स्तन-पान न कराकर प्रद्युम्न को धाय को सौंप देती है। यही नही, वह रसायनो के प्रयोग से उसे शीघ्र बढाने का उद्योग करने लगती है।[29] प्रद्युम्न द्वारा मायावती के विपर्यस्त आचरण को देख कर शका प्रकट करने पर मायावती प्रद्युम्न से सारा रहस्य-वृत्तात स्पष्ट कर देती है।[30] और शम्बर-प्रद्युम्न युद्ध के अवसर पर स्वय देवराज इन्द्र अपने द्वारपाल गधर्व का शकासमाधान करते हुए कामदहन और काम के पुनर्जन्म की पूरी कथा सविस्तार कहते हैं।[31] महाभारत मे यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि प्रद्युम्न रुक्मिणी के सबसे बड़े पुत्र थे–'प्रद्युम्न. प्रथम जज्ञे शबरातकरः शुभ.'।[32] शम्बर-प्रद्युम्न युद्ध के प्रसग मे प्रद्युम्न को 'मकरकेतन' कहा गया है।[33] घनघोर युद्ध के अन्त मे समस्त सेना की 'मदनशर विभिन्ना' 'समरमशक्तावीक्षितु ' रति से उपमा देकर भी प्रद्युम्न के कामदेव .' की ही अभ्यर्थना की गई है।[34] प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध के अन्त मे ही, शम्बर द्वारा पार्वती से वरदान रूप मे प्राप्त मुद्गर प्रद्युम्न पर फेंकने के निश्चय पर इन्द्र चिंतित होकर प्रद्युम्न को पूर्व भव (कामदेव रूप) का ज्ञान करा प्रोत्साहित करने और देवी पार्वती की स्तुति करने की प्रेरणा देने के लिए नारद जी को भेजते हैं जो सारी रहस्य-कथा (कामदहन और प्रद्युम्न रूप मे काम के पुनर्जन्म) को प्रद्युम्न के समक्ष उद्घाटित करते है।[35] फिर इसी कथा को श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं जब प्रद्युम्न शम्बर-वध के उपरात मायावती के साथ द्वारिकापुरी मे आते है।[36] इस प्रकार कामदेव के प्रद्युम्न रूप मे जन्म लेने की रहस्य-कथा महाभारत मे भिन्न अवसरो पर विभिन्न पात्रो द्वारा वर्णित है —

1 वैशम्पायनजी द्वारा सामान्य वृत्तकथन के रूप मे (कामदहन और प्रद्युम्न रूप मे काम-जन्म का) अन्तर्कथा के रूप मे कथन

2. मायावती के विपर्यस्त आचरण पर प्रद्युम्न के शंका प्रकट करने पर मायावती द्वारा रहस्योद्घाटन

3 देवराज इन्द्र द्वारा अपने द्वारपाल गंधर्व से उनके शका-समाधान हेतु इसका वर्णन, तथा

4. इन्द्र के भेजे हुए नारद द्वारा प्रद्युम्न को इस रहस्योद्घाटन द्वारा प्रबोधन

इस प्रकार महाभारतकार का पिष्टपेषण यह सिद्ध करता है कि महाकाव्यकार का आग्रह है कि श्रोता इसे न भूले कि प्रद्युम्न कामदेव के ही अवतार है। अवतार-वाद के उस युग मे नायक के विलक्षण क्रिया- कलापो के वर्णन के साथ-साथ स्पष्टत: बारम्बार उसके अवतारत्व का उल्लेख एक सामान्य प्रवृत्ति थी।

महाभारत मे प्रद्युम्न के शबर-वध का ही नही,[37] कृष्ण के पारिजातहरण प्रकरण मे इन्द्र-पुत्र से युद्ध,[38] वज्रनाभ-वध और प्रभावतीपरिणय,[39] निकुंभ-वध और भानुमती-उद्धार,[40] तथा बाणासुर-संग्राम,[41] सम्बन्धी शौर्य प्रसगो का भी विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्य सामान्य अवसरो पर भी वे कृष्ण-पक्ष के प्रमुख सहायको मे से एक के रूप मे दीख पड़ते हैं, उनका महत्त्व बलराम (सकर्षण) और कृष्ण के बाद सर्वोपरि है। प्रद्युम्न-चरित्र के मुख्य कथानक-सूत्र महाभारत मे ही विद्यमान है। पुराणो मे इन्ही का विस्तार है और बाद के कवियो ने इसी महाकाव्य-पुराण सामग्री का उपयोग कर अपनी कल्पना के योग से अपने प्रद्युम्न-चरित्र विषयक ग्रथो का निर्माण किया है। इस दृष्टि से महाभारतकार की यह गर्वोक्ति मिथ्या नही है कि जैसे चार प्रकार की सृष्टि अंतरिक्ष मे रहती है वैसे ही सब पुराणो की कथाएं इस महाभारत मे है।—[42]

9 प्रद्युम्न और अग्नि तत्व

महाभारत मे ही विष्णु और शिव की एकरूपता प्रतिपादित की गई है तथा प्रद्युम्न और कर्तिकेय मे भी अभेद के सकेत मिलते हैं। महाभारत, अनुशासन पर्व के 16 वे अध्याय मे कृष्ण स्वय युधिष्ठिर से उपमन्यु द्वारा उन्हे (कृष्ण को) कहे हुए तण्डि ऋषि रचित शिवसहस्रनाम स्तोत्र कहते है। इसमे शिव के 1008 नामो मे एक है हयगर्दभि.—अर्थात् रथ मे जुती हुई खच्चरियाँ जिनकी वाहन हैं। ऐसे अग्नि स्वरूप। ब्राह्मण मे भी लिखा है—"रुद्रो वा एषयदग्नि" ये रुद्र अग्नि स्वरूप ही है। इसी प्रकार "अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्"—अग्नि खच्चरों से जुते हुए रथ मे बैठकर युद्ध-स्थल को चले। इससे स्पष्ट है कि अग्नि ही रुद्र है।

उक्त शिव सहस्रनामस्तोत्र मे ही शिव को 'दीर्घश्चहरिकेशश्च सुतीर्थ. कृष्ण एव च'—कहा गया है अर्थात् शिव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनो मूर्तियो वाले हैं। ब्रह्मोत्तर खण्ड मे गोपशिशु को महादेव वर देते हैं कि मैं तुम्हारे वश मे सातवी पीढी मे होऊंगा इसलिए कृष्ण का जो अवतार है वह महादेव जी का ही अवतार है यह

स्पष्ट है। हरिवश मे कैलाश यात्रा के वर्णन मे कहा है—हे गोविन्द, तुम्हारे वडे-वडे नाम जगत मे प्रसिद्ध है वे ही नाम मेरे भी है इसमे कुछ आश्चर्य नही है—

नामानितव गोविन्द यानि लोके महान्ति च।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ।।

सूत सहिता मे भी कहा गया है—

ब्रह्माण केशव विष्णु भेदभावेन मोहिता ।
पश्यन्त्येक न जानन्ति पाखण्डोपहताजना. ।।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश-इन त्रिदेवो की एकता के कारण ही हमे विष्णुस्तव के नामो मे माताधातापितामह रुद्रो बहुशिरावभ्रु '–ब्रह्मा और रुद्र के नाम मिलते है तथा महादेव के नामो मे विष्णु और ब्रह्मा के नाम मिलते हैं—'महादेवोऽव्ययो हरि गणनाथ प्रजापति ।' इससे स्पष्ट है कि कृष्ण और शिव (रुद्र) अभिन्न है।

अग्नि ही रुद्र है तथा रुद्र ही कृष्ण हैं। इसीलिए कृष्ण के साथ भी अग्नि का सम्वन्ध आवश्यक होना चाहिए। यह हमे महाभारत के अनुशासनपर्व के 139 वें अध्याय मे मिलता है। वहा युधिष्ठिर की जिज्ञासा पर भीष्म उनसे विष्णु-प्रभाव और वृषभध्वज शकर के प्रभाव का वर्णन करते हैं। कृष्ण और रुद्र की महिमा के विषय मे रुद्राणी (पार्वती) द्वारा शका प्रकट करने पर स्वय रुद्र उनका समाधान करते है। कृष्ण-प्रभाव (माहात्म्य) के इस प्रकरण मे लिखा है कि धर्मात्मा श्री कृष्ण बारह वर्ष के व्रत की दीक्षा ले व्रत करने लगे। उस समय अद्भुत कर्म करने वाले श्री कृष्ण के मुख मे से व्रतचर्या रूप ईधन से उत्पन्न हुआ नारायण का तेजरूप अग्नि बाहर निकला जिससे पर्वत भस्म हो गया। पशु–पक्षी–सर्पादि सहित पर्वत को भस्म कर अग्नि शिष्य की भाति विष्णु-चरणो मे उपस्थित हो गया। विष्णु ने भस्म हुए पर्वत को सौम्य दृष्टि से फिर हराभरा कर दिया। ऋषियो द्वारा इस आश्चर्य पर विस्मय प्रकट करने पर वासुदेव कहते हैं—मेरे मुख से जो अग्नि निकला वह विष्णु का तेज था और युग का नाश करने वाला अग्नि था। मैं इस उत्तम पर्वत पर तप करने के लिए आया हू और तप करके अपने समान वीर्यवान् पुत्र पाने के लिए आया हूँ। इसलिए मेरे शरीर मे जो आत्मा है वह अग्निरूप होकर शरीर मे से बाहर निकला और सब लोको को वर देने वाले ब्रह्मा जी के पास गया। हे उत्तम मुनियो, उस समय पितामह ने मेरी आत्मा को आज्ञा दी कि तुम्हारे यहा वृषभध्वज शकर आधे तेज से पुत्र होकर उत्पन्न होगे।[43] इसके बाद ही ऋषियो की ओर से नारद श्रीकृष्ण जी से शिव के सम्बन्ध मे भी ऐसी ही एक कथा कहते हैं। वहा भी हिमाचल पर्वत शिव के तीसरे नेत्र से निर्गत अग्नि से भस्म हो जाता है जिसे वे उमा की प्रार्थना पर फिर हरा–भरा करते हैं। तीसरे

नेत्र से अग्नि के निकलने का कारण है खेल ही खेल मे उमा का शिव के दोनो नेत्र मूद लेना जिससे सूर्यास्त होकर जग मे अधकार छा जाता है और दु खी प्राणियो के त्राण हेतु शिव के तृतीय नेत्र से अग्नि फूटती है। इस अग्नि-सम्भव प्रकरण से कामदहन का सम्बन्ध नही है। यह उससे पृथक् है।[44] इस प्रकरण के अत मे ऋषिगण तपोरत श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देते है कि हे तात, आपके आपही के समान अथवा आपसे भी श्रेष्ठ गुणो वाला एक पुत्र होगा, वह महाप्रभाव वाला तथा दीप्ति और कीर्ति को फैलाने वाला होगा। तदनन्तर श्रीकृष्ण के यथारीति व्रत पूर्ण कर द्वारिका आने और दशमास पूर्ण होने पर उनके रुक्मिणी के गर्भ से परम ऐश्वर्यशाली, सत्पुरुपो मे मान्य, शूरवीर वशधर पुत्र उत्पन्न होने का उल्लेख है।[45] यहा नामोल्लेख नही है किन्तु स्पष्ट ही, यह पुत्र प्रद्युम्न ही हैं।

महाभारत मे ही कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा[46] भी है जिसके कतिपय सूत्र हमारे प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से बडे महत्वपूर्ण है। इसमे जगत् के कल्याण

10 प्रद्युम्न और कार्तिकेय

की दृष्टि से देवताओ के अनुरोध पर महादेव का ऊर्ध्वरेतस् होना, इससे रुष्ट हो रुद्राणी का सब देवो को प्रतिफल मे अपनी ही भाति निस्सतान होने का शाप देना, शाप के समय सौभाग्य से अग्निदेव का अनुपस्थित रहना, रुद्र के तेज (वीर्य) के अंश का पृथ्वी पर अग्नि मे गिरना, ताडक-सताप से त्रस्त देवताओ द्वारा अग्नि को ढूढना, अग्नि का अपने कारणभूत तत्त्व 'जल' मे लीन हो जाना, क्रमशः अश्वत्थ और शमी मे अग्नि का छिपना, देवताओ के अनुरोध पर अग्नि द्वारा गगाजी से सयुक्त हो कर गर्भाधान करना, गर्भ का गगाजी मे बढना, गगा द्वारा असह्य होने से गर्भ को मेरु पर्वत पर त्याग देना, वहा दिव्य शरो (सरपत) के वन मे कुमार कार्तिकेय का जन्म (वीर्य स्खलन के कारण जो स्कद और गुहावासी होने से जो गुह भी है), कृत्तिकाओ द्वारा पालनपोपण से ही उसका कार्तिकेय होना, इत्यादि वृत्तातो से स्पष्ट है कि शकर के ये अर्द्ध तेज (तेजाश) कार्तिकेय है, ये ही श्रीकृष्ण के पुत्र 'प्रद्युम्न' रूप मे अवतरित हुए। हम पहले उल्लेख कर आए है कि पुराणो मे ये ही प्रद्युम्नकुमार सनत्कुमार के नाम से प्रसिद्ध है। इसका भी सम्बन्ध-सूत्र हमे महाभारत मे ही मिल जाता है। वहा लिखा है कि उन पुरुपव्याघ्र वासुदेव ने धर्मरक्षार्थ गधमादन पर्वत पर करोडो ऋषियो को उत्पन्न किया है और उसी पर्वत पर उन विभु के ही उत्पन्न किये हुए सनत्कुमार आदि तपस्वी तप करते है।[47] अत. सनत्कुमार श्रीकृष्ण से ही उत्पन्न है। ऋपियो मे वे प्रमुख है। पुराणो और वैष्णव सम्प्रदायो मे सनत्कुमार का माहात्म्य बढता गया इसीलिए कालान्तर मे प्रद्युम्न से उनका अभेद कल्पित कर लिया गया—'सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते'।

10 निष्कर्ष उपरोक्त समस्त विवेचन से निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट सिद्ध होते है—

1. काम ही अग्नि हैं।

2. अग्नि ही रुद्र हैं ।
3 रुद्र (शिव) और विष्णु (कृष्ण) में अभेद है ।
4 रुद्र-पुत्र कार्तिकेय ही कृष्णपुत्र प्रद्युम्न हैं ।
5 प्रद्युम्न ही पुराणो मे आगे चलकर सनत्कुमार हो गये है, अतः प्रद्युम्न और सनत्कुमार भी अभिन्न हैं ।
फलत.
6. प्रद्युम्न-कथा काम-कथा ही है इसलिए अग्नि, जल, गुहा-पर्वत आदि तत्त्वो का महत्वरूपेण साहचर्य उसमे है ।

वैदिक तथा महाकाव्यीय अध्ययन से न केवल हम उक्त निष्कर्षो तक पहुचते हैं अपितु महाभारत मे हमें प्रद्युम्न-चरित के प्रमुख कार्य-व्यापारो का निर्देशन भी मिलता है जिनमे से प्रमुख ये है—

1 प्रद्युम्न-जन्म, प्रद्युम्न कामदेव के ही अवतार हैं । मायावती ही रति है ।
2 शम्बर द्वारा प्रद्युम्न-हरण
3 शम्बर-वध
4 कृष्ण के पारिजातहरण–प्रकरण मे इन्द्र-पुत्र जयत से प्रद्युम्न का युद्ध–तेलुगु के कवि नन्दि तिम्मन ने इसी कथासूत्र के आश्रय से 'पारिजातापहरणम्' प्रबन्ध की रचना की है ।
5 वज्रनाभ-वध तथा प्रभावती–परिणय—इसी कथा-सूत्र को लेकर तेलुगु कवि पिंगलीसरन्ना ने 'प्रभावतीप्रद्युम्न' प्रबन्ध काव्य की रचना की ।
6. निकुंभ-वध तथा भानुमती–उद्धार एव
7. उषा-अनिरुद्ध प्रसग मे बाणासुर से सग्राम ।

इस प्रकार, ऋग्वेद और अथर्ववेद से लेकर महाभारत तक आते-आते न केवल हमे काम-कथा के प्रद्युम्न-कथा तक के विकास के स्रोत ही उपलब्ध हो जाते हैं अपितु महाभारत मे प्रद्युम्न-चरित्र के वे समस्त प्रमुख तत्त्व भी उपलब्ध हो जाते हैं जिनका आगे समृद्ध विकास पुराणो मे हुआ और जिन्हे आधार बना कर उत्तर और दक्षिण भारत मे भिन्न-भिन्न युगो मे प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी ग्रथो की रचना हुई । महाभारत मे प्रद्युम्न एक काव्य-चरित्र के रूप मे तो प्रतिष्ठित हो गए हैं किन्तु पुराणो मे आगे चलकर प्रद्युम्न को और अधिक महत्त्व मिला । प्रद्युम्न–महिमा पुराणो मे और स्तवित-विकसित हुई । इसका विकास, जैसा हम आगे देखेंगे, दो दिशाओ मे हुआ—(1) दार्शनिक और (2) साहित्यिक ।

(1) दार्शनिक क्षेत्र मे प्रद्युम्न एक अलौकिक रूप में वासुदेव के चतुर्थांश 'देवता' के रूप मे--उपास्य रूप मे--समक्ष आए। धार्मिक और उपासना क्षेत्र मे प्रतिष्ठित हुए।

(2) साहित्यिक क्षेत्र मे कवियो की कल्पना और प्रवध-योजना से प्रद्युम्न एक लौकिक चरित-नायक के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। उनका पृथक् अस्तित्व और समग्र व्यक्तित्व निर्मित हुआ। प्रद्युम्न के इस (1) अलौकिक देवता रूप और (2) लौकिक चरितनायक रूप का विकास किस प्रकार हुआ यह आगामी पृष्ठो का विषय है।

संदर्भ ❊ अध्याय : 1

1. नासदीयसूक्त (10.29 4)

2 अग्निषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च, तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ।

[अथर्व० 12, 4, 4, 26]

3 स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोष यजमानाय धेहि ।
त्व काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभूर्विभावा सख आ सखीयते
त्वमुग्र पृतनासु सासहि सह ओजो यजमानाय धेहि ॥2॥
दूराच्च कमानाय प्रतिपाणायाक्षये आस्मा अशृण्वन्नाशा
कामेनाजनयन्त्स्व ॥3॥
कामेज मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥4॥
यत्काम कामयमाना इद कृण्मसि ते हवि
तन्न सर्वसमृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥5॥

[अथर्ववेद काण्ड 19 सू० 52]

4. देखिए, अथर्ववेद, V, III, 25

5 In the Atharva Veda, the kama or Desire. not of sex enjoyment but of general good, reappears as a great cosmic force superior to all the gods and sometimes identified with Agni or Fire, but in the same Vedic text we have the personified God of Love more clearly foreshadowed—Dr S K Dey Indian Erotics and Erotic Literature P 3

6 डा० सत्येन्द्र प्रेम गाथा तथा कामकथा (भारतीय साहित्य त्रैमासिक, अक्टूबर 1961, पृ० 21–22)

7. चतुर्भुजदास कृत मधु-मालती

8. वही

9 गणपति कृत माधवानलकामकन्दला

10 ऋग्वेद, 8, 11, 14;

11. पिशेल ने यहां द्युम्न का अर्थ बेड़ा (raft) किया है और ग्रिफिथ ने भी (देखिए Hymns of Rgveda 8, 19, 14 तथा Vedic Index by Macdonell & Keith P 382) किन्तु यह अर्थ न तो व्युत्पत्ति की दृष्टि से इतना समीचीन है न अन्यत्र ही इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है जब कि उज्ज्वल, यश अथवा अन्न के अर्थ मे तथा इससे मिलते-जुलते अर्थों मे अनेकशः इसका प्रयोग वेदो और उपनिषदो मे है। देखिए :—
(माध्य०) शतपथब्राह्मण 2, 4, 1, 8–9; 3, 1, 4, 18–19; 6, 6, 1, 21;
(काण्व०) " 1, 4, 2, 4,
तैत्तिरीय ब्राह्मण 2, 5, 8, 1; 6, 9, 1. 8, 5, 9; तथा ताण्ड्य ब्राह्मण 13, 5, 2. 14, 11, 2., तैत्तिरीय आरण्यक 4, 3, 2.

12. ऋ० 8, 19, 15;

13 प्रद्युम्न शब्द की व्युत्पत्ति के लिए देखिए—पाणिनीय गणपाठ 4, 1, 96; हिन्दी–विश्वकोष में 'प्रद्युम्न' शब्द के दो अर्थ बताये गये हैं:—
(1) प्रद्युम्न (स० क्ली०) प्रकृष्टा द्यौ· स्वर्गोयस्मात् तत्। पुण्य।
(2) प्रद्युम्न (सं०पु०) प्रकृष्टं द्युम्नं बलं यस्य। 1. कन्दर्प कामदेव 2. रुक्मिणी गर्भजात श्रीकृष्ण के पुत्र। ये भगवान वासुदेव के चतुर्थांश थे।

14. We find personifications not only of the natural elements, planets, stars, mountains, rivers, trees, plants, epithets or attributes of deities and so on, but also of such principles or forces of Nature and abstract ideas or feelings, faculties or activities of the human mind as Niyati (Fate) etc

Dr. R. C. Hazra · Iutroduction to Vishnu Purana (Translated by H H Wilson) Page H.

15 The personification in the cases of these abstract mythical figures is so complete in the epics and the Puranas that their genealogies have been conceived of and actually worked out and given in a number of cases (do)

16. विष्णु–पुराण, 1, 7, 14–32.

17. From the occasional statements made in the Epics and the Puranas about these mythical figures it is evident that they are not mythical or historical persons allegorised later on for their significant names, but they owe their origin definitely to the personification of some natural objects or Phenomena, or of certain principles or forces of nature, or of some states or conditions or purely abstract notions That the orthodox tradition about the original nature of these mythical figures was completely in agreement with this view, is shown by the remarks made by the commentators on some of these works

Dr Hazara, Introduction to the Vishnu Purana Tr. by H H Wilson, Page i

18 श्रीमद्भगवद्गीता—10, 4–7; 32–39.

19 ब्रह्माण्डपुराण–3, 64,19.

20. वायुपुराण–89, 19

21. श्रीमद्भागवत–4, 13, 16.

22. महाभारत अनुशासनपर्व 137 वें अध्याय के 19 वें श्लोक मे मनुपुत्र महात्मा सुद्युम्न और 21 वें श्लोक में ब्राह्मण को स्वर्णगृहदान कर स्वर्गगामी नृपति शतद्युम्न का उल्लेख है । किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेख महाभारत के आदिपर्व के अध्याय 67 श्लोक 126 मे धृष्टद्युम्न का है जहाँ कहा गया है कि 'अग्नेर्भागं तु विद्धि त्व धृष्टद्युम्न महारथ'–अर्थात् हे राजन्, महारथी धृष्टद्युम्न को अग्नि के अ श से उत्पन्न जानो ।'
इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि 'द्युम्न' संज्ञा का सम्बन्ध अग्नि से विशेषरूपेण था ।

23. "The story of Ramayana and Mahabharata turns wholly upon the doctrine of incarnations, all the chief dramatic personnel of the poems being impersonations of Gods and demigods and celestial spirits"

H H Wilson . Preface to the Vishnu Purana (Tr) P III

24 "In these two works, then, we trace unequivocal indications of a departure from the elemental worship of the Vedas, and the origin or elaboration of legend, which form the great body of the mythological religion of the Hindus (do)

25. देखिए टी.एच. ग्रिफिथ कृत वाल्मीकिरामायण का अनुवाद, 'दि रामायण आफ वाल्मीकि', पृ० 37–38.

    वाल्मीकि रामायण में सीता अपहरण की कुदृष्टि से देखे जाने पर रावण से कहती है कि राम उसे वैसे ही भस्म कर देंगे जैसे रुद्र ने अपने नेत्र से काम को भस्म कर दिया था। (काण्ड 3, स० 51)

26 महाभारत, विष्णु पर्व, अध्याय 60, श्लोक 34, 37–39;

27. वही, अध्याय 65, श्लोक 16;

28. रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः।
    शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्न. कामदर्शनः॥
    वही, अध्याय 104, श्लोक 2;

29 वही, अध्याय 104, श्लोक 11–13.

30. वही, अ० 104, श्लोक 23;

31 वही, 51–57;

32. वही, अध्याय 103, श्लोक 5;

33 वही, अध्याय 105, श्लोक 39; 'रूपवानिवमन्मथः' (अ० 108 श्लोक 4) और 'सिद्धं मन्मथलक्षणैः' (अ० 108, श्लोक 21) भी कहा गया है।

34 वही, अ० 105 श्लोक 84;

32 वही, अ० 106 श्लोक 42–53;

36 वही, अ० 108 श्लोक 21–28

37. महाभारत, विष्णु पर्व, अध्याय 104–108

38 वही, अध्याय 63,

39. वही, अध्याय 91–97

40 वही, अध्याय 88, 90

41. वही, अध्याय 116–126.

42 अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः।
   अंतरिक्षस्य विषये प्रजाइव चतुर्विधाः॥
   महाभारत, आदिपर्व, अ० 2, श्लोक 73.

43. महाभारत, अनुशासनपर्व, अ० 139, श्लोक 7–35.
44 वही, अ० 140 श्लोक 1–45;
45 वही, अ० 148 श्लोक 17–20;
46 वही, अ० 84 श्लोक 60 से अ० 85 के श्लोक 85 तक
47. वही, अ० 147, श्लोक 43–45

अध्याय : दो

卐

प्रद्युम्न : कामदेव के अवतार रूप में

हम यह देख चुके है कि किस प्रकार 'काम' ऋग्वेद के नासदीय सूक्त मे वर्णित सूक्ष्म किन्तु व्यापक मनस्तत्त्व से विकसित होता हुआ अथर्ववेद के उलूकपंख-नाराचधारी कामदेव का रूप धारण कर महाकाव्यीय और पौराणिक पुष्पधन्वा के रूप मे विकसित हो चला। साथ ही यह भी स्पष्ट हो चुका है कि प्रद्युम्न कामदेव के ही अवतार हैं तथा उनके व्यक्तित्व का विकास दो भिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न रूपो मे हुआ है— (1) देवता के रूप मे—धार्मिक तत्त्वचिन्तना के क्षेत्र मे तथा (2) लौकिक चरित-नायक के रूप मे—साहित्य (काव्य) के क्षेत्र मे।

प्रद्युम्न के देवता–रूप का विकास भी कल्पना के दो स्तरों पर हुआ है— (अ) कामदेवता के अवतार के रूप मे उनका देवत्व तथा (आ) प्रद्युम्न देवता के रूप मे उनका स्वतत्र मौलिक स्वरूप जिसकी प्रतिष्ठा पाचरात्र तत्त्वचिंतन के क्षेत्र मे हुई। प्रस्तुत अध्याय मे उनके कामदेवता के अवतार-रूप का तथा आगामी अध्याय मे उनके स्वतत्र देवता-रूप का अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

क्योकि प्रद्युम्न कामदेव के अवतार है अतः काम के देवता–रूप का परिचय प्रद्युम्न के देवता–रूप के विकास के अध्ययन के लिए पूर्व-पीठिका के रूप में अभीष्ट है।

वैदिक साहित्य मे 'काम' के मनस्तत्व से लेकर उलूकपखनाराचधारी देवता रूप मे विकसित होने का क्रम हमने देखा। इस क्रम मे वे क्रमश : महत्त्व-वृद्धि प्राप्त करते हुये प्रतीत होते है। ऋग्वेद मे 'काम' सृष्टि के प्रारभ मे प्रथम स्पन्दन है जो सृजनार्थ ब्रह्म मे चैतन्य आने पर उत्पन्न हुआ; तो अथर्ववेद मे न केवल वह प्रणयी-जन के हृदयवेध मे समर्थ प्रणय–देवता है अपितु उसे प्रमुख देवता के रूप में सोम, मित्र और वरुण के साथ समभूमि पर स्थापित करते हुए अग्निरूप भी कहा गया[2] तथा उसे उग्र योद्धा, प्रसिद्ध जयी, सामर्थ्यवान, अलौकिक तथा सखाओ का सखा बताते हुए उससे यजमान को समृद्धि और ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।[3] इस प्रकार मनस्तत्त्व से प्रणय–देवता और प्रणय-देवता से भी आगे बढ कर सार्वभौम देवता के रूप मे क्रमशः महत्त्व पाने की स्थिति यदि वैदिक वाङ्मय मे

लक्षित होती है तो उसी मे दूसरी ओर, उनके महत्त्व के गौण होने की भी सूचना मिलती है।

1. विश्वेदेवा 'काम'

जैसा कि डॉसन महोदय का कहना है, वेदो मे 'विश्वेदेवा' द्वितीय कोटि के अर्थात् गौण देवता के रूप मे मनुष्यो के त्राता और फलप्रदाता के रूप मे कल्पित है। बाद मे वे पितृ-श्राद्धादि मे भेंट लेने मे विशेष रुचि रखने वाले देवताओ के वर्ग के हो गये हैं। इन विश्वेदेवो की सख्या डॉसन महोदय के अनुसार 10 बतायी जाती है। उनकी सूची के अनुसार वसु, सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरु, पुरुवत्स और माद्रवत्स—ये 10 विश्वेदेवा हैं।[4] वेदो के प्रसिद्ध अधिकारी विद्वान श्री सातवलेकर ने अपनी 'दैवतसहिता' मे यह सिद्ध करते हुए कि विश्वेदेवा कोई निश्चित देवता नही थे, किसी एक वर्ग के देवो को सम्मिलित रूप से 'विश्वेदेवा' और उसके पर्याय नामो से सम्बोधित किया जाता था, विश्वेदेवो की सख्या वैदिक साहित्य मे कही 3 कही 11 कही 33 बतायी है।[5] डॉसन ने वेदो मे 10 की निश्चित सख्या और तथोक्त 10 निश्चत नामो का सदर्भ नही दिया है। फिर भी चाहे वैदिक साहित्य मे विश्वेदेवा देवता–समुच्चय वाची ही रहा हो, पौराणिक साहित्य मे 10 की निश्चित सख्या मे विश्वेदेवो के होने तथा उनके नामो के उल्लेख पाये जाते हैं। पद्मपुराण मे 'धर्म' के 'विश्वा' से विश्वेदेवो की उत्पुत्ति लिखी है किन्तु उनकी निश्चित सख्या तथा नामोल्लेख नही है। वायुपुराण मे तथा ब्रह्माण्डपुराण मे भी[8] काम को विश्वेदेवो मे से एक बताया गया है। भागवतपुराण मे विश्वेदेवो को धर्म .ˮ९ विश्वास की सताने बताते हुए विश्वेदेवो के सन्तान न होने का भी उल्लेख है।[9] अग्निपुराण (18,32) मे भी धर्म और विश्वा की सतान 'विश्वेदेवा' उल्लिखित है। हरिवशपुराण मे[10] धर्म और 'विश्वा' से उत्पन्न 10 विश्वेदेवो के ये नाम गिनाये गये हैं—शखपात, दक्ष, वपुष्मान, अनन्त, महीरण, विश्वावसु, सुपर्वा, विष्टर तथा रुरु। इस प्रकार भागवत और हरिवश मे विश्वेदेवो का उल्लेख होते हुए भी 'काम' के विश्वेदेवा होने की पुष्टि नही होती।

2 'काम' की अपत्यता

काम के प्रादुर्भाव और अपत्यता के सम्बन्ध मे विभिन्न कल्पनाएँ है। प्रेम का देवता, तो उसे अथर्ववेद मे ही घोषित कर दिया गया है जिसका समर्थन, मोनियर विलियम्स के कथनानुसार, महाभारत और बौद्ध ग्रथ ललितविस्तर से भी होता है।[11]

विष्णुपुराण का कहना है कि 'ब्रह्मा' से 'क्षुधा' और 'क्षुधा' से काम की उत्पत्ति हुई है।[12] विष्णुपुराण मे ही अन्यत्र 'काम' को 'धर्म' और 'श्रद्धा' की संतान कहा गया है तथा 'काम' और 'रति' की सन्तान का नाम 'हर्ष' बताया गया है।[13] वायुपुराण भी इसकी पुष्टि करता है।[14] किन्तु ब्रह्माण्डपुराण रति के स्थान

पर सिद्धि' का काम-पत्नी के रूप मे उल्लेख करता है ।[15] वायुपुराण मे अन्यत्र उसे यशोधरा का पुत्र (यशोधारी) कहा गया है ।[16] ब्रह्माण्डपुराण मे भी काम के यशोधरा का पुत्र होने का उल्लेख है । [17]

श्रीमद्भागवत मे धर्म की दस पत्नियो मे से एक 'संकल्पा' (दक्ष प्रजापति की कन्या) है जिसका पुत्र 'सकल्प' है और 'सकल्प' का पुत्र ही' काम' है ।[18] महाभारत उसे 'धर्म' की सतान कहता है ।[19] हरिवशपुराण मे उल्लेख है कि ब्रह्मा ने ब्रह्मयोग के द्वारा मानसिक 'सकल्प' से 'लक्ष्मी' को प्रकट किया ।[20] लक्ष्मी के गर्भ से धर्म की सन्तान 'काम' हुआ । [21] हरिवश मे ही धर्म की पत्नी दक्ष-कन्या 'सकल्पा' से 'सकल्प' की उत्पत्ति का भी उल्लेख है ।[22] 'संकल्प' को दक्ष द्वारा ब्रह्मा के पुत्र 'मनु' को अर्पित करने [23] और अपनी कन्या लक्ष्मी को धर्म से ब्याहने का उल्लेख भी है ।[24] 'सकल्पा' के गर्भ से 'सकल्प' नामक पुत्र हुआ । धर्म और उनकी पत्नी लक्ष्मी से 'काम' नामक पुत्र का जन्म हुआ जो सम्पूर्ण जगत पर अपनी प्रभुता स्थापित किये हुए है-'धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु कामोजयीजगत्प्रभुः ।[25] 'काम' के 'रति' से दो पुत्र हुए 'यश' और 'हर्ष' ।[26]

3. 'काम' नाम तथा महिमा

काम के अनेक नाम है । डॉसन ने काम के 40 से अधिक नामो का उल्लेख किया है जिनमे मकरकेतु, पुष्पधन्वा, कुसुमायुध के अतिरिक्त मायासुत, मायी, दर्पक, प्रद्युम्न और कार्ष्णि भी है ।[27] शिवपुराण मे भी उल्लेख है कि ब्रह्मा ने कामदेव को उसका कर्म-विधान समझा कर कहा कि तुम्हारे अन्य नाम ये हमारे दक्ष आदि पुत्र ही बताएंगे । तब मरीचि आदि ने कामदेव के नामान्तर गिनाये जिनमे तत्तत् नामो के अर्थ सहित 'मन्मथ' 'काम' 'मदन' 'कदर्प' आदि नाम बताते हुए कहा कि 'हे काम, कोई भी देवता तुम जैसा वीर्यवान नही होगा अत. तुम सर्वव्यापी और सर्वगामी रहोगे ।'[28]

मैकेजी महोदय कामदेव की तुलना मिश्र देश के देवता खोसू से करते है । उनके विचार से काम-पत्नी 'रति' वसत ऋतु, कोकिल, मदसमीर, गुंजरित भृंगी आदि की प्रतीक है । 'काम' ही 'मन्मथ' के रूप मे मनोद्भ्रामक, 'मार' के रूप मे आघातक 'मदन' के रूप मे प्रेमोन्मादक तथा 'प्रद्युम्न' के रूप मे सर्वातिशायी और सर्वजयी है ।[27]

कामदेव का सम्बन्ध यक्षो एव अप्सराओ से पुराणो मे ही सकेतित है । पद्मपुराण मे गधर्वो का स्वामी 'चित्ररथ' को बताया गया है (पद्म०सृष्टि खण्ड 7, 73) किन्तु वायुपुराण मे कामदेव को शोभयन्त नामक अप्सराओ की जाति का जनक कहा गया है ।[28] ब्रह्माण्डपुराण से भी इसका समर्थन होता है ।[29] उसमे कामदेव को समस्त अप्सराओ और ऋतुओ का अधीश्वर कहा गया ।[30]

हरिवंशपुराण मे भी लिखा है कि भगवान ने गधर्वो और अप्सराओ के ऊपर ऐश्वर्यशाली कामदेव का अभिषेक कर दिया। 'गवर्वाप्सरसाचैव कामदेव तथा प्रभु।[31] वे कल्पवृक्ष के अ श भी है।[32]

प्रादुर्भाव, नाम इत्यादि के अतिरिक्त कामदेव के सामर्थ्यपूर्ण कार्यों के उल्लेख भी पुराणो मे प्राप्त है। मत्स्यपुराण मे उनके अनेक गौरवशाली कार्यो का उल्लेख है। काम-बाण से ब्रह्मा विद्ध हो पुत्री से सगम करने के लिए प्रेरित हुआ, क्रुद्ध हो ब्रह्मा ने रुद्र द्वारा काम के भस्मीभूत होने का शाप दिया, फिर काम की प्रार्थना पर उसे कृष्ण के पुत्र-रूप मे पुनर्जन्म लेने का वर दिया, यह सारा कथानक मत्स्यपुराण मे वर्णित है।[33] शिव को उमा से विवाह करने के लिए कामदेव द्वारा प्रेरित करने का कथानक भी मत्स्यपुराण मे है।[34] काम ने सिद्धेश्वर मे शिव की आराधना की जिससे उसे पुन देवत्व प्राप्त हुआ।[35] पद्मपुराण (खण्ड 1,अ० 20) मे अनगवती नामक वेश्या माघ मास की द्वादशी को विभूति द्वादशी व्रत रखती है। मत्स्य पुराण मे भी विभूति द्वादशी व्रत-पालन के फलस्वरूप 'अनगवती' नामक स्त्री के कामदेव की पत्नी होने की कथा है। उसका नाम 'प्रीति' हुआ।[36] मत्स्यपुराण मे ही कामदेव की मूर्ति का भी उल्लेख है।[37]

श्रीमद्भागवत मे इन्द्र द्वारा कामदेव को पत्नी रति तथा वसत आदि के साथ नर का तप भग करने भेजा जाना[38] और देवासुर सग्राम में देवता-पक्ष की ओर से काम का अपने प्रतिपक्षी असुर दुर्मुख से युद्ध करना[39] वर्णित है। अग्निपुराण मे इन्द्र काम तथा रति के सहयोग से वैश्य स्त्री सुकला का सतीत्व भग करने की चेष्टा करता है किन्तु असफल रहता है। इस कथानक मे काम-सखा वसत भी उसका सहयोगी है। समस्त ऋतुएँ वशवर्ती हो एकत्र है। कोकिल-कूजन, भ्रमर-गु जन, पक्षी-कूजन इत्यादि व्यापार कामदेव को प्रणयीजन को मुग्ध करने मे प्रवृत करते हैं।[40]

काम के पुनर्जन्म के सम्बन्ध मे भी कई रोचक कल्पनाएँ महाभारत तथा विभिन्न पुराण ग्रथो मे प्राप्य हैं। प्रद्युम्न-रूप मे काम के जन्म लेने का उल्लेख प्रथम

4. 'काम' का पुनर्जन्म

बार ब्रह्मपुराण मे आया है जहाँ कहा गया है कि मधुसूदन (श्रीकृष्ण) ने रुक्मी को जीत कर रुक्मिणी को प्राप्त किया जिससे मदन का अ श वीर्यवान प्रद्युम्न हुआ।[41] पद्मपुराण के छठे उत्तर खण्ड (अ० 250) मे रुक्मिणी-हरण तथा अनिरुद्ध प्रसग तो विस्तार से है किन्तु प्रद्युम्न-कथा को केवल एक ही वाक्य मे यह कह कर सूचित कर दिया गया है कि कृष्ण के रुक्मिणी से मदन का अ श प्रद्युम्न हुआ जिसने महाबली शबर का हनन किया। विष्णुपुराण मे पराशर जी रुक्मिणी-हरण प्रसग मे प्रद्युम्न को कामदेव के अ श से उत्पन्न कृष्ण-रुक्मिणी का वीर्यवान्

पुत्र बताते है–'तम्या जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनाशस्यवीर्यवान् ।[42] फिर रुक्मिणी के समक्ष नारद जी इसी रहस्य को प्रकट करते हुए कहते है—कामदेव ने ही तेरे पुत्र रूप से जन्म लिया है और यह सुन्दरी (मायावती) उसकी प्रिया 'रति' ही है ।[43] इसी कथासूत्र का विकास आगे मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और महाभारत के हरिवशपर्व मे हुआ ।

पद्मपुराण (खण्ड 1, अ० 45, श्लोक 200–286) मे कामदेव द्वारा शकर को क्षुब्ध कर पार्वती पर अनुरक्त करने की कथा है । कामदेव वसत ऋतु का विकास कर कान के मार्ग से शकर के हृदय मे प्रवेश करत है, किन्तु शीघ्र ही उन्हे निर्गत होना पडता है । तब वे सम्मोहन अस्त्र छोडते हैं । अन्तत शकर क्रुद्ध हो मदन–दहन करते हैं । फिर रति की प्रार्थना पर वर देते हैं कि शीघ्र ही कामदेव 'अनग' रूप से विख्यात होगा । शिवपुराण मे अपनी पुत्री सध्या मे अनुरक्त ब्रह्मा द्वारा काम को शिव द्वारा भस्म होने का अभिशाप रोचक शैली मे वर्णित है । कामदेव के सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन करते हुए उसे स्वर्णिम काति वाला, नीलवस्त्रधारी, कमलायत-लोचन कहा गया है । वह मीनाकित ध्वजा धारण किये है, मकर उसका वाहन है, वह पुष्पधनु और पुष्पमय पचबाण धारण किये है । स्वय शृ गार रस उसकी सेवा मे तत्पर है ।[44] फिर कामदेव की प्रार्थना पर द्रवित होते हुए ब्रह्मा उसे रति के निमित्त से पुनरपि जीवित होने का वरदान देते है ।[45] कालिकापुराण मे भी शिव-पुराण से मिलता-जुलता अध्याय है, अन्तर यही है कि उसमे ब्रह्मा-पुत्री सध्या स्वय घोर तप कर विष्णु से यह वर माँगती है कि काम भविष्य मे कभी भी किसी को पैदा होते ही चचल न कर सके । सध्या की प्रार्थना पर विष्णु यह व्यवस्था कर देते हैं कि भविष्य मे कामदेव युवाजनो को ही विक्षुब्ध कर सकेगा और क्वचित्-कदाचित् किशोर जनो को भी ।[46]

मत्स्यपुराण मे भी यह प्रसग है । अन्तर यही है कि वहाँ ब्रह्मा की पुत्री का नाम 'सावित्री' है तथा पुनर्जन्म के विषय मे स्पष्ट उल्लेख है कि कामदेव वैवस्वत मन्वन्तर मे यदुवश मे ब्रह्मा के ही अ शभूत बलराम के समान ही तेजस्वी और पराक्रमी उनके भाई (कृष्ण) के पुत्र-रूप मे उत्पन्न होगा । अत इस स्थान पर प्रद्यम्न नामोल्लेख न होते हुए भी आशय यही है ।[47]

इस प्रकार पुराणो मे ही कामदेव के प्रद्युम्न-रूप मे अवतीर्ण होने के सकेत तथा प्रद्युम्न–चरित विधायक कथा–सूत्र भी उपलब्ध हो जाते हैं किन्तु प्रद्युम्न के देवता-रूप का विकास इतना प्राचीन नही है । यह, जैसा कि हम आगामी अध्याय मे देखेंगे, पाचरात्र-सहिता-काल में ही संभव हुआ । फिर भी पुराणो मे 'विष्णु' या 'हरि' की एकरूपता एव तथैव उपास्यता के सदर्भो मे उसके लिए परोक्ष रूप से भूमिका

निर्मित है जिसके अनेक रूप विशेषत मत्स्यपुराण मे पर्याप्त रूप से उपलब्ध हैं। इसीका दूसरा चरण, प्रद्युम्न के चतुर्व्यूह मे से एक व्यूह होने अथवा कामदेव से सम्बद्ध होने के कारण पूजार्ह होने के यत्किंचित् स्फुट उल्लेख होना है।

5. काम की विष्णु और प्रद्युम्न से एकरूपता :

'काम' और 'विष्णु' या 'हरि' की एकरूपता पुराणो मे अनेकश वर्णित है। पद्मपुराण मे 'वेश्याव्रत-विधान' के अन्तर्गत लिखा है कि वेश्या को चाहिए कि वह अपने वेश्या-धर्म का पालन करते हुए रविवार के दिन जब हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र हो, सर्वौषधि के जल से स्नान करे और 'अनग' के नामो से 'विष्णु' की पूजा करे। इससे 'पचबाण हरि' प्रसन्न होते हैं।[48] यहाँ विष्णु से कामदेव की एकरूपता स्पष्ट है। यही नहीं, पद्मपुराण मे ही अन्यत्र 'कामव्रत' का भी विधान वर्णित है। इसमे पुष्य नक्षत्र मे त्रयोदशी के दिन रात्रि मे भोजन करने तथा 'प्रद्युम्न' की प्रसन्नता के लिए अशोक, स्वर्ण, वस्त्र और दश अगुल ईख ब्राह्मण को दान करने का उल्लेख है।[49] इस स्थल पर ,प्रद्युम्न' शब्द का आना महत्त्वपूर्ण है। इससे प्रद्युम्न की कामदेव से एकरूपता तथा इस सम्बन्ध से उपास्यता व्यजित होती है। अग्निपुराण मे भी मार्गशीर्ष मास की शुक्ला त्रयोदशी को 'अनग त्रयोदशी' कहते हुए 'अनग' की पूजा करने, रात्रि मे मधु का भक्षण करने और तिल-चावल से होम करने का विधान वर्णित है।[50] इसी प्रसग मे आगे लिखा है कि ज्येष्ठ मास की त्रयोदशी को लोग का भक्षण करे और प्रद्युम्न की पूजा करे।[51] इन सभी सदर्भो से उपास्यता की दृष्टि से काम और प्रद्युम्न की पर्यायता ही व्यजित नही होती, प्रद्युम्न की स्वतत्र रूप मे उपास्यता भी प्रकट होती है। अग्निपुराण मे ही प्रद्युम्न चतुर्व्यूह से भी सम्बद्ध दीख पडते है। एक स्थल पर स्पष्ट उल्लेख है कि आदिमूर्ति वासुदेव से सकर्षण, सकर्षण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का आविर्भाव हुआ।[52] यही नही, चतुर्विंशतिमूर्ति वर्णन' के अन्तर्गत प्रद्युम्नमूर्ति को गदा, शख, पद्म, चक्रधारी बताते हुए[53] प्रद्युम्न के दक्षिण करो मे वज्र और शख तथा वाम करो मे धनुष और गदा होने का उल्लेख है। प्रद्युम्नमूर्ति के वाम पार्श्व मे 'प्रीति' की स्थिति बताई गई है।[54] इसी प्रकार नव-व्यूह स्थापना मे वासुदेव को मध्य मे रखते हुए उनके दक्षिण पार्श्व मे सकर्षण और प्रद्युम्न को बीज मत्र सहित स्थापित करने का विधान वर्णित है।[55] मत्स्यपुराण मे भी चैत्र शुक्ला द्वादशी को मनाये जाने वाले मदन द्वादशी व्रत के विधान मे कामदेव तथा विष्णु भगवान की कथा कराने और काम–रूप मे विष्णु–पूजा करने का निर्देश है। सुखार्थी कामे नामक 'हरि' की पूजा करे जिससे कामरूपी जनार्दन प्रसन्न हो। जिसे 'स्मर' कहते है वही विष्णु और महेश्वर है। अत अग-रूप मे उत्पन्न ईश्वर का—'काम' रूप मे स्मरण करे।[56] योगशास्त्र भी स्मर–रूपधारी गोविंद की स्तुति की प्रेरणा देता है।[57]

यही नही, मत्स्यपुराण मे ही अन्यत्र सर्वात्मा कामदेव का, मधुसूदन–विग्रह के पद, जघा, कटि, उदर, उरु, मुख, बाहु और मस्तक स्थान मे क्रमश· कामदेव, सौभाग्यदाता, स्मर, मन्मथ, स्वच्छोदर, अनग, पद्म मुख, पचशर और सर्वात्मा आदि पर्यायो से चितन करते हुए तथा कामदेव को नमस्कार करते हुए केशव की अर्चना करने के लिए लिखा है।[58] यहाँ काम की केशव से सागोपाग सगति बैठा दी गई है जिससे एकरूपता मे सन्देह न रहे। इसी प्रकार अनगदानव्रत मे कामदेव को ताम्रपत्र मे रख, स्वर्णपत्र से उसके नेत्र ढक कर काम और केशव को अभिन्न समझते हुए पूजा करने की व्यवस्था है।[59] पद्मपुराण भी इसका साक्षी है कि विष्णु जनादन की उपासना काम-पत्नी 'रति' के साथ होती थी।[60]

प्राचीन साहित्य मे काम-पूजा का विधान और तत्सम्बन्धी मत्रो आदि का ही उल्लेख नही है, अपितु काम–प्रतिमा के निर्माण के विधि भी वर्णित है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (रचनाकाल 400–500 ई०)[61] मे

6 'काम' की प्रतिमा तथा पूजा

काम-प्रतिमा-निर्माण के सम्बन्ध मे निर्देश है कि कामदेव की प्रतिमा अप्रतिम रूप से युक्त होनी चाहिए जो अष्टभुजाओ मे शख, पद्म, चाप, बाण धारण किये हो तथा मदघूर्णित नेत्रो वाली हो। रति, प्रीति, शक्ति और मदशक्ति नामक उसकी चार भार्याएँ हो। कामदेव के चार हाथ इन भार्याओ के स्तनो पर हो। ध्वज पर बडा-सा मकर हो जिसका मुख पाँच बाणो का बना हो।[62] इसी प्रकार 'शिल्परत्न' मे लिखा है कि कामदेव के दक्षिण भाग मे भोजन की सामग्री वाली 'प्रीति' की प्रतिमा बनानी चाहिए तथा वाम-भाग मे 'रति' की प्रतिमा जिससे निरन्तर रति-कामना प्रकट होनी रहे।[63]

कामदेवता की प्राचीन प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हुई है जिनसे कामदेव के सम्बध मे कई रोचक तथ्यो पर प्रकाश पडता है। बेसनगर मे शुग–काल (तृतीय सदी ई० पू०) का एक मकरध्वज पाया गया है जो ग्वालियर म्यूजियम मे है।[64] बादामी मे रति के साथ मकरवाहन और मकरकेतन काममूर्तियां प्राप्त हुई है। वरुण का मकर-वाहन होना अनेक प्राचीन मूर्तियो और चित्रो मे अ कित हुआ है।[65] समुद्र और जल का देवता होने के कारण वरुण और उसकी स्त्री गौरी का वाहन भी मकर ही है। अग्निपुराण मे भी वरुण को 'मकरवाहन' कहा गया है[66] और विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे मकर केतन।[67] बादामी, मैसूर और भुवनेश्वर के लिगराज मदिर की अनेक मूर्तियो से भी वरुण का मकरवाहन होना स्पष्ट है। फलस्वरूप विद्वज्जनो का अनुमान है कि कामदेव और यक्षाधिपति वरुण मूलत एक ही देवता है; यदि नही, तो कम-से-कम एक ही देवता के दो विभिन्न रूप तो हैं ही।[68]

अतः काम का यक्षो से सम्बन्ध स्पष्ट है। पद्म, वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवश आदि पुराणो मे कामदेव के गंधर्वो और अप्सरादि के अधीश्वर होने का उल्लेख हम

पूर्ववर्ती पृष्ठो मे कर चुके है। बौद्ध जातक-साहित्य का 'मार' भी जो यक्ष है, कामदेव का ही रूप है।[69] उत्तराध्ययन टीका मे भी काम को 'यक्षाधिप' कहा गया है।[70] कामदेवता का सम्बन्ध यक्षो से बहुत पुराना है। कहा जाता है कि यक्ष मातृ-सत्तात्मक समाज मे प्रचलित योनिपूजा करते थे तथा उनका देवता प्रजनन का देवता 'काम' था। मातृसत्तात्मकता के चिन्ह समाज मे कृष्णकाल तक यत्किचित अवशिष्ट थे यह इसीसे स्पष्ट है कि छादोग्य उपनिषद् मे कृष्ण को 'देवकीपुत्र' कहा गया है। अत अनुमान है कि यक्षो के देवता काम का आर्यो के साथ सम्पर्क होने से वैदिक देवता वरुण से काम का सामजस्य हो गया। कालान्तर मे जब विष्णु लोकप्रिय हो चले तो वरुण और कामदेवता तत्त्वो की अन्तर्भुक्ति विष्णु के स्वरूप मे हो चली जिसे फिर वासुदेव कृष्ण के भागवत सम्प्रदाय ने न केवल आत्मसात ही कर लिया अपितु अपनी चतुर्व्यूह-योजना के अन्तर्गत कामदेव को ही प्रद्युम्नादि व्यूहो के रूप मे अवतरित होने का गौरव प्रदान कर दिया। यही कारण है कि एक ओर धार्मिक पूजा-अर्चा आदि क्षेत्र मे प्रद्युम्न-मूर्ति, प्रद्युम्न-मत्रादि के विधान मे तथा दूसरी ओर काव्य-क्षेत्र मे प्रद्युम्न के चरित-नायक स्वरूप के योजक तत्त्वो मे कामदेव तथा उसके आनुपगिक यक्ष, गधर्व, अप्सरा इत्यादि तत्त्वो और इनसे सम्बद्ध कल्पनाओ और कथा-सूत्रो का प्रभाव सर्वत्र प्रभूत रूप से परिलक्षित होता है।

7 'काम' के महत्त्व का ह्रास

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अन्तत. 'काम' जो ऋग्वेद के नासदीय सूक्त[71] मे निरुपित सूक्ष्म मनस्तत्त्व की स्थिति से उठ कर अथर्ववेद[72] तक आते-आते उग्र योद्धा, प्रसिद्ध जयी, सामर्थ्यवान्, अलौकिक सखाओ का सखा, यजमान द्वारा प्रार्थनीय, समृद्धिप्रदाता सोम, मित्र वरुण से समभूमि पर स्थापित, अग्निरूप आदि विशेषणो से विभूपित हो गया और जिसका महत्त्व इतना बढा कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को भी काम कहा गया, वैष्णव तथा शैव परम्परा मे प्रद्युम्न और कार्तिकेय के रूप मे अवतरित हो कर गौण तथा वशवर्ती क्यो हो गया ? इसका एक कारण विश्वेदेवो की कल्पना हो सकता है। किन्तु विश्वेदेवो के रूप मे काम का उल्लेख विरल है और यह भी स्वय मे हेतु न होकर उपलक्षण की प्रकृति लिये हुए है अत यह पर्याप्त समाधान नही हो सकता।

8 'काम' और 'अग्नि' वैष्णव तथा शैव परम्परा में :

वस्तुतः काम के महत्त्व मे ह्रास का सम्बन्ध अग्नि देवता के पराभव से है। यह सभी जानते है कि प्रारभ मे अग्नि अत्यन्त प्रमुख देवता रहा है। ऋग्वेद का प्रथम मत्र ही 'अग्निमीले पुरोहितम्' से प्रारभ होता है। अग्नि की स्तुति से मारीऋक्‌सहिता आपूर्ण है। हमने यह भी देखा कि अग्नि से काम का अटूट सम्बन्ध है। इसलिए अग्नि के प्रभाव-क्षरण के साथ-साथ ही काम देवता के महत्त्व मे न्यूनता आना स्वाभाविक ही था। ऐतरेय ब्राह्मण[73] के प्रारभ मे ही अग्नि के हीन देव

होने और विष्णु के उत्कृष्ट देवता होने की घोषणा और शतपथ ब्राह्मण[74] मे विष्णु के यज्ञ-स्वरूप और सर्वोच्च देवता पद पर प्रतिष्ठित हो जाने की प्रक्रिया मे ही काम के सामर्थ्यवान् देवता की कोटि से गौण अवतार-देवता हो जाने की सभावना निहित है। जब वासुदेव कृष्ण विष्णु के स्थानापन्न समरूप देवता पद पर प्रतिष्ठित हो गये तो अग्नि के गौण देवता हो जाने से उनके प्रतीक कामदेव का उत्कृष्ट यज्ञ-रूप विष्णु देवता के प्रतिनिधि वासुदेव कृष्ण के पुत्ररूप मे अवतार लेने की कल्पना को वल मिलना स्वाभाविक ही था। यज्ञ और अग्नि से सम्बन्धित वैदिक उपासना का स्थान अवतारयुग मे जब आदर्श मानव व्यक्तित्वो कृष्ण सकर्षण आदि ने ले लिया तो अग्नि-रुप काम के प्रतिनिधि प्रद्युम्न का यज्ञ-रूप विष्णु के प्रतिनिधि कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में अवतीर्ण होने की सगति का तर्कौचित्य सरल और स्पष्ट है। यह मात्र अनुमान ही नही है, महाभारत तथा पाचरात्र ग्रथो से इस स्थापना की पुष्टि भी होती है।

एक युग मे वैदिक यज्ञोपासना एव विष्णु और रुद्र पूजा मे सघर्ष का दौर रहा था। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते है। महाभारत मे लिखा है कि यज्ञ की भस्मराशि मे से ब्रह्मर्षियो के मान्य, तपश्चरण-शास्त्रश्रवण तथा गुणो का सम्पादन करने के अभिलाषी वैखानस उत्पन्न हुए।[75]

इससे क्या यह सकेत नही मिलता कि वैष्णव भक्तिमार्ग के मूल प्रवर्तक वैखानस मुनियो की परम्परा का प्रारभ यज्ञ-प्रथा के ध्वस-काल से है तथा यज्ञ और कर्मकाण्ड की अपेक्षा उनकी आस्था तपश्चरण, शास्त्र तथा गुणोत्कर्षमूलक अध्यात्म साधना की ओर अधिक थी? वैदिक यज्ञ-मूलक ब्राह्मण धर्म से वैष्णव और शैव मतावलम्बियो के सघर्ष, समन्वय और वर्चस्व की ही गूँज हमे वैदिक काम-कथा के वैष्णव और शैव सस्करणो मे सुनाई देती है।

यही कारण है कि जिस प्रकार महाभारत मे कार्तिकेय की समरूपता काम-देवता से स्थापित करते हुए उनका सम्बन्ध अग्नि के माध्यम से शिव से जोड़ा जाता है उसी प्रकार अग्नि के माध्यम से ही महाभारत के अनुशासन पर्व मे, प्रद्युम्न का सम्बन्ध कृष्ण से भी स्थापित किया गया है।[76] प्रद्युम्न को शतशः स्पष्टतः कृष्ण-पुत्र और कृष्ण का व्यूह-अवतार कहने के बाद भी, अग्नि के माध्यम से भी, उन्हे कृष्ण से सम्बद्ध करने की आवश्यकता अन्ततः महाभारतकार को क्यो अनुभव हुई? इसका समाधान यही हो सकता है कि शिव के नेत्र से अग्नि का निर्गमन, शिव के वीर्य का अग्नि मे निपात आदि अद्भुत चमत्कृतिपूर्ण दैवी कथा-तत्त्वो से जो अलौकिक शक्तिसामर्थ्यवान् रूप शिव का उभरता है, उससे कृष्ण कही विरहित न रह जाएँ यही भावना इस व्यापार की प्रेरक रही है। इन अध्यायो मे कृष्ण के अग्नि पर आधिपत्य की महिमा को शकर ही पार्वती से कहते हुए बताये गये है।

139 वे और 140 वे अध्याय मे समानान्तर रूप से दो कथाएँ दी गई हैं जिनसे क्रमश कृष्ण और शिव दोनो के ही अग्नि पर अधिकार का सामर्थ्य समभावेन सिद्ध होता है। रुद्राणी द्वारा कृष्ण-सामर्थ्य मे शका प्रकट करने पर रुद्र स्वय इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि एकवार धर्मात्मा श्रीकृष्ण बारह वर्ष के व्रत की दीक्षा लेकर व्रत करने लगे। उस समय अद्‌भुतकर्मा श्रीकृष्ण के मुख से निसृत व्रतचर्यारूप ईंधन से उत्पन्न नारायण का तेज-रूप अग्नि (ततो नारायण तेजो)[77] वृक्ष-लता पक्षी-मृगादि सहित सपूर्ण पर्वत को भस्म करने लगा। प्राणियो मे आकुलता बढने पर कृष्ण द्वारा उपशान्त अग्नि, शिष्य के सदृश कृष्ण-चरणो मे नमित हो गया। श्रीकृष्ण ने सौम्य दृष्टिपात कर भस्म वन को पुन हरा-भरा कर दिया। आश्चर्यमग्न ऋषियो से श्रीकृष्ण कहते है, कि मेरे मुख से निसृत तेज, वैष्णव तेज (एतद्वैष्णव तेजो) [78] और युगान्तक तेज था। उसी ने इस पर्वत को भस्म कर 'कृष्णवर्त्म' कर दिया था— 'कृष्णवर्त्मायुगान्ता भो येनाय मथितो गिरि ।'[79] यहाँ कई सकेत महत्त्वपूर्ण हैं। श्लेषाश्रित रूपक को अनवगुण्ठित कर देखे तो यज्ञमार्ग की श्रेष्ठना इस आख्यान मे ग्रथित है।। कृष्ण के मुख से निसृत नारायण का तेज रूप वैष्णव अग्नि (अर्थात् नारायणीय धम की ओजस्वी वाचा) ने गिरि (अर्थात् धर्म) को कृष्णवर्त्म कर (भस्म और कृष्णरूप कर अर्थात् प्राचीन धर्म को ध्वस्त कर उसे पुनः कृष्ण प्रतिपादित स्वरूप मे रूपान्तरित कर) पुन उसे अपनी सौम्य दृष्टि से (सात्विक भक्तिमूलक चिंताधारा से) फिर से हरा-भरा कर ऋषि-मुनियो और लोकादि को हर्षित किया। यह भी द्रष्टव्य है कि कृष्ण के मुख से निसृत यह अग्नि 'व्रतचर्यास्वरूप' है न कि यजन के फलस्वरूप। अत यज्ञादि से व्रतादिक अनुष्ठानो की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। इस कथा-योजना से महाभारतकार ने एक ढेले से दो चिडियो का शिकार किया है—यज्ञीय धर्म पर वैष्णव भक्तिमार्गीय श्रेष्ठता का गुणानुवाद तथा कृष्ण का रुद्र के समकक्ष महत्त्व-स्थापन। ब्राह्मणो के जटिल प्रक्रिया सम्पन्न यज्ञादि से जो अग्नि-देवता दुस्साध्य थे, वे ही शिव के नेत्र-निवद्ध (नजरकैद ?) हुए और अब वे ही श्रीकृष्ण के मुखस्थ होकर और भी वश्य हो गये तभी तो वे कार्यसम्पन्न कर शिष्यवत् चरणस्पर्श भी करते हैं और श्रीकृष्ण भस्मीभूत पर्वत को फिर से हरा-भरा करने की अतिरिक्त सामर्थ्य भी रखते है। शैव सम्प्रदाय को क्षति-पूर्ति के रूप मे अगले ही (140 वें) अध्याय मे ठीक यही कथा-फल शिव की भेट है। पार्वती द्वारा बाल-चापल्यवश परिहास मे शिव के दोनो नेत्र आवृत कर लेने पर तृतीय नेत्र से शिव द्वारा इसी प्रकार पर्वत को भस्म और पुन हरा-भरा करने का वृत्तान्त वर्णित है।[80]

महाभारत मे अग्नि ऋचा और रुद्र की वशवर्ती है। अनुशासन पर्व मे धर्मात्मा श्रीकृष्ण द्वारा बारह वर्ष की दीक्षा का व्रत करने पर उसके मुख से नारायण के तेज रूप अग्नि के प्रकट होने और पर्वत को भस्म करने की कथा है तो शिव के

तीसरे नेत्र से निकली अग्नि से हिमालय के भस्म होने का भी वृत्तान्त है।[81] एक ही क्रमिकता मे ये दो प्रकरण कृष्ण (विष्णु) और रुद्र सम्प्रदाय से समान माहात्म्य और गौरव को तथा अग्नि (यज्ञीय वेद-मार्ग) पर उक्त दोनो सम्प्रदायो के वर्चस्व को द्योतित करते है। यही नही, व्रतचर्या मे तपोरत श्रीकृष्ण के मुख से जो नारायण रूप अग्नि निर्गत हुआ है वह उनका अपना आत्मा ही है जो ब्रह्माजी के आशीर्वाद से पुत्र बनकर उत्पन्न होता है। यह पुत्र (प्रद्युम्न) वृषभध्वजशकर का अर्द्ध तेज (कार्तिकेय) ही है। कार्तिकेय-जन्म कथा[82] मे शिव के वीर्य को अग्नि ही धारण करता है और यह अग्नि ही कार्तिकेय रूप मे जन्म लेता है। अतः अग्नि कृष्ण-पुत्र भी है और रुद्र-पुत्र भी। दोनो ही देवता अग्नि को लय भी कर सकते है और उत्पन्न भी। श्रीकृष्ण-मुख से निर्गत अग्नि को व्रतचर्यारूप ईधन से उत्पन्न हुआ नारायण का तेजरूप अग्नि कहना नारायणीय (पाचरात्र) धर्म के सात्विक तापसरूप के प्रभाव की ओर इंगित करता है। श्रीकृष्ण यज्ञीयहिंसक अग्नि को सात्त्विक तेजाग्नि से हीन सिद्ध करते है तो शिव अपने तृतीय नेत्र (अलौकिक शिव-दृष्टि) से लौकिक काम (अग्नि) को भस्म करते है। अर्थात् वैष्णव और शैव मत दोनो ही लौकिक एषणाओ वाली सकाम यज्ञीय अनुष्ठान-विधि को अपने तप तेज से निरस्त करते है। 'तप' ही उनका समान तत्त्व है। दोनो ही 'स्थूल काम' पर 'सात्त्विक (शिव) काम' की प्रतिष्ठा करते है। यह समानता ही प्रद्युम्न और कार्तिकेय को पर्याय अपत्य के रूप मे अर्थात् एक ही मूल तात्त्विक चिंतना की समानान्तर कल्पनाओ के प्रतीक रूप मे परस्पर सम्बद्ध करती है। अन्तर यही है कि रागानुगा वैष्णव परम्परा मे काम का रूप सौम्य और काम्य हो गया है तो त्यागमूलक शैव परम्परा मे वह अनग हो गया है अथवा असुर-सहारक रूप मे ही प्रकट हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण-काल मे अग्नि का देवता रूप मे गौण स्थान हो गया जिससे अग्नि को वैष्णव और शैव परम्पराओ मे कृष्ण और शिव का वशवर्ती बताया गया। ध्यान देने की बात यह है कि स्वतन्त्र देवता रूप मे प्रत्यक्षतया गौण स्थान हो जाने पर भी वैष्णव और शैव धाराओ मे अग्नि तत्त्व का महत्व परोक्ष रूप से अधिक व्यापक और प्रभावपूर्ण हो गया। अग्नि ही काम और प्रद्युम्न रूप मे एक ओर वैष्णव परम्परा मे प्रच्छन्न रूप से अवतीर्ण हुआ तो दूसरी ओर शैव परम्परा मे वही कार्तिकेय रूप मे प्रादुर्भूत हुआ। एक तीसरी कल्पना के अनुसार अग्नि ही सुवर्ण तत्त्व मे रूपान्तरित हुआ। इस प्रकार अग्नि ही अपने काम (प्रद्युम्न), कार्तिकेय और सुवर्ण रूपो मे इन योजक तत्त्वो द्वारा, वैष्णव, शैव, सौर आदि विभिन्न सम्प्रदायो मे पारस्परिक सामजस्य और अन्तर्भाव का साधक तत्त्व बना। यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु (कृष्ण) रुद्र आदि सभी देवताओ मे सैद्धान्तिक ऐक्य सूचक उल्लेख विरल नही है तथापि अग्नि ने नाना रूपो और कथाओ मे घुल-मिल कर सुदृढ कथा–सूत्रो के रूप मे इन विभिन्न देवताओ के मूलत

अभेद को और भी दृढ़तापूर्वक कल्पना और रोचकता के साथ सिद्ध किया। इन देवताओं के मौलिक अभेद और अग्नि द्वारा (प्रद्युम्न, कार्तिकेय और सुवर्ण रूप में) इस अभेद के साधक सूत्रों का पर्यावलोकन यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

जैसा कि कहा जा चुका है, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव आदि में परस्पर मौलिक भेद नहीं है तथा ये सब एक ही मूल सत्ता के अनेक नाम हैं। इस आशय को स्पष्ट करने वाले उल्लेखों में महाभारत तथा पुराण-साहित्य में जहाँ एक ओर विष्णु के नामों में माताधाता पितामह' रुद्रो बहुशिरावभ्रु. आदि ब्रह्मा और रुद्र के नाम आते हैं तो दूसरी ओर रुद्र के नामों में 'महादेवोऽव्ययोहरि गणनाथ प्रजापति आदि विष्णु और ब्रह्मा के नाम सम्मिलित किये जाते हैं। इसी प्रकार शिव को न केवल कृष्ण के नामों से ही सम्बोधित किया गया है अपितु कृष्ण की विशेषताओं से भी मण्डित किया गया है। उन्हें (शिव को) कृष्णमृगचर्म को धारण करने वाला और कृष्णाष्टमी का अधिष्ठाता कहा गया है।[83] शिव को भी बहुमायाधर कहा गया है।[84] शिव के लिए ही यह भी कहा गया है कि आप योगियों में सनत्कुमार और सांख्यों में कपिल हैं—'सनत्कुमारो योगानांसांख्यानां कपिलोह्यसि'।[85] इस प्रकार सनत्कुमार का सम्बन्ध एक ओर सनन्दनादि के साथ ब्रह्मा से जोड़ा जाता है तो दूसरी ओर शिव से। तीसरी ओर सनत्कुमार का सम्बन्ध कृष्ण से भी असंदिग्ध रूप से स्थापित है। अनुशासनपर्व में ही कहा गया है कि उन पुरुषव्याघ्र व्यापकदेव वासुदेव ने प्रजाहितार्थ और धर्मरक्षार्थ गंधमादन पर्वत पर करोड़ों ऋषियों को उत्पन्न किया और गंधमादन पर्वत पर उन विभु के उत्पन्न किये हुए सनत्कुमार आदि तपस्वी तप करते हैं—'ता सृष्टास्तेन विभुना पर्वत गंधमादने। सनत्कुमार प्रमुखास्तिष्ठन्तितप-सान्विता' अत हे ब्राह्मणो, तुम्हें धर्मज्ञ और वाग्मी वासुदेव को नमस्कार करना चाहिए।[86] यहाँ वासुदेव की सृष्टि होने से सनत्कुमार की प्रद्युम्न से एकरूपता का बीज-रूप दीख पड़ता है। साथ ही, वासुदेव की धर्मज्ञ और धर्मसंस्थापक के रूप में प्रतिष्ठा भी द्योतित होती है—ऐसे धर्म-संस्थापक और वाग्मी के रूप में जो ब्राह्मणों का भी पूज्य है।

शिव की कृष्ण रूप से एकता स्थापित करते हुए उन्हें कृष्णमृगचर्मधारी और कृष्णाष्टमी का अधिष्ठाता कहे जाने का उल्लेख ऊपर हुआ है। इस सम्बन्ध में तण्डिस्तोत्र में उन्हें स्पष्टत 'कृष्ण' कहा गया है—दीर्घश्चहरिकेशश्चसुतीर्थ कृष्ण एव च।'[87] इससे स्पष्ट है कि शिव ही कृष्ण है। कृष्ण शब्द आनन्द और सत्तारूप है। कृषिर्भू वाचक. शब्दोणश्चनिवृत्तिवाचकस्तयोरैक्य परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते' (पतंजलि) अर्थात् 'कृषि' भूमि का वाचक शब्द है और 'ण' निवृत्ति का बोधक है—इनके ऐक्य का नाम परमब्रह्म है उसी को कृष्ण कहते हैं। कृष्ण और शिव की एकरूपता इससे सिद्ध है कि ब्रह्मोत्तर खण्ड में गोपशिशु को महादेव वर देते हैं कि मैं तुम्हारे वंश में सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न होऊँगा। इससे कृष्णावतार को महादेव का ही अवतार कहने का आग्रह स्पष्ट है। अन्यत्र भी अनेकश. कृष्ण को

ब्रह्म स्वरूप और शिवस्वरूप कहा गया है—'पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधना:[88]

जिस प्रकार शिव की कृष्ण से एकरूपकता है उसी प्रकार 'अग्नि' और 'काम' से भी। उन्हे स्वय कामरूप और सकल कामनाओ का दाता कहा गया है तो काम का नाशक भी। जैसा कि प्रथम अध्याय मे उल्लेख हो चुका है, वेद मे लिखा है कि 'रुद्रो वा एषयदग्नि:' अर्थात् यह रुद्र अग्निस्वरूप है तथा 'अश्वतरीरथेनाग्नि-राजिमधावत्' अर्थात् अग्नि खच्चरो से जुते हुए रथ मे बैठकर युद्धस्थल को चले। तण्डिरचित शिवस्तोत्र मे भी शिव के एकसहस्रआठ नामो मे से एक नाम 'हयगर्दभि' है जिसका अर्थ है, रथ मे जुती हुई खच्चरियां—जिन्हे वहन करती हैं ऐसे अग्निस्वरूप। इसी प्रकार शिवस्तोत्र मे ही शिव को 'काम' (कामदेव या अभिलाषा रूप) मत्रवित् (मत्र के ज्ञाता अथवा मत्र से ज्ञेय) कहा गया है।[89] 'गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासा. काम एव च। मत्रवित् परमोमित्र सर्वभावकरोहर.' तथा उन्हे महागर्भपरायण अर्थात् गर्भ की उत्पत्ति मे अवश्य शरण लेने योग्य, कामदेवरूप और कृष्ण वर्ण भी कहा गया है।[90] दूसरी ओर शिव को कामरूप नही बल्कि कामजयी अथवा कामारि के रूप मे भी प्रस्तुत किया गया है। शिव की स्तुति मे उपमन्यु कहते है—हे इन्द्र, अनग को किसने जीता ? (अनग केन निर्जित. ?) तथा उन्हे कामागनाशाय भी कहा गया है—'नम कामागनाशाय कालदडधराय च'[91] तथा कामनाशक भी कहा गया है।[92]

जिस प्रकार वैष्णव और शैव परम्पराओ के अन्तर्लाप का सूचक और सामजस्य का द्योतक तत्त्व अग्नि (काम = प्रद्युम्न = सनत्कुमार) है उसी प्रकार सुवर्ण (कार्तिकेय) सम्बन्धी कल्पना भी इसी क्रम की एक अटूट और सुदृढ कडी है। महाभारत, अनुशासन पर्व (अध्याय 84 तथा 85) मे सुवर्ण तथा

9. प्रद्युम्न, कार्तिकेय, सनत्कुमार और सुवर्ण में अभेद स्थापना में 'अग्नि' और 'काम' की हेतुता

कार्तिकेय की उत्पत्ति की कथा दी हुई है। ऋषियो द्वारा परशुराम से कही गई कार्तिकेय-जन्म-कथा को भीष्म पितामह युधिष्ठिर की जिज्ञासा पर उन्हे सुनाते हैं। इसमे देवताओ द्वारा ऊर्ध्वरेतस होने की प्रार्थना करने, उमा द्वारा देवताओ को निस्सन्तान होने का शाप देने, अग्निदेव के अनुपस्थित होने के फलस्वरूप शाप से बचने, शकर के तेज के पृथ्वी पर अग्नि मे पडने, देवताओ द्वारा ब्रह्मा से तारकासुर-वध का उपाय जानने और अग्निदेव को ढूंढने, अग्निदेव के अपने कारण-वश जल मे लीन होने, मेढको द्वारा अग्नि का पता बताने पर अग्नि द्वारा अभिशप्त होने किन्तु देवताओ द्वारा वरदान प्राप्त करने, अग्नि के शमी और अश्वत्थ वृक्षो मे लीन होने, हाथियो द्वारा इन वृक्षो मे अग्नि का पता बताये जाने पर विलोमजिह्व होने का शाप भोगने, अग्नि के रसताल मे जाने, देवताओ द्वारा अग्नि से दु.ख निवेदन

कर स्तुति करने, अग्नि द्वारा प्रार्थना स्वीकार कर गगाजी मे गर्भाधान करने, गगा द्वारा गर्भ को मेरु पर्वत पर दिव्य शरो के वन मे त्याग देने, कृत्तिकाओ द्वारा उस गर्भ का पोषण करने, फलस्वरूप कार्तिकेय के जन्मधारण करने के अनेक इतिवृत्तात्मक सूत्रो से सवलित कथा इसमे है। इस समस्त कथा को सुनाने के अनन्तर महाभारतकार स्पष्ट घोषणा करता है कि 'इस प्रकार स्वर्ण उत्पन्न हुआ और वह अग्नि का बालक है वह सुवर्ण भगवान अग्निस्वरूप, ईश्वर रूप तथा प्रजापति रूप है।[93] अत. स्पष्ट है कि सुवर्ण ही कार्तिकेय है तथा वही शिव, ब्रह्मा तथा अग्नि स्वरूप भी है।

जिस प्रकार कीर्तिकेय का सम्बन्ध शिव, ब्रह्मा, अग्नि और काम से है उसी प्रकार सूर्य से भी। महाभारत मे कुमार कीर्तिकेय के जन्म के समय उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हे छ' मुखो, बारह नेत्रो तथा बारह भुजाओ वाला तथा आदित्य के समान कान्तिवाला (आदित्यवर्चस्) कहा गया है।[94] उक्त विवरण से स्पष्ट है कि कुमार कीर्तिकेय का सम्बन्ध सूर्य से भी सिद्ध हो जाता है। उनके छ' मुखोकी छ ऋतुओ, बारह आदित्यो तथा बारह भुजाओ की सगति बारह मासो से सकेतित है। इस प्रकार कीर्तिकेय-कथा मे सूर्य (विष्णु) और रुद्र (शिव) देवताओ से सम्बन्धित दो भिन्न कल्पनाओ के सूत्र परस्पर घुलमिल गये है।

कार्तिकेय के सनत्कुमार से सम्बन्ध और एकरूपकता के सकेत भी महाभारत मे स्पष्ट है। हरिवशपर्व मे स्कन्द को ही सनत्कुमार बताते हुए कहा गया है कि उनके बाद उनके छोटे भाई शाख, विशाख और नैगम हुए। उन सनत्कुमार स्कन्द को अग्नि ने अपने एक चतुर्थ अ श से उत्पन्न किया था। वे कृत्तिकाओ की सतान होने से ही कार्तिकेय कहलाए। अत स्कन्द, सनत्कुमार और कार्तिकेय एक ही हैं।[95]

आगे कहा गया है कि प्रज्वलित अग्नि के समान तेज वाले पुराणदेव महानुभाव सनत्कुमार ने शरीरो को रचा और स्थावर-जगम के नष्ट होने पर तथा देवो-असुरो और सर्पों राक्षसो के नष्ट होने पर उन प्रभावशाली महानुभाव ने युद्धाभिलाषी अति दुर्धर्ष मधु और कैटभ नाम वाले दानवो को मार डाला था।[96]

कुमार कार्तिकेय का सम्बन्ध एक ओर अग्नि से है तो दूसरी ओर चन्द्रमा से उनके सम्बन्ध की क्षीण रेखा भी दीख पडती है। कार्तिकेय को चन्द्रमा का अपत्य भी कहा गया है। गुरु-पत्नी तारा ने जब गुरु-पत्नीगामी चन्द्रमा का गर्भ धारण कर लिया तो उसे गर्भवती देख कर उसके पति बृहस्पति ने कहा कि तू मेरे स्थान मे इस गर्भ को धारण कर न रह। तब उसने (तारा ने) कुमार को अस्थान मे उत्पन्न किया अर्थात् उसने सीको के स्तम्भो पर उस प्रज्वलित पावक के सदृश दस्युहन्तम कुमार को उत्पन्न किया।[97] कुमार को चन्द्रमा का अपत्य कहने के मूल मे क्या भावना है? यह सही है कि कुमार कार्तिकेय शिव के तनय है और शिव मौलिचन्द्र है। इसी प्रकार मयूरवाहन कामदेव की मयूर-चन्द्रिका को कामदेव के अवतार कृष्ण धारण करते है जिससे वे कृष्णचन्द्र हैं अत चन्द्रमा के इस महत्त्व के कारण कार्तिकेय को

उनमे भी सम्बद्ध करने की प्रेरणा हुई होगी। काम-कल्पना का प्रभाव कार्तिकेय-कथा पर इससे भी स्पष्ट है कि कार्तिकेय का वाहन भी मयूर है।[98] किन्तु इससे भी पूर्व जो मूल प्रेरणा इस कल्पना-व्यापार की पृष्ठभूमि मे कार्यरत दीख पडती है वह अग्नि से उद्भूत सुवर्ण का 'अग्निषोमात्मक' रूप होना है। अनुशासनपर्व म वशिष्ठ परशुराम से स्वर्ण की उत्पत्ति की कथा कहते है। पहले अग्नि ने लोको को भस्म कर अपने वीर्य से सुवर्ण नामक वस्तु को उत्पन्न किया था। यह सुवर्ण 'अग्निषोमस्व' है अर्थात् इसमे अग्नि और सोम—इन दोनो तत्त्वो का अ श है। सुवर्ण अक्षय है तथा पवित्र करने वाला है। अतएव जो सुवर्ण का दान देते है वे देवताओ का दान देते है क्योकि अग्नि 'सर्वदेवरूप' है और सुवर्ण अग्नि—रूप है।[99]

उक्त प्रसग मे सुवर्ण को 'अग्नि' (सूर्य) और 'सोम' (चन्द्रमा) दोनो का अ श कहा जाना महत्त्वपूर्ण है। इसलिए अग्नि-अपत्य सुवर्ण (कार्तिकेय) सोम (चन्द्रमा) का अपत्य भी है। कार्तिकेय तथा सुवर्ण का, यह सहजात सहोदर भाव सुस्पष्ट रूप से स्थापित है। सुवर्णदान की महिमा के प्रसग मे कहा गया है कि अग्नि (पावक) ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुआ है तथा अग्नि से सुवर्ण उत्पन्न हुआ है।[100] महाभारतकार स्वय असदिग्ध शब्दो मे स्वीकार करते है कि उन्होने इस प्रकार सुवर्ण और कार्तिकेय की उत्पत्ति की कथा एक साथ कही है—'एषा सुवर्णस्योत्पत्ति. कथिता ते मयानघ ? कार्तिकेयस्य च.......।[101] इसलिए कार्तिकेय को 'हिरण्यमूर्ति' पावकपुत्र (पावकि) तथा सुवर्ण को कार्तिकेय का सहजात (सहज कार्तिकेयस्य) तथा पावक का उत्तम तेज (वन्हेस्तेज पर) कहा गया है।[102]

इस प्रकार अग्नि-अपत्य के रूप मे सुवर्ण, कार्तिकेय, सनत्कुमार और प्रद्युम्न मे सहजात सम्बन्ध है। ये सभी अग्नि (काम) के उद्भव हैं। अत. काम ही की लीला इन स्वरूपो के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। प्रद्युम्न के अभिधान और चरित्र-निर्माण मे अग्नि और सुवर्ण की ही प्रद्युम्नता का प्रतिरूपण है।

महाभारतकार का यह कहना तर्कसगत है कि सकल्प सनातन है, उस सकल्प को शास्त्र मे काम कहते है। उस काम के कारण ही रुद्र का स्खलित वीर्य अग्नि मे गिर पडा था।[103] यह सकेत महत्त्वपूर्ण है। काम ही वीर्यरूप से अग्नि मे गिर पड़ा इसीसे काम के अवतार प्रद्युम्न की सगति अग्नि के कुमार कार्तिकेय से घटित हुई। प्रद्युम्न को एक ओर काम से और दूसरी ओर कार्तिकेय से सम्बद्ध करने का एक सूक्ष्म सूत्र इसी मूल कल्पना में है। अग्नि के लिए यह कहना कि 'सकल्पाभिरुचि: काम सनातनतमोऽभवत'[104] अर्थात् कामरूप अग्नि सकल्प (अपत्य)—विषय मे अभिरुचि उत्पन्न करने वाला है—काम और अग्नि के अभेद को स्थापित कर देता है। 'कामाग्नि' शब्द भी इसी काम और अग्नि के परस्परारोपण की ओर

इ गित करता है। फिर, पुत्र (अपत्य) और अवतार-कल्पना मे भी साम्य है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार 'पुत्र भी आत्मा का प्रतिरूपण या अवतरण (अवतार) है। फलत काम के अवतार प्रद्युम्न का साम्य यदि अग्नि के अपत्य 'कार्तिकेय' से घटित हो जाता है तो स्वाभाविक ही है। इस प्रकार 'अग्नि' तत्त्व ही एक ओर भौतिक सृष्टि सम्बन्धी चिन्ता-धारा मे सुवर्ण की उत्पत्ति का हेतु बनता है दूसरी ओर वही दैविक-सृष्टि-कल्पना में (काम के माध्यम से) प्रद्युम्न, कार्तिकेय तथा सनत्कुमार आदि पौराणिक देवताओ के रूप मे अवतार ग्रहण करता है। स्पष्ट है कि इस समस्त कल्पना-प्रक्रिया मे अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति का सम्बन्ध रूपक-कल्पना के आधार पर धार्मिक पुराकथा से जोड दिया गया है। वैज्ञानिक प्रक्रियामूलक तत्त्व-चिंतना (सुवर्ण-रचना) का धार्मिक पुराकथा (कार्तिकेय-प्रद्युम्न-सनत्कुमार-जन्म) से यह सामजस्य इस तथ्य का स्पष्ट निदर्शन है कि किस प्रकार भौतिक (फिजिकल) तथा आधिभौतिक (मेटाफीजिकल) दो भिन्न कल्पनाएँ परस्पर घुलमिल कर एक विचित्र और रोचक मिश्रित कल्पना की सृष्टि कर सकती हैं। इस सपूर्ण कल्पना को एक व्यापक अथच अधिकाधिक अविवादास्पद आधार पर इस रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है —

प्रकट लीला-व्यापार के मूल मे अन्तर्निहित काम-तत्त्व का प्रच्छन्न एकताभाव ही एतद्विषयक समस्त रोचक कल्पनाओ के परस्परिक सादृश्य और अन्तर्लाप का जनक है। यही कारण है कि हमे प्रद्युम्न-कथा मे कुमार-जन्म की कथा से सूत्र रूपान्तरित होकर दूर तक चले गये दीखते है।

10. कर्तिकेय-कथा और प्रद्युम्न-कथा में सम-सूत्रता

उदाहरणार्थ, रुद्र के तेज (वीर्य) को धारण करने के लिए अग्नि को राजी करने के अभिप्राय से जब देवता अग्नि को ढूँढने निकले तो वह अपने कारण-भूत रूप जल मे अपने को लीन करके अदृश्य हो गया। जल मे लीन होने का यह सदर्भ ही प्रद्युम्न के शबरासुर द्वारा समुद्र मे डुबो दिये जाने की प्रसंग-योजना मे पर्यवसित हो गया प्रतीत होता है। काम ही रुद्र का तेज बनकर अग्नि मे गिरता है। अग्नि जल मे लीन होता है। किन्तु पुन जल (गगा) से सयुक्त होकर कुमार के रूप मे उत्पन्न होकर पराक्रम के कार्य करता है। अग्नि द्वारा

गंगा मे गर्भ स्थापित करते समय एक महाभयकर असुर के गर्जन करने का उल्लेख और भयविह्वल गगा का चित्रण ही प्रकारान्तर से क्रम-विपर्यस्त होकर प्रद्युम्न के जन्म के छठे दिन कालसवर असुर की गर्जना और उसके विमान की गडगड़ाहट तथा पुत्रवियोगविह्वल कातर रुदन्ती रुक्मिणी की कल्पना मे रूपान्तरित हो गया। गगा मेरु नामक पर्वत पर गर्भ को त्याग देती है। प्रद्युम्न—चरित्र की एक अन्य कथा-धारा मे कालसवर प्रद्युम्न को समुद्र मे न डाल कर उसे पर्वत पर शिला के नीचे दाव कर छोड देता है। जिस प्रकार सुवर्ण 'अग्निषोमात्मक' है उसी प्रकार प्रद्युम्न का सम्बन्ध भी अग्नि और सोम (जल) दोनो से है। अत प्रद्युम्न सुवर्णरूप है वह रुक्मिणी (रुक्म = सुवर्ण) का पुत्र (अ श) होने से भी सुवर्णरूप है। प्रद्युम्न भी अग्नेरपत्यमेतद्वैसुवर्णमितिधारणा' 105 तथा 'ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्निरग्नेरपिच काचनम्' 103 इस प्रकार प्रद्युम्न के रुक्मिणी और कृष्ण (चन्द्र) के तनय होने और सुवर्णरूप होने की चरितार्थता स्पष्ट हो जाती है।

सुवर्णरूप कार्तिकेय के जनक शिव का सम्बन्ध भी जैसे जल से है वैसे ही अग्नि से भी। उनके तृतीय नेत्र से सृष्टिसहारक अग्नि निर्गत होती है, वे श्मशान मे पचग्नि सेवन करते है। दूसरी ओर उनके जटाजूट से गगा प्रवाहित होती है तथा वे मस्तक पर चन्द्रमा (सोम) धारण करते है। अत शिव भी सृष्टि के हेतु दोनो अग्निषोमात्मक तत्त्वो के धारक है, शिव का एक नाम कपर्दी भी है, जिसका अर्थ जल पीने वाला तथा ऐश्वर्य देने वाला है। गगा को जटाओ मे तथा कमण्डलु मे धारण करने के कारण वे जलपायी (क+प) है तथा भागीरथ की प्रार्थना पर लोक कल्याणार्थ उसे मु चित करने तथा भक्तो को विभूति का प्रसाद देने इत्यादि के कारण वे ऐश्वर्यदाता (ऋत+द) भी है। इस प्रकार उनका कपर्दी (क+प+ऋत+द= कपर्दी) नाम सार्थक है। प्रद्युम्न की स्वरूप—रचना मे किस प्रकार एक ओर विष्णु-कथा के तत्त्वो और दूसरी ओर रुद्र-कथा के तत्त्वो का सयोग हुआ है यह स्पष्ट है। रुद्र और कार्तिकेय कथा से भी अग्नि और जल तत्त्वो सम्बन्धी कथानको का आदान प्रद्युम्न-कथा-धारा मे हुआ है। शिव के एकसहस्रआठ नामो मे 'महामेघ-निवासी च महाघोरो वशीकर अग्निज्वालोमहाज्वालो अतिधूम्रोहुतो हवि' 108 भी है। इससे भी शिव का अग्नि और जल से घनिष्ट साहचर्य प्रकट है। शिव माहोमेघ-निवासी हैं तो प्रद्युम्न को मेघकूटपुर मे सोलह वर्ष रहना पडता है। 'वशीकर' तो वह है ही। अपने रूप से स्त्रियो को और शौर्य से शत्रुओ को वश मे करना यही उसका सर्वत्र चारित्र्य है। इसी प्रकार शिव का (और अग्नि का भी) एक नाम 'अनल' भोजन कर चुकने पर भी अतृप्त (अन्+अल) है। सत्यभामा के महल मे भानुकुमार के विवाहभोज निमित्त निर्मित समस्त मिष्टान्न और अन्नधान्यादि का भक्षण और रुक्मिणी के महल मे कृष्ण के जल—पान के लिए निर्मित गरिष्ठ मोदको का आहार कर चुकने पर भी प्रद्युम्न अतृप्त ही रह जाता है। अतः उसका 'अनलत्व' सिद्ध है।

प्रद्युम्न-चरित्र मे शिव के कपर्दी (जलपायक तथा ऐश्वर्यप्रदाता) रूप के तत्त्वो का भी आदान स्पष्ट है। वह सत्यभामा की बावडी का सारा जल पी जाता है केवल एक कमण्डल-भर जल को छोडकर जिसे वह आगे कौतुक क्रीडार्थ ले जाता है। ऐश्वर्यदाता भी वह है। सत्यभामा की कुरूप दासियो को वह चुटकी बजाते अतुल रूप का ऐश्वर्य दान कर देता है। साम्ब को सुभानु के विरुद्ध द्यूत-क्रीडा मे अपार ऐश्वर्य की प्राप्ति उसी के प्रसाद से होती है। वही रुक्मिणी की समस्त मनोवाछाओ की पूर्ति करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्तिकेय-जन्म सम्बन्धी शैव कथा-धारा के तत्त्वो का पर्याप्त प्रभाव प्रद्युम्न-कथा पर पडा है।

11. काम-कथा के शैव, वैष्णव बौद्ध तथा जैन रूप :

काम के दग्ध होने और अवतार रूप मे प्रादुर्भूत होने के कथानक की यह धारा एक ओर शिवपुराण[109] मत्स्यमहापुराण[110], कालिकापुराण[111] आदि शैव पुराणो मे प्रवहमान है तो दूसरी ओर यही धारा वैष्णव क्षेत्र मे वाल्मीकि रामायण,[112] पद्मपुराण,[113] विष्णुपुराण,[114] भागवतपुराण,[115] महाभारत[116] आदि मे दीख पडती है। इसी प्रकार काम-पराजयकी दो अन्य धाराएँ हमे बौद्ध तथा जैन क्षेत्रो मे मिलती है। इस सम्बन्ध मे एक मौलिक प्रश्न यह है कि काम-कथा का इन चारो ही क्षेत्रो मे क्या स्वरूप रहा है तथा इसके विभिन्न सस्करणो मे क्या मूलभूत अन्तर है? काम-कथा के सम्बन्ध मे तत्तत् धारा के कवियो के मौलिक दृष्टिकोण की पकड के अभाव मे उस कथा के सूत्रो की सगति और सार्थकता स्पष्ट नही हो पाती। वैष्णव और शैव धाराओ का सक्षिप्त परिचय हमने प्राप्त किया। शेष दो—बौद्ध तथा जैन धाराओ के सक्षिप्त अवलोकन के साथ ही हम इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयत्न करेंगे।

काम-कथा की बौद्ध धारा का उद्गम हमे जातक[117] तथा अश्वघोष रचित बुद्धचरित, मे दिखाई देता है।[118] इसका भी प्रेरक स्रोत 'सूत्तनिपात' के प्रधान सूत्त मे दिखाई देता है जहाँ बुद्ध अपनी वाणी से ही 'मार' को परास्त कर देते है। जब वे निर्वाण-प्राप्ति हेतु उत्साह के साथ नेरञ्जना नदी के तट पर ध्यान-लीन है तभी पापी मार सकरुण वचन बोलता हुआ आता है और बुद्ध को योगचर्या त्याग कर ब्रह्मचर्य-पालन और अग्निहोम करने तथा देहनाश से बचने का प्रलोभनपूर्ण उद्बोधन देता है। बुद्ध मृत्यु से भयभीत नही होते और श्रद्धा, तप, वीर्य, प्रज्ञा आदि गुणो की प्रशसा करते हुए मार की अष्टधा सेना काम, अरति, क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, भय, विचिकित्सा, म्रक्ष और गर्व से किंचित भी अभिभूत नही होते। 'मार' सात वर्ष तक भगवान बुद्ध का पीछा करता है और अन्त मे हार कर कहता है—'हे गौतम, पत्थर को चर्बी का टुकडा समझ कर पास आये हुए कौए सा मैं निराश हो गया।' अन्त मे शोकाकुल 'मार' की काँख से वीणा

खिसक पड़ती है और वह यक्ष दुखी हो वहाँ से अन्तर्धान हो जाता है। मार-पराजय की एक धारा 'जातकट्ठ कथा' की 'निदान कथा' मे भी लक्षित होती है। यहाँ मार के भय से त्रस्त होकर सभी देवता यहाँ तक कि काल भी भय के मारे जा छुपता है लेकिन सिद्धार्थ दस प्रज्ञापारमिताओ के बल पर दृढ रहते हैं। मार देवपुत्र सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से वायु, जल, हथियार, धधकती राख, बालू, कीच और अन्धकार की वर्षा करता है किन्तु सब व्यर्थ। तब मार अपने गिरिमेखल हाथी पर से बुद्ध पर चक्र चलाता है जो चँदोवा बनकर तन जाता है। पत्थर की शिलाएँ पुष्पमाला बनकर पृथ्वी पर गिर पडती है। मार और सिद्धार्थ मे त्याग को लेकर स्पर्द्धा होती है। अन्त मे मार-सेना भाग खडी होती है और देवगण हर्षनाद करते है। 'निदान-कथा' के ही 'सतिकेनिदान' मे बुद्ध की मार-विजय से सम्बन्धित एक अन्य प्रसग और है जहाँ पराजय से निराश मार कीतृष्णा, अरति, राग नामक तीन कन्याएँ पिता को समाश्वस्त करती हुई सिद्धार्थ को जीतने के लिए प्रस्थान करती हैं किन्तु अन्त मे परास्त होकर उपदेश ग्रहण कर लेती है। अश्वघोष द्वारा रचित 'बुद्धचरित' मे मार अपने विभ्रम, हर्ष, दर्प नामक पुत्रो और अरति, प्रीति और तृष्णा नामक कन्याओ को लेकर भगवान बुद्ध को विचलित करने की चेष्टा करता है, भूतगणो के सहयोग से बुद्ध को त्रस्त, तर्जित औरताडित करना चाहता है किन्तु उसकी सभी चेष्टाएँ विफल होती है।

कामपराजय की ही चौथी अन्यतम प्रबल धारा जैन-कथा मे प्रवहमान परिलक्षित होती है। जैन सम्प्रदाय मे भी प्रत्येक 'जिन' काम-विजय करके ही मुक्तिलाभ करता है। परन्तु 'जिन' की काम-विजय शकर और बुद्ध की तरह काम को भस्म करने अथवा उस पर शत्रु रूप मेससैन्य आक्रमण द्वारा विजय प्राप्त करने के रूप मे नही है, प्रत्युत् जैन-परम्परा मे कामविजय के लिए 'जिन' स्वय अपनी एषणाओ और वासनाओ का उन्मूलन करते हैं। वे आत्म-जयी के ही रूप मे काम-जयी है। जैन धर्म की आत्म-केन्द्रितता और अहिंसामूलकता के कारण ही जैन परम्परा मे काम-विजय का यह विशिष्ट स्वरूप लक्षित होता है। कामजयी जिन समस्त कामनाओ से रहित होकर अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्तवीर्य से सम्पन्न 'अर्हत्' हो जाते है तथा अठारह प्रकार के दोष उनके अन्तस से कपूर की तरह उड़ जाते हैं। जैन धार्मिक साहित्य मे कुछ अतिशय रूपवान पुरुषो को कामदेव बतलाया गया है। गत अव-सर्पिणी के चतुर्थ काल मे भरत क्षेत्र मे 24 महापुरुष कामदेव हुए जिनमे से कुछ तो उसी भव से मुक्त हुए और कुछ अन्य आगामी भव मे मुक्त मे होगे। इन चौबीस काम-देवो की सूची मे जैन तीर्थकरो, मुनियो और ऐतिहासिक पुरुषो के साथ-साथ कुछ वैष्णव धर्म के पौराणिक पुरुषो का भी उल्लेख है जिनमे से प्रद्युम्न भी एक है। अन्य नामो मे सनत्कुमार, चक्रवर्ती बलराम राजा नल, हनुमान, वसुदेव आदि हैं।[119]

जैन आचार्यों ने काम के सूक्ष्म मनस्तत्त्व को अपनी विशिष्ट दार्शनिक चिन्ताधारा के व्यासग मे निरूपित करने का उपक्रम करते हुए काम के भेदोपभेदादि की भी कल्पना की है। फलस्वरूप, जैन आगम मे आहार, भय, परिग्रह और मैथुन सज्ञाओ मे विभक्त होने पर भी कामवृत्ति का नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप से भी निक्षेप किया गया है। शब्द, रस, रूप गध और स्पर्श-ये द्रव्य-काम हैं तथा (1) इच्छा काम और (2) मदन काम के भेद से दो प्रकार के भाव-काम माने गये है। इनमे से प्रशस्त और अप्रशस्त इच्छा 'इच्छाकाम' है और वेदोपयोग रमणेच्छा 'मदनकाम' है।[120]

इस प्रकार हम देखते हैं कि काम-तत्त्व की दार्शनिक व्याख्या करने, उसे मूर्त स्वरूप प्रदान करने तथा विजित, दग्ध अथवा अतिक्रान्त करने की प्रवृत्ति परम्परागत रूप से शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन-इन चारो ही धर्म-साधनाओ के क्षेत्रो मे परिलक्षित होती है। यह भी द्रष्टव्य है कि काम-तत्त्व की दार्शनिक सयोजना तथा कामकथा की कल्पना का इन चारो ही धर्म-साधनाओ मे अपने विशिष्ट सिद्धान्तो के अनुसरण मे विशिष्ट स्वरूप है। शैव परम्परा मे शिव का कुपित रौद्र रूप धारण कर काम को भस्म करना वर्णित है। उसमे काम-दहन के व्याज से मुख्यत. शिव की शक्ति और योग के चामत्कारिक माहात्म्य का निदर्शन ही मुख्य लक्ष्य है। यही कारण है कि उसमे काम-दहन, रति-विलाप, शिव द्वारा भस्मीभूत अनग-रूप काम को कृपावश पुन कृष्णपुत्र रूप मे जन्म लेने का वरदान देने (जिससे शिव का ही अवढरत्व व्यजित होता है) इत्यादि कथासूत्रो को ही उभार कर रखा गया है। काम के सौदर्यातिशायी रूप और उसके पुनर्जन्म अथवा अवतार-रूप मे पराक्रम और लीला आदि कार्यकलापो की वर्णना की ओर प्रवृत्ति नही है। केवल कृष्ण-पुत्र के रूप मे फिर से जन्म लेने का सकेत-सूत्र मात्र सूचित कर तज्जन्य कथा-क्रम के द्वार बन्द कर दिये गये है। बल्कि मत्स्यपुराण मे तो जो मुख्यत शैव पुराण ही है[121] काम को वरदान देने का कार्य भी ब्रह्मा जी ही करते है। अपनी अगजा सावित्री के साथ गमन करने पर लज्जित ब्रह्मा कामदेव को इसके लिए उत्तरदायी अनुभव कर उसे शिव द्वारा भस्म किये जाने का शाप देते है और कामदेव के अनुनय-विनय करने पर फिर वे ही उससे यो कहते है—'हे कामदेव, वैवस्वत मन्वन्तर मे यदुवंशियो के वश मे मेरे ही तेज और पराक्रम के अशभूत बलराम की उत्पत्ति होगी जो राक्षसो का विनाश कर द्वारकापुरी मे अपना निवास स्थान बनाएंगे। उस समय बलराम ही के समान तेजस्वी और पराक्रमी उनके भाई के पुत्ररूप मे तुम उत्पन्न होओगे। इस प्रकार द्वारका मे जन्म लेकर, सम्पूर्ण भोग-विलासो को भोग कर, दूसरे जन्म मे तुम भरतवश मे राजा वत्स के पुत्र हो ओगे और फिर प्रलयकाल तक विद्याधरो के अध्यक्ष हो धर्मपूर्वक सभी सुखो को भोग कर मेरे पास फिर आओगे। ब्रह्मा के इस शाप और वरदान को पाकर काम दुखी और आनदित दोनो हुआ।[122]

शिवपुराण मे यद्यपि काम के सौदर्य–वर्णन की ओर किंचित रुझान है तथापि वरदान देने का कार्य वहाँ भी ब्रह्मा ही करते है।[123] इस प्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट है कि शैव परम्परा मे शकर के योग–प्रभाव और रौद्र रूप का माहात्म्य ही कामकथा के निमित्त से अभीष्ट है। काम के प्रद्युम्न रूप मे अवतार लेकर लीलाएँ करने विषयक कथानको मे शैव परम्परा की कोई रुचि नही है। मत्स्य महापुराण के उक्त उद्धरण मे प्रद्युम्न का नाम तक स्पष्टतया उल्लिखित नही है। वहाँ ब्रह्मा के अपने अ श से उद्भूत पराक्रमी बलराम के उन जैसे ही तेजस्वी और पराक्रमी भाई के पुत्ररूप मे जन्म लेने की बात कही गई है। यहाँ, प्रद्युम्न क्या, कृष्ण तक का नामोल्लेख न करना, सकर्षण (बलराम) के ही महत्त्व को सूचित करता है।

बौद्ध परम्परा मे भी कामदेव (मार) बुद्ध को अपने तपश्चर्या व्रत से डिगाने का प्रयत्न करता है किन्तु बुद्ध टस–से–मस नही होते। यहाँ भी बुद्ध के योग–बल, सयम और तप का गौरव ही इष्ट है। यद्यपि बुद्ध पर मार की सेना का आक्रमण होता है तथापि बुद्ध अचल अपराजेय सिद्ध होते है। अत बाह्य दृष्टि से युद्ध प्रतीत होने पर भी, वस्तुत यह एकपक्षीय आक्रमण ही है और वह भी रूपकात्मक, इसलिए इस मार–समर मे कोई हताहत नही होता, दग्ध या भस्म होने का तो प्रश्न ही नही है। बाह्य दृष्टि से आक्रमण प्रतीत होने पर भी यह अन्तत. बुद्ध (बोधिचित्त) पर मार (काम-वृत्ति) के आक्रमण की असफलता का ही रूपक है।

जैन-परम्परा मे काम के प्रति मध्यमार्गीय दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसमे शैव तथा बौद्ध परम्पराओ की भाँति अपने उपास्य (तीर्थंकरो) के कामजयी रूप को उभार कर रखना ही अभीष्ट है इसलिए काम-पराजय के पीछे तात्त्विक निरूपण स्पष्ट है। यही नही, इस मयणजुज्झ (मदन युद्ध) की सगति बाह्य की अपेक्षा आभ्यन्तर धरातल पर अधिक अवस्थित है। फिर भी इसमे शैव और बौद्ध परम्परा की अपेक्षा काम के सर्वातिशायी सौदर्य के मनोहारी चित्रण की ओर रुचि अधिक स्पष्ट दीखती है। काम, अन्त मे भले ही जिन की शरण में जाता हुआ दिखाया जाता है किन्तु कथा की मुख्य धारा मे उसके सौन्दर्य और उसके सामर्थ्य का प्रभावशाली रोचक चित्र जम कर प्रस्तुत किया गया है काम के काम्य पक्ष मे भी कृतिकारो ने यथेच्छ रमण किया है जो कि शैव और बौद्ध परम्परा मे उस मात्रा और रूप मे नही दिखाई देता। हाँ, बौद्ध परम्परा की ही भाँति, यहाँ भी 'अहिंसा' तत्त्व ही प्रधान है। जिन-काम-समर मे कामदेव पराजित होकर शरणागत होता है, हताहत अथवा दग्ध नही होता। यह युद्ध भी कभी-कभी एक दूसरे पर सीधे आक्रमण प्रत्याक्रमण के रूप मे न होकर 'मुक्ति' कन्या के वरण के लिए काम और जिन-इन दो प्रतिस्पर्द्धियो के युद्ध के रूप मे होता है जिसमे मुक्ति जिन को वरण करती है। मकरध्वज की

पत्नियों द्वारा अपने पति के प्राणों की भीख माँगने पर जिनराज एक सीमा-पत्र देकर मकरध्वज के प्रवेश-क्षेत्र को निर्धारित कर देते है तथा निर्दिष्ट सीमा के उल्लंघन की स्थिति मे मृत्युदण्ड का प्रावधान घोषित करते है। नागदेव कृत 'मदनपराजय' जैसी कुछ कृतियो मे ही हमे जैन परम्परा की सामान्य धारा से पृथक् कुछ ऐसे विशिष्ट तत्त्व दिखाई देते है। यही नही, इसी कृति मे आगे चलकर रति और प्रीति की प्रार्थना पर उन्हे अपने स्थान तक पहुँचाने के लिए जिनराज शुक्लध्यान वीर की नीयत पर (और अपनी पत्नियो की नीयत पर भी) कामदेव को विश्वास नही होता अतः वह आत्महत्या कर लेता है और सबके देखते ही देखते अनग होकर अन्तर्ध्यान हो जाता है।[14] यहाँ कामदेव को बौद्ध परम्परा से भी अधिक गर्हित, शकालु और सामान्य कोटि से भी हीनतर क्लीवजन के रूप मे प्रस्तुत कर आत्मघाती जैसे पातकी के रूप मे चित्रित किया गया है। आत्मघात को घात या दाह से भी निम्नतर कोटि का माना गया है। किन्तु यह जैन-परम्परा का मुख्य स्वर न होकर अपवाद रूप है। अधिकाश जैन साहित्य मे सहसमल्ल के मयणजुज्झ की भाँति कामदेव प्राणलाभ करने पर जिनराज की स्तुति करता हुआ तथा अपने पापो का प्रायश्चित करता हुआ ही दीख पडता है। अत. यह निष्कर्ष असगत नही है कि बौद्ध और जैन-साहित्य मे जहाँ मार-पराजय से सम्बन्धित घटनाएँ उपलब्ध होती है वहाँ तदितर साहित्य मे मदन या काम-दाह को सूचित करने वाली घटनाएँ ही प्राय दृष्टिगोचर होती है। पहले साहित्य मे ऐसी एक भी घटना का उल्लेख नही मिलता जिसमे मुमुक्षुओ द्वारा मार या मदन का सहार किया गया हो परन्तु दूसरे साहित्य मे इसका भस्मावशेष रूप ही देखने को मिलता है।[125] मदन-दाह की प्रसग-योजना शैव तथा वैष्णव परम्परा मे क्यो उपलब्ध होती है तथा बौद्ध-जैन परम्परा मे क्यो नही—इसका प्रमुख कारण सभवत यही प्रतीत होता है कि वैष्णव परम्परा मे यज्ञ-प्रथा किसी-न-किसी रूप मे स्वीकृत ही रही अत. काम का आहूती होना सहज स्वाभाविक था तथा शैव परम्परा मे प्रथमत यज्ञयागादि का उग्र विरोध नही था, द्वितीय शकर स्वय रौद्र रूप मे चराचर जगन्मात्र के भस्मकर्ता है, श्मशान के अधिष्ठाता है अत शैव परम्परा मे भी मदन-दाह को तिरस्कृत करने का कोई सिद्धान्तगत आधार न होने से यह योजना स्वीकृत रही। किन्तु बौद्ध जैन परम्परा मे यज्ञ-सस्था का और जीव-बलि का उग्र विरोध और अहिसा का स्वर मुखर होने से इस मदन-दाह प्रसग-योजना मे परिवर्तन अपरिहार्य था। यही कारण है कि बौद्ध तथा जैन परम्परा मे काम को सामर्थ्यवान प्रभावशाली शक्ति के रूप मे चित्रित न कर एक धर्मभ्रष्टकारी, पातकी और पश्चातापरत शरणापन्न मुमुक्षु के रूप मे चित्रित किया गया है। ऐसी स्थिति मे काम के पारम्परिक देवत्व को स्वीकारते हुए भी जैन परम्परा मे उसे देवोपम गौरव तथा महत्त्व नही प्रदान किया जा सका—न काव्य की भावभूमि मे और न ही दर्शन के क्षेत्र मे। फलत जैन परम्परा मे हमे साहित्य या उपासना के क्षेत्र मे काम कही भी देवता-रूप मे प्रतिष्ठित नही दिखाई देता। यद्यपि जैन परम्परा

मे भी सर्वत्र प्रद्युम्न को काम का अवतार स्वीकार किया गया है तथा जैसा कि हम देख चुके हैं, प्रत्येक युग के कुछ अति सुन्दर पुरुषो को कामदेवता घोषित करते हुए काम को शैव तथा बौद्ध परम्परा की अपेक्षा अधिक गौरव प्रदान करने का कुछ हलका-सा प्रयास अवश्य दिखाई देखाई देता है तथापि यह सब वैष्णव परम्परा के क्षीण अनुकरण की ही ध्वनि प्रतीत होती है अन्यथा एक ओर काव्य-चरित नायक प्रद्युम्न को अतिप्राकृत सौन्दर्य-पराक्रम-मण्डित दिखाना तथा दूसरी ओर जिस कामदेव का यह अलौकिक चरितनायक अवतार है उस कामदेव को सामान्य पातकीजन या दुष्प्रवृत्ति प्रेरक अधर्म शक्ति के रूप मे प्रदर्शित करना—इस विरोधाभास युक्त असगत व्यापार की सुसगत विवृति नही होती ।

12. काम-कथा के वैष्णव रूप की विशेषताएँ

किन्तु शैव, बौद्ध और जैन धाराओ के विपरीत, वैष्णव धारा मे कमदेव को एक सौन्दर्य-विधायी सुरम्य शक्ति का का रूप देते हुए उसे पूरे तौर पर देवता पद का गौरव प्रदान किया गया है तथा सभी प्रमुख देवताओ को काम-रूप कहा गया है। कामनाओ के मूल ब्रह्म का नाम कामेश्वर है । सृष्टि-क्रिया मे ब्रह्मा, विष्णु रुद्र सभी कामोद्भव और कामरूप है और सर्वव्यापी ब्रह्म काम के पूर्ण रूप है । यही नही, वैष्णव परम्परा मे कृष्ण से काम की एकरूपता स्थापित करते हुए अनग रूप से भस्म काम को पुनर्जीवन दिया गया है और वह शिव द्वारा भस्म होने से पूर्व की स्थिति से, अर्थात् अथर्ववेदीय उलूकपखनाराचधारी कामदेवता की अपनी पूर्वस्थिति से भी अधिक मनोहारी और अभिराम रूप मे विलसित विकसित हो उठा है । महाभारत मे ही एक ओर एक से अधिक स्थानो पर काम-दहन का वर्णन है तो दूसरी और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र को कामरूप कहते हुए प्रद्युम्न के रूप मे काम के जन्म लेने और मायावती के रूप मे शकर के यहाँ रति के जन्म लेने की घटना का वर्णन विभिन्न पात्रों के मुख से विभिन्न अवसरो पर चार वार किया गया है ।[126] इससे महाभारतकार का आग्रह कामदेव के अवतारत्व के सम्वन्ध मे स्पष्ट है और प्रद्युम्न के रूप मे, मानवीकृत (व्यक्तीकृत) रूप मे ही नही, अपितु अपने मूल में—उसके लीला-कलापो के अनुरजित वर्णन मे भी उसकी रुचि असदिग्ध है। वस्तुतः महाभारत मे अवतारवाद की कल्पना के कारण काम को मनुष्य रूप मे लीलाविहार करने का मुक्त अवकाश मिल सका है । किन्तु इस समस्त व्यापार के पीछे एक सुदृढ़ दार्शनिक चिन्ताधारा भी स्पष्ट है। वैष्णव परम्परा की प्रकृष्ट विशेषता यह रही है कि वहाँ यह भुलाया नही गया है कि काम-प्रवृत्ति के शिव और अशिव ये दो रूप है। वह जितना अशिव है उतना ही, वल्कि उससे अधिक ही, शिव भी है। इसलिए इसकी गणना पुरुषार्थचतुष्टय मे

की गई है और गीता मे स्वय कृष्ण अपने स्वरूप की श्रेष्ठतम अ शो और पदार्थों मे स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

'धर्माविरुद्धोलोकेऽस्मिन्कामोऽस्मि भरतर्षभ'

अर्थात् हे अर्जु न, धर्म का अविरोधी काम मै ही हूँ। इस प्रकार धर्म-विरोधी (अशिव) और धर्म-अविरोधी (शिव) काम के इन दो रूपों की स्पष्ट अवतारणा वैष्णव दार्शनिक मस्तिष्क मे रही है। शिव और अशिव काम का यह द्वन्द्व बाह्य और आभ्यन्तर-दोनो स्तरो पर नित्य सामान्य अनुभवगम्य तथ्य है। इसी द्वन्द्व का चित्रण कालिदास ने अपने कुमारसभव और अभिज्ञान शाकुन्तलम मे किया है। कुमारसभव मे कामदेव (अशिव काम) भस्म होता है और फिर कार्तिकेय के रूप मे शिव-सतति (शिव काम) के रूप मे पुन जन्म लेता है।[127] तो अभिज्ञान शाकुन्तलम मे दुष्यन्त तथा शकुन्तला की प्रणय-लीला का प्रेरक लोकबाह्य, अमर्यादित चौर्य काम (अशिव काम) दुर्वासा के शाप से ग्रस्त हो प्रणयीजन की विरहाग्नि के रूप मे अभिशप्त हो पुन· शकुन्तला के तपो पूत जीवन मे प्रणयीजन के मागलिक मिलन-रूप (शिव काम) मे–प्रतिफलित होता है। शिव और अशिव काम का यह द्वन्द्व ही प्रतीक रूप से सनातन देवासुर-सग्राम है।

इस प्रकार, वैष्णव परम्परा मे, काम के शिव रूप की उपेक्षा नही की गई है और उसके प्रति एकागी और कुण्ठाग्रस्त दृष्टिकोण न अपनाया जाकर स्वस्थ सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसके फलस्वरूप सर्वोच्च देवता विष्णु, कृष्ण या गोविन्द की काम के साथ एकरूपता स्थापित की गई। यहाँ कामदहन (अशिव काम के नाश) का कथानक भी रहा और कामावतरण (महापुरुषो के रूप मे मागलिक प्रवृत्तियो के माध्यम से काम के धर्म-अविरोधी रूप को अभिव्यक्ति) सम्बन्धी कथानको का रचना-क्रम भी जारी रहा। वैष्णव-परम्परा में सर्वोच्च देवता और महापुरुषो से उसके द्वन्द्व का प्रश्न ही नही रहा। अकेले शिव उसे भस्म करने के लिए पर्याप्त रहे। कृष्ण, प्रद्यु म्न आदि अवतारो ने तो काम को जय करने के स्थान पर उसे आत्मसात ही कर लिया। वे स्वय 'शिव काम' के अप्रतिम स्वरूप हो गये। हमारे इस दृष्टिकोण का समर्थन स्वय वेदव्यास के कथन से होता है। वैष्णव अवतारवाद-परम्परा मे काम-दहन के उपरान्त भी उसके पुनरोद्भव के पीछे क्रोध की किसी भी रूप मे अग्राह्यता तथा 'शिव' काम के मौलिक महत्त्व की स्वकृति ही है। इसीलिए भागवत-कार एक स्थल पर स्पष्ट कहते है कि 'शकर आदि देवता अपनी रोष-दृष्टि से काम को जला देते है किन्तु आत्मदाहक क्रोध को नही जला पाते। वही क्रोध नारायण के हृदय मे प्रवेश करने से पूर्व ही डरके मारे काँप जाता है। फिर भला, उनके हृदय मे काम का तो प्रवेश ही कैसे हो सकता है?[128]

मानो भागवतकार को इस उक्ति मात्र से सतोष न हुआ हो, इसीलिए उन्होने इस कथन की पुष्टि मे एक कथानक की सृष्टि करना भी आवश्यक समझा। भागवत

के ग्यारहवें स्कध में उल्लेख है कि इन्द्र ने अपना सिंहासन छिन जाने के भय से तपस्या-निरत भगवान नर-नारायण का तप खण्डित करने के लिए स्त्री, वसंत आदि दल-बल सहित कामदेव को भेजा। किन्तु नर-नारायण तो काम से भयाभिभूत या आश्चर्यान्वित होने के स्थान पर हँसते हुए कामदेव का स्वागत करते हुए निर्भय होकर उसे आश्रम मे उनका आतिथ्य स्वीकार करने और आश्रम को सूना न करने का स्नेहानुरोधपूर्ण निमत्रण देते है। लज्जित कामदेव के समक्ष वे लक्ष्मी जैसी असख्य रमणियो को अपने योगबल से प्रकट करके दिखाते है तथा अपनी माया द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी को कामदेव को उपहार रूप मे अर्पित करते हुए उपदेश करते है -"बहुत से लोग तो ऐसे होते है जो भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, आँधी-पानी के कष्टो तथा रसनेंद्रिय-जननेंद्रिय के आवेगो को, जो अपार समुद्र के समान दुस्तर है, सहज ही तैर कर पार कर जाते हैं परन्तु फिर भी वे उस क्रोध के वश हो जाते है जो गोपद के समान क्षुद्र और व्यर्थ है।"[129] वैष्णव कामकथा की मूल प्रवृत्ति और उसके मौलिक स्वरूप पर ये सदर्भ पर्याप्त प्रकाश डालते है।

काम-देवता तथा कामकथा के इस सक्षिप्त परिचायक अध्ययन का हमारे विषय की दृष्टि मे पर्याप्त महत्त्व है। इसमे हमने काम के लौकिक और शास्त्रीय पक्षो के क्रमिक स्वरूप-विकास की रेखाओ को चिन्हित करने के उपक्रम मे देखा कि किस प्रकार कामदेवता के लौकिक और शास्त्रीय दोनो रूपो की प्रतिष्ठा लोक मे होती चली गयी। एक ओर लोकदेवता के रूप मे वह लोकपर्वो, लोकोपासना आदि से सम्बद्ध हो गया। मदनोत्सवो और वसन्तोत्सवो के रूप मे वह लोकगीतो का आश्रय बना। यहाँ तक कि होली के दिन, सुदूर दक्षिण मे भी होलिका-दिवस को मदन-दहन का दिवस मानते हुऐ काम की मृत्यु पर काम-पत्नी रति के करुण विलाप-व्यजक गीत गाये जाने की परम्परा चल पडी[130] जो लोकदेवता रूप मे काम की लोकप्रियता के विपुल प्रसार की सूचक है, तो दूसरी ओर दार्शनिक चिन्तना और तान्त्रिक अनुष्ठानादि से मण्डित हो वह एक शास्त्रीय देवता के स्वरूप को भी धारण करता चला गया। काम के इस शास्त्रीय देवता रूप के विकासक्रम की ही एक परिणति प्रद्युम्न आदि लोकनायक वीर पुरुषो के रूप मे उसके अवतार ग्रहण करने की कल्पना के रूप मेहुई। काम के ये दोनो स्वरूप इतने घुले-मिले है कि इनको पृथक् करना सरल नही है। काम के व्यक्तित्व के विकास की इन दो धाराओ का उद्‌गम और प्रसार अन्योन्याश्रित और सहचारी ही रहा होगा किन्तु मूल प्रेरणा और प्रभाव सभवत काम के लोकदेवता स्वरूप का ही रहा होगा। इस विषय मे डॉसन का तो यहाँ तक कहना है कि यद्यपि प्रद्युम्न कृष्ण के ही पुत्र रूप मे स्वीकार किये गये है किन्तु निजधरी कथाओ के अनुसार वे काम के ही अवतार हैं। इसीलिए कामदेव का एक नाम प्रद्युम्न भी है।[131] डॉसन, प्रद्युम्न के रूप मे काम

13. काम-देवता-लौकिक और शास्त्रीय रूप

के अवतार की कल्पना को निजधरी किस आधार पर कहते हैं - यह स्पष्ट नहीं है न ही एतद्विषयक सूत्र, प्रमाण या विचार ही उन्होंने प्रस्तुत किये है। अत काम के प्रद्युम्न–अवतार को निजधरी कल्पना स्वीकार करना तो सभव नही है किन्तु इस विषय मे इतना अवश्य अनुमेय है कि काम सम्बन्धी निजंधरी कल्पनाओ और उनकी लोकप्रियता ने काम की प्रद्युम्न–अवतार विषयक शास्त्रीय स्थापनाओ को प्रेरित और प्रभावित अवश्य किया होगा।

हमारे इस अध्ययन का महत्त्व अनेक दृष्टियो से है। प्रथम तो हमारा चरित–नायक प्रद्युम्न कामदेव का अवतार है अतः काम–कथा के विकास और उसके विशिष्ट स्वरूपो का अध्ययन प्रद्युम्न-कथा के सूत्रो को समझने के

14. निष्कर्ष काम कथा का प्रद्युम्न-कथा पर प्रभाव

लिए अपरिहार्य है। उदाहरण के लिए जब हम इस अध्ययन के फलस्वरूप इस निष्कर्ष मे परिचित होते है कि जैन परम्परा मे अहिंसा की भावना की रक्षार्थ काम की पराजय ही अभीष्ट है, उसका दहन नही तभी हम-प्रद्युम्न चरित्र विषयक जैन ग्रंथो मे बालक प्रद्युम्न का पूर्व-भव-वैरवशात् अपहरण करने वाले धूमकेतु असुर को भी इस प्रकार की चिन्तनाएँ करते पाते हैं–मैं अपने इस पूर्व जन्म के वैरी को हाथो से मसल डालूँ अथवा इस नीच को समुद्र मे गिरा दूँ ? नही, इस माँस के लोथडे का मैं व्यर्थ मे क्यो घात करूँ ? मैं तो इसे अरक्षित छोड दूँ जिससे यह स्वयमेव कालकवलित हो जाएगा।[132] अन्त मे धूमकेतु बालक प्रद्युम्न को खदिराटवी मे एक बावन हाथ की शिला के नीचे छोड देता है। जिनसेन सूरि की इस द्विविधा को जिसका प्राय: सभी परवर्ती जैन कृतिकारो ने अनुगमन किया है, तथा मत्स्यपुराणादि मे वर्णित बालक प्रद्युम्न को धूमकेतु द्वारा समुद्र मे डाल देने के प्रसग के सायास निवारण की सार्थकता को हम तभी हृदयगम कर सकते हैं जब कि काम-कथा–धारा के जैन सस्करण की पृष्ठभूमिगत दार्शनिकता से परिचित हो।

इसके अतिरिक्त काम-कथा के अनेक वस्तु-वर्णन और कथासूत्र, अनेक प्रतीक ही प्रद्युम्न-कथा मे सक्रमित हो गये हैं। प्रद्युम्न के देवता-रूप पर कामदेवता के स्वरूप का प्रभाव स्पष्ट है। काम के ब्रह्मा की सतान होने के पौराणिक उल्लेख का ही प्रभाव चतुर्व्यूह परम्परा मे उसे भौतिक जगत का विशेषन भगवद्भक्तो का सृष्टा कहा गया है।[133] इसी प्रकार पुराणो मे कामदेव के 'सकल्प' की सतान होने के कारण ही चतुर्व्यूह मे प्रद्युम्न 'मनस्' स्थानीय देवता हो पाया है।[134] चतुर्व्यूह के अन्तर्गत उसे पत्नी-रूप मे 'रति', ध्वजा रूप मे मकराकित ध्वजा आदि की प्राप्ति हो सकी है। शिवपुराण मे कामदेव को स्वर्णिमकातियुत, नीलवस्त्रधारी, कमलायत-लोचन, पचबाणधारी इत्यादि कहे जाने का प्रभाव ही प्रद्युम्न के लिए पाचरात्र

सहिताश्रो मे उपर्युक्त 'नीलाम्बरावृतम्' रक्तसन्निभम्, कमलायत्लोचन, मकरध्वज श्रादि विशेषगो के रूप मे कल्पित करने के लिए प्रेरक हो तो श्राश्चर्य नही। इसी प्रकार श्रहिर्बुध्न्यसहिता मे प्रद्युम्न को ब्रह्मा तथा सरस्वती का तत्त्व-रूप श्रौर शक्ति का श्रधिष्ठाता कल्पित करने पर भी पौराणिक प्रभाव स्पष्ट है।[137] कार्तिकेय कथा मे शिव के कपर्दी होने की धारणा का प्रद्युम्न के ऐश्वर्य पर श्रौर 'श्रग्नि' श्रौर 'काम' के वीरतापूर्ण कार्यों का प्रभाव प्रद्युम्न के शौर्यपूर्ण कार्यो पर देखा जा सकता है। पुराणो मे वर्णित काम के वामाग मे शृगारयोनि रति तथा दक्षिणांग मे भुक्तिप्रिया प्रीति की कल्पना का ही सभवत. यह परोक्ष प्रभाव है कि कामावतार प्रद्युम्न के प्रमुख पराक्रम भोजन श्रौर प्रणय–व्यापारो को लेकर ही हैं। कहाँ तक गिनाएँ? प्रद्युम्न के देवता-रूप तथा चरित-नायक रूप मे उसके व्यापारो पर काम-देवता के स्वरूप श्रौर काम-कथा-धारा के विकास का प्रभाव स्पष्ट है जिसे हमने श्रन्यत्र भी संकेतित किया है। कामदेवताके श्रवतार-रूप मे प्रद्युम्न का स्वरूप-सगठन ही प्रद्युम्न के देवता-रूप मे विकास का प्रेरक है जिसका श्रध्ययन श्रागामी श्रध्याय का विवेच्य विषय है।

संदर्भ ❀ अध्याय 2

1. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त 10, 29, 4
2. अथर्ववेद, 12, 4, 26
3. वही 19, 52
4 डॉसन ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथॉलॉजी, पृ० 363
5 श्रीपाद दा० सातवलेकर दैवतसहिता (विश्वेदेवा)
6 पद्मपुराण, खण्ड 1, अ० 6 श्लोक 17
7 वायुपुराण 66, 31
8. ब्रह्माण्डपुराण 3, 3. 30
9 भागवत पुराण 6, 6, 7
10. हरिवंश पुराण, भविष्य पर्व, 14. 50–52
11 संदर्भों के लिए द्रष्टव्य मोनियर विलियम्स कृत 'संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी' मे 'काम' के अन्तर्गत ।
12 विष्णु पुराण 1, 5, 41
13 वही 1, 7, 23 तथा 24–28
14 वायुपुराण 10, 34, 38
15 ब्रह्माण्ड पुराण 2, 9, 58, 62
16. वायुपुराण 28, 30
17. ब्रह्माण्ड पुराण 2, 11, 35
18 श्रीमद्भागवतपुराण. 6, 6, 1-10
19 महाभारत, 1, 66, 33
20 हरिवंश पुराण, भविष्य पर्व, अ० 20 श्लोक 5–7
21 वही, अ० 14 श्लोक 44
22 वही, हरिवंश पर्व, अ० 3, श्लोक 35,
23 वही भविष्य पर्व, 36 24–25
24 वही, श्लोक 26–27
25 वही, श्लोक 56
26 वही, श्लोक 57

27. डॉसन : ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथॉलॉजी, पृ० 145–7
28 शिवपुराण, रु० स० 2, सती खण्ड 2, अ० 3, श्लोक 4–7
29. ब्रह्माण्डपुराण 3, 7, 24
30. वही 3, 8, 15
31. हरिवंशपुराण, हरिवंश पर्व, अ० 4, श्लोक 15
32 वायुपुराण 70, 14 तथा मत्स्यपुराण 277, 6
33. मत्स्यपुराण 3, 33; 4, 12–21; 23
34 वही 154, 209–39
35. वही, 191, 110
36. वही 7, 13; 100, 329
37 वही 261, 53–56
38. श्रीमद्भागवतपुराण 11, 4, 7
39. वही 8, 10, 33
40 अग्निपुराण, अ० 54, 55 तथा 57
41. ब्रह्मपुराण अ० 199, श्लोक 12
42. विष्णुपुराण 5, 26, 12
43 वही 5, 27, 30
44. शिवपुराण रु० सं० 2 सतीखण्ड 2, अ० 2 श्लोक 23–29
45 वही अ० 3 तथा कामदहन के लिए द्रष्टव्य अ० 19
46. कालिकापुराण 19, 22
47 मत्स्यपुराण 4, 11–21
48 पद्मपुराण, खण्ड 1, अ० 23 श्लोक 111–42
49. वही, अ० 20, 51–52
50. अग्निपुराण 191, 1
51. वही, श्लोक 5
52 वही 48, 13
53. वही 48, 8
54 वही 49, 12–14
55. वही 201, 2
56. मत्स्यपुराण 7, 15, 16, 28
57. योगशास्त्र, ब्रह्मसंहिता, वसुमती प्रेस, कलकत्ता पृ० 318, श्लोक 46
58 मत्स्यपुराण, 7, 7 तथा 29–9
59. वही 70, 50–53
60. पद्मपुराण, छठा उत्तरखण्ड, अ० 86

61. डॉ० आर० सी० हाज़रा स्टडीज इन दि उप–पुराणाज, पृ० 18–19, तथा बूहलर . इण्डियन ऐंटीक्वेरी, जिल्द 19, 1890 ई० पृ० 408
62 विष्णु धर्मोत्तरपुराण
63 शिल्परत्न
64 कनिंगहम एशियाटिक रिसर्च रिपोर्ट्स, पृ० 42–43 तथा प्लेट 41,
65. राखालदास (आर० डी०) बनर्जी . बेस रिलीफ्स आफ बादामी, ए० स्टडी जर्नल 25, सन् 1928 ई०, पृ० 34, प्लेट 11 ओ, 21 सी, 33 सी, इत्यादि
66. अग्निपुराण, अ० 51
67 विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3, 52
68. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 210
69. बुद्धचरित 13, 2
70 डा० हर्मन जैकोबी उत्तराध्ययन टीका, पृ० 39
71 ऋग्वेद, नासदीयसूक्त, 10, 29, 4
72 अथर्ववेद, 19, 52 तथा 12, 4, 26
73. ऐतरेय ब्राह्मण 1,1
74. शतपथ ब्राह्मण 14, 1, 1, 1
75. तथा भस्मव्यपोहेभ्यो ब्रह्मर्षिगणसम्मताः ।
वैखानसा समुत्पन्नास्तप श्रुतगुणेप्सव ।।
महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 85, श्लोक 108–9
76 महाभारत, अनुशासन पर्व अ० 139, 140 तथा 148
77. वही, अ० 139, श्लोक 16, 30
78. वही
79. वही
80. वही, अ० 140, श्लोक 1–45
81 महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 139, श्लोक 7–35 तथा अध्याय 140, श्लोक 1–45
82. महाभारत, अ० 84, श्लोक 60 से अ० 85 के श्लोक 85 तक
83. महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 14, श्लोक 290
84. वही, श्लोक 310, 'नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय च...'
85 वही, श्लोक 323
86. वही, अ० 147, श्लोक 44–45
87. वही, अ० 17, श्लोक 45
88 महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 147, श्लोक 39
89. वही, अ० 17, श्लोक 42
90 वही, अ० 17, श्लोक 84

91. वही, अ० 14, श्लोक 217 तथा 134
92. वही, अ० 17, श्लोक 52
93 वही, अनुशासन पर्व, अ० 85 श्लोक 85
96. वही, अ० 86, श्लोक 19
95. "अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वित ।।
अपत्य कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृत. ।
स्कन्द सनतकुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ।।
महाभारत, हरिवंश पर्व, अ० 3, श्लोक 42–43
96. वही, अ० 41, श्लोक 23–25
97. वही, अ० 25, श्लोक 38–39
98. वही, अ० 14, श्लोक 278
99 "देवतास्ते प्रयच्छन्ति ये सुवर्ण ददत्यथ ।
अग्निर्हि देवता सर्वाः सुवर्ण च तदात्मकम् ।।"
महाभारत अनुशासन पर्व, अ० 84, श्लोक 56
100. वही, अ० 85, श्लोक 151 101. वही, श्लोक 162
102. वही, अ० 86, श्लोक 32–33
103. सनातनो हि संकल्पं काम इत्यभिधीयते ।
रुद्रस्य तेज प्रस्कन्नमग्नौ निपतित च यत् ।।
वही, अ० 85, श्लोक ।।
104. वही, श्लोक 16
105 महाभारत, अनुशासनपर्व, अ० 85, श्लोक 147, 151 तथा 161
106 वही 107. वही
108 वही, अ० 17, श्लोक 82
109. शिवपुराण, रु० सं० 2, सती खण्ड 2, 23–29 तथा अ० 3 तथा 29
110. मत्स्यमहापुराण, 3, 33; 4, 12–12, 23, 23, 154, 209–39
111 कालिकापुराण, अ० 19
112. टी० एच० ग्रिफिथ कृत वाल्मीकि रामायण का अनुवाद 'दी रामायण ऑफ वाल्मीकि' पृ० 37–38
113. पद्मपुराण, खण्ड 1, अ० 45, 200–286
114. विष्णुपुराण 5, 27, 28
115. श्रीमद्भागवतपुराण 3, 12, 26; 8, 7, 32 ; 10, 55, 2
116. महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 84–85
117. जातक, प्रथम खण्ड, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 'अविदूरे निदान' का मार–विजय प्रसग
118. अश्वघोष कृत 'बुद्ध–चरित' 13 वां सर्ग ।
119 बृहद् जैन शब्दार्णव, पृष्ठ 419

120. नामं ठवणा कामा, दव्व कामाय भाव कामाय ।
एसो खलु कामाणं निक्खेवो चदुविहो होइ । 167 ।
सद्द रसरूपगंधफ्फसा उदयंकरा य जे दव्वा ।
दुविहा य भावकामा, इच्छाकामाय मयणकामाय ।। 168 ।।
इच्छा पसत्थमपसत्थिगा य मयणम्मि वेय उवओगे
तेणहिगारो तस्सउ, वयंति धीरा निरुत्तमिणं ।। 169 ।।
(दशवैकालिक अध्ययनसूत्र)

121 श्री रामप्रताप त्रिपाठी मत्स्यमहापुराण, भूमिका भाग ।

122 मत्स्यमहापुराण 4, 11–21

123 शिवपुराण, रुद्रसती खण्ड 2, अध्याय 19

124. राजकुमार जैन नागदेव कृत मदनपराजय, पृ०59–61

125. वही पृष्ठ 87

126. महाभारत, विष्णु पर्व, अध्याय 65, श्लोक 16, अध्याय 104, श्लोक 2
अध्याय 104 श्लोक 11–13, श्लोक 23, 51–57
अध्याय 106, श्लोक 42–53

127. कालिदास कृत कुमारसंभव, अध्याय तृतीय और सप्तम

128 कामं वहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या ।
रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम ।।
सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन् बिभेति ।
काम कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ।।
श्रीमद्भागवतपुराण 2, 7, 7

129. वही, 11, 4, 6–16

130. पी० टॉमस एपिक्स, मीथ्स एण्ड लीजेण्ड्स ऑफ इण्डिया पृ० 139

131 डॉसन · ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथोलोजी पृ० 237

132 जिनसेन सूरि हरिवंशपुराण द्वितीय खण्ड (प्रो० माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई के अन्तर्गत प्रद्युम्न-कथा सर्ग 43, श्लोक 44–48 का हिन्दी अनुवाद ।

133. देखिए महासनत्कुमारसंहिता के इस संदर्भ के लिए श्रेडर कृत इण्ट्रोडक्शन टू पाचरात्र पृष्ठ 36

134. वही

135 जयाख्यसंहिता, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, पृ० 119 तथा समूर्तार्चनाधिकरण 61, 5–6

136 अहिर्बुध्न्यसंहिता, 55, 38–40

137 वही, 5, 17–60

अध्याय : तीन

卐

प्रद्युम्न : देवता--रूप में

प्रद्युम्न के देवतारूप का उदय और विकास मुख्यत चतुर्व्यूह कल्पना के अन्तर्गत हुआ। वैष्णव सहित–काल मे हम प्रद्युम्न को पूर्णतः देवत्व–पद पर प्रतिष्ठित देखते है जिनका अपना स्वरूप, ध्वज, चिंतन, पूजा–प्रकार, मन्त्रानुष्ठान आदि निर्धारित है। किन्तु बीजरूप मे उनके देवत्व की कल्पना सहिता–काल से पूर्व ही अंकुरित हो चुकी थी। यह स्पष्ट है कि प्रद्युम्न को देवत्व की प्राप्ति दो कारणो से हुई— (1) प्रथमतः वे 'काम' के अवतार थे जो स्वय देवता–रूप मे कल्पित–अर्चित हुआ जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे देखा। फलत काम–देवता के अवतार प्रद्युम्न का भी देवत्व से मडित होना स्वाभाविक था। (2) द्वितीयतः प्रद्युम्न कृष्ण के पुत्र थे। कृष्ण स्वय परम भागवत के रूप मे न केवल देवत्व अपितु परमात्मा–पद पर प्रतिष्ठित हो गये। फलत. व्यूह तथा अवतार–कल्पनाओ मे कृष्ण-परिजनो के साथ प्रद्युम्न को भी यथोचित देवत्व का गौरव प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रद्युम्न को देवत्व की प्राप्ति दो शक्तिशाली स्रोतो से हुई।

1 देवत्व का स्रोत

इसलिए प्रद्युम्न की देवत्व–प्राप्ति का सम्बन्ध कृष्ण के देवत्वपद की प्राप्ति से है। यह स्पष्ट है कि स्वय महाभारत मे ही कृष्ण के देवत्वपद की प्राप्ति की क्रमिक अवस्थाएँ दीख पडती है। यद्यपि इससे भी पूर्व महाभारत के टीकाकार नीलकठ ने अपने "मन्त्र भागवत" नामक ग्रथ मे कृष्ण–कथा के सूत्रो को ऋग्वेद तक खोजा है तथापि वह स्थापना शब्द के पर्यायात्मक अर्थो को लेकर है और विरल सूत्रो पर आधारित होने से अनुमानपुष्ट है। किन्तु महाभारत मे कृष्ण सम्बन्धी विवरण विशद और स्पष्ट है। उनमे स्वाभाविकता भी है। कृष्ण यो ही निर्विरोध देवत्वपद पर प्रतिष्ठत नही हो गये है। सुदीर्घ संघर्ष और विकास–प्रक्रिया के उपरान्त ही ऐसा हो सका है। कृष्ण को ब्रह्म का अवतार और आराध्य मानने मे दुर्योधन, शिशुपाल आदि आपत्ति करते है और अनेकशः ग्वाला कहकर उसका अपमान

2 कृष्ण की देवत्व-प्राप्ति

करते हैं किन्तु राजसूय यज्ञ के प्रसग मे भीष्म जैसे ज्ञानी और वयोवृद्ध पुरुष कृष्ण के पैर धोते हैं और उन्हे सर्वोच्च देवता के रूप मे घोषित करते हुए अग्रपूजा का अधिकारी सिद्ध करते है। गीता मे कृष्ण स्वय भगवान है और विष्णु के अवतार है।[1] इससे स्पष्ट है कि कृष्ण अपने जीवनकाल मे ही देवत्वपद पर प्रतिष्ठत हो गये थे। डॉ० पुसालकर का कहना है कि यदि कृष्ण अपने जीवन-काल मे ही अवतार बनने प्रारभ हो गये थे तो इसमें आश्चर्य नही होना चाहिए जब हम देखते हैं कि जीते जी ही बुद्ध का अलौकिक रूप लोक मे प्रतिष्ठित हो चला था।[2]

कृष्ण द्वारा भगवद्पद-प्राप्ति की पृष्ठभूमि मे विभिन्न धार्मिक सप्रदायो के पारस्परिक सघर्ष और समन्वय का लम्बा और उलझा हुआ इतिहास है जिसका समय-सापेक्ष दिग्दर्शन इस सीमित शोधप्रबध की सीमा से बाहर है किन्तु उस सघर्ष की अनुगूंज महाभारत मे ध्वनित है। यही कारण है कि महाभारत मे कृष्ण को कही भगवान कहते हुए भी इन्द्र का छोटा भाई कहा गया है[3] (भगवान वासवानुज) तो कही कृष्ण के पराक्रम को इन्द्र और सूर्य तथा वायु से भी बढ कर बताया गया है— "अतिवाय्विन्द्र कर्माणिनति सूर्यातितेजसम"[4] और कहा गया है कि कृष्ण को अर्पित एक प्रणाम भी दस अश्वमेधयज्ञो के तुल्य फलदायी होता है।[5]

3. महाभारत में कृष्ण का देवत्व

फिर भी यह स्पष्ट है कि महाभारत मे ही कृष्ण भगवान के पद पर प्रतिष्ठत हो गये थे। अनुशासन पर्व मे कहा गया है कि पुरुषव्याघ्र व्यापक वासुदेव ने गधमादन पर्वत पर सनत्कुमार तथा करोडो ऋषियो को उत्पन्न किया है। अत हे ब्राह्मणो, तुम्हे धर्मज्ञ और वाग्मी वासुदेव को नमस्कार करना चाहिए।[6] इससे भागवत धर्म के लोकप्रिय आन्दोलन की सफलता के फलस्वरूप वर्द्धमान वासुदेव-महिमा और प्रारभ मे ब्राह्मणो द्वारा उसका विरोध-दोनो बाते ध्वनित होती है। महाभारत मे ही भागवत सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध द्वादशाक्षर मत्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का उल्लेख भी प्राप्त है।[7] महाभारत मे ही वासुदेव की सात्वत विधि से पूजा का उल्लेख मिलता है।[8] यही नही पाचरात्र उपासना के विकसित रूप और चतुर्व्यूह की कल्पना भी हमे महाभारत के नारायणीय पर्व मे ही मिलती है। भगवान के व्यूह और प्रादुर्भाव पक्षो के रहस्य को स्वय नारायण नारद मुनि से श्वेतद्वीप मे प्रकट करते हैं।[9]

4. महाभारत का रचना-काल

महाभारत-काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे अद्यावधि पर्याप्त मतभेद है। श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य और प्रो० त्रिवेद के अनुसार 3102 ई० पू०, वराहमिहिर और कल्हण के अनुसार 2448 ई० पू० तथा श्री० काशीनाथ राजवाडे के अनुसार 3076 ई० पू० युक्तिसगत तिथिक्रम होना चाहिए।[10] दूसरी ओर पार्जिटर जैसे विद्वान 950 ई० पू० तक इसे इधर खीच लाते

हैं। डॉ० अल्तेकर और डॉ० देव इन समस्त मतों का विवेचन करते हुए 1400 ई० पू० में महाभारत युद्ध होना स्वीकार करते हैं तथा डॉ० पुसालकर और अधिकाश विद्वान 1500 ई० पू० के आस-पास ही महाभारत युद्ध की घटना स्वीकार करने के पक्ष में हैं।[11] किन्तु इसे सभी स्वीकार करते हैं कि महाभारत ग्रंथ किसी एक व्यक्ति की किसी एक काल में लिखी हुई कृति नहीं है। प्रारंभ में 'जय' नामक यह मूल ग्रंथ शताब्दियों में परिवृंहित होता हुआ वर्तमान महाभारत के स्वरूप को प्राप्त हुआ है। अत. 1500 ई० पू० तो इसके प्रणयन का पूर्वबिन्दु है। नारायणीय तथा हरिवंश पर्व बाद की रचनाएँ हैं। डॉ० आयंगार के मत से, नारायणीय पर्व की रचना छठी सदी ई० पू० से प्राचीन है।[12] डॉ० भण्डारकर भी नारायणीय पर्व की रचना को बुद्ध-पूर्व युग की घटना मानते हैं।[13] वे गीता की रचना को भी चौथी सदी ईसा पूर्व से बाद में मानने को तैयार नहीं हैं।[14] प्रो० वैद्य के मत से नारायणीय पर्व की रचना तक गीता की विपुल प्रतिष्ठा हो चली थी क्यों कि नारायणीय पर्व में गीता का निदेश बड़े आदर के साथ किया गया है।[15] लोकमान्य तिलक की सम्मति में गीता की रचना छठी सदी ईसवी पूर्व से कदापि अर्वाचीन नहीं है[16] डॉ० विण्टरनिज के मतानुसार अपने वर्तमान स्वरूप में महाभारत का रचनाकाल चतुर्थशतक ई० पू० से चतुर्थ-शतक पश्चात् तक है।[17] जबकि प्रो० वैद्य का कहना है कि महाभारत को वर्तमान स्वरूप 250 ई० पू० के आस-पास मिला।[18] फर्कुहर नारायणीय और अनुगीता का काल 200 ई० पू० से 200 ई० के बीच स्वीकार करते हैं।[19] इस प्रकार मोटे रूप में हम नारायणीय पर्व का रचना काल 400 ई० पू० के आस-पास स्वीकार कर सकते हैं।

5. कृष्ण की उपास्यता के अन्य प्रमाण तथा वीरवाद

चतुर्थ शतक ईसापूर्व तक कृष्ण उपास्य के रूप में प्रतिष्ठित और प्रख्यात हो गये थे इसकी पुष्टि महाभारतेतर अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से भी होती है। 400 ई० पू० में चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में सिल्यूकस द्वारा नियुक्त दूत मेगस्थनीज ने भारतीय हैराक्लीज का वर्णन करते हुए कहा है कि वह शारीरिक और आत्मिक बल में बढ़ा-चढ़ा था। उसने सारी पृथ्वी और समुद्रों को पाप शून्य कर दिया था और अनेक नगर बसाये थे। उसके इस संसार से चले जाने के बाद लोग उसे ईश्वर की भाँति पूजने लगे। कप्तान विलफोर्ड सूचना देते हैं कि सिसरो नामक यूनानी इतिहासलेखक की सम्मति में भारतीय हरक्यूलीज का नाम 'बलस्' (बल = बलराम) था।[20] यह बलराम (संकर्षण) की प्रमुखता का परिचायक है। ईसवीपूर्व चतुर्थ शती में कृष्ण के साथ ही संकर्षण की पूजा भी प्रचलित थी। ईसवीपूर्व द्वितीय शती तक प्राय यही स्थिति बनी रही क्योंकि शुंग-काल में संकर्षण के साथ वासुदेव की पूजा प्रचलित थी। पतंजलि ने एक स्थान पर

सूत्रभाष्य मे लिखा है—"सकर्पण द्वितीयस्य वल कृष्णस्य वर्धताम्[21] तथा महाभारत मे भी कृष्ण को "द्वितीय वलदेव"[22] तथा "वलदेव सहायवान" कहा गया है।[23] लखनऊ सग्रहालय मे सुरक्षित वलराम की ईसापूर्व द्वितीय शताब्दिकालीन द्विभुजी प्रतिमा[24], वेसनगर (वर्तमान भिलसा) के शिलालेख (180 ई० पू०) मे शु गनृपति भागभद्र के राज्यकाल मे यूनानी दूत हेलियोडोर द्वारा देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा मे गरुडस्तभ निर्माण किया जाना तथा सगर्व अपने को 'भागवत' कहना,[25] चित्तौगढ के समीप नगरी के पास घोसुंडी नामक स्थान पर प्राप्त शिलालेख (ईसवीपूर्व प्रथम शतक) मे राजा सर्वतात द्वारा पूजाशिला–प्राकार का निर्माण कराये जाने का उल्लेख जिसमे सकर्पण का नाम कृष्ण से भी पहले आया है[26]—"भगवद्भ्या सकर्पण वासुदेव" तथा शातकर्णि की रानी नागनिका के नाणेघाट वाले अभिलेख (प्रथमशती ई० पू०) मे भी वासुदेव से पूर्व सकर्षण नाम आने इत्यादि उपलब्ध प्रमाणो से स्पष्ट है कि ईसापूर्व पहली–दूसरी सदी तक सकर्षण और वासुदेव उपास्य देवो के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे तथा इनमे विशेष महत्व और आदर भाव सकर्षण के प्रति प्रदर्शित होता प्रतीत होता है। फलत यह कहा जाता है कि ईसापूर्व दूसरी या पहली शताब्दी तक वीरवाद ही मुखर था।[27]

प्रो० दीक्षितार का भी कहना है कि सकर्षण–वासुदेव की उपासना (वीरवाद) का प्रचलन 600 ई० पू० से 300 ई० तक रहा।[28]

6. प्रद्युम्न की उपास्यता तथा पंच वंशवीर

किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि अन्य वशवीर भी अज्ञात नही थे। जैसा कि डॉ० बलदेव उपाध्याय का कहना है, वासुदेव की पूजा एकाकी ही नही होती थी। उनके साथ उनके परिवार के अन्य सदस्य भी उपासना के इष्ट पात्र थे। पूजित वीरो मे हमे सकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्व और अनिरुद्ध के नाम मिलते हैं। वायुपुराण मे कहा गया है कि कृष्ण वश के ये पाँचो वीर पूजित थे—"पचैते वशवीरा प्रकीर्तित"[29] तथा मथुरा से सात मील पश्चिम मे स्थित मारोना नामक स्थान से प्राप्त (80 ई० पू० से 57 ई० पू०) के एक महाक्षत्रप शोडास के राजत्वकाल के अभिलेख मे तोषा नामक स्त्री द्वारा पचवीरो की प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख है—"भगवता विष्णिना पचवीराणा प्रतिमा[30]" सकर्षण वैसे भी अग्रज थे अत. प्रारम्भ मे उनके प्रति अधिक आदर की भावना स्वाभाविक थी। प्रद्युम्न, साम्व आदि की तुलना मे ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनके कार्यकलाप पहले ही हुए अत प्रारम्भ मे उन्हे महत्त्व दिया जाना ही तर्कसगत है। किन्तु स्थापत्य का उत्खनन सयोगाधृत होता है अत निष्कर्षत हम यही कह सकते हैं कि ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक पाँचो वशवीर पूजार्ह हो चुके थे जिनमे सकर्षण विशेष गौरव के पात्र थे किन्तु प्रद्युम्न इत्यादि अन्य कृष्ण-परिजन भी नितान्त उपेक्षित नही थे।

हरिवश पर्व मे ही हमे स्वतंत्र कृष्ण–पूजा की प्रेरणा[31] और कृष्ण–पूजा के प्रतिष्ठन हो जाने के फलस्वरूप उनके परिजनो के भी पूज्य देवतामडल मे सम्मिलित किये जाने के प्रयत्न दीख पडते हैं। वहाँ गणनाथ गणेश जी के पूजन के अनतर निर्विघ्न कार्य–सिद्धि हेतु लक्ष्मी और पुत्र सहित गोपाल की तथा अन्य देवताओ की पूजा करने का निदेश है[32] तथा लिखा है कि हरिवश पर्व के श्रवण के लिए मडल बनाकर, विष्णु भगवान की मूर्ति बना, कृष्ण को लक्ष्य कर (कृष्णमुद्दिश्य) मत्रो से शास्त्रानुसार पूजा करे।[33] इस सदर्भ से, महाभारत मे लक्ष्मी और गोपाल के पुत्र (अर्थात् प्रद्युम्न) की पूजा के प्रचलन तथा विष्णु–पूजा के कृष्ण–पूजा मे सक्रमण का पता चलता है। महाभारतकार स्वय स्वीकार करता है कि "भगवान के भक्तो द्वारा कभी केवल एक व्यूह, भगवान वासुदेव की, कभी दो व्यूह,वासुदेव और सकर्षण की, कभी प्रद्युम्न सहित् तीन व्यूहो की और कभी अनिरुद्ध सहित चतुर्व्यूह की उपासना देखी जाती है।[34]

इससे स्पष्ट है कि महाभारत मे ही प्रद्युम्न एक उपास्यदेव के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे। हाँ, वे एक स्वतत्र उपास्यदेव न हो कर वासुदेव कृष्ण के चतुर्व्यूहो मे से एक थे। यह चतुर्व्यूह सिद्धान्त क्या है, इसका सर्वप्रथम निरूपण हमे महाभारत के

7 चतुर्व्यूह कल्पना का उत्स और विकास

नारायणीय पर्व मे प्राप्त होता है। वहाँ इसकी स्पष्ट रूपरेखा है जिसका विकास आगे चलकर पाचरात्र सहिता–साहित्य और पौराणिक काल मे हुआ। यह ध्यान देने योग्य है कि नारायणीय सप्रदाय मे वासुदेव सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चारो नाम पहले नही थे। नाराणीय पर्व स्वय इसे स्वीकार करता है।[35] घोसुंडी नाणाघाट के शिलालेखो (क्रमश 150 तथा 100 ई० पू०) से भी इसकी पुष्टि होती है कि पहले इस सप्रदाय मे केवल कृष्ण और सकर्षण की ही पूजा होती थी।[36] पाचरात्र मत मे भगवान के चार रूपो नर, नारायण, कृष्ण और हरि से भी पूर्व वैष्णव धर्म के वैखानस सम्प्रदाय मे विष्णु के पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध— इन चार रूपो का उल्लेख है। स्वय कृष्ण युधिष्ठिर से कहते है—"हे युधिष्ठिर वैखानसजन मुझे विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध भी कहते हैं। पाचरात्रिक भी मुझे इसी प्रकार जानते है और मुझे वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप मे चतुर्मूर्ति कहते है।[37] वस्तुत जैसा कि महाशय रामकृष्ण कवि का कहना है ईश्वर और उसके अलौकिक गुणो की कल्पना ही इस चतुर्व्यूह स्वरूप के मूल मे है।[38] यह कितने आश्चर्य की बात है कि ऋग्वेदोक्त पुरुष सूक्त[39] तथा शतपथ ब्राह्मण की पुरुष–कल्पना[40] को आधार बनाकर वैखानसो की पुरुष,सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध को चतु:स्वरूप कल्पना आगे चल कर पाचरात्रिको की नर, नारायण, हरि और कृष्ण की चतुर्मूर्ति कल्पना मे विकसित होती हुई भागवत धारा के प्रभाववश परम भागवत

वासुदेव कृष्ण के परिजनो के चतुष्क से सगति बैठाती हुई वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की चतुर्व्यूह-कल्पना मे परिणत हो गयी। नारायणीय धर्म का अ तर्भाव भागवत धर्म मे कब हुआ यह निश्चित रूप से कहना कठिन है किन्तु नारायणीय पर्व के साक्ष्य के अनुसार डॉ० सत्येन्द्र की यह धारणा तर्कसगत प्रतीत होती है किन्तु "महाभारत यह मानता है कि नारायण प्राचीन धर्म है जिसकी परम्परा विदित नही। वह राजा वसु उपरिचर तक रहा। 'हरि' उसके इष्ट का नाम था।[41] वह पशु-बलि विरोधी और एकातिक उपासक था। उपरिचर से यह नारायण सम्प्रदाय सात्वतो मे विलीन हो गया। सात्वत सप्रदाय ही नही, एक कुल भी था। वह पद्धति मे नारायणीय होते हुए भी (वासुदेव) 'हरि' के स्थान पर 'वासुदेव व्यूह' को मानने लगा।' ''' 'सात्वतो ने नारायण सम्प्रदाय निगल लिया। अब कृष्ण 'हरिनारायण' से 'वासुदेव सकर्षण' हो गये।[42]

इस प्रकार अन्यान्य वैष्णवमतो के तिरोभाव, अन्तर्भाव, महत्त्व, ह्रास या सामजस्य होने से भागवत मत की प्रतिष्ठा के साथ ही कृष्ण-कुटुम्ब ने उपास्यता प्राप्त कर ली। जैसा कि डॉ० श्रेडर का अनुमान है, जब लोकधर्मी पाचरात्र की सगति उसे शास्त्रीय प्रामाणिकता से मडित और गौरवान्वित करने की दृष्टि से ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त मे उल्लिखित पुरुष के चार अ शो की कल्पना से बिठायी गयी तो कृष्ण-कुटुम्ब के दो अन्य सदस्यो-पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध का भी अन्तर्भाव कर लिया गया और उन्हे भी देवतापद प्रदान करते हुए भगवान का ही रूप माना गया। इस प्रकार चतुर्व्यूह की कल्पना अस्तित्व मे आयी।[43] नारायणीयपर्व मे निरूपित चतुर्व्यूह कल्पना मे अनिरुद्ध का महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक दीख पडता है। उसका कारण स्पष्ट है। पूर्ववर्ती वैखानस सप्रदाय मे ही सत्य, पुरुष, अच्युत के साथ-साथ चतुर्मूर्ति कल्पना मे चौथा स्थान अनिरुद्ध का था। अन्य किसी भी कृष्ण-कुटुम्बी के नाम को यह सम्मान वैखानस परम्परा मे नही प्राप्त हुआ। इसीलिए चतुर्व्यूह-कल्पना मे भी प्रारभ मे अनिरुद्ध का महत्त्व बहुत बढ-चढ कर है [44] जो बाद मे कृष्ण-कुटुम्ब के अन्य सदस्यो सकर्षण और प्रद्युम्न के चतुर्व्यूह कल्पना मे सम्मिलित कर लिये जाने पर कम हो गया। सकर्षण और प्रद्युम्न की अग्रजता और वैखानस पर भागवत परम्परा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने की दृष्टि से ही ऐसा हुआ प्रतीत होता है। चतुर्व्यूह रूप मे निश्चित चार की सख्या मे व्यूह-कल्पना की स्थिति क्रमशः आयी है तथा इसमे पर्याप्त समय लगा होगा। स्वय महाभारत का ही कहना है कि भगवान के भक्तो द्वारा कभी केवल एक व्यूह (वासुदेव की) कभी दो व्यूहो (वासुदेव और सकर्षण की) कभी तीन व्यूहो (प्रद्युम्न सहित) का तो कभी (अनिरुद्ध सहित) चार व्यूहो की उपासना भी देखी जाती है।[45]

चतुर्व्यूह–सिद्धान्त का विशद निरूपण तो महाभारत के नारायणीय उप पर्व (शाति पर्व) मे ही उपलब्ध होता है किन्तु वह जैसा कि कहा जा चुका है, विद्वानो द्वारा अपेक्षाकृत परवर्ती रचना माना गया है। महाभारत मे सभवत'

8. चतुर्व्यूह सिद्धान्त

सबसे पहली वार चतुर्व्यूह का उल्लेख भी भीष्म पर्व मे हुआ है जब भीष्म पितामह दुर्योधन को पाण्डवो से सघर्ष नही करने का परामर्श देते हुए कृष्ण जैसे उनके समर्थ सहायक की महिमा का वर्णन करते है। भीष्म कहते है कि ब्रह्मा स्वयं श्री कृष्ण से अपने आपको स्वय चार रूपो (वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) मे विभक्त करके मानव शरीर ग्रहण करने की याचना करते हुए कहते है कि हे, कृष्ण, आपने आत्मा द्वारा स्वय अपने आपको ही सकर्पणदेव के रूप मे प्रकट करके अपने ही द्वारा आत्मज स्वरूप प्रद्युम्न की सृष्टि की है। प्रद्युम्न से अपने ही उन अनिरुद्ध को प्रकट किया है जिन्हे ज्ञानी जन अविनाशी विष्णु रूप से जानते है। उन विष्णु रूप अनिरुद्ध ने ही मुझ लोकविधाता ब्रह्मा की सृष्टि की है।[46] इसी चतुर्व्यूह कल्पना का विस्तार नारायणीय पर्व मे परिलक्षित होता है। नारायणीय पर्व मे यत्र–तत्र विकीर्ण सूत्रो को एकत्र कर व्यूह-कल्पना का रूप प्रस्तुत किया जा सकता है।[47] चतुर्व्यूह के रहस्य को स्वय नारायण श्वेतद्वीप मे नारद के समक्ष प्रकट करते हुए कहते है कि पचभूतो से निमित शरीर मे जो जीवात्मा (चेतन) प्रवेश करता है वह जीव ही सकर्पण है।[48] उसी सकर्पण अथवा जीव से उत्पन्न होकर जो अपने कर्म (ध्यान पूजन) द्वारा सनत्कुमारत्व (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है जिसमें समस्त प्राणी लय और क्षय को प्राप्त होते हैं वह सपूर्ण भूतो का मन ही 'प्रद्युम्न' कहलाता है। उस प्रद्युम्न मे जिसकी उत्पत्ति हुई है वह कर्ता, कारण और कार्य रूप, जिससे समस्त चराचर जगत की उत्पत्ति होती है वही अनिरुद्ध एव ईशान कहलाता है। वह सपूर्ण कर्मो मे व्यक्त होता है। क्षेत्रज्ञ-स्वरूप निर्गुण भगवान वासुदेव ही प्रभाव–शील सकर्पण रूप जीवात्मा हैं। सकर्पण से प्रद्युम्न का प्रादुर्भाव हुआ है जो मनोमय है। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध प्रकट हुए है जो 'अहकार' और ईश्वर है।[49] महाभारतकार आगे फिर कहता है कि शेष को ही संकर्पण कहा गया है। सकर्पण ने ही प्रद्युम्न को प्रकट किया है। और प्रद्युम्न से ही अनिरुद्ध का अविर्भाव हुआ है। बार–बार उत्पन्न होने वाला यह सृष्टि–विस्तार मेरा ही है।[50] मेरी अनिरुद्ध मूर्ति से ही ब्रह्मा उत्पन्न हुए है जिनका प्राकट्य मेरे नाभि–कमल से है, ब्रह्मा से समस्त चराचर भूत उत्पन्न हुए है।[51] साख्ययोगोक्त परमात्मा ही अपने कर्म-प्रभाव से 'महापुरुष' नाम धारण करते है। उन्ही से 'अव्यक्त' की उत्पत्ति हुई है जिसे विद्वान पुरुष 'प्रधान' के नाम से भी जानते है। जगत की सृष्टि के लिए इन्ही 'महापुरुष' या 'अव्यक्त' से 'व्यक्त' की उत्पत्ति हुई है जिसे सपूर्ण लोक मे 'अनिरुद्ध' और 'महानात्मा' कहते है। 'व्यक्त' भाव को प्राप्त 'अनिरुद्ध' ने ही पितामह ब्रह्मा की सृष्टि की। उन तेजोमय और अहकार नाम से ज्ञात ब्रह्मा से ही पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और

तेज इन पच सूक्ष्म महाभूतो की सृष्टि हुई। फिर पच महाभूतो के शब्द स्पर्श, आदि गुणो का निर्माण हुआ। इन गुणविशिष्ट पच महाभूतो से ही शेष सृष्टि का विस्तार हुआ। [52] इस प्रकार नारायणीय व्यूह–सिद्धान्त के अन्तर्गत सृष्टि कल्पना मे जड और चेतन दोनो की सत्ता स्वीकार की गयी है जो अपनी मूल सर्वोच्च सत्ता मे एकरूप स्थित होते हुए भी व्यूह-क्रम से आविर्भूत होती है। इस प्रकार विश्व मे दो समानान्तर सृष्टियो की कल्पना की गयी है— (1) भौतिक सृष्टि तथा (2) दैविक सृष्टि तथा भौतिक सृष्टि पर दैविक सृष्टि की प्रधानता स्वीकार की गयी है। व्यूह–कल्पना के इस क्रम को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—
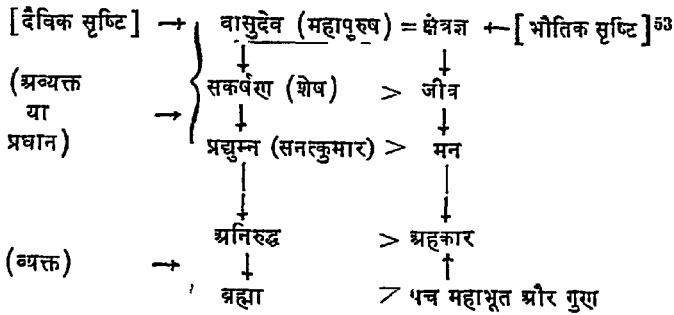
इस सृष्टि-प्रक्रिया की विचार-धारा मे सिद्धात और कल्पना का विचित्र सम्मिश्रण है। इसकी प्रथम सरणि साख्यदर्शन की शब्दावली और चिंतन-प्रणाली पर आधारित है तो दूसरी समानान्तर सरणि का ढाँचा वासुदेव कृष्ण के परिवार के मान्य वशवीरो की परम्परा पर खडा किया गया है। अन्तर यही है कि साख्योक्त मन, बुद्धि, चित्त और अहकार तत्त्वो के क्रम मे विपर्यय दीख पडता है। यही कारण है कि इस क्रम-विपर्यय की असगति निवारण करने का प्रयत्न परवर्ती सहिता और इतर वैष्णव तात्त्विक साहित्य मे हुआ है जिसकी परिणति हमे रूप गोस्वामी के लघुभागवतामृत मे मिलती है जहाँ सकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को क्रमश अहकार, चित्त, बुद्धि और मन का अधिष्ठाता कहा गया है। [54]

9. तथा मोक्ष प्रादुर्भाव सिद्धान्त

व्यूह-सिद्धान्त के साथ-ही-साथ श्वेत-द्वीप मे नारायण नारद को प्रादुर्भाव सिद्धान्त भी समझाते है। नारायणीयपर्व मे अवतार को प्रादुर्भाव कहा गया है जबकि परवर्ती वैष्णव सिद्धान्त-साहित्य मे 'अवतार' और 'प्रादुर्भाव' समानार्थक नही रह सके है। मूलत अव्यक्त और अक्षर सत्ता-रूप भगवान का योगशक्ति द्वारा विशिष्ट उद्देश्य के लिए प्राकट्य ही 'प्रादुर्भाव' है। देवताओ के कार्य की सिद्धि के लिए ही भगवान का अपनी विद्या द्वारा प्रादुर्भाव होता है तथा विद्या के बल पर ही वे सृष्टि-कार्य करते हैं और सृष्टि को पुन अपने मे लीन कर लेते हैं। [55]

प्रादुर्भाव सख्या में अनन्त है अत उनका ज्ञान और आकलन असभव है।[56] फिर भी नारायणीय पर्व मे प्रादुर्भावो की निश्चित सख्या और प्रयोजन का उपक्रम है जहाँ वाराह, वामन, नृसिंह, पुरुषोत्तम, दाशरथिराम, सात्वत (कृष्ण) और कल्कि के साथ ही हस, कूर्म और मत्स्य का उल्लेख है।[57] इस प्रकार प्रादुर्भाव-कल्पना मे भी प्रलयान्तर सृष्टि-कल्पना के प्रतीकात्मक उल्लेख के साथ-साथ ऐतिहासिक वशवीरो या लोक-पुरुषो को ईश्वरीय महिमा से मण्डित करने की वृत्ति स्पष्ट झलक रही है। जहाँ व्यूह-कल्पना मे सृष्टि-प्रक्रियान्तर्गत अमूर्त दार्शनिक तत्त्वो के साथ लोक-पुरुषो की सगति का प्रयत्न है वहाँ प्रादुर्भाव-कल्पना मे प्रलयान्तर जैव सृष्टि क्रम मे उनकी अवस्थिति है। प्रकारान्तर से, दोनो ही प्रयत्न, मान्य श्रद्धास्पद लोक-पुरुषो को ईश्वरीय महिमा से मण्डित करने की चेष्टा के निदर्शन है। भक्तिमूलक लोकाश्रयी धर्म आन्दोलन मे ऐसे प्रयत्न स्वाभाविक ही थे क्योकि मानवरूप-धारी ईश्वर ही मनुष्य के सवेदनशील हृदय को सहज ही अधिक आकृष्ट कर सकता था। महाभारत मे मूलरूप मे, अवतारवाद की कल्पना स्पष्ट है। यद्यपि न तो वह, दशावतारो का उल्लेख होते हुए भी, उसी रूप मे रूढ हुई है न ही भागवतपुराण की भाँति उसमे बाईस अवतारो का उल्लेख है और न परवर्ती पाचरात्र सहिताओ की उन्तालीस अवतारो की लम्बी सूची ही है। अत महाभारत मे अवतार-कल्पना अपनी निर्माणाधीन और विकासशील प्रक्रिया मे है।[58]

इस व्यूह-सिद्धान्त के अनुरूप ही नारायणीय पर्व का मोक्ष-सिद्धान्त है।[59] इसके अनुसार मोक्षगामी आत्माएँ पहले आदित्य मण्डल मे प्रवेश करती है जिसके बीच मे नारायण का निवास है। वहाँ परमाणुभूत रूप मे वे अनिरुद्ध मे प्रवेश करती हैं, अनिरुद्ध से उनका प्रवेश मनोभूतरूप मे प्रद्युम्न मे होता है और प्रद्युम्न से सकर्षण मे। जो आत्माएँ इस प्रकार सक्रमण करती हैं उन्हे श्रेष्ठ भागवतजन कहा गया है। सकर्षण से वे आत्माएँ 'त्रिगुणहीन' होकर 'निर्गुण क्षेत्रज्ञ' अथवा 'वासुदेव' मे प्रवेश करती है। किन्तु सक्रमण की यह प्रक्रिया साधारण भागवतजनो के लिए है। एकान्तिन भक्त सीधा अबाधरूप से क्षेत्रज्ञ वासुदेव को प्राप्त होता है।[60] नारायण के प्रसाद मात्र से ही उनके व्यूह-रूप के दर्शन भक्त को प्राप्त हो सकते हैं।[61] इस प्रकार सृष्टि क्रम मे जीव के जन्म लेते समय तथा मृत्यु या मोक्ष के समय, दोनो ही अवसरो पर उसका 'प्रद्युम्न' स्थानीय 'मनस्-तत्व' से सक्रमित होकर ही सर्ग-लय होता है। अतः व्यूह-क्रम में प्रद्युम्न का महत्त्व असदिग्ध है।

इस प्रकार प्रद्युम्न के देवता-रूप मे विकास के काल को हम मोटे तौर पर दो खण्डो मे विभाजित कर सकते है—(1) महाभारत-युद्ध से लगाकर नारायणीय पर्व के रचना-

10 प्रद्युम्न के देवता-रूप का विकास-काल

काल तक (अर्थात अनुमानतः 1500ई० पू० से 400 ई० पू०) इसे हम सुविधा के लिए सक्षेप मे महाभारत-नारायणीय-काल कह सकते है। इस काल में पहले प्रद्युम्न, गोपालकृष्ण और

लक्ष्मी के पुत्र रूप में सकेत रूप से पूजार्ह बनने की स्थिति से उठकर वशवीर के रूप में आदृत होते हुए चतुर्व्यूह के अन्तर्गत भगवान के एक व्यूह-रूप में सुप्रतिष्ठ हुए। वे सर्ग (जन्म) और प्रलय (मोक्ष) की प्रक्रिया में 'मनस्' तत्त्वस्थानीय देवता के गौरव-पूर्ण पद पर आसीन हुए। वे अव्यक्त सृष्टि-सोपान की अन्तिम तथा व्यक्त सृष्टि सोपान की पूर्ववर्ती सरणि पर स्थित होने से विशेष महिमान्वित हुए। विकास-क्रम की दूसरी अवस्था को हम (2) पुराण-तन्त्र (वैष्णव सहिता) काल (अनुमानत. 400 ई० पू० से 1000 ई०) कह सकते हैं। इस काल में नारायणीयोक्त चतुर्व्यूह तथा प्रादुर्भाव कल्पना का और अधिक विस्तार हुआ जो भगवान के पर, व्यूह, विभव, अ तर्यामी और अर्चावतार— के पचविध सिद्धान्त रूप में पल्लवित पुष्पित हुआ। फलत प्रद्युम्न का महत्व भी व्यूह-रूप के साथ-साथ अर्चावतार के रूप में भी बढता गया और जैसा कि हम आगे के पृष्ठो मे देखेगे, वे मूर्ति-रूप में उपास्य ही नहीं हो गये अपितु वे वैष्णव सहिता-साहित्य के एक मुख्य अ ग 'क्रिया' (मन्दिर-मूर्ति-निर्माण आदि) की शिक्षा देने वाले अधिकारी देवता के रूप में स्वीकार कर लिये गये और उनके पृथक् ध्वजा, चिन्ह, प्रतिमा, रूप, मत्र, महिषी आदि की रचना द्वारा उनका पृथक् विशिष्ट देवता-रूप अस्तित्व में आया। व्यूह-परम्परा में अवस्थित होने के फलस्वरूप गौण देवता होते हुए भी अपनी व्यष्टि-रचना में अक्षुण्ण महत्त्व और मौलिकता के कारण उनकी महिमा किसी स्वतन्त्र सार्वभौम देवता से कम नहीं रही। इस काल-विभाजन के सम्बन्ध में ध्यातव्य यह है कि हमारे सास्कृतिक काल के अज्ञात अनिर्णीत पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण रूढ विभाजन या सर्वशुद्ध सीमाकन सभव नहीं है न हो ही सकता है। रचनाओ और प्रवृत्तियो की अनेकता और वारिधारावत उनका परित उद्वेलन और अन्तर्लाप कही भी निश्चित मेख गाडने ही नहीं देता। उदाहरण के लिए कतिपय पुराणो का प्रणयन हमारे द्वारा निर्धारित द्वितीय विकास-काल से पूर्व ही हो चुका था। इसी प्रकार प्रद्युम्न के देवता-रूप पे विकास का स्रोत 1000 ई० में पूर्णत पर्यवसित नहीं हो जाता अपितु रूप गोस्वामी तक एतद्विषयक कल्पनाएँ की जाती रही है (जो पुरस्सर पृष्ठो मे द्रष्टव्य है।) फिर भी विकास-क्रम की स्थूल रूपरेखा को समझने के लिए यह विभाजन अनुपयुक्त नहीं है।

11. वैष्णव पुराण तथा संहिता साहित्य

प्रद्युम्न के देवता-रूप मे विकास-काल की इस द्वितीय अवस्था (400 ई० पू० से 1000 ई०) मे हम दो प्रकार के साहित्य रूपो मे प्रद्युम्न के देवतारूप सम्बन्धी कल्पनाएँ पाते है— (1) पुराण और उपपुराण साहित्य मे तथा (2) वैष्णव सहिता-साहित्य मे। इसीलिए हमने इसे सक्षेप मे पुराण-सहिता-काल कहना उपयुक्त समझा है। इस काल मे भी, जैसा कि आगे देखेंगे, 400 ई से 800 ई तक का 'चतुश्शतक' काल-खण्ड प्रद्युम्न के देवता-रूप मे विकास की दृष्टि से स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

तो पहले पौराणिक–साहित्य मे प्रद्युम्न के देवता–रूप विषयक कल्पनाओ का आकलन करे। पौराणिक वाडमय के रचना–काल के सम्बन्ध मे 'इदमित्थम्' रूप से कुछ भी कहना शक्य नही है क्योंकि

12. पुराणों का रचना–काल

पुराणो मे हमे प्राचीन से प्राचीन इतिहास–भूगोल के वृत्त से लेकर ईसा के प्रथम सहस्त्राब्द बाद तक के सदर्भ मिलते है जो एक प्रकार से पुराणो के परिवर्द्धमान विश्व–कोष (एनलार्ज्ड एनसाइक्लोपीडिया) के रूप की सूचना देते है । फिर भी, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पुराण ग्रथो की रचना प्राचीन काल से ही होती चली आयी थी। डॉ० हाजरा का विचार है कि मूल रूप मे पुराणो का प्रणयन वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो गया था तथा वैदिक आर्यो के लिए पुराण उतने ही पूज्य थे जितने कि वेद। किन्तु कालान्तर मे वेदो के प्रति लोक मे श्रद्धा कम हो चली तो स्मार्त ब्राह्मणो ने इन पुराणो को लोक–रुचि के अनुकूल फिर से ढाला और प्रकारान्तर से वैदिक धर्म की रक्षा का प्रयास किया। आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे 'भविष्यत् पुराण' के उल्लेख से स्पष्ट है कि ईसवी सदी के प्रारम्भ से पूर्व एकाधिक पुराणो का प्रणयन प्रारम्भ हो चुका था और 'पुराण' एक विशिष्ट कोटि के ग्रथ के पर्यायरूप मे रूढ हो चुका था।[62] पुराणो के तिथिक्रम–निर्णय के विवाद मे पडे बिना कहा जा सकता है कि सृष्टि–सिद्धान्त के वर्णन को देखते हुए, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड, वायु, गरुड, पद्म और वराह पुराणो मे सृष्टि–प्रक्रिया का प्राचीनतम रूप दीख पडता है। मार्कण्डेय और कूर्मपुराण मध्यवर्ती प्रतीत होते है और मत्स्य पुराण में परवर्तीकाल के सकेत मिलते है।[63] पुराणो मे विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत्, हरिवशपुराण, पद्मपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण मे कृष्ण का जीवन सविस्तार दिया गया है और ब्रह्म, वायु, अग्नि, लिंग और देवीभागवत मे वह सक्षेप मे वर्णित है। इसीलिए पूर्वोक्त पुराणो मे ही प्रद्युम्न का भी वृत्तान्त अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। इन कृष्ण--चरित–प्रधान पुराणो का क्रम भिन्न-भिन्न विद्वान निम्न रूप से प्रस्तावित करते है—(1) श्री० सीतानाथ तत्त्वभूषण—विष्णु, हरि-वश. भागवत, ब्रह्मवैवर्त (2) श्री० दुर्गाशकर शास्त्री–हरिवश, ब्रह्म, विष्णु, भागवत और ब्रह्मवैवर्त तथा (3) प्रो०रुबेन–ब्रह्म, विष्णु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त। इन पुराणो मे वर्णित कृष्ण–प्रसगो के अवलोकन से स्पष्ट है कि इनमे से ब्रह्म और विष्णु पुराण के वर्णनो मे साम्य है तथा शैली की दृष्टि से ब्रह्म पुराण इनमे से प्राचीनतर होना चाहिए। इनके अतिरिक्त पद्म, अग्नि, भागवत और ब्रह्मवैवर्त मे कृष्ण--चरित्र पर्याप्त विस्तार से है। हरिवशपुराण, वस्तुत महाभारत का ही खिल (परिशिष्ट ग्रथ) है और भागवतपुराण ही एक मात्र ऐसा पुराण है जिसने कृष्ण के महाभारतीय रूप और पौराणिक रूपो को व्यवस्थित और रोचक ढग से सयोजित कर प्रस्तुत किया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण इन सबसे परवर्ती रचना है जो राधिका--स्तवनार्थ ही रचा गया प्रतीत होता है।[64] विष्णुपुराण के कतिपय अ शो को अत्यत प्राचीन वृत्तान्त से पूर्ण

मानते हुए भी श्री काशिनाथ वामन राजवाडे का अनुमान है कि इसकी रचना ईसा की पाचवीं अथवा छठी सदी मे हुई होगी ।[65] जबकि डॉ० बलदेव उपाध्याय ने सप्रमाण प्रदर्शित किया है कि विष्णु पुराण रचना की दृष्टि से प्राचीन पुराणो मे अन्यतम माना जाता है । तमिल भाषा मे लिखा गया प्राचीन काव्य "मणिमेखलै" विष्णुपुराण से परिचय रखता है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसवी पूर्व दो सौ वर्ष पहले यह पुराण सुदूर दक्षिण के तमिल प्रदेश मे प्रसिद्धि पा चुका था ।[66] इस दृष्टि से डॉ० बलदेव उपाध्याय के अनुसार विष्णु--पुराण 200--300 ई० पू० की रचना होनी चाहिए । किन्तु फर्कुहर विष्णु--पुराण का रचना--काल 400 ई० स्वीकार करते हैं ।[67]

पुराणो का काल--निर्णय एक दुरूह और दुस्साध्य कार्य है । इस विषय में विद्वान एकमत नही है तथा निरन्तर शोधकार्य चल रहा है । फिर भी अध्ययन की दृष्टि से कालक्रम की सगति बैठाने का उपक्रम अभीष्ट है । हमने ऊपर कृष्ण-चरित्रप्रधान पुराणो के काल--क्रम के सम्बन्ध मे श्री० सीतानाथ तत्त्वभूषण श्री० दुर्गाशकर शास्त्री तथा प्रो रूबेन के मत प्रस्तुत किये हैं । इनसे स्पष्ट है कि ब्रह्म, पद्म और विष्णु पुराण की सर्वाधिक प्राचीनता के विषय मे प्राय मतैक्य है । स्वय विष्णु तथा भागवतपुराण से इसका समर्थन होता है ।[68] श्री० दुर्गाशकर शास्त्री का ही आग्रह हरिवश को सबसे प्रथम रखने का है जो अन्य विद्वानो के मतो तथा पुराण की रचना--शैली को देखते हुए मान्य नहीं हो सकता । प्रो० विण्टरनिज ने अपने ग्रथ 'हिस्ट्री ऑफ इ डियन लिटरेचर' मे और अपने द्वारा अ ग्रेजी मे सपादित 'विष्णु पुराण' मे तथा श्री० रामदास गौड़ ने अपने ग्रथ 'हिंदुत्व' मे पुराणो को रचना--काल की दृष्टि से निम्नलिखित क्रम मे रखा है---

प्रो० विण्टरनिज . (1) ब्रह्म (2) पद्म (3) विष्णु (4) शिव या वायु (5) भागवत (6) नारद (7) मार्कण्डेय (8) अग्नि (9) भविष्य (10) ब्रह्मवैवर्त (11) लिंग (12) वराह (13) स्कद (14) वामन (15) कूर्म (16) मत्स्य (17) गरुड (18) ब्रह्माण्ड (19) हरिवश

श्री रामदास गौड : (1) ब्रह्म (2) पद्म (3) विष्णु (4) शिव (5) भागवत (6) वायु (7) नारदीय (8) अग्नि (9) ब्रह्मवैवर्त (10) वाराह (11) स्कद (12) मार्कण्डेय (13) वामन (14) कूर्म (15) मत्स्य (16) गरुड (17) ब्रह्माण्ड (18) देवीभागवत (19) लिंग (20) भविष्य (21) हरिवश

इन दोनो क्रमो की तुलना से स्पष्ट है कि मार्कण्डेय, लिंग और भविष्यपुराण को छोड कर अन्य पुराणो की रचना के क्रम मे प्रायः मतैक्य है । किन्तु दोनो ही

मार्कण्डेय को भविष्यपुराण से पूर्ववर्ती स्वीकार करते हैं। प्रो० विण्टरनिज भविष्य-पुराण को स्थान देते हैं जबकि श्री० रामदास गौड़ लिंगपुराण को भविष्यपुराण से पूर्ववर्ती मानते है। इन विवादस्पद तीन पुराणो को पृथक् से द्योतित करने पर एक सामान्य क्रम प्रस्तुत किया जा सकता है। विण्टरनिज का क्रम विष्णुपुराण तथा भागवतपुराण के मेल मे है अतः कालक्रम की दृष्टि से उसी को अपने अध्ययन का आधार बनाया जाना हम उपयुक्त समझते है। श्री गौड़ के क्रम को हमने लिखित तालिका मे पृथक् से सूचित कर दिया है।

डॉ० बलदेव उपाध्याय पर्याप्त अध्ययन—अनुशीलन के उपरान्त अनेक तर्क और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए पुराणो को तीन श्रेणियो मे रखते है।[69] और फिर प्रत्येक पुराण को काल-निर्णय के लिए पृथक् विचार करते हुए भी निर्णय देते हैं। उनके मतो को अत्यत सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

(क) प्राचीन पुराण (ईसवी पूर्व—400 ई०)
- (1) विष्णुपुराण (द्वितीय शती ई० पू०)[70]
- (2) वायुपुराण (350 ई०-550 ई० के मध्य, लगभग 400 ई.)[71]
- (3) मत्स्यपुराण (200 ई०–400 ई०)[72]
- (4) मार्कण्डेयपुराण (400–500 ई० के मध्य)[73]

(ख) मध्यकालीन पुराण (500 ई०—900 ई०)—
- (5) श्रीमद्भागवतपुराण (6ठी सदी ई०)[74]
- (6) ब्रह्माण्डपुराण (600 ई०–900 ई०)[75]
- (7) कूर्मपुराण (6ठी–7 वी शती)[76]
- (8) वामनपुराण (600 ई०–900 ई०)[77]
- (9) अग्निपुराण (700 ई०–900 ई०)[78]
- (10) स्कन्दपुराण (700 ई०–900 ई०)[79]
- (11) नारदीयपुराण (700 ई०–900 ई०)[80]

(ग) अर्वाचीन पुराण (8वी सदी—1000 ई०)[80]
- (12) लिंगपुराण (8वी–9वी सदी ई०)[81]
- (13) गरुडपुराण (8वी–9वी सदी ई०)[82]
- (14) ब्रह्मवैवर्तपुराण (9वी–10वी सदी ई०)[83]
- (15) वराहपुराण (9वी 10 सदी)[84]
- (16) भविष्यपुराण 10वी सदी तथा आगे)[85]

टिप्पणी.—पद्मपुराण के लिए डॉ० उपाध्याय का कहना है कि मूल पद्मपुराण उपलब्ध नही है। काणे महोदय की सम्मति में पद्मपुराण ने मत्स्यपुराण से अनेक श्लोक ग्रहीत किये है। शाकुन्तल आख्यान के लिए वह कालिदास का अधमर्ण है। अत.

वर्तमान पद्मपुराण कालिदास से परवर्ती अर्थात् 5 वी सदी के बाद की रचना है। इसका उत्तरखंड तो 16वी शती पश्चात् रचा गया है।[86]

ब्रह्मपुराण—अष्टादश पुराणो मे अग्रिम तथा प्रथम माना गया है। किन्तु प्रचलित ब्रह्मपुराण मूल न होकर प्रक्षिप्त है क्योकि डॉ० हाजरा ने निर्दिष्ट किया है कि इसमे जीमूतवाहन, बल्लाल सेन तथा देवर्षि भट्ट द्वारा उद्धृत ब्रह्मपुराणीय श्लोक नही पाये जाते। फिर, इसमे महाभारत, विष्णु, वायु तथा मार्कण्डेय पुराण के अनेक अध्यायो को भी ग्रहीत कर लिया गया है। अतः इसे 13वी शती की रचना मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।[87]

यह निश्चित परम्परा है कि पुराणो की सख्या 18 ही मानी गयी है। इसमे व्यक्तिक्रम का कोई सार्थक और सगत कारण नही प्रतीत होता जहाँ तक यह प्रश्न है कि अष्टादशपुराण सूची मे चतुर्थ स्थान पर वायु अथवा शिवपुराण मे से किसे मान्य किया जाय, पुराणो की पचलक्षणात्मकता शिव की अपेक्षा वायुपुराण पर अधिक सही बैठती है। बाण के उल्लेख मे छठी-सातवी सदी मे वायुपुराण के पाठ और उसकी लोकप्रियता की सूचना मिलती है अत उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता को दृष्टिगत करते हुए उसी को चतुर्थ स्थान पर मान्य किया जाना चाहिए।[88] फर्कुहर का यह कथन स्वीकार्य नही है कि हरिवश, शिव और वायु को मिलाकर पुराण सख्या 20 मानी जाए।[89]

श्री रामचन्द्र दीक्षितार ने विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और भागवतपुराण
को क्रमश: प्रमुख और प्राचीनतम पुराण मानते हुए इन्ही को आधार बनाकर अपना
'पुराण इण्डेक्स' तैयार किया है। दीक्षितार महोदय की मान्यता है कि ईसा से
पूर्व कम से कम 4-5 पुराण लिखे जा चुके थे जिनमे विष्णु भी एक था।[90]
दीक्षितार की सम्मति मे इन पुराणो का रचना-काम इस प्रकार है—विष्णुपुराण
(700 ई० पू०—400 ई० पू०)[91] वी० ए० स्मिथ की सम्मति मे भी विष्णुपुराण
400 ई० पू० से भी पहले की रचना है।[92] (2) वायु-पुराण (500 ई० पू०–400)[93]
(3) ब्रह्माण्डपुराण (400 ई० पू०) किन्तु अपने वर्तमान रूप मे वह उस समय
सम्पूर्ण नही लिखा गया था।[94] (4) मत्स्यपुराण (400 ई० पू०–300 ई०)[95]
तथा (5) श्रीमद्भागवतपुराण (300 ई०)[96] डॉ० हाजरा भागवत का रचना-काल
600 ई० स्वीकार करते हैं[97] तो फर्कुहर उसे 900 ई० तक ले जाते है।[98] इसी
प्रकार विष्णुपुराण की प्राचीनता को ऐकमत्य से स्वीकारते हुए भी उसके रचना-
काल के सम्बन्ध मे पर्याप्त अन्तर है। डॉ० बलदेव उपाध्याय इसे 200–300 ई

से भी प्राचीन मानते है[99] तो फर्कुहर 400 ई० निश्चित करते है।[100] राजवाडे जैसे विद्वान् 500–600 ई० तक इधर खीच लाते हैं।[101]

इस प्रकार हम देखते है कि पुराणो के रचना-काल और उनके क्रम के सम्बन्ध मे विद्वानों मे विपुल मतभेद है और इस विषय मे पर्याप्त उल्लेख है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक पुराण प्राचीनतम और प्रक्षिप्त अ शो से समाविष्ट है अत. खड साक्ष्य की समीक्षा से एक ही पुराण को कोई पूर्ववर्ती सिद्ध करता हैं तो कोई परवर्ती। पुराणो के कालक्रम का निर्णय तब तक भ्रान्त ही रहेगा जब तक कि सभी पुराणो का वैज्ञानिक पद्धति से पाठ-सम्पादन नही हो जाता। तब तक तो हम यही कह सकते हैं कि अपेक्षाकृत विष्णु, वायु, मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, ब्रह्माण्ड और अग्नि पुराणो को हम इसी क्रम से महत्त्वपूर्ण पुराण कह सकते है। ब्रह्म, पद्म पुराणो के विशिष्ट अ शो को देखकर ही उन्हे यथास्थान महत्त्व दिया जाना चाहिए क्योकि ये प्राचीन होते हुए भी मूल रूप मे उपलब्ध नही है तथा अन्य पुराण परवर्ती परम्परा के अन्तर्भुक्त किये जाने चाहिएँ।

पुराणो की ही भाँति उपपुराणो के रचना-काल का भी प्रश्न है। धर्म और सस्कृति के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से उपपुराण साहित्य का महत्त्व असदिग्ध है। इनमे से कुछ तो पुराणो से भी प्राचीन और स्वतन्त्र ग्रन्थ है।[102] डॉ० हाजरा की सम्मति है कि पुराण की अपेक्षा इनमे प्रक्षिप्ताश भी कम है। यदि रूपान्तर हुए भी है तो अन्य धर्मावलम्बियो द्वारा नही, इसलिए इनकी साक्षी भी अधिक प्रामाणिक है अत पार्जिटर की इस धारणा को वे अनुचित मानते है कि सभी उपपुराण अपेक्षाकृत परवर्ती और अल्पतर महत्त्व का साहित्य है।[103] ऐसा प्रतीत होता है कि उप-पुराणो के अस्तित्व मे आने से पूर्व ही अठारह पुराणो का एकत्रीकरण हो चुका था, सभवत. इसलिए मत्स्यपुराण मे इस प्रक्षिप्त अ शवर्द्धन की आवश्यकता अनुभव हुई कि इन अठारह पुराणो के अतिरिक्त जो अन्य पुराण ग्रथ होगे वे इन्ही से निसृत माने जाएँगे।[104] किन्तु मत्स्यपुराण मे नारसिंह, नदी, साम्ब और आदित्य—इन चार उपपुराणो के उल्लेख से [105] सिद्ध है कि अठारह पुराणो की सख्या निर्धारण के बहुत पहले ही उपपुराणो का प्रणयन प्रारम्भ हो चुका था। कूर्मपुराण मे जिन 18 उपपुराणो को गिनाया गया है, वे ये है—

(1) आद्य (2) नारसिंह या नृसिंह (3) स्कान्द (4) शिवधर्म (5) दुर्वासोक्त (6) नारदीय (7) कापिल (8) वामन (9) उपनसेरित (10) ब्रह्माण्ड (11) वारुण (12) कालिका (13) माहेश्वर (14) साम्ब (15) सौर (16) पराशरोक्त (17) मारीच तथा (18) भार्गव।

कूर्मपुराण (शिवमाहात्म्य खण्ड) तथा पाराशर उपपुराण मे उल्लेख है कि व्यास जी से 18 पुराणो का श्रवण करने के पश्चात् ऋषि मुनियो ने 18 उपपुराणो की रचना की।[106] अपने वर्तमान रूप मे उपलब्ध सौर-पुराण भी उपपुराणो को

पुराणो का ही परिशिष्ट (खिल) कहता है और स्वय को भी ब्रह्मपुराण को खिल मानता है किन्तु अन्यत्र उपपुराणो में इस स्थापना की पुष्टि नही होती। [107] सौर उपपुराणो मे से एकमेव उपलब्ध उपपुराण है–साम्बपुराण। इसमे कृष्ण के पुत्र साम्ब द्वारा शाक-द्वीप से मग ब्राह्मणो के 18 परिवारो को लाने और मित्रवन (पजाब) मे मूल स्थान (मुलतान) मे सूर्य मदिर की स्थापना करने का विवरण है। किन्तु साम्ब-पुराण से भी पूर्व अन्य सौर पुराण और ग्रथ रहे होंगे, इसमे सन्देह नहीं क्योकि भविष्य पुराण [108] मे किसी नारदोक्त प्राचीन सौर धर्म का उल्लेख पाया जाता है। [109] डॉ० हाजरा का निष्कर्ष है कि मोटे तौर पर उप-पुराणो का रचना-काल गुप्त-युग (320 ई.–) से प्रारभ होता है। [110] तथा इन उप पुराणो का एकत्र परिगणन किये जाने की प्रवृत्ति 650 ई के आस-पास प्रारभ हुई होगी एव 18 की सख्या मे बद्धमूल इनका एकत्र परिगणन 850 ई तक पूर्ण हो चुका था। [111] नृसिंहपुराण का रचना-काल 500 ई से बाद का नहीं हो सकता। [112] मूल आदिपुराण अथवा आद्यपुराण उपलब्ध नही है। किन्तु अन्यत्र उसके सदर्भ उल्लेखो से अनुमानत उसकी रचना 6 शती ई मे हुई होगी। वर्तमान मे उपलब्ध आदिपुराण चैतन्य महाप्रभु के शिष्य द्वारा 16 वी शती की रचना ज्ञात होती है। [113]

इस प्रकार हम देखते है कि वैष्णव परम्परा मे पौराणिक ढग की रचनाएँ करने की तथा देवताओ के स्वरूप और महत्त्व के सम्बन्ध मे प्राचीन स्थापनाओं मे सशोधन कर नवीन कल्पनाएँ करने और नये ढग से विचार–सरणि की सगति बैठाने की प्रवृत्ति 16 वी शती तक प्रवहमान रही है। रूप गोस्वामी कृत 'लघु भागवतामृत' भी इसी कोटि की रचना है।

13. पौराणिक साहित्य में प्रद्युम्न का देवता–रूप

देखने की बात यह है कि पौराणिक–साहित्य मे हमे प्रद्युम्न के देवता–रूप के सम्बन्ध मे सकेत अपेक्षाकृत अल्प रूप मे उपलब्ध होते हैं जब कि प्रद्युम्न के जीवन और चरित्र विषयक कथा-सूत्र उसमे अधिक मात्रा मे प्राप्त है। पुराण-कार की दृष्टि धार्मिक तत्त्ववाद पर जितनी रही है, कम से कम इस क्षेत्र मे उसकी रुचि चरित्र के लीला-गान की ओर उससे अधिक रही प्रतीत होती है।

फिर भी पुराणों मे भी, प्रद्युम्न का देवता–रूप नितान्त उपेक्षित नहीं है। विष्णुपुराण तथा अन्य कृष्ण-लीला चरित्र प्रधान पुराणो मे प्रद्युम्न के उपास्य देव के रूप मे कई सकेत मिलते है। विष्णु-पुराण मे उल्लेख है कि जब अक्रूरजी बलराम को मथुरा ले जाते समय मार्ग मे आह्निक कर्म करने यमुना तट गये तो उन्होने सर्वत्र कृष्ण का विभु स्वरूप देखा। उस समय स्तुति करते हुए अक्रूर जी कहते है— "वासुदेव को प्रणाम है, सकर्षण रूपी आपको प्रणाम है। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूपी

आपको प्रणाम है" [114] यहाँ प्रद्युम्न को वासुदेव का ही रूप कहा गया है। विष्णुधर्मपुराण (रचनाकाल ई० 200--300) [115] मे धर्म के चार पुत्रो नर, नारायण, हरि और कृष्ण का उल्लेख [116] उस युग मे तत्त्व नाम से इष्ट को पूजने वाले चार वैष्णव सम्प्रदायो का द्योतक है। इसी पुराण मे नरनारायण, इन्द्र द्वारा तप से डिगाने के लिए भेजी गयी रभादि अप्सराओ को अपने मुख में समस्त लोक दिखा कर स्वय को परमात्मास्वरूपी चतुर्व्यूहात्मक मायी वासुदेव सिद्ध करते हैं। यह पाचरात्र और भागवत के पारस्परिक अन्तर्भाव तथा चतुर्व्यूह सिद्धान्त के प्रचार का सूचक है। इस पुराण में कृष्ण लागलिराम (वलराम) को अपना ही द्वितीयांश वताते है—"द्वितीयो यो ममाशस्तुरामोऽनन्त स लाङ्गुलि[117] जो सकर्षण के महत्त्व की विद्यमानता को प्रकट करता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे (रचनाकाल 400--500 ई०)[118] पाचरात्र उपासनामार्ग ही प्रस्तुत है तथा पचकाल उपासना पद्धति का आग्रह है। नारायण को 'चतुरात्मन' कहते हुए चतुर्व्यूह सिद्धान्त मे विश्वास प्रकट किया गया है तथा एकान्त भक्ति से श्वेतलोक मे जाने और सूर्यमण्डल, ब्रह्मा, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सकर्षण लोक से क्रमशः सक्रमण करते हुए मोक्ष--प्राप्ति का उल्लेख है। इसमे विष्णु नाम ही अधिक वार आया है जिससे वूहलर का इसे भागवतपुराण कहना उचित नही प्रतीत होता वस्तुतः यह पांचरात्र पुराण ही है।

वायुपुराण मे गया--माहात्म्य का वर्णन करते हुए सनत्कुमार नारद से कहते है कि "प्रणव ॐकार का उच्चारण यह कह कर करना चाहिए कि श्री भगवान वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न. अनिरुद्ध, श्रीधर प्रभृति नामो वाले को हमारा नमस्कार है।" मत्स्यपुराण मे भी ऐसी ही स्तुति है।[119] तथा इसी पुराण मे मनुष्य-योनि मे जन्म लेने वाले देवताओ की गणना मे एक नाम प्रद्युम्न का भी है और उन्हे यदुवश के प्रमुख पचवीरो (सकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध) मे कहा गया है।[120] अतः वायु--पुराण युग मे पचवीरोपासना प्रचलित थी। श्रीमद्भागवत मे उल्लेख है कि जो मनुष्य प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सकर्षण, इन मूर्तियो के नाम से मत्रमूर्ति वाले यज्ञपुरुष का पूजन करता है वही सम्यक् दर्शन का अधिकारी हो सकता है।[121] इसी प्रकार वर्हि के प्रचेता पुत्रो को जिस स्तोत्र के पारायण करने का उपदेश शकर देते है उसमे प्रद्युम्न को वुद्धि का अधिष्ठाता और अन्तरात्मा कहते हुए नमस्कार निवेदित है।[122] श्रीमद्भागवतपुराण मे 'जव द्वारकावासी ब्राह्मण के अपहृत वालको को ढूँढने के लिए कृष्ण अर्जुन सहित अनन्तलोक पहुँचते है तो भगवान अनन्त के मुँह से कृष्णार्जुन को नरनारायण वताते हुए उनसे जगत की स्थिति और लोकसग्रह के लिए धर्म का आचरण करने को कहा गया है। इससे कृष्णार्जुन की नर-नारायण से अभिन्नता प्रतिपादित है।[123]

अग्निपुराण मे नाना प्रकार की शालिग्राम की मूर्तियों की, उनकी प्राकृतिक रचना के अनुसार, विभिन्न चतुर्व्यूहो से प्रतीकता स्थापित की गयी है। इसी क्रम मे

कहा गया है कि जिस शालिग्राम की मूर्ति मे चक्र तो सूक्ष्म हो और बहुत से छिद्र हो तथा मूर्ति नील व दीर्घ हो उसे 'प्रद्युम्न शालिग्राम' मूर्ति समझना चाहिए।[124] पाँच चक्र वाली मूर्ति वासुदेव और छ चक्रो वाली प्रद्युम्न शालिग्राम मूर्ति तथा सात चक्रो वाली सकर्षण मूर्ति होती है।[125] इसी प्रकार चौबीस मूर्तियो के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि प्रदक्षिण क्रम मे गदा, शख, चक्र, पद्म धारण करने वाली मूर्ति 'प्रद्युम्नमूर्ति' है।[126] व्यूहो का उद्भव--क्रम निरूपित करते हुए अग्निपुराण कहता है कि आदिमूर्ति भगवान वासुदेव हैं। उन्ही से संकर्षण का प्रादुर्भाव हुआ है। सकर्षण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का। केशवादि भेद से इनमे से प्रत्येक के तीन-तीन प्रभेद होते है। [127] इस प्रकार अग्निपुराण मे व्यूहो की उत्पत्ति सीधे वासुदेव से पृथक्--पृथक् न हो कर क्रमश श्रेणिवत् है। अग्निपुराण की इन स्थापनाओ पर वैष्णव सहिता--साहित्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। अन्यत्र कहा गया है कि दक्षिण करो मे चक्र, शख तथा वाम करो मे धनुष तथा गदायुक्त 'प्रीति' सहित प्रद्युम्नमूर्ति है।[128] गरुड़पुराण मे भी कहा गया है कि सर्वदुष्ट--विनाशन, लोकानुग्रहकारी एक विष्णु ही वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण--इन पाच रूपो मे है।[129] ब्रह्मवैवर्तपुराण मे कहा गया है कि एक ही परम देवता चतुर्विध रूप मे व्यक्त होता है तथा अनिरुद्ध ही ब्रह्मा, प्रद्युम्न ही 'काम' बलदेव ही शेष' और कृष्ण ही पराप्रकृति है।[130] विष्णुपुराण मे चतुर्व्यूह के नामो का उल्लेख हुआ है किन्तु कृष्ण-कुटुम्ब के सदस्यो के रूप मे ही चारो नाम आये है।[131] भागवतपुराण मे भी इसी रूप मे उनका नाम आया है, तथापि कहा गया है कि वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भगवान के ही चार स्वरूप है किन्तु इन रूपो मे भगवान की विशिष्टता अथवा अनुकूल स्वरूप या कार्य क्या हैं इसका विशद निरूपण वहाँ नही है।[132] केवल एक स्थान पर व्यूह- कल्पना के सूक्ष्म सकेत रूप मे वासुदेव को सर्वात्मरूप तथा सकर्षण को शेष रूप और अहकार का अधिष्ठाता, प्रद्युम्न को बुद्धि तथा अनिरुद्ध को मन का अधिष्ठाता बताया गया है।[133] श्रीमद्भागवतपुराण के पचम स्कध का सपूर्ण पच्चीसवाँ अध्याय सकर्षणदेव की स्तुति और देवस्वरूप वर्णन मे प्रयुक्त हुआ है जहाँ कहा गया है कि पाचरात्र आगम के अनुयायीजन भगवान अनत को ही 'सकर्षण' कहते हैं। वहाँ सकर्षण को अनत (शेष) की भ्रकुटि के मध्य भाग से उत्पन्न एकादश--व्यूह रुद्र बताया गया है।[134] किन्तु शकर द्वारा सकर्षण की स्तुति किये जाते समय यह अवश्य लिखा गया है कि पार्वती और उनकी खरबो दासियो से सेवित भगवान शकर परम पुरुष परमात्मा की वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सकर्षण सज्ञक चतुर्व्यूह मूर्तियो मे से अपनी कारण स्वरूपा सकर्षण नाम की तम प्रधान चौथी मूर्ति का ध्यानस्थित मनोमय विग्रह के रूप मे चिन्तन करते है।[135] इससे स्पष्ट है कि भागवतकार पाचरात्रमतीय चतुर्व्यूह--कल्पना से अपरिचित नही है तथापि उसके विवरण कुछ अ तर लिये हुए हैं, जैसे नारायणीय प्रद्युम्न को मन का तथा अनिरुद्ध को अहंकार का अधिष्ठाता कहता है जबकि भागवत

प्रद्युम्न को बुद्धि और अनिरुद्ध को मन का अधिष्ठाता घोषितकरता है । इसी प्रकार नारायणीय मे संकर्षण जीवस्थानीय है जबकि भागवत मे वे अहंकारस्थानीय बताये गये है । इस प्रकार हमने देखा कि पुराणो मे नारायणीय चतुर्व्यूह कल्पना से परिचय के संकेत तथा प्रद्युम्न आदि विभिन्न व्यूह रूपो मे सर्वात्मरूप वासुदेव की उपास्यता के संदर्भ उपलब्ध है । यही नही, सूक्ष्म अनुशीलन से हमे यह भी ज्ञात होता है कि इन व्यूह अवतारो का महत्त्व भी पुराणकाल मे ही स्थापित हो चुका था ।

अवतारवाद के उत्स और उसकी विकास-परम्परा की संक्षिप्त उद्धरणी प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि अवतार कल्पना ब्राह्मण-साहित्य मे विद्यमान थी । शतपथ

14 अवतारवाद का उत्स और विकास

ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने ही मत्स्य[136] कूर्म[137] तथा वराह[138] का अवतार ग्रहण किया था । प्रजापति के वराह रूप धारण करने की कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[139] तथा वाल्मीकीय रामायण[140] मे भी है । किन्तु अभी तक इन अवतारो का सम्बन्ध प्रजापति के साथ ही था । वामन अवतार के सम्बन्ध मे स्थिति भिन्न है । ऋग्वेद में ही विष्णु को 'उरुगाय' तथा 'उरुक्रम' विशेषणो से मण्डित करते हुए उसके द्वारा तीन डगो मे पृथ्वी को नाप लेने की बात कही गयी है—'विचक्रमाणस्ये—धोरुगाय ।' शतपथब्राह्मण मे वामन-अवतार का विस्तार से वर्णन है ।[141] अत वामन अवतार का सम्बन्ध मूलत विष्णु से ही सिद्ध है । इससे यही अनुमित होता है कि विष्णु के प्रधान देवता पद पर प्रतिष्ठित होने के साथ ही अन्य मत्स्य, कूर्म, वराह आदि वेदोक्त प्रजापति से सम्बद्ध अवतारो का सम्बन्ध भी विष्णु से जोड दिया गया । जब भागवत धर्म की प्रतिष्ठा के साथ वासुदेव कृष्ण विष्णु के महत् पद पर आसीन हो गये तो अवतारवाद चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुआ । वासुदेव कृष्ण का विष्णु के अवतार होने की कल्पना का उदय आरण्यक युग मे हो गया था जब उनके स्तवनार्थ गायत्री मन्त्रो[142] की रचना होने लगी थी । इस अवतार का भी अपना एक विकास-क्रम है । भगवान के अवतार धारण करने के विषय में पुराण तथा इतिहास मे चार मत बतलाये गये है ।[143] (1) मत्स्यपुराण[144] मे वर्णित यह मत कि भगवान अपनी दिव्य मूर्ति का सर्वथा परित्याग कर ही भू-तल पर अवतीर्ण होते है । यह लोकप्रिय सामान्य मत आदि मानवो की स्थूल कल्पना तथा विश्वास का सूचक है । (2) द्वितीय मतानुसार भगवान का केवल एक अंश ही, आधा, चतुर्थांश या और भी न्यून अंश ही अवतार धारण करता है । अवतीर्ण अंश भू-तल पर जिस समय विशिष्ट कार्य करता है, अवतारी अंश उस समय अपने मूल शाश्वत कार्य मे प्रवृत्त रहता है । श्रीकृष्ण-अवतार के समय विष्णु का स्वर्ग मे भूमि से वार्तालाप इसी का सूचक है । (3) तृतीय मत से विष्णु ने अपनी मूर्ति के दो भाग कर दिये । पहली स्वर्ग मे तपस्यारत सात्त्विक मूर्ति है । दूसरी मूर्ति योगनिद्रा के आश्रय से सृष्टि और संहार कार्य करती है ।

प्रति सहस्र वर्ष के अनन्तर अपनी समुद्री शैया से उठ कर यह विशिष्ट महत् कार्य के निमित्त अवतार ग्रहण करती है।[145] महाभारत प्रथम मूर्ति को वासुदेव तथा दूसरी को सकर्षण कहता है। (4) चतुर्थ मत विशेष विकसित मत है। यह ब्रह्मपुराण के इस कथन मे समाविष्ट है कि नारायण ने अपनी मूर्ति को चार भागो मे विभक्त किया जिनमे एक निर्गुण तथा तीन सगुण रूप हैं। निर्गुण मूर्ति वासुदेव तथा तीन 'सगुण' मूर्तियाँ 'सकर्षण', प्रद्युम्न तथा 'अनिरुद्ध' है।[146]

15 अवतार-कल्पना में प्रद्युम्न का महत्त्व

महाभारत के शातिपर्व[147] की इसी कल्पना का समृद्ध रूप नारायणीय चतुर्व्यूह कल्पना मे दीख पडता है जहाँ इन मूर्तियो को क्रमश पुरुष, जीव, मन तथा अहकार स्थानीय कह कर दार्शनिक रूप से अभिमडित किया गया है।

ब्रह्मपुराण की इस अवतार-कल्पना के अनुसार तृतीय मूर्ति 'प्रद्युम्न' का कार्य धर्म-सस्थापन तथा प्रजा-पालन है। इसलिए यह सत्त्वप्रधान मूर्ति है। यह नियमित रूप से धर्म की व्यवस्था करती है। धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होने पर हर बार यह 'प्रद्युम्न' मूर्ति ही अपने को अभिव्यक्त कर भू-तल पर अवतीर्ण होती है। इस मत के अनुसार समस्त अवतार भगवान के चतुर्थ अ श का ही विलास है जिनका अधिष्ठाता 'प्रद्युम्न' ही है। यही नही, देव, मनुष्य तथा तिर्यक योनि मे सर्वत्र यह 'प्रद्युम्न मूर्ति' ही उसके स्वभाव को ग्रहण कर लेती है तथा पूजित होने पर इष्ट कामना की पूर्ति करती है। धर्म-रक्षण मे तत्पर देव तथा गधर्वो को तो वह बचाती है परन्तु धर्म के विनाश मे प्रवृत्त उद्धत असुरो को वह समूल नष्ट कर देती है। इस दृष्टि से ब्रह्मपुराण मे प्रद्युम्न[148] का महत्त्व अवतार-कल्पना मे सर्वोपरि हो जाता है।

16 पांचरात्र संहितासाहित्य और उसका रचना-काल

पुराणो मे प्रतिपादित अवतारवाद की कल्पना को पोषण और प्रसार महाभारत के नारायणीय पर्व मे मिला जहाँ पाचरात्र मत के अन्तर्गत व्यूहवाद का स्वरूप लक्षित हुआ है। पाचरात्र मत का सर्वप्रथम मान्य विवरण महाभारत के शातिपर्व मे उपलब्ध होना है किंतु बाद मे इस का 'क्रिया' (मदिर-मूर्ति-निर्माण, पूजा, मत्र) सम्बन्धी साहित्य सहिता नाम से विख्यात ग्रथो मे मिलता है। डॉ० बलदेव उपाध्याय का कहना है कि पाच-रात्र सहिताओ की रचना मूलत उत्तर भारत मे हुई जहाँ से ये दक्षिण भारत मे प्रचारित प्रसारित हुई। दक्षिण भारत मे भी अनेक सहिताओ की रचना हुई।[149] डॉ० श्रेडर का भी यही विचार है। वे श्वेतद्वीप से भारत के उत्तरीय पर्वत प्रदेश का आशय ग्रहण करते हुए एव पाचरात्र सहिताओ का सर्वप्रथम प्रारभ उत्तरी भारत से ही मानते हुए[150] अहिर्बुध्न्य सहिता की रचना काश्मीर मे होना सूचित करते है।[151] कपिजलसहिता आदि प्राचीन ग्रथो के अनुसार पाचरात्र सहिताओ की सख्या

215 है। डॉ० श्रेडर ने अनेक सूत्रो से गणन कर इन की संख्या 225 बतायी है। किंतु इनमे से केवल 16 सहिताएँ ही, कुछ तेलुगु और कुछ नागरी लिपि मे, अब तक प्रकाशित हुई हैं[152] जिनमे नागरी लिपि मे प्रकाशित 9 सहिताओ मे से सात्त्वत, जयाख्य और परम सहिता प्राचीनता की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० श्रेडर की दृष्टि मे पौष्कर, सात्त्वत एव जयाख्य सहिताएँ सर्वाधिक प्राचीन और प्रामाणिक हैं। दार्शनिक सिद्धान्त-सामग्री की दृष्टि से अहिर्बुध्न्यसहिता सर्वाधिक समृद्ध प्रतीत होती है।

पौष्कर, सात्त्वत, जयाख्य, परम, अहिर्बुध्न्य के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण सहिताओ मे वराह, ब्राह्म, पारमेश्वर, सनत्कुमार, पद्म, महेन्द्र, काण्व, पद्मोभव तथा ईश्वरसहिता के नाम उल्लेखनीय है। डॉ० श्रेडर के अनुसार उक्त सभी सहिताएँ 8 वी शताब्दी तक अवश्य निर्मित हो गयी होगी जब कि अन्य सहिताएँ प्राय 8 वी शताब्दी के बाद लिखी जाती रही। डॉ० बलदेव उपाध्याय के मतानुसार भी उक्त प्रमुख सहिताओ का रचनाकाल चतुर्थ ईसवी शतक से अष्टम शतक तक है।[153] तथा फर्कुहर इनको 600-800 ई० के बीच रचा गया मानते है।[154] श्रेडर के मतानुसार 'नारद पाचरात्र' नाम से प्रचलित सहिता अपेक्षाकृत नवीन रचना है तथा उसे पाचरात्र प्रामाणिक नही मानते। डॉ० भण्डारकर भी इससे सहमत है।[155]

जयाख्यसहिता के रचना-काल का विवेचन करते हुए डॉ० वी. भट्टाचार्य जयाख्यसहिता के मडल-विधान पर प्रसिद्ध बौद्ध तान्त्रिक ग्रथो 'आर्यमजुश्रीमूलकल्प दूसरी ईसवी सदी) तथा उसके सर्वसैन्य-स्तभन-विधि एव रिपुमहापहार-विधि पर प्राचीनतम नेपाली बौद्ध तान्त्रिक ग्रथ 'गुह्य समाज' (रचना-काल तृतीय ईसवी शती) का प्रभाव तथा जयाख्यसहिता मे वर्णित यक्षिणी-सिद्धि का ही विस्तार 'भूत डामर तन्त्र' (7 वी शती का आरभ) मे स्वीकार करते हुए जयाख्यसहिता की रचना 'गुह्य समाज' के बाद और 'भूत डामर तन्त्र' के मध्यवर्ती मानते हुए सन् 350 ई० को जयाख्यसहिता का रचनाकाल सिद्ध करते है तथा तत्कालीन वर्णमाला चिन्हो से भी अपने निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।[156]

डॉ० भट्टाचार्य का कहना है कि "जयाख्य सहिता के रचना-काल से स्पष्ट है कि पाचरात्र सहिता-साहित्य के त्रिरत्नो मे से अन्य दो रत्नो सात्त्वत तथा पौष्कर सहिता की रचना भी इसी-काल (450 ई०) के आस-पास ही हुई होगी।[157] इस प्रकार पाचरात्र सहिता-साहित्य प्राचीन बौद्ध तांत्रिक साहित्य यथा मंजुश्रीमूलकल्प गुह्य समाज तथा आचार्य असग के साधन ग्रथो से पश्चातवर्ती है। यही कारण है कि पाचरात्र सहिता साहित्य पर तान्त्रिक प्रभाव इतना स्पष्ट है कि उसमे योगोक्त अणिमा-लघिमादि सिद्धियो के अतिरिक्त विशुद्ध तान्त्रिक सिद्धियो यथा खड्ग सिद्धि, अजन सिद्धि, गुटिका सिद्धि, रसायन सिद्धि, यक्षिणी सिद्धि तथा मुद्रा-मडल-विधान, शांतिक पौष्टिक कर्म, स्तम्भन, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण आदि विधियो का वर्णन मिलता है।

यही नही, शत्रुसैन्य-सहार के विलक्षण मत्र भी वहाँ है ।[158] इसीलिए जयाख्यसहिता अपने स्वरूप मे पुराण की अपेक्षा तत्र ग्रथ अधिक प्रतीत होता है या इसे तत्र और पुराण की मध्यवर्ती रचना कहा जा सकता है। डा० श्रेडर के कथनानुसार महाभारत मे भी यो तो तात्रिक तत्वो की छाप यत्र-तत्र मिलती है किन्तु वह विरल है और शाति-पर्व मे, जहाँ पाचरात्र धर्म का सर्वाधिक वर्णन है, उसका सर्वथा अभाव है। सहिता-साहित्य मे वर्णित पूजा-विधि और आचार भी महाभारत मे नही मिलता ।[159] श्री० एम० डी० रामानुजाचार्य का भी कहना है कि पाचरात्र शास्त्रो मे 10 विषय है—दर्शन, मत्र, यत्र, योग, माया, मदिर-निर्माण, प्रतिष्ठा-विधि, सस्कार, वर्णाश्रम धर्म और उत्सव। इनमे तत्र-मत्र और अभिचार तत्वो का पर्याप्त अभिनिवेश है। इसलिए यह शैव शाक्त मतो से मिश्रित मत है। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि अहिर्बुध्न्य सहिता मे दुर्वासा कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वप्रथम नारद को अहिर्बुध्न्य से प्राप्त हुआ था जो 11 रुद्रो मे से एक हैं। शिव का सात्विक रूप ही अहिर्बुध्न्य कहलाता है। इससे वे पाचरात्र को शिवोद्भूत आगम मानते है ।[160] किन्तु पाचरात्र का शिवोद्भूत आगम होना चाहे विवादास्पद और प्रमाणसापेक्ष हो, पाचरात्र पर तात्रिक प्रभाव तथा शैव, शाक्त बौद्धादि मतो से सम्पर्क और सामजस्य असदिग्ध है। अत श्री भट्टाचार्य का यह कथन समीचीन है कि हिंदू वाङ्मय मे पाचरात्र साहित्य तात्रिक और पौराणिक साहित्य की मध्यवर्ती कडी है जिसे उदार और सहिष्णु गुप्त-काल मे सर्वाधिक प्रश्रय और परिवर्द्धन मिला ।[161]

17 प्रद्युम्न-सहिता

डॉ० श्रेडर ने अपनी 225 पाचरात्र सहिताओ की सूची मे सख्या 94 पर किसी अप्राप्य "प्रद्युम्न सहिता" का भी उल्लेख किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबध के लेखक को खोज करने पर ज्ञात हुआ कि "प्रद्युम्न सहिता" की एक प्राचीन हस्तलिखित जीर्ण-शीर्ण अवस्था की प्रति "गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लॉयब्रेरी, मद्रास" मे विद्यमान है ।[162] लेखक के अनुरोध पर श्री० के० पार्थसारथी एम० ए०, बी० टी० ने उसकी एक प्रतिलिपि कृपापूर्वक प्रेषित की। इस प्रति के अवलोकन से प्रतीत होता है कि प्रति प्राचीन और जीर्ण है तथा बीच-बीच मे अक्षर लुप्त हो गये है। यह सहिता सस्कृत गद्य और पद्य मे है तथा 14 पत्रो मे निबद्ध है। प्रति मे रचना या लिपिकाल सम्बन्धी विवरण नही है। यह सहिता 3 अध्यायो मे विभक्त है किन्तु तृतीय अर्थात् अन्तिम अध्याय के अत मे लिखा है कि—"इति श्री पाचरात्रे प्रद्युम्न सहितायां वसतोत्सवोनाम चतुर्थोऽध्याय इससे अनुमान होता है कि मूलत "प्रद्युम्न सहिता" मे कम से कम 4 अध्याय (सभवत इसमे भी अधिक) थे। सहिताकार ने इतर पाचरात्र सहिताओ से सामग्री ग्रहण कर इस सहिता की रचना की है। इसका प्रथम अध्याय "महासनत्कुमार सहिता" के 27 वें अध्याय से ग्रहीत किया गया है जैसा कि उसके अन्तिम उल्लेख से ज्ञात होता है—"इति श्री

पाचरात्रे महामनत्कुमार सह्तिाया महास्वस्तिक मण्डलाराधन नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय ।" इमी प्रकार इसका दूसरा अध्याय "विष्णु सिद्धान्त" नामक पाचरात्रग्रथ का 32 वाँ अध्याय है—"इति श्री पाचरात्रे विष्णुसिद्धान्ते महाभद्रकमण्डलाराधनविधानो नाम द्वात्रिंशोऽध्याय ।" समस्त सहिता मे महास्वस्तिक मडल, महाभद्रक मडल तथा वसतोत्सव मनाने की विधि वर्णित है। इसमे चतुर्व्यूह का सकेतक 'चतुर्विम्ब' तथा 'चतुर्मूर्ति' शब्द एक–दो बार आया है तथा एक स्थान पर 'रामाद्यपत्तौ तु · · ' के उल्लेख मे वलराम (सकर्षण) की ओर सकेत मात्र है। किन्तु चतुर्व्यूह के रूप मे प्रद्युम्नादि का स्पष्ट नामोल्लेख नही है। हाँ, वैनतेय गरुड तथा शाति, पुष्टि, वाग्देवी और शक्ति रूप चारो देवियो एवं श्री भूमिदेवी युक्त देव की प्रतिष्ठा–पूजा का उल्लेख अवश्य है। अपने आयुधो सहित केशव की तथा वराह मीन (मत्स्य) अवतारो की पूजा करने एव 'विशेष पूजा सयुक्त विष्णोराराधन परम्' कह कर विष्ण का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। अत प्रद्युम्न को विशेष रूप से उद्दिष्ट कर उसके देवता–रूप अथवा उसका अर्चना सम्वन्धी विवरण इसमे अनुपलब्ध है और वेदी–प्रतिष्ठा, घट-स्थापन स्नान–विधि तथा भगवान के यात्रा, दोला और वसतोत्सव के कर्मकाण्डीय वर्णनो से परिपूर्ण यह एक सामान्य ग्रथ है फिर भी इससे प्रद्युम्न के चतुर्व्यूह रूप मे उपास्यता के महत्त्व और उनके वैष्णव--क्रिया के अधिकारी देवता होने की ख्याति का परिचय अवश्य मिलता है।

फिर भी, प्रद्युम्न--सहिता से प्रद्युम्न के देवता--रूप सम्वन्धी उत्कण्ठा को जो अतृप्तिजन्य निराशा होती है उसकी क्षतिपूर्ति अन्य सहिताओ से हो जाती है क्योंकि उनमे देवता--रूप मे प्रद्युम्न के स्वरूप, पद--स्थापन, प्रतिष्ठा--विधि, आह्वान–मत्रो, मूर्ति--विधान, ध्यान, मुद्रा इत्यादि विषयो से सम्वन्धित प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है जिसका सक्षिप्त निदर्शन ही यहाँ सभव है।

18. पांचरात्र सहिता-साहित्य में प्रद्युम्न का देवता-रूप

जयाख्यसहिता मे प्रद्युम्न का ध्यान-रूप स्पष्ट करते हुए उन्हे 'पीतचपकवर्णाभ' तथा 'कमलायतलोचन' रूप मे ध्यातव्य वताया गया है तथा उल्लेख है कि भुजा, आभरण और लाछन आदि सव वासुदेव के समान ही है।[163]

जयाख्यसहिता मे प्रद्युम्न-व्यूह की महिषी 'जया' को वताया गया है तथा उससे सम्वन्धित मत्र देते हुए[164] जयामत्र से उपलभ्य सामर्थ्य का भी वर्णन किया गया है।[165] यही नही, उसमे प्रद्युम्न-व्यूह की महिषी जया के अ ग-मत्र, मत्र-साधन-प्रकार, मडल-विधान इत्यादि का पूर्ण विवरण देते हुए जया की इन सखियो—जयती, विजया, अपराजिता तथा सिद्धि और चार अनुचरो प्रतापी, जयभद्र, महावल और उत्साह के भी मत्र दिये गये है[166] और जया की इन सखियो और अनुचरो के ध्यान की विधि भी निर्देशित की गयी है। इसके अतिरिक्त जया–मुद्रा का भी एक मुद्रावन्ध है[167] तथा महाजया–मुद्रा का भी विधान है।[168]

प्रेत-बाधा की शांति के लिए पितृ-श्राद्ध करने की व्यवस्था देती हुई जयाख्य संहिता प्रद्युम्न को पिता-संज्ञक, संकर्षण को पितामह संज्ञक तथा वासुदेव को प्रपितामह संज्ञक बताते हुए तत्तद् पितृजनो के लिए तत्तद् देवता-मंत्रो का विधान करती है।[169] इसी प्रकार, वृद्ध गुरुजनो या इष्ट के प्रति किये गये अपचार या उपहास के प्रायश्चित्त का विधान बताते हुए अश्लील-भाषण या गुरु-उपहास के दोष निवारणार्थ 108 बार प्रद्युम्न-मंत्र के जाप का आदेश भी देती है।[170]

जयाख्यसंहितानुसार प्रद्युम्न का बीज-मंत्र "ओं पीं ओं" है।[171] नामध्येयाख्य संस्कार से अन्न-भक्षण का प्रायश्चित्त करने के लिए इस प्रद्युम्न बीज-मंत्र का दो-सौ बार जाप करने का विधान है।[172]

प्रद्युम्न-मुद्रा के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह अंगुष्ठ और अनामिका के योग से निर्मित होती है।[173]

इस संहिता मे प्रद्युम्न मंत्र के साधन की विधि बताते हुए कहा गया है कि प्रद्युम्न मंत्र से कमलपत्र मे पद्ममंडल मे स्थित रजत और स्वर्णिम कांति वाले कदम्ब पुष्पो की आभा वाले अर्थात् पीतवर्ण मंत्रविग्रहरूप भगवान प्रद्युम्न का आह्वान करना चाहिए। उनकी पीले पुष्पो से पूजा करनी चाहिए। तिलो से आहुति देने, पूर्णाहुति के पश्चात् कदली-कानन मे जाकर प्रद्युम्न का जाप करने तथा तुषरहित तिलो और सुगन्धित अन्न (शालि) से एक लाख बार होम करने और फिर पय और गव्य से अयुत संख्या मे होम करने का विधान भी वहाँ निर्धारित है। संहिताकार का कहना है कि इस प्रकार निर्धारित विधि से ध्यान, जप और यज्ञ करने पर साधक को सप्त लोको मे गति तथा अन्यान्य सिद्धियो की उपलब्धि होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।[174]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रद्युम्न के देवता-रूप का कोई ऐसा पक्ष शेष नही रहा है जो जयाख्य संहिता मे निरूपित न हुआ हो। परवर्ती संहिताओ मे यह देवता-रूप अधिकाधिक समृद्ध ही होता गया है। बृहद्संहिता मे भी पितृ-तर्पण-विधान निरूपित करते हुए क्रमशः देवताओ, मनुष्यो तथा पितरो का तर्पण करने और पिता, पितामह, तथा प्रपितामह का तर्पण क्रमश प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव स्वरूप मे तथा माता, पितामही तथा प्रपितामही का तर्पण क्रमश रति, वाक्, और रुक्मिणी के रूप मे प्रत्येक को तीन-तीन अंजलि जल देते हुए करने की विधि बतायी गयी है।[175] तथा यह भी कहा गया है कि "प्रद्युम्नादिधियापुत्रस्त्वनिरुद्ध स्वयं यजेत्"[176] इससे स्पष्ट है कि वृहद्ब्रह्म-संहिताकार रति को ही प्रद्युम्न-पत्नी के रूप मे स्थान देता है।

इसके अतिरिक्त वृहद्ब्रह्मसंहिता मे अनेक नवीन कल्पनाएँ भी है। उसमे गौलोक, वैकुण्ठ, सत्यलोक आदि लोको का वर्णन करते हुए इन लोको के अधिष्ठाता देवताओ का स्वरूप निरूपित करते हुए कहा गया है कि संकर्षण-मंडल से ठीक नीचे ही प्रद्युम्न-मण्डल है। उसमे भगवान प्रद्युम्न अपनी भार्या रति के साथ स्वर्णमय

पीठ पर विराजमान है। उनका सौदर्य जगन्मोहन है, वे चिरकिशोर हैं और उनके नेत्र अरुण है। वे दिव्य अलकारो से युक्त है तथा तीनो लोक उनके वशीकृत है।[177]

भाद्रपद मास वैष्णवो के लिए विशेष पूजा-मास है, इसलिए वृहद्संहिताकार लिखता है कि शुक्लाष्टमी से लगा कर कृष्णजन्माष्टमी तक प्रतिदिन केशव और उनकी प्रिया श्रीदेवी से प्रारंभ करते हुए केशवादि द्वादश उपव्यूहो तथा वासुदेवादि चतुर्व्यूहो—इन सोलह देवताओं का अपनी-अपनी पत्नियो सहित घटस्थापनापूर्वक, वैष्णव-दम्पत्ति को पूजन करना चाहिए। इस प्रकार गणना करने से, 14 वें दिन अर्थात् भाद्रपद कृष्णाषष्टी को प्रद्युम्न और रति की पूजा की विशेष दिवस है।[178]

इसी सहिता में एक स्थान पर कहा गया है कि अनिरुद्ध का तो आत्मवत् और अभिन्न मानकर चिंतन करना चाहिए और शेष पुरुषत्रय (प्रद्युम्न, सकर्षण और वासुदेव) का चिंतन मुक्ति का सेतु होने से मुक्ति-काम्ना से करना चाहिए।[179] जो कोई भक्तजन प्रेमातिरेकपूर्वक प्रद्युम्नादि का स्मरण कर वासुदेव का ध्यान करता है वह फिर जन्म ग्रहण नही करता।[180]

देह-शुद्धि का विधान करते हुए वृहत्ब्रह्म सहिताकार कहता है कि वाराह तनु सभूत पवित्र कुश और पचगव्य से 'विष्णु, वासुदेव, अच्युत, अनत, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कृष्ण. .'आदि नामो का उच्चारण करते हुए देह-शुद्ध, की जानी चाहिए।[181] वृहद् ब्रह्मसहिताकार ने चतुर्व्यूहो तथा बारह विभवो (केशव, माधव, त्रिविक्रम नारायण आदि) भगवान के इन 16 रूपो की सगति नादात्मक सृष्टि से वैठाते हुए कहा है कि नादात्मक सृष्टि के दो बीज रूप है—(1) प्रणव और (2) श्री। इनमे 'प्रणव' पुरुष बीज है और 'श्री' स्त्री-बीज। इनसे ही स्वर, व्यजन तथा अन्तस्थ--इस त्रिविध नाद-सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। चतुर्व्यूह (वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) और केशवादि 12 विभव—ये 16 स्वरमूर्तियाँ (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अ अः) है।[182]

वृहद्ब्रह्मसहिता मे प्रद्युम्न-माहात्म्य चरम उत्कर्ष पर है। एक स्थान पर सहिताकार कहते है कि यम, शिव, कुमार कार्तिकेय और पाचजन्य ये प्रद्युम्न के अंश से ही समुद्भूत होते हैं।[183]

पारमेश्वरसहिता पाचरात्र-सहिता-त्रय (पौष्कर, सात्त्वत तथा जयाख्य) की पौष्कर सहिता का ही विस्तार है। इसका विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि श्रीरंगम स्थित भगवान रगनाथ मे पूजार्चनादि इसी सहिता मे निर्धारित विधि के अनुसार होती है। अतः यह संहिता 'मुनिभाषित' होते हुए भी इसका महत्त्व 'दिव्य' संहिताओ से कम नही है। यह सहिता दो खण्डो—ज्ञान काण्ड तथा क्रियाकाण्ड-मे विभाजित है किन्तु ज्ञान-काण्ड के एक अध्याय को छोड कर शेष सभी अनुपलब्ध है। अत. इसमे क्रिया-काण्ड का ही विस्तार है। इसमे मदिर, विमान, प्रतिमा इत्यादि

सहस्रकलशस्नपनम्

न्यासः	–द्रव्यनाम–	–देवता–	उद्धार.	मत्र
6	पुष्परागस्फटिके	प्रद्यु्म्न	101	बहि (बह्यकलश मे) 'त यज्ञ . ....मत्र से तथा मध्ये (मध्यकलश मे) 'यत्पुरुप' मत्र से स्नान कराना चाहिए।
7	ब्रह्मरागमेचके	प्रद्युम्नः	102	बहि· (बाह्यकलश मे)– 'ब्राह्मणोस्य....' मत्र से तथा मध्यकलश मे 'चन्द्रमा. . ' मत्र से स्नान–विधि निर्दिष्ट है।

पारमेश्वरसहिता मे चतुर्व्यूह-प्रतिष्ठा बतायी गयी है जिसके अनुसार चतुर्व्यूह प्रतिष्ठा के लिए मध्यभाग मे वासुदेव की, दक्षिण भाग मे सकर्षण की, पश्चिम भाग मे प्रद्यु्म्न की तथा उत्तर भाग मे अनिरुद्ध की मूर्ति स्थापित की जानी चाहिए।[186]

'महासनत्कुमार सहिता' के साक्ष्य के आधार पर डॉ० श्रेडर का कथन है कि वासुदेव अपने मन से श्वेतवर्णा देवी शाति और उसके साथ सकर्षण अथवा 'शिव' को उत्पन्न करते है। फिर शिव या सकर्षण के वामाग से रक्तावर्णा देवी 'श्री' का जन्म होता है जिसके पुत्र प्रद्यु्म्न है जिन्हे 'ब्रह्म' भी कहा जाता है। प्रद्यु्म्न ही पीतवर्णा सरस्वती को जन्म देते है। साथ ही अनिरुद्ध या 'पुरुषोत्तम' को भी जिसकी शक्ति कृष्णवर्णा 'रति' है जो त्रिगुण-माया--कोश है। ये सभी देवयुग्म इस ब्रह्माण्ड से परे है अत इन्हे सासारिक देवता 'शिव' इत्यादि से पृथक् समझना चाहिए। ये व्यूह त्रिविध कार्य करते है—(1) ससार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय (2) प्राणियो की रक्षा और (3) मुमुक्षु भक्तो की सहायता। सकर्षण का कार्य आत्माओ का अधीक्षण और प्रकृति से उन्हे मुक्त करना है। प्रद्यु्म्न सब प्राणियो के 'मनस्'--तत्त्व के अधिष्ठाता है तथा धार्मिक विधि-विधान ('क्रिया') के नियामक निदेशक भी वे ही है। समस्त मानव प्राणियो को विशेषत भगवद्भक्तो को उत्पन्न करते है। भगवान का अनिरुद्ध व्यूह जगत की रक्षा और जिज्ञासुओ को ज्ञान देने का कार्य करता है। अनिरुद्ध ही इस गुण-दोष मिश्रित सृष्टि के लिए भी उत्तरदायी है—'मिश्र-वर्ग सृष्टि च करोति।[187] इस विवेचन से स्पष्ट है कि महासनत्कुमारसहिता मे व्यूह-सृष्टि क्रमश सरणिवार है अर्थात् वासुदेव से सकर्षण, सकर्षण से प्रद्यु्म्न तथा प्रद्यु्म्न से अनिरुद्ध न कि प्रत्येक व्यूह भगवान वासुदेव मे सीधा व्युत्पन्न होता है। दूसरे, सकर्षण को 'शिव' रूप तथा प्रद्यु्म्न को ब्रह्मरूप बताना किन्तु साथ ही शिव ब्रह्मादि को

खद्योत-प्रभाम्वचित रक्तवर्ण कौशेय वस्त्र ही उनका परिधान है। उनकी ध्वजा मकर चिन्हाङ्कित है। सौम्यकात वपुधारी चतुर्बाहुरूप वे साक्षात तृतीय परमेश्वर ही है। उनके पिछले बाएँ हाथ मे धनुष तथा दाहिने हाथ मे पञ्चबाण है।[190] प्रद्युम्न के जगत्सृष्टिकर्ता तथा पचशरधारी मकरध्वज रूप से कामदेव के अवतार होने की कल्पना का स्पष्ट प्रभाव यहाँ है।

लक्ष्मीतन्त्रोक्त व्यूह-कल्पना को यों प्रस्तुत किया जा सकता है :—

देवता	वर्ण-आवरण	अधिष्ठित तत्त्व	गुण	महिषी	ध्वजा-चिन्ह	कार्य
(1) संकर्षण	सिंदूर शिखराकार	जीव	ज्ञान+बल	कीर्ति	ताल-वृक्ष	जगत्संहारक शास्त्रप्रवर्तक
(2) प्रद्युम्न	रक्त वर्ण कौशेय वस्त्रधारी	मन	ऐश्वर्य+वीर्य	जया	मकर	जगत्सृष्टि, धर्म-प्रवर्तन
(3) अनिरुद्ध	पीताम्बरवेष्टित कृष्ण वर्ण	अहङ्कार	शक्ति+तेज	माया	मृग	स्थिति (पालन) कर्ता धर्मफल-प्रदाता

ध्यान-विधि का निरूपण करते हुए लक्ष्मीतन्त्र मे लिखा है कि प्रद्युम्न का रक्तवर्ण और रक्तवस्त्रावृत वरद अभय हस्तमुद्रा मे ध्यान करना चाहिए।[192] चतुर्व्यूह

पाचरात्र सहिताग्रो के अतिरिक्त परवर्ती उपनिपदों तक भी प्रद्युम्न के देवता--रूप सम्वन्धी परिकल्पनाग्रो का यह क्रम अव्याहत-रूप से गतिमान रहा। अनेक उपनिषदो मे उनके मत्र और ध्यान--विधि सम्वन्धी उल्लेख प्राप्त हैं। त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् मे माया--वीज, मन्मथ--वीज आदि अनेक प्रकार के वीज मत्र देते हुए 'प्रणव सपुटित अग्नि--वीजयुक्त वृत्त' के अन्तर्गत "ॐ सकर्पणाय नम ॐ वासुदेवाय नमः ॐ अनिरुद्धाय नम" इस क्रम से चतुर्व्यूह को नमन किया गया है।[200] शुकरहस्योपनिपद् मे विभिन्न मुद्राग्रो से विभिन्न व्यूहो का ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

19. परवर्ती उपनिषदो में प्रद्युम्न का देवता--रूप

"वासुदेवाय अगुष्ठाभ्यां नम। सकर्पणाय तर्जनीभ्यां स्वाहा। प्रद्युम्नाय मध्यमाभ्या वपट्। अनिरुद्धाय अनामिकाभ्या हुम्। वासुदेवाय कनिष्ठिकाभ्या वौपट्। वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धेभ्यः करतलकरपृष्ठाभ्या फट्। एव हृदयादिन्यास। भूर्भुव सुवरोमिति दिग्वन्ध॥ ध्यानम्॥"[201]

गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् मे गोपालकृष्ण को ओकार रूप ब्रह्म कहा गया है। सकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध सहित चतुर्व्यूहधारी वासुदेव ही ओकार रूप परब्रह्म हैं। लक्ष्मीतन्त्र से इस कल्पना मे साम्य है।[202] एक ही अद्वय ब्रह्म माया से चतुष्टय रूप हो जाता है। रोहिणी--पुत्र संकर्षण ही विश्वरूप अकार है, तैजस रूप प्रद्युम्न उकार प्रज्ञारूप अनिरुद्ध मकार हैं। श्रीकृष्ण जिनमे सपूर्ण विश्व स्थित है, अर्धमात्रात्मक है। रुक्मिणी जगत की निर्मात्री कृष्णात्मिका मूलप्रकृति हैं। वेद रूप गोपियो से सभूत ज्ञानसगत श्रीकृष्ण है जिन्हे प्रणव रूप होने के कारण ब्रह्मवादी प्रकृति रूप भी कहते है। इस प्रकार गोपाल विश्वव्यापी ॐकार रूप ही है।[203]

यहाँ प्रद्युम्न को उकार रूप तथा विश्वतैजस तथा अनिरुद्ध को प्रज्ञात्मक (ज्ञान गुण के अधिष्ठाता) कहा गया है जब कि अहिर्बुध्न्यसहिता मे प्रद्युम्न को ऐश्वर्य और वीर्य गुणो का धारक कहा गया है और प्रज्ञा (ज्ञान गुण) का सम्बन्ध सकर्पण से है।[204]

इस समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैष्णव--सहिता--साहित्य मे प्रद्युम्न के देवता--रूप का असाधारण रूप से विकास हुआ है। इसके अन्तर्गत उनके व्यूह--रूप, वर्णाभरण, ध्वजा, लाछन, महिपी--अनुचरादि परिकरो का स्वरूप और ध्यान का निरूपण ही नही हुआ प्रत्युत् देवता--रूप मे प्रद्युम्न का माहात्म्य उनके जप और ध्यान की विधि, उनका सिद्धिप्रदाना रूप उनके वीजमत्र, मुद्रा, उनका जगत--कर्तृत्व आदि सभी पक्षो का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। सारांश, देवता रूप मे कोई भी विषय अस्पष्ट नही रह गया है।

प्रद्युम्न के चतुर्दिक यह जो देवत्व का स्वरूप अभिमण्डित हुआ उसका मुख्य आधार चतुर्व्यूहों के एक व्यूह रूप मे उनकी मान्यता ही है। उनके व्यूह-देवता होने की कल्पना ही वह मेरुदण्ड है जिसको आधार बनाकर यह समस्त ढांचा खडा किया गया है। अत व्यूह-देवता रूप मे उनके क्रमिक विकास को किंचित और भी स्पष्टता से रेखांकित कर लेना उपयोगी होगा।

20. चतुर्व्यूह कल्पना का विकास-क्रम और प्रद्युम्न

जैसा कि कहा जा चुका है, व्यूह-कल्पना का प्रथम निदर्शन महाभारत के नारायणीय (शांति पर्व) मे प्राप्त होता है जिसका प्रारम्भिक रूप हमने पिछले पृष्ठो मे देखा। किन्तु यह मात्र प्रारम्भिक अर्धस्फुट रूप ही था। इसका विस्तृत पल्लवन पाचरात्र सहिताओ मे तथा इतर वैष्णव ग्रथो मे हुआ। नारायणीय पर्व का माया, व्यूह और प्रादुर्भाव का त्रिक्-सिद्धान्त ही इस परवर्ती साहित्य मे विस्तृत और विकसित होकर भगवान के (1) पर (2) व्यूह (3) विभव (4) अतर्यामी और (5) अर्चावतार—इस पचविध सिद्धान्त रूप मे सुप्रतिष्ठ हो गया मानो तुलसी के त्रिदल ही पचामृत मे घुलमिल गये हो। इस क्रमिक विकास के साथ-साथ ही प्रद्युम्न का महत्त्व भी बढता गया। वे व्यूह रूप के अतिरिक्त अर्चावतार रूप मे भी आदृत हुए और मूर्तिरूप मे उनकी पूजा का विधान ही नही हुआ प्रत्युत वे वैष्णव मदिर-मूर्ति-निर्माण तथा उपासना विधि के उपदेष्टा अथवा दूसरे शब्दो मे, 'क्रिया' के अधिकारी देवता--पद पर भी प्रतिष्ठित हो गये।

व्यूह-रूप मे परम भागवत (वासुदेव) के आविर्भाव की पद्धति और स्वरूप सहिता--साहित्य मे नारायणीय पर्व की अपेक्षा कुछ पृथकता लिये हुए है। अहिर्बुध्न्य सहिता के अनुसार सृष्टि दो प्रकार की कही गयी है—(1) शुद्ध सृष्टि और (2) शुद्धेतर सृष्टि। जयाख्यसहिता मे वर्णित तीन प्रकार की सृष्टि—शुद्ध सर्ग, प्राधानिक सर्ग तथा ब्रह्मसर्ग का अन्तर्भाव उक्त त्रिविध सृष्टि के अन्तर्गत ही हो जाता है। निर्गुण ब्रह्म मे स्वातत्र्य शक्ति के उन्मेष से निस्तरग सिंधु मे बुद्बुद की भांति षड्गुणो का आविर्भाव ही गुणोन्मेष अथवा शुद्ध सृष्टि, कहा जाता है। प्राकृत गुणो से रहित होने के कारण निर्गुण नारायण ही अलौकिक दिव्य षड्गुण-सपन्न होने से सगुण भी है। इस अलौकिकता के कारण ही उनमे समस्त विरोधो का समाहार होकर वे एक ही आधार मे सगुण-निर्गुण की विषम स्थिति के विरोधाभास दोष से मुक्त है। जिन गुणो से भगवान का षाड्गुण्य-विग्रह निष्पन्न होता है वे जगत-व्यापार की प्रवृत्ति के लिए कल्पित छ गुण ये है—(1) ज्ञान-नित्यस्वात्मसबोधी चैतन्य ही 'ज्ञान' है जो ब्रह्म का रूप भी है और गुण भी (2) शक्ति-जगत का उपादान कारणत्व ही 'शक्ति' है। (3) ऐश्वर्य-स्वातन्त्र्य शक्ति से उन्मीलित जगत-

कर्तृत्व ही 'ऐश्वर्य' है। (4) वल—जगत-व्यापार मे श्रम का अभाव ही 'वल' है। (5) उपादान कारण रूप मे भी भगवान का अविकारी रहना ही 'वीर्य' है तथा (6) जगत की सृष्टि मे परब्रह्म का सहकारी निरपेक्ष स्वातन्त्र्य ही उनका 'तेज' गुण है।[205] जब भगवान जगत-व्यापार के लिए व्यूह-रूप मे आविर्भूत होते है तो उन व्यूहो मे इन्ही षड्गुणो के मात्रा-भेद से ही उनकी सत्ता और कार्य की पृथक्ता व्युत्पन्न होती है। यो तो प्रत्येक व्यूह मे छहो गुणो का अधिष्ठान है फिर भी प्रत्येक व्यूह में किन्ही दो गुणो का प्राधान्य विशेषतया कल्पित किया गया है। अहिर्बुध्न्य सहितानुसार इन व्यूहो के गुणानुपात और कार्य-भेद को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है[206]

व्यूह	गुण + प्राधान्य,	तत्वरूप + शक्ति	कार्य
1. (अग्रज) सकर्षण (वलराम)	ज्ञान + वल	शिव + शान्ति	जगत की सृष्टि तथा ऐकान्तिक पाचरात्र मार्ग का अपदेश[207]
2 (पुत्र) प्रद्युम्न	ऐश्वर्य + वीर्य	ब्रह्मा + सरस्वती	ऐकान्तिक मार्ग के नुसार 'क्रिया' की शिक्षा देना[208]
3 (पौत्र) अनिरुद्ध	शक्ति + तेज	पुरुषोतम + रति	क्रिया के फल अर्थात् मोक्ष के रहस्य की शिक्षा देना[209]

इस प्रकार व्यूह-परम्परा में प्रद्युम्न के ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणो का आधान बताया गया है जो क्रमश· जगत-कर्तृत्व और अविकारी उपादानत्व को सूचित करता है। प्रद्युम्न के मनस् तत्त्व के अधिष्ठाता होने तथा 'मनसोरेत' काम के प्रतीक देवता होने के साथ ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणो की सुसगति सम्यक्रूपेण सिद्ध हो जाती है जहाँ तत्त्व रूप मे प्रद्युम्न मनस्-स्थानीय है तथा ऐश्वर्य और वीर्य गुणो से सम्पन्न हैं· वहाँ वे अनुष्ठान या उपासना-विधि के क्षेत्र मे 'क्रिया' के उपदेष्टा है। वैष्णव उपासना-पद्धति के प्रमुख विषयो मे ज्ञान, योग, चर्या आदि के साथ ही 'क्रिया' भी है जो सहिता-साहित्य के मुख्य प्रतिपाद्य विषयो मे से एक है तथा कलेवर की दृष्टि से सहिता वाङ्मय का बहुलाश क्रियाधिकार से ही आपूर्ण है। 'क्रिया' एक शास्त्रीय शब्द है जिसका सम्बन्ध वैष्णव मदिर-निर्माण, मूर्ति-स्थापन, अभिषेक आदि से है। प्रद्युम्न इस समस्त आनुष्ठानिक क्षेत्र के भी अधिष्ठाता है। इस प्रकार वैष्णव मार्ग के तात्त्विक अथवा वैचारिक तथा तान्त्रिक अथवा आचारिक—दोनो ही क्षेत्रो मे प्रद्युम्न की महत्ता असदिग्ध है। सहिता-साहित्य के विकास और विस्तार के साथ-साथ प्रद्युम्न इत्यादि व्यूह रूपो के कार्य-कलाप और माहात्म्य सम्बन्धी परिकल्पनाओ का भी विकास और प्रसार होता गया।

अहिर्बुध्न्य सहिता मे उल्लिखित व्यूहसिद्धान्त[210] नारायणीयपर्व[211] और लक्ष्मीतन्त्र[212] के व्यूह-सिद्धात से इस दृष्टि से भिन्न है कि अहिर्बुध्न्य सहिता के अनुसार तीनो व्यूहो की उत्पत्ति भगवान से ही होती है जबकि लक्ष्मीतन्त्र और नाराणीय पर्व के अनुसार वासुदेव से सकर्षण (जीव) की, सकर्षण से प्रद्युम्न (मन) की तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध (अहकार) की उत्पत्ति होती है।
षड्गुणो के त्रिधा द्वन्द्व युग्मो से आविर्भूत इन व्यूहो—सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के पृथक्-प्रथक् सृष्टि-प्रक्रिया विषयक क्रिया-कलाप और अपनी पृथक् शक्तियाँ है।

21. सृष्टि-कल्पना और प्रद्युम्न

अहिर्बुध्न्यसहिता की साक्षी के अनुसार सकर्षण के भीतर सारी सृष्टि की स्थिति है किन्तु वह अतीव सूक्ष्म अव्यक्तरूप मे 'तिलकालकवत' है। सकीर्षण ही अशेष भुवनधर है। समस्त शास्त्रो का उद्गम सकर्पण से है और प्रलयावस्था मे उसी मे उनका लोप हो जाता है।[213] प्रद्युम्न से मनस्, काल और प्रकृति का उद्‌भव है[214] प्रद्युम्न ही मनुष्यो को शास्त्रसम्मत मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते है[215] यहाँ प्रद्युम्न को 'वीर' भी कहा गया है। अनिरुद्ध को 'महाविष्णु' कहा जाता है। वे शक्ति और बल के अधिष्ठाता देवता है। उनके ही प्रयत्न से विश्व की सृष्टि, स्थिति और वृद्धि होती है।

अहिर्बुध्न्यसहिता के अनुसार शुद्धेतर सृष्टि (अशुद्ध सृष्टि) की भी पृथक् परिकल्पना है। यह शुद्धेतर सर्ग त्रिविध तत्त्वो से निर्मित है—पुरुष, गुण और काल। यहाँ 'पुरुष' शब्द का प्रयोग साख्य-दर्शन के पुरुप-प्रकृति सिद्धात वाले पुरुष से नितान्त भिन्न अर्थ मे है। 'पुरुष' का अर्थ यहाँ चातुर्वर्ण्य नरनारी युग्मो के समुच्चय का वाचक है—'सर्वात्मनासमष्टिर्याकोशोमघुकृताम् इव'।[216] चातुर्वर्ण्य के इन नर-नारी युग्मो की उत्पत्ति प्रद्युम्न के मुख, वक्ष, जघा और पाद से कही गयी है जो महाभारत मनुस्मृत्यादि ग्रथो मे वर्णित भगवान के मुख, बाहु, उदर और पाद से उद्भूत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति की कल्पना से मिलती-जुलती है।[217]

इसी क्रम मे, प्रद्युम्न के ही भाल, भ्रू और कर्णपुटो से 'काल' और 'गुण' की सूक्ष्म कारण-अवस्थाओ की भी उत्पत्ति स्वीकार की गयी है।[218] प्रद्युम्न से उद्‌भूत इन 'पुरुष', 'गुण' और 'काल' तत्त्वो की वृद्धि और विकास का कार्य अनिरुद्ध का है जो अपनी योगशक्ति से काल को दो रूपो 'काल' और 'नियति'—मे तथा मूल 'गुण' तत्त्व को—सत्त्व, रज और तमस—इन त्रिविध रूपो मे विकसित करता है। प्रद्युम्न से उद्भूत मूल 'गुण' अथवा 'प्रकृति' ही अनिरुद्ध के बल से गर्भित होकर क्रमश सत्त्वादि रूपो मे विकसित होती है। 'नियति' और 'काल' रूप मे व्यक्तमान शक्ति के अन्तस्थ 'पुरुप' के विकास का कार्य भी अनिरुद्ध ही करता है किन्तु वह प्रद्युम्न की प्रेरणा से ही ऐसा कर पाता है।[219] इस प्रकार, शुद्धेतर सर्ग के क्रम को यो रखा जा सकता है।[220]
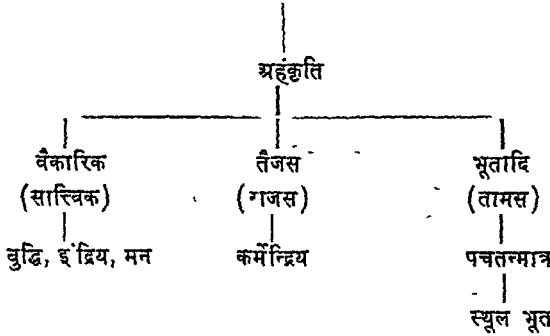
जयाख्यसहिता का क्रम इससे भिन्न है। साख्य से सादृश्य होते हुए भी इस क्रम मे भिन्नता है। साख्य प्रकृति को स्वत. कार्यशील मानता है जब कि पाचरात्र के अनुसार, प्रकृति. पुरुष की अध्यक्षता मे सृष्टि कार्य मे चुम्बक-लौह सम्बन्ध की भाँति आत्मच्छुरता रूप से प्रवृत्त होती है।

अहिर्बुध्न्यसहिता का यह सृष्टि–क्रम एक सर्वमान्य व्यापक आधार प्रस्तुत करता है, यद्यपि क्रम–विपर्यय अथवा कार्य–विभाजन मे कही सूक्ष्म विस्तारो मे अन्तर भी दीख पडता है। उदाहरणार्थ, अहिर्बुध्न्य के अनुसार प्रद्युम्न से ही चातुर्वर्ण्य सृष्टि उत्पन्न कही गयी है जब कि विश्वक्सेनसहिता के अनुसार अनिरुद्ध ने ब्रह्मा की सृष्टि की और ब्रह्मा ने ही चतुर्वर्ण के स्त्री–पुरुषो को रचा है।[221] इसी प्रकार चतुर्व्यूह मे षाड्गुण्य की स्थिति बताते हुए सकर्षण को 'ज्ञानाधिक' प्रद्युम्न को 'बलाधिक' तथा अनिरुद्ध को 'ऐश्वर्याधिक' कहा गया है।[222]

प्राद्युम्नाविर्भाव के सम्बन्ध मे अहिर्बुध्न्यसहिता मे कहा गया है कि अनन्त ही भगवान प्रद्युम्न है। वही पुरुषोत्तम है। 'शक्ति' समन्वित यह 'अच्युत' ही सोलहसौ वर्ष तक अव्याप्त रूप से स्थित रहता है। अ शाश से उदित भगवत्प्रभा रूप अपनी 'प्राद्युम्नी' शक्ति को उत्पन्न कर यह प्रादुर्भूत होता है।[223]

22. 'पुरुष' रूप प्रद्युम्न और अवान्तर व्यूह

इसी सहिता के 59 वे अध्याय मे ऋग्वेदोक्त पुरुषसूक्त की व्याख्या चतुर्व्यूह पर घटित की गयी है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यूह पुरुष है। पुरुष रूप मे 'प्रद्युम्न व्यूह' का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि संकर्षणादि व्यूह विष्णु की प्राकट्य इच्छा की ही आवृत्तिया है। इन व्यूह रूपो मे विष्णु, सकर्षण आदि व्यूह नामो से ही जाना जाता है। विष्णु ने इस विश्व को धारण कर रखा है। किन्तु प्रद्युम्न पुरुष–रूप मे जगत

का उपकारी होने के कारण माहात्म्य मे विष्णु से भी बढ कर है—"ज्यायानतोऽपि पुरुष. प्रद्युम्न उपकारतः" यही नही, वह ऋग्वेदोक्त 'पुरुष' से भी बढ कर है क्योकि पुरुषसूक्तोक्त अनेकरूपा प्रकृति और पुरुष से समन्वित पुरुष, मात्र सृष्टि-सृजन का कार्य ही करता है जब कि प्रद्युम्न 'पुरुष' रूप मे विश्व का उपकारकर्त्ता होने के कारण और भी महनीय है ।[224]

अहिर्बुध्न्यसहिता मे ही प्रत्येक व्यूह से तीन-तीन अन्य अवान्तर व्यूहो की कल्पना भी मिलती है । उस क्रम मे वासुदेव से केशव, माधव, नारायण, सकर्षण से गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन; प्रद्युम्न से त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर और अनिरुद्ध से हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर व्यूहो का उद्भव होता है ।[225] वस्तुत जैसा कि डॉ० श्रेडर ने प्रदर्शित किया है, इन तीन महाशक्तियो का ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करने के लिए ही कृष्ण के बारह नाम चुन कर उन्हे पृथक्-पृथक् बारह मासो का अधिदेवता कल्पित करते हुए सृष्टि के मुख्य प्रेरक ऋतु-चक्र से उनकी सगति बैठायी गयी है ।[226] पौष्कर सहिता मे, इन अवान्तर व्यूहो की उत्पत्ति और भी अधिक विस्तार से प्रदर्शित की गयी है तथा आयुधो के स्थान-भेद से एक ही व्यूह के तीनो अवान्तर व्यूहो की रचना का विधान निर्दिष्ट किया गया है । इसके अनुसार एक ही प्रद्युम्नव्यूह के सामने के बाएँ हाथ मे चक्र और दाएँ हाथ मे गदा तथा पीछे के बाएँ हाथ मे शख और दाएँ मे पद्म होने से वह त्रिविक्रम हो जाता है तो अगले बाएँ हाथ मे गदा और दाहिने मे चक्र तथा पिछले बाएँ हाथ मे पद्म और दाएँ हाथ मे शख होने से वही वामनरूप ग्रहण कर लेता है । इसी क्रम को बदल कर, अगले बाएँ हाथ मे गदा और दाएँ मे चक्र तथा पिछले बाएँ हाथ मे शख और दाएँ मे पद्म धारण करने से वही श्रीधर स्वरूप धारण कर लेता है ।[227] इस क्रम को यो व्यक्त किया जा सकता है —
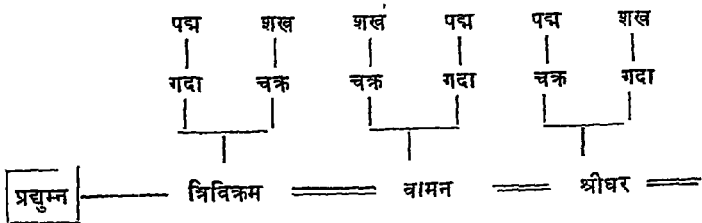
चतुर्व्यूह तथा उनके द्वादश अवान्तर व्यूहो को प्रत्येक मास का अधिदेवता स्वीकार करते हुए उनकी ऋतु-चक्र से सगति बैठाने के उपक्रम को अधोलिखित ऋतु-चक्र के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है । इस कल्पना की सगति द्वादश

आदित्य कल्पना से सुस्पष्ट है —
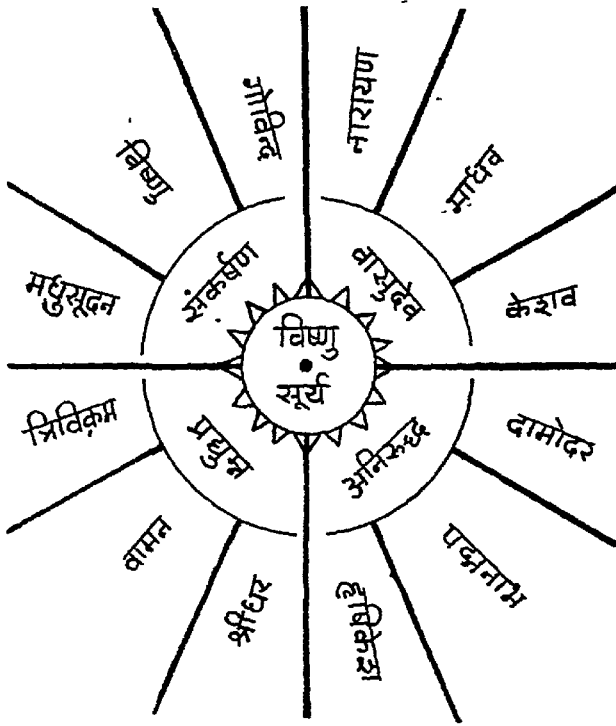
चतुर्व्यूह से ही अवतारो को भी सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति का विकास भी आगे चल कर वैष्णव संहिता-साहित्य मे हुआ। बृहद्ब्रह्मसंहिता मे चतुर्व्यूह से ही मत्स्यादि अवतारो की उत्पत्ति बतायी गयी है। इस क्रम मे वासुदेव से मत्स्य, कूर्म और वराह, सकर्पण से नृसिह, वामन, परशुराम, अनिरुद्ध से कृष्ण और कल्कि तथा प्रद्युम्न से राघव (मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम) के अवतार होने की बात कही गयी है। इसी प्रकार सकर्पण से 'पुरुष' की प्रद्युम्न से 'सत्य' की तथा अनिरुद्ध से 'अच्युत' की उत्पत्ति भी प्रदर्शित की गयी है।[228] प्रद्युम्न से राघव और

'सत्य' के अवतारत्व की कल्पना असदिग्ध रूप से प्रद्युम्न की लोकप्रियता और उनके महत्त्व को व्यक्त करती है। इसी प्रकार-चतुर्व्यूह से ही पुरुष, सत्य, अच्युत आदि के उद्भव की योजना, नारायणीय सम्प्रदाय के भागवत सम्प्रदाय मे अन्तर्मुक्त हो जाने और नारायणीय सम्प्रदाय के दार्शनिक सूक्ष्म तत्त्वो, पुरुष, सत्य अच्युत के स्थान पर वासुदेव-परिवार के प्रतिष्ठित हो जाने की सूचना देती है। सभी सहिताओ मे यही क्रम नही है। अपनी-अपनी मनोवाञ्छा के अनुसार विभिन्न सहिताकारो ने मनमाने ढग से इन चतुर्व्यूहो को इस कल्पना मे पद-प्रतिष्ठित किया है। विश्वक्सेन सहिता के अनुसार प्रत्येक अवतार का आविर्भाव या तो सीधे ही अनिरुद्ध से हुआ है या किसी अवतार के माध्यम से किन्तु अनिरुद्ध ही सब अवतारो के मूल है। अनिरुद्ध से ब्रह्मा का और ब्रह्म से महेश्वर का उद्भव हुआ है। हयशीर्ष का आविर्भाव मत्स्य से हुआ है जो कृष्ण का ही एक रूप है। पद्मतत्र के अनुसार वासुदेव से मत्स्य, कूर्म और वराह का; सकर्षण से नृसिह, वामन, परशुराम और श्रीराम का; प्रद्युम्न से बलराम का और अनिरुद्ध से कृष्ण और कल्कि का आविर्भाव हुआ है। लक्ष्मीतत्र के अनुसार सारे विभवो का आगम अनिरुद्ध से है।[229]

इस प्रकार, अवतारवाद मे हमे मुक्त कल्पनाओ का स्वेच्छाचार दीख पडता है। कभी सकर्षण प्रमुखता प्राप्त करते दीखते है तो कभी प्रद्युम्न का गौरव बढता प्रतीत होता है। किसी ने प्रद्युम्न से सकर्षण और कृष्ण तक का उद्भव कल्पित किया है तो किसी ने अनिरुद्ध से सभी देवताओ का प्रादुर्भाव लिख दिया है। मनमानी कल्पनाएँ और उलट-पुलट इस सम्बन्ध मे की गयी है। इसका यही कारण हो सकता है कि सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध सूक्ष्म तत्त्व होने के कारण, शुद्धसर्ग के नियन्ता होते हुए भी दूसरी ओर शुद्धेतर सृष्टि अथवा भौतिक जगत के विधायक भी हैं अत सृष्टि-प्रक्रिया के मनमाने स्तर कल्पित किये गये और उन स्तरो मे इन सूक्ष्म तत्त्वो' को यथामति मनमानी भूमिकाएँ प्रदान की जाती रही—जब तक कि कालान्तर मे, जैसा कि देखते है, एक ही अवतार श्रीकृष्ण की सर्वोच्च देवता या परम भागवत के रूप मे प्रतिष्ठा नही हो गयी। जब कृष्ण, काव्य मे और लोकमानस मे, सर्वातिशायी रूप मे प्रतिष्ठित हो गये तो चितना के स्तर के इन अव्यक्त सूक्ष्म तत्त्वो की भी उनके परिजनो भ्राता, पुत्र और प्रपौत्र के रूप मे सम्यक् सुनियत पारिवारिक प्रतिष्ठा हो जाने से चितन क्षेत्र मे भी मनमानी ऊहापोह के लिए द्वार बन्द हो गया। फिर भी, दार्शनिक अनुचिन्तन के आधार पर इन व्यूहो के स्थान और कर्मगत भेद निरूपित किए जाने के यत्किंचित प्रयत्न वैष्णव दर्शन के विकास-क्रम मे सुदूर काल तक, चैतन्य के परवर्ती काल तक, होते ही रहे तथापि इन स्थिति-स्थापक प्रयत्नो के पीछे मनमानी कल्पना न होकर बौद्धिक आधार प्रदान किये जाने की प्रवृत्ति उन्मुख रही। स्वयं शकराचार्य जैसे तत्त्ववेत्ता और मनीषी ने इस सम्बन्ध मे अपनी धारणा व्यक्त की है जो नारायणीय कल्पनाओ के मेल मे है। शकराचार्य के अनुसार 'सकर्षण'

व्यक्ति मे स्थित आत्मतत्त्व (जीवात्मा) है, प्रद्युम्न 'मनस' है और अनिरुद्ध 'अहंकार'।[230] पाचरात्र सहिता साहित्य मे इस धारणा का अभाव है। हाँ विश्वक्सेन सहिता मे सकर्षण को आत्माओ का अधीक्षक और प्रद्युम्न को 'मनोमय' कहा गया है किन्तु अनिरुद्ध के विषय मे वहाँ कोई उल्लेख नही है। लक्ष्मीतंत्र मे कहा गया है कि सकर्षण, बुद्धि, मन और आत्मा के समान है[231] और वासुदेव लीलानिरत सृजनशक्ति है। विश्वक्सेन सहिता मे अनिरुद्ध को मिश्रवर्ग (शुद्धाशुद्ध सृष्टि यथा नियति) का स्रष्टा कहा गया है और सकर्षण के सम्बन्ध मे उल्लेख है कि वही जीव को प्रकृति से पृथक् करने का कार्य सम्पादित कर प्रद्युम्न रूप हो जाता है। किन्तु अहिर्बुध्न्यसहिता मे पुरुष-प्रकृति का अन्तर प्रद्युम्न-स्तर से प्रारभ होता है न कि संकर्षण स्तर से और अनिरुद्ध को वहाँ 'सत्त्व' और 'मनस' का अधिष्ठाता कहा गया है।[232]

व्यूहवाद की व्याख्या वेंकटनाथ ने भी अपने ढग से की है। लोकाचार्य निर्मित तत्त्वत्रय के भाष्य में वरवर ने भी व्यूह-सिद्धान्त की विवेचना की है। इसके अनुसार सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, वासुदेव के ही तीन रूप है जिनके द्वारा वे क्रमश जीव, मन और भौतिक जगत का नियंत्रण करते है। सृष्टि के प्रारभ में जीव को प्रकृति से पृथक् करने वाली शक्ति ईश्वर के सकर्षण रूप से सम्बद्ध है। जब यही शक्ति जीवो के मन पर अधिकार कर उन्हे पुण्य और मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर करती है तो ईश्वर का प्रद्युम्न रूप कही जाती है। अनिरुद्ध शक्ति ईश्वर का वह रूप है जिससे वे वाह्य जगत का सृजन और नियन्त्रण करते है और प्राणियो को सही ज्ञान की प्राप्ति भी इसी से होती है। ईश्वर और उसके ये व्यूह एकरूप हैं। ये पृथक् सत्ताएँ नही है वल्कि एक ही सत्ता के विविध रूप है। वासुदेव की शक्ति ही इन विविधताओ मे अभिव्यक्त होती है इसीलिए ये 'विभव' कहे जाते है।[233]

पुराणसहिता मे कहा गया है कि योगियो का आराध्य शुद्ध सत्त्व-प्रधान वासुदेव ही 'अहकार' के फलस्वरूप भू-भार धारण करने मे समर्थ संकर्षण रूप में सम्भूत होता है। फिर, सत्त्व मे किंचित रज अ श के मेल से वही अनिरुद्ध-संज्ञक 'मनस्' हो जाता है और सत्त्व से परिणत ज्ञान-वृत्ति मे वही प्रद्युम्न-सज्ञक 'बुद्धि' तत्त्व के रूप मे उद्भूत हो जाता है।[234] इस प्रकार इस अध्ययन से स्पष्ट है कि चतुर्व्यूह कल्पना की सगति साख्य दर्शन के मन, बुद्धि, चित्त तथा अहकार तत्त्वो की क्रमागत सरणि से वैठाने का प्रयास कालक्रम के साथ वढता ही गया है। यह क्रम एक निश्चित दार्शनिक स्थापना के आधार पर रूपगोस्वामी के सिद्धान्तो मे परिपूर्णता को प्राप्त होता दीखता है।

23. परवर्ती व्यूह-कल्पनाएँ

स्पष्ट है कि अवतार और चतुर्व्यूह सम्बन्धी कल्पनाएँ सहिताकाल के वाद पूर्णत उपरत नही हो गयी। उनका क्रम रूप गोस्वामी तक प्रवहमान रहा है। ब्रह्मसहिता के आधार पर रूपगोस्वामी ने अपने 'लघु-

भागवतामृत' मे कृष्ण को साक्षात् भगवान (स्वयरूप) मानते हुए उनके दो प्रकार के अवतार 'स्वविलास' और 'स्वाशावतार' बताये हैं। जो शक्ति और स्वरूप मे कृष्ण के ही सदृश है वे 'स्वविलास अवतार' कोटि मे परिगणित किये गये जैसे वासुदेव, और जो कलाओ और शक्तियो मे उनसे अल्पतर और न्यून हैं वे 'स्वाशावतार' स्वीकार किये गये जिनमे सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, मत्स्य, कूर्म आदि हैं। अवतारो को एक अन्य दृष्टि से भी अनेक रूपो मे वर्गीकृत किया गया है यथा पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार इत्यादि। इनमे प्रथम अवतार, रूपगोस्वामी के 'लघु भागवतामृत' के आधार पर 'पुरुष अवतार' है जो मूलतः निरुपाधि होते हुए भी सोपाधि (कण्डीशण्ड) सृष्टा का रूप धारण करता है। यह 'पुरुष' तीन रूपो मे व्यक्त होता है—(1) महत् का सृष्टा (महत सृष्ट्र)—यही 'कारणोदकशायी' सकर्षण है। (2) अण्डसस्थित पुरुष—यही गुणोदकशायी प्रद्युम्न है तथा (3) सर्वभूत स्थित पुरुष—यही क्षीरोदकशायी अनिरुद्ध है। यह व्यूह-सिद्धान्त, नारायणीय व्यूह सिद्धान्त का सशोधित और परिवर्द्धित रूप है।[235] इस प्रकार, रूपगोस्वामी ने इन चारो व्यूहो के प्रादुर्भाव और अधिष्ठान स्थान को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

(1) सकर्षण—अहकार के अधिष्ठाता
(2) वासुदेव—चित्त " "
(3) प्रद्युम्न—बुद्धि " "
(4) अनिरुद्ध—मनस् " "

जैसा कि हम देख चुके है, नारायणीय पर्व, महाभारत, मे प्रद्युम्न को मन का अधिष्ठाता बताया गया है तो अनिरुद्ध को अहकार का तथा प्रारम्भिक सहिताओ मे भी कही-कही इसी क्रम का निर्वाह है तथापि रूपगोस्वामी का कहना है कि यही उपरोक्त मत अधिकाश पाचरात्र सहिताओ मे मान्य है। हरि की चतुर्भुजाएँ इन्ही चार व्यूहो की सूचक है।[236] हमारी सम्मति मे नारायणीय व्यूहक्रम को रूपगोस्वामी तथा अन्य कई सहिताकारो द्वारा परिवर्तित करने के दो कारण हैं-एक तो साख्य दर्शन का प्रभाव जिसके फलस्वरूप मन, बुद्धि, चित्त और अहकार मे महत्त्व-सापेक्ष की दृष्टि से सगति बैठाने के लिए ही प्रद्युम्न को 'मन' के स्थान पर 'बुद्धि' का अधिष्ठाता कहा गया। 'चित्त' से भी पूर्व 'अहकार' की स्थिति प्रदर्शित करने के लिए तथा दूसरे, लौकिक दृष्टि से भी, कालक्रम के पूर्वापर सम्बन्ध की सिद्धि के लिए भी सकर्षण को वासुदेव से ऊपर स्थान दिया गया प्रतीत होता है। साथ ही, हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि सकर्षण का महत्त्व एक युग मे वासुदेव से कम नही था। इस प्रकार, चतुर्व्यूह मे पारस्परिक महत्त्व स्थापना के प्रयत्नो मे जो क्रम-विपर्यस्तता दृष्टिगत होती है उसके पीछे एक प्रमुख कारण साख्य दर्शन का प्रत्यक्ष या परोक्ष

प्रभाव है । यही कारण है कि अनिरुद्ध के 'अहकार' स्थानीय होने के फलस्वरूप ही उनसे कृष्ण तक का उद्भव प्रदर्शित किया गया तथा महत्त्व स्थापन की सापेक्ष क्रमिकता मे ऐसे ही अन्य दुर्बोध और असम्बद्ध प्रयत्न किये गये ।

श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्णावतार तथा कृष्ण-लीला के सम्बन्ध मे एक रोचक कल्पना और मिलती है । कहा गया है कि श्रीकृष्ण लीला शाश्वत है । यह लीला दैवी शक्ति की ही अभिव्यक्ति है और इसके दो रूप है—(1) प्राकृत तथा (2) अप्राकृत । प्राकृत लीला प्रपचगोचर विश्व मे दृष्यमान है । प्राकृत लीला मे ही श्रीकृष्ण मथुरा, द्वारका और वृन्दावन—इन तीनो स्थानो मे सक्रमण करते दीखते है । अप्राकृत लीला मे तो वृन्दावन ही उनका नित्य धाम है । यहाँ वे द्विभुज ही रहते हैं, अन्यत्र प्राय. चतुर्भुज रूप धारण कर लेते है । वृन्दावन मे वे 'कृष्ण' रूप मे रहते है, मथुरा मे वे ही 'वासुदेव' हो जाते है तथा द्वारका मे वे अपने 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' रूपो को व्यक्त करते है ।[237] इस कल्पना के पीछे यही कारण प्रतीत होता है कि कृष्ण ने गोपालकृष्ण रूप मे वृन्दावन को लीला—भूमि बनाया, वसुदेव-पुत्र (वासुदेव) रूप मे उनकी भूमिका मथुरा मे रही तथा द्वारिका मे कर्तृत्व और गौरव प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को प्राप्त हुआ । फलतः जिस व्यक्तित्व अथवा व्यक्तित्व-रूप का जिस स्थान से विशेष सम्बन्ध रहा उसी आधार से यह सयोजन कर दिया गया ।

चतुर्व्यूह का सम्बन्ध मानसी सृष्टि से प्रदर्शित करते हुए 'लक्ष्मीतन्त्र' मे कहा गया है कि राजसी महालक्ष्मी मे प्रद्युम्न अ श से ब्रह्मा और श्री की, तामसी महामाया मे सकर्षण अ श से रुद्र और त्रयी की तथा सात्त्विकी महाविद्या मे अनिरुद्ध अ श से विष्णु और गौरी की मानसी सृष्टि हुई ।[238]

24. व्यूह—रूपों का सापेक्ष महत्त्व

इस समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि चतुर्व्यूह कल्पना मे वासुदेव तथा उनके अन्य परिवारजनो के मध्य पारस्परिक महत्त्व निरूपण की तीन धाराएँ दीख पडती है— (1) एक धारा वह है जिसमे सकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध की 'परिजनत्रयी' को वासुदेव की ही अभिव्यक्ति और एकरूप कहा गया तथा महत्त्व की दृष्टि से उनमे समता और अनन्यता की भावना व्यक्त की गई । (2) दूसरी धारा के अन्तर्गत इस त्रयी के सदस्यो का महत्व वासुदेव से भी बढकर प्रतीत होता है यथा सकर्षण को 'अहकार' स्थानीय कहा गया जब कि वासुदेव को 'चित्त'—स्थानीय । इसी प्रकार अनिरुद्ध या प्रद्युम्न से ही स्वय वासुदेव का उद्भव बताया गया । (3) तीसरी धारा वह है जिसमे वासुदेव को परमभागवत या सर्वोच्च सत्ता स्वीकारते हुए तथा उनका महत्व अक्षुण्ण रखते हुए उन्ही से क्रमागत रूप से वासुदेव से सकर्षण सकर्षण से प्रद्युम्न तथा प्रद्युम्न से

अनिरुद्ध का उद्‌भव व्यक्त किया गया तथा उन्हे वासुदेव (कृष्ण) का स्वविलास अवतार न स्वीकार कर न्यूनतर या अल्पतर महत्त्व का स्वांशावतार माना गया। वासुदेव से इस परिजनत्रयी की उच्च, सम तथा अवच–इस त्रिविध स्तरीय सम्बन्ध कल्पनाओ के अतिरिक्त इस 'त्रयी' के सदस्यो के पारस्परिक महत्त्व और पद–स्थापना मे भी विपर्यस्तता और अपलाप दीख पडता है, यथा, कही पुरुष–प्रकृति का अन्तर प्रद्युम्न स्तर से माना गया तो कही अनिरुद्ध स्तर से, कही प्रद्युम्न से ब्रह्मा का उद्‌भव व्यक्त किया गया तो कही अनिरुद्ध से किन्तु इस समस्त प्रयत्न–शृंखला मे एक बात निर्विवाद है कि प्रद्युम्न कही भी उपेक्षित नही रहे है। उनका महत्त्व प्रत्येक प्रकार की परिकल्पना मे असदिग्ध रूप से स्वीकार किया जाता रहा है। यही कारण है कि, जैसा कि हम आगे देखेंगे, उन्हे पूर्ण देवतापद प्रदान करते हुए ध्वज, लाछन, महिषी, मन्त्र आदि सभी देवलक्षणो से अभिमण्डित किया गया है।

25. चतुर्व्यूह और चेतनावस्थाएँ

एक अन्य कल्पना के अनुसार चतुर्व्यूह की सगति चेतना–अवस्थाओ से भी स्थापित की गयी है। इस कल्पना के अनुसार अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सकर्षण और वासुदेव क्रमश जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओ के अधिष्ठाता हैं। और साधक इन व्यूह रूपो का ध्यान करता हुआ क्रमश इन्ही अवस्थाओ की अनुभूति प्राप्त करता है।[239]

इस उपर्युक्त क्रम मे, द्वितीय स्थान मे, स्वप्नस्थानाभिमानी प्रद्युम्न प्रधान है। यहाँ ये व्यूह देवता अस्पष्ट रूप से दीख पडने वाले मलिनप्राय आयुध, वाहन, महिषी इत्यादि से आवृत दिखाई देते है।[240] 'सात्वतसहिता' मे 'विशाख यूप' का वर्णन है जिसे 'ब्रह्मयूप' भी कहा गया है।[241] इसी विशाखयूप के मूल से लगाकर ऊपर शीर्षस्थान तक क्रमश जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय नामक चार आश्रय स्थल है। ये वस्तुत चेतना के ही चार स्तर अथवा अवस्थाएँ है जिन्हे साधक क्रमश. उत्तीर्ण करता है। यह विशाख-यूप शुद्ध सर्ग के क्रम मे है। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित श्री शक्ति से ही वासुदेवादि चतुर्व्यूहो का आविर्भाव हुआ। ये व्यूह जगत–व्यापार मे प्रवृत्त उपासको और योगिजनो के ध्यान–सौकर्य निमित्त चतुर्व्यूह रूप मे प्रकाशित होते है यथा —

(वासुदेव)	तुरीयस्थानम्	व्यूहचतुष्क रेखारूपेणापि न दृश्यम्
(सकर्षण)	सुषुप्तिस्थानम्	,, ,, रेखारूपेण दृश्यम्
(प्रद्युम्न)	स्वप्नस्थानम्	,, ,, अत्यन्तमलिनरूपम्
(अनिरुद्ध)	जाग्रत्स्थानम्	,, ,, स्पष्टरूपम्

इस प्रकार का यह ध्वजस्तभाकार विशाखयूप है। पूजास्तभ होने से ही इसे 'यूप' कहा गया है। इसीसे द्वादश व्यूहान्तरो केशवनारायणादि का तथा पद्मनाभ आदि अडतीस विभव देवताओ का आविर्भाव हुआ है।[242]

हमने देखा कि किस प्रकार ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त तथा शतपथ -ब्राह्मणोक्त पुरुषनारायण सत्र की कल्पना ने सर्वशक्तिमान परमेश्वरको पुरुष रूप मे प्रस्तुत कर अवतार वाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। प्रारभ मे विष्णु को ही पुरुषरूप मे कल्पित किया गया किन्तु आगे चल कर

26. 'पुरुष'—कल्पना की अर्थमत्ता

वासुदेव कृष्ण को यह गौरवशाली पद साग्रह दिया जाने लगा तथा उन्हे सर्वोच्च पुरुष कहा गया। स्कान्द उपनिषद् मे कहा गया है कि जिस प्रकार 'भास्कर' शब्द सूर्य पर ही लगता है तथा 'बृहद्भानु' शब्द अग्नि पर ही सार्थक होता है तथा जिस प्रकार 'सदागति' शब्द वायु पर ही सगत होता है उसी प्रकार यह 'पुरुष' शब्द वासुदेव पर ही सम्यक् रूप से घटित होता है।[243] इसी प्रकार नारसिंहोपनिषद् का कथन है कि ये जो वासुदेव है, बुद्धिमान उन्हे ही 'पुरुष' कहते है। अपनी स्वतत्रता मे वैभव और प्रकृति के स्पर्श से रहित होने के कारण, ये वही वासुदेव है जो साक्षात् 'पुरुष' कहलाते है। ब्रह्म द्वारा पुरस्सरित यह जगत् और अन्य सभी कुछ स्त्रीप्राय है।[244] 'पुरुष' शब्द के जितने भी व्युत्पत्तिगत अर्थ है वे सभी परमात्मा पर ही घटित हो सकते हैं :—

1 पुरि अग्रगमने+कुषन् = आगे बढने बढाने वाला
2 पुरि आप्यायने+कुषन् = तृप्ति अथवा आनन्द प्रदाता
3 पुरिदेहे शेरते लोका. यस्य = जिसके शरीर मे सर्वलोक स्थित हो
4 पुरिदेहे शय. = शरीर के अन्तस्थ रहने वाला

ध्यान देने की बात यह है कि जब सर्वशक्तिमान सत्ता की विराट् पुरुष के रूप मे कल्पना की गयी और अवतारवादी धारा के अन्तर्गत किसी मान्य लोक-पुरुष को 'विराट् पुरुष'—स्थानीय गौरव प्रदान किया गया तो इस दोहरे वैचारिक सक्रमण (ईश्वर से पुरुष रूप और पुरुष से ईश्वर रूप) की प्रक्रिया मे 'पुरुष' शब्द के ये चारो ही व्यौत्पत्तिक अर्थ, अवतारलीलाओ के अलौकिक अद्भुत् कृत्यो के प्रेरक और नियामक बने। इन्ही अर्थो ने अवतार द्वारा अपना विवर्द्धमान विराट् रूप प्रदर्शित करने, अपनी रूप-माधुरी से जनमन को आप्यायित करने, खेल ही खेल मे अपने मुख मे ब्रह्माण्ड का प्रदर्शन करने आदि अद्भुत अलौकिक लीलाओ के लिए कल्पना भूमि प्रस्तुत की।

यद्यपि, भगवद्गीता मे ही, भगवान के अवतार ग्रहण करने की स्पष्ट घोषणा है, तथापि वहाँ अवतार ग्रहण करने का उद्देश्य धर्मसस्थापन और दुष्टदलन है जबकि नारायणीय उपपर्व मे अवतार धारण करने का प्रयोजन भगवान की भक्तवत्सलता ही है। यही सूत्र भागवतपुराण आदि ग्रथो मे परिपुष्ट होता चला गया। भगवान, भक्तो की अभिलाषा पूर्ति के लिए ही स्वय अरूपी रहकर भी नाना रूपो को ग्रहण

27. विकासशील अवतार-कल्पना और प्रद्युम्न

किया करते हैं।[245] एक ही अभिन्न तत्त्व के नाना रूप धारण करने का रहस्य है। भगवान की अचिंत्य शक्ति। इसी के कारण वे एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होते हैं तथा एक ही समय मे द्वारका मे अपनी षोडशसहस्र प्रियाओ के महल मे पृथक् रूप से नियत होकर भी नारदजी को दृष्टिगोचर होते हैं।[246] इसीलिए अक्रूर जैसे भक्त श्रीकृष्ण को 'बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्'[247] कह कर स्तुति करते हैं तथा गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद् 'एकोऽपिसन् बहुधा यो विभाति' कहता है।[248] भगवान का यह रूप योगाशास्त्रोक्त निर्माण कार्य के मान्त्रिक या वैदव देह से पृथक् नित्य सिद्ध स्वरूप है जिसे वैष्णव शास्त्रो मे 'प्रकाश' की सज्ञा प्रदान की गयी है।[249]

महाभारत मे अवतार भावना पर्याप्त रूप से प्रस्फुटित और विकसित प्रतीत होती है तथापि उसमे सख्या की रूढि का आग्रह नही दीख पडता। भागवत्पुराण के अनुसार अवतारो की सख्या अनन्त है किन्तु बाईस अवतारो को वहाँ गिनाया गया है तथा केवल कृष्णावतार को ही पूर्ण अवतार स्वीकार किया गया है, विष्णु पुराण के अनुसार भगवान ने एक श्वेत और एक श्याम वर्ण केश चुनकर देवताओ से कहा—ये मेरे दो केश ही पृथ्वी पर जाकर उसका भार हरेंगे।[250] सहिताओ मे अवतार-सख्या प्राय उन्तालीस है। सहिताओ मे अवतार-भावना इतनी विकसित हुई कि चार व्यूह-अवतारो, उन्तालीस विभवो (मुख्य अवतारो) के अतिरिक्त गौण आवेशावतारो की भी कल्पना की गयी और आविष्ट अवतारो मे शिव, बुद्ध, व्यास, अर्जुन, परशुराम, वसु तथा कुवेर के अतिरिक्त गौण अवतारो की श्रेणी मे पशु, मानव, पादप, पक्षी आदि को भी अवतार स्वीकार किया गया और वैष्णवी शक्ति मे आविष्ट होने के कारण मूर्तियो को भी अर्चावतार की सज्ञा दी गयी। इस सिद्धान्त के अनुसार मूर्तिपूजा वस्तुत प्रस्तर पूजा नही अपितु शक्ति (आत्मशक्ति) द्वारा शक्ति (पराशक्ति) की उपासना है।[251]

सहिताओ मे या तो सभी अवतारो का उद्भव अनिरुद्ध से स्वीकार किया गया है[252] अथवा कही-कही कुछ अवतारो का अनिरुद्ध से तथा अन्य का चतुर्व्यूह के अन्य तीनो रूपो से उद्भव बताया गया है।[253] सभी अवतारो का अन्तस्थ नियत्रक अनिरुद्ध है अत उसे 'अन्तर्यामी अवतार' कहा गया। उन्तालीस विभव अवतारो की जो सूची सात्त्वतसहिता अथवा अहिर्बुध्न्यसहिता मे दी गयी है[254] उन्ही मे एक नाम 'कान्तात्मन है। इसी को 'काम' और 'धन्वन्तरि' भी कहा गया है।[255] प्रद्युम्न से इसका सम्बन्ध स्पष्ट है।

जिस प्रकार चतुर्व्यूह परम्परा का सम्बन्ध सृष्टि-प्रक्रिया से स्थापित किया गया है उसी प्रकार सृष्टि के लय मे भी उसका अविच्छिन्न और अपरिहार्य सम्बन्ध है।

28 प्रद्युम्न और प्राकृत-प्रलय

अहिर्बुध्न्यसहिता के 'प्रतिसचर वर्णन' नामक चतुर्थ अध्याय मे प्राकृत-प्रलय का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सब कुछ पृथ्वी मे लय हो जाता है, पृथ्वी का जल मे, जल का तेज मे,

तेज का वायु मे, वायु का आकाश मे, आकाश का अहकार मे, अहकार का बुद्धि मे, बुद्धि का तम मे, तम का रज मे, रज का सत्त्व में, सत्त्व का काल मे, काल का नियति में, नियति का शक्ति मे, शक्ति का 'कूटस्थ पुरुष' में कूटस्थ पुरुष का अनिरुद्ध मे, अनिरुद्ध का प्रद्युम्न मे, प्रद्युम्न का संकर्षण मे और सकर्षण का परम क्षेत्रज्ञ वासुदेव मे लय हो जाता है ।[256] यहाँ, प्रलयावस्था मे पच भूतो पर अन्त:करण के चार स्तरों, त्रिगुणो तथा शक्ति रूपो का और सर्वोपरि चतुर्व्यूह का महत्त्व स्थापित किया गया है । साख्योक्त तत्त्वनिरूपण पर चतुर्व्यूह-धारणा की यह महत्ता साख्य के तर्कवाद पर पाचरात्र धर्म की भक्तिमूलकता की श्रेष्ठता प्रमाणित करने की भावना से अनुप्रेरित हो तो आश्चर्य नही होना चाहिए । कृष्णोपनिषद् मे इसी प्रलय-क्रम को एक दूसरे ढग से प्रस्तुत किया गया है । इसके अनुसार वासुदेव से सकर्षण नामक जीव की उत्पत्ति होती है जो सृष्टि-कामना से प्रजा की रचना करने से प्रद्युम्न कहलाता है । प्रद्युम्न से ही अहकार नामक हिरण्यगर्भ अनिरुद्ध की उत्पत्ति होती है । अनिरुद्ध से ही मरीचि आदि दस प्रजापतियो की, दस प्रजापतियो से ही शिव (स्थाणु) दक्ष, कर्दम, प्रियव्रत, उत्तानपाद आदि की, उनसे सर्वभूतो की तथा समस्त देवताओ आदि की उत्पत्ति होती है तथा इसी क्रम से इनका लय भी होता है ।[257] यहाँ भी, प्रद्युम्न को 'काम' तत्त्व का प्रेरक और अधिष्ठाता तथा प्रजा का सृष्टा कहा गया है । इस प्रकार प्राकृत प्रलय की अवस्था मे भी प्रद्युम्न का महत्त्व असदिग्ध है ।

प्राकृत प्रलयावस्था मे सृष्टि के लय होने की कल्पना से भिन्न किंतु एक महवर्ती कल्पना उपासक भक्तो के अपने उपास्य देवताओ मे लय होने की है । महाभारत के शातिपर्व मे व्यूहावतारो के उपासको के तत्तत् व्यूहो के गुण और स्वरूप के अनुसरण से तत्तत् व्यूहो मे क्रमश: प्रविष्ट होते हुए अन्ततः क्षेत्रज्ञ वासुदेव मे लय होने का उल्लेख है ।[258] पद्मसहिता भी इस धारणा की पुष्टि करती है ।[259]

29 षाड्गुण्य विग्रह और प्रद्युम्न का वीरत्व

यह स्पष्ट हो चुका है कि चतुर्व्यूह-कल्पना मे भगवान् के षाड्गुण्य विग्रह का स्वरूप अन्तर्लक्षित है । प्रत्येक व्यूह इन षड्गुणो मे से सभी गुणो का सामान्यत आधार होते हुए भी विशेषतः दो गुणो का अधिष्ठान है । यही कारण है कि हम देखते है कि प्रद्युम्न का सम्बन्ध षड्गुणो मे से एक वीर्य गुण से विशेष है । इसीलिए प्रद्युम्न को जोर देकर स्थान-स्थान पर वीर विशेषण से विभूषित किया गया है । जहाँ 'उग्र' शब्द का सम्बन्ध संकर्षण व्यूह से है, 'वीर' शब्द का प्रद्युम्न-व्यूह से । अहिर्बुध्न्य-सहिता के पचपनवें अध्याय मे नारसिह अनुष्टुभ मन्त्रों के अर्थ-निरूपण मे योगमत और पाशुपत मत— इन दो मतो के अनुसार मंत्रार्थ विवेचित किया गया है । 'वीर' शब्द का अर्थ योग मतानुसार है—"विवृता येन विजिता ईरा देहस्य वायव." (अर्थात् देहस्थित पवनो को जिसने विवृत एवं विजित किया है वही वीर है ।) तो पाशुपत

मतानुसार "तत्पारयितृवन्द्यत्व वीर शब्देन वर्ण्यते" (अर्थात् उस पार ले जाने की सामर्थ्य ही वीरत्व है।) किंतु, भक्तिमार्गीय चिन्तना के सन्दर्भ मे 'वीर' शब्द का वास्तविक अभिप्राय तथा प्रद्युम्न व्यूह से उसके सम्बन्ध की सार्थकना को अहिर्बुध्न्य-सहिता मे ही विशद रूप से स्थापित किया गया है। अहिर्बुध्न्यसहिताकार का 'वीर' शब्द की व्याख्या करते हुए कहना है कि प्रद्युम्न अपने वीरत्व से सात्त्विक, राजस और तामस इन त्रिविध सृष्टियो को बिना श्रम सहज ही प्रेरित करता है। इन सभी सृष्टियो की विद्या को भी वह वीर्य गुण सम्पन्न कर देता है। अन्धकार रूपी मधु दैत्य का हनन कर वह स्वय वीर्य गुण से मण्डित हो जाता है। वीर्यगुण सम्पन्न होने के कारण ही वह शास्त्रार्थ अनुष्ठान करने पर निर्मलकर्म हो जाता है। इसलिए पुरुषोत्तम वीर प्रद्युम्न अग्र वन्दना का अधिकारी है।[260]

'वीर' शब्द को निर्वचित तथा परिभाषित करने के अनन्तर अहिर्बुध्न्य-सहिताकार वीर रूप प्रद्युम्न-व्यूह का निरूपण करते हुए कहते है कि कमल-नयन, अमृताधार रूप, मायावान् तथा अग्निरूप प्रद्युम्न 'वीर' शब्द से विख्यात है। अमृतमय सद्धर्म (भगवद्धर्म) आधार और आश्रय प्रद्युम्न ही है। वही अधिष्ठाता भी है। वह माया से मायाज्ञान के रहस्यो को, जान कर प्रबोध देता है और अन्धकार रूपी विद्या दोषो को अग्निवत् जलादेता है। इसीलिए वह 'वीर' शब्द से प्रसिद्ध है।[261]

नृसिहतापिन्युपनिषद् मे भी 'वीर' शब्द का विवेचन करते हुए इसी विचार की पुष्टि की गयी है—"अथकस्माद् उच्यते वीरमिति। यस्मात् स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मन सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजस्र सृजति विसृजति वासयति। यतोवीर कर्मण्य सुदक्षोयुक्तग्रावा जायते देवकाम। तस्मादुच्यते वीरमिति।"[262]

इससे स्पष्ट है कि प्रद्युम्न का वीरत्व उनके लोकनायक रूप मे वीरतापूर्ण कार्यों पर ही आधारित नही है अपितु उसकी जडे वैष्णव तत्त्वज्ञान की इस दार्शनिक पृष्ठभूमि मे भी है।

30. प्रद्युम्न सम्बन्धी मंत्र, तंत्र और आयुध

भगवान के षाड्गुण्य-स्वरूप इन विग्रहो के ध्यान और उपासना मे मन्त्र, यन्त्र और आयुधो का भी बडा महत्त्व है। पाचरात्र मत मे तो मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रादि का विशेष महत्त्व है क्योकि पाचरात्र सिद्धान्त पर, जैसा कि हम पिछले पृष्ठो पर उल्लेख कर चुके हैं, तान्त्रिक मतो का बडा प्रभाव है। अहिर्बुध्न्यसहिता स्वय स्वीकार करती है कि पाचरात्र सिद्धान्त वैदिक और तान्त्रिक दोनो ही पद्धतियो पर आधारित है—'वेदतन्त्रमयोद्भूता नाना प्रसवशालिनी।'[263] महाभारतकार भी यह घोषित कर चुका है कि साख्ययोग, आरण्यक तथा पाचरात्र

आगम—ये सब एक दूसरे के अंग हैं– 'परस्परांगान्येतानि'[264] तथा वेद सांख्य, योग पांचरात्र और पाशुपत मत–इन्हें विभिन्न प्रकार के मत नहीं समझना चाहिए। ये शास्त्र एक लक्ष्य के साधक होने के कारण एक है।[265] अतः पांचरात्र मत में मंत्र तंत्रादि का प्रभाव और महत्त्व स्पष्ट है। उसकी दीक्षा-क्रिया में गुह्यता आनुष्ठानिकता शिष्य का मंत्रों से अंगन्यास [266] इत्यादि विधियाँ तांत्रिक प्रभाव को स्पष्ट घोषित करती हैं 'मातृकायोनि' तथा 'सुदर्शन चक्र-साधना' की कल्पना भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है।[267] इस तांत्रिक प्रभाव के दो ही मुख्य कारण प्रतीत होते हैं—एक तो यह कि पांचरात्र क्यों कि एक लोकधर्मी मत था अत. वेदेतर अन्यान्य मतों से उसकी सहानुभूति स्वाभाविक है और अपने प्रभाव-क्षेत्र की वृद्धि और सामंजस्य-वृत्ति के कारण भी यह चेष्टा सहज ही प्रतीत होती है, दूसरे उस युग में तंत्रवाद का इतना विस्तार और आतंक था कि सभी आगमों को तंत्र–तत्त्वों को आत्मसात करना ही पड़ा।

अस्तु, जो भी हो, यह स्पष्ट है कि मंत्र की अलौकिक शक्ति में पांचरात्र का विश्वास है। वह मंत्र को विष्णु भगवान की शुद्ध चेतना शक्ति स्वीकार करता है—'साक्षात् विष्णोः क्रियाशक्ति शुद्ध सच्चिन्मयी परा।'[268] उसका विश्वास है कि समस्त चराचर सृष्टि की तथा मुक्ति और बंध की अधिष्ठात्री 'सुदर्शन' शक्ति है।[269] सृष्टि ब्रह्म की इस सुदर्शन शक्ति या संकल्प शक्ति का ही परिणाम है। सुदर्शन का ही एक रूप क्रियाशक्ति भी है। क्योंकि 'शक्ति' तत्त्व है इसलिए सुदर्शन को 'चलन–चक्र' भी कहा गया है। संकल्प या सुदर्शन शक्ति का यह चलन सर्वप्रथम 'नाद' के रूप में व्यक्त होता है जिसे योगीजन ही सुन सकते हैं। 'नाद' का ही प्रथम व्यक्त रूप बिन्दु है जो संज्ञा और उसकी बोध-शक्ति का प्रतीक है। यह 'बिन्दु' 'ओम्' में अनुस्वार के रूप में प्रकट होता है। बिन्दु ही 'नाम' और 'नामि' (भौतिक रूप) से द्विधा विभक्त है इसीसे 'नाम्युदय' अथवा 'शब्द ब्रह्म' का विकास होता है जो स्वर और व्यंजन रूप में एक होता हुआ परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी–इस चतुर्विध वाणी में व्यक्त होता है। अत. पांचरात्र मत में ध्वनि को मूलतः शक्ति का रूप स्वीकार करते हुए उसे वैष्णवी शक्ति का ही रूपान्तार माना गया है जो स्वाभाविक है। वैष्णवी शक्ति की रूपान्तर इस शब्द शक्ति को ही 'मातृका देवी' और 'मंत्रयोनि' भी कहा गया है—'मंत्रयोनिरियं देवी मातृकाधिष्ठिता सदा।'[270] इसी प्रकार पांचरात्र में, क्योंकि वह तत्त्व प्रधान सात्त्वत मत है अतः वाममार्गी चक्र-साधन के स्थान पर 'सुदर्शन चक्र के ध्यान और जप को ही 'चक्र–साधना' कहा गया है जिससे अपार अलौकिक शक्तियाँ वशीकृत हो जाती हैं।[271]

विभिन्न स्वरों और व्यंजनों का विकास किस प्रकार होता है और कुण्डलिनी शक्ति और नाडी संस्थान से स्वरव्यंजन रूप वर्णमाला का क्या सम्बन्ध है इसे निरूपित

करते हुए कहा गया है कि विभिन्न स्वर और व्यजन ध्वनियाँ विश्व शक्ति की ही विभिन्न अभिव्यक्तियो की प्रतिरूप और उन शक्तियो के अधिष्ठाता देवताओ की प्रतीक हैं। इस दृष्टि से वर्णो का कोई विशेष संघात या स्वरूप-योजना-यथा कमल-चक्रादि आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की सश्लिष्ट शक्तियों के सयोग की ही प्रतीक हैं। अत. वर्णों के ऐसे कमल-चक्रादि रूपों के जप और ध्यान से निश्चय ही उन शक्तियो का आह्वान किया जा सकता है जिनके कि वे प्रतीक है।[272]

अहिर्बुध्न्यसहिता मे ब्रह्म से वर्णमाला के अक्षरो की उत्पत्ति का क्रम सविस्तार देते हुए सृष्टि रचना के तत्वो यथा 'महत्' 'अहकार' आदि को भी अक्षरोद्भूत कहा गया है। ब्रह्म अनत शक्ति से क्षुब्ध होकर स्वय को 'अग्नि' 'सोम' रूपो मे व्यक्त करता है। दीर्घ और ह्रस्व स्वर ही अग्नि और सोम हैं। 'अग्नि' ही सूर्य, प्रकाश या 'ज्ञान' है और 'सोम' ही 'आनद' या 'आह्लाद' है। दीर्घ-ह्रस्व-स्वर-सयुत ब्रह्म का यह 'अग्निषोमात्मक' रूप ही विश्व का सृष्टा, पालक और सहारक है। यही 'पुमान' 'प्रधान' या 'पुरुषेश्वर' है। इसीसे 'महत्' से लगाकर 'पृथ्वी' तक सृष्टि-तत्त्वो की उत्पत्ति है।[273]

जयाख्यसहिता मे प्रत्येक वर्ण को किसी एक मूर्त पदार्थ, यथा-अस्त्र (ए) कमल (क) गदाधर (ग) आदि की सज्ञा से अभिहित किया गया है। यह अभिधान मनमाने ढग से नही है अपितु इसके पीछे एक स्पष्ट सादृश्य-विधान है जिसे डॉ भट्टाचार्य ने एक पटल मे प्रस्तुत किया है। यह वर्ण मात्रिका-पटल वर्णों की मूर्त पदार्थों से तथा देवता और उनके आयुधो से सगति के क्रमिक विकास के अध्ययन मे लाभदायी सिद्ध हो सकता है।[274]

अहिर्बुध्न्यसहिता के 16 वें और 17 वें अध्याय मे भी एक-एक वर्ण के उद्गम, स्वरूप, महत्त्व और प्रतीक-योजना को स्पष्ट करते हुए वैष्णवशक्ति का पूरा वर्णमातृका स्वरूप वर्णित किया गया है।[275] इसी सहिता के 18 वे और 19 वें अध्यायो मे विभिन्न मंत्र और उनका महत्त्व तथा 20 वें अध्याय मे मंत्रो के प्रयोजन और देशकाल-पात्रतादि की दृष्टि से औचित्य बताते हुए निदेश है कि 'क्षुद्रार्थं मंत्रो न प्रयोज्य.। 23 वें अध्याय मे विभिन्न वासुदेवादि मंत्रो और चक्रो की रचना-विधि का, 24 वें अध्याय मे यंत्रो-देवताओ के ध्यान और उनकी महिमा का तथा 25 वे 26 वें अध्यायो मे सुदर्शन, महासुदर्शन यन्त्रो का लक्षण बताते हुए गोविंद, माधव, त्रिविक्रमादि विभवों का मंत्र-रूप वर्णित है। साथ ही यंत्र-निर्माण विधि और धातु उपयोग के विभिन्न फलो का वर्णन है। सबसे महत्त्वपूर्ण 30 वा अध्याय है जिसमें देवताओ के अस्त्र-शस्त्रो के जन्म, स्थान और नाम का विवेचन है जिसमे पैरों से उत्पन्न असि, रत्न, मदन, मायाधर इत्यादि अस्त्रो का और अपराग से उत्पन्न उपसंहारक अस्त्रो मे मोहन, जृंभक, कामरुचि, कामरूपक, मकर, अनिद्र तथा भोक्तारं (पाठ-

भेद भेत्तारं) इत्यादि अस्त्रो का वर्णन, जैसा कि हम आगे देखेंगे, हमारे अध्ययन की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण है।

पुराण और पाचरात्र-सहितादि तथा उत्तर वैष्णव साहित्य मे व्यूह-देवता के रूप मे प्रद्युम्न का जो स्वरूप तथा महिमा वर्णित है उसी के अनुसरण मे मूर्तियो के निर्माण सम्बन्धी सदर्भ भी उपलब्ध होते है। मूर्ति-शास्त्र की जानकारी के लिए पद्मपुराण तथा अग्निपुराण मे अतीव उपयोगी सामग्री उपलब्ध होती है। इन पुराणो मे विष्णु के 24 रूपो का वर्णन मिलता है। विष्णु की चारो भुजाओ मे चार आयुध रहते है तथा इन आयुधो की विभिन्न स्थितियो के अनुसार ही विष्णु के विविध रूपो की भिन्नता दृष्टि-गोचर होती है। गुप्त-काल वैष्णव मन्दिरो और मूर्तियो की रचना के लिए प्रख्यात है। किन्तु पाल तथा सेन युग (8 वी शती से 11 वी शती) मे भी भारत के पूर्वी प्रदेश मे वैष्णव मूर्तियाँ प्रचुरता से उपलब्ध होती है।[276] चतुर्व्यूह देवताओ—वासुदेव, सकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—की उपासना इस युग मे प्रचलित थी। इस लोकप्रियता का प्रमाण इन मूर्तियो की बहुलता है। सर्वाधिक मूर्ति स्वभावत: वासुदेव की ही मिलती है। वासुदेवमूर्ति मे आयुधो का स्थान इस प्रकार है:—

31. प्रद्युम्न–मूर्ति, तीर्थ, पीठ और राजधानी

G-192

(ऊपरी दक्षिण हाथ मे) गदा + चक्र (ऊपरी बाये हाथ मे)
(निचले दक्षिण हाथ मे) पद्म + शख (निचले बायें हाथ मे)

यही मूर्ति जब गदा के स्थान पर हल तथा चक्र के स्थान पर मूसल धारण कर लेती है तब हो जाती है सकर्षण की मूर्ति। इसी प्रकार अस्त्रो के स्थान विनि-मय से यही मूर्ति प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की प्रतीक बन जाती है।[277]

गुप्तकाल मे भी व्यूह देवताओ की मूर्तियो का पूजन प्रचलित था। बेसनगर और पवामा से गरुडध्वज, तालध्वज और मकरध्वज प्राप्त हुए है जो इस बात के द्योतक है कि वहाँ क्रमश: वासुदेव, सकर्षण और प्रद्युम्न के मन्दिर स्थापित रहे होंगे।[278]

हम पिछले पृष्ठो मे कह आये है कि महाभारत (नारायणीय पर्व) की साक्षी से स्पष्ट है कि पाचरात्र मत मे पहले विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध की गणना थी। अत्रिप्रोक्त समूर्तार्चनाधिकरण से भी इसकी पुष्टि होती है।[279]

मूर्ति-स्थापना के क्रम तथा दिशानिर्देश मे लिखा है कि प्राची दिशा मे पुरुष की, दक्षिण मे 'सत्य' की, पश्चिम दिशा में 'अच्युत्' की तथा उत्तर मे 'अनिरुद्ध' की मूर्ति स्थापित की जानी चाहिए।[280]

ध्यान देने की बात यह है कि कालान्तर मे जब पाचरात्र के 'पुरुष', 'सत्य' और 'अच्युत' का स्थान (क्योकि अनिरुद्ध तो अपने स्थान पर यथावत् रहे) क्रमश वासुदेव, सकर्षण और प्रद्युम्न ने ग्रहण कर लिया तो मूर्तियो का स्थान भी वही अर्थात् क्रमश पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा मे ही बना रहा।[281]

वासुदेव की प्रतिमा के, वैष्णव-क्रिया-ग्रथो मे, मुख्य दो रूप कहे गये हैं— (1) दैविक वासुदेव, तथा (2) मानुष वासुदेव और इन दोनो के मूर्ति-विधान मे सूक्ष्म प्रभेद निरूपित किया गया है।

मानुष वासुदेव की मूर्ति आयताकार मन्दिर मे मध्यमदशतालमित आकार की द्विभुज और शखचक्र धारी होनी चाहिए जिसके दक्षिण भाग मे रुक्मिणी स्थित हो।[282] रुक्मिणी के स्वरूप को निरूपित करते हुए कहा गया है कि कृष्ण के दक्षिण पार्श्व मे स्वर्णिम कान्ति वाली श्वेतवस्त्रा, जूडा बाँधे, नाम के आदि मे अक्षर बीज वाली अन्य सब विवरणो मे श्री की भाँति रुक्मिणी है—'रुक्मिणी सुदरी, प्रकृति, कृष्ण वल्लभा' इत्यादि। सत्यभामा को वाम पार्श्व मे बताया गया है। स्वरूप मे अन्तर नही है। वह मही की भाँति है। उसे सती, सन्नती, क्षमा आदि कह कर प्रशसित किया गया है।[283] रुक्मिणी का कृष्ण के दक्षिण और सत्यभामा का कृष्ण के वाम पार्श्व मे स्थित होना रुक्मिणी पर कृष्ण की विशेष कृपा (दाक्षिण्य) को तथा सत्यभामा से कृष्ण के स्वभाव की कुछ प्रतिकूल वक्रता (वामता) को प्रकट करता है। मूर्तियो मे यह दाक्षिण्य और वामता कृष्ण के जीवन प्रसग से अवतरित हुई है अथवा मूर्ति-विधान के मदिर से यह कल्पना कृष्ण तथा उनके परिजनो के चरित-काव्यो के लीला-प्रागण मे ध्वनित हुई है यह कह सकना कठिन है किन्तु इन दोनो कल्पनाओ का परस्पर आश्लेष असदिग्ध है।

मानुष वासुदेव की मूर्ति मे वासुदेव के दक्षिण पार्श्व मे रुक्मिणी की स्थिति के बाद, हलमूसलधारी बलराम तथा बलराम के दक्षिण पार्श्व मे, दाहिने हाथ मे क्षुरिका (छुरी) धारण किये और बाये हाथ को कमर पर टिकाये द्विभुज धारी प्रद्युम्न की मूर्ति का स्थान है। प्रद्युम्न के दक्षिण पार्श्व मे ब्रह्मा है। वासुदेव के बाए पार्श्व मे अनिरुद्ध हैं। वे भी द्विभुज है और खड्ग खेटक धारण किये हैं। अनिरुद्ध के बायें पार्श्व मे साम्ब और साम्ब के बायें पार्श्व मे गरुड की मूर्ति की स्थिति है। इनके वस्त्र-आभूषण भृगुसहिता के अनुसार बनाये जाने चाहिए।[284]

दैविक वासुदेव को सिंहासनासीन चतुर्भुज, शखचक्रधारी श्री भूमि सहित तथा दक्षिण वाम पार्श्व मे पूर्वोक्त विधि से ही अन्य देवो की स्थिति सहित, बनाया गया है। विशेषता यही है कि उन दोनो के साथ देवियाँ (उनकी महिषियाँ) भी विराजमान हैं जैसे बलभद्र के दक्षिण मे रेवती, प्रद्युम्न के दक्षिण मे रोहिणी, अनिरुद्ध के दक्षिण मे उषा और साम्ब के दक्षिण मे साम्ब-पत्नी इदुकरी। इनके कौतुक-बिम्ब भी पूर्ववत् होने चाहिए।[285]

समूर्तार्चनाधिकरण मे निर्दिष्ट मूर्ति-योजना मे मूलभूत समानता होते हुए भी कुछ सूक्ष्म भेद है, तथा, वहाँ मानुप वासुदेव प्रतिमा के दक्षिण पार्श्व मे स्थित रुक्मिणी को रक्तवस्त्रा और श्यामागी बताया गया है जो अपने बायें हाथ मे पद्म-धारण किये है। प्रद्युम्न की स्थिति तो वही है, किन्तु उन्हे रक्तवर्ण और श्वेतनील वस्त्रधारी भी कहा गया है। वे दिव्य भूपण और किरीट पहने है। उन्हे पीत कौशेय वस्त्रधारी भी कहा गया है। उन्हें 'सुरूपाक्ष' (सुन्दर आँखो वाला) 'मत्रराशि' तथा 'महाबल' भी कहा गया है। उनके वाम पार्श्व मे नीलवर्णा रोहिणी की स्थिति है। दीर्घक्षुरिका ही नही, उससे युक्त असि भी है, जो उनके दाहिने हाथ मे न होकर वामकटि-प्रदेश मे लटकी हुई है।[286]

दैविक वासुदेव-प्रतिमा मे यहाँ भी देवियो के लिए स्थान है। वैखानस आगम मे वासुदेव के अतिरिक्त अन्य वृष्णि वीरो की पत्नियो का स्थान दैविक वासुदेव-प्रतिमा के साथ ही है, मानुप वासुदेव प्रतिमा के साथ नही। एक अतर यह है कि दैविक वासुदेव-प्रतिमा मे (वृष्णि वीरो और ब्रह्मा-गरुडादि का स्थान मानुप वासुदेव प्रतिमा जैसा होते हुए भी) वे यहाँ सायुध या निरायुध चाहे जैसी स्थित मे रह सकते है[287] जब कि मानुप वासुदेव प्रतिमा में वृष्णि वीरो तथा ब्रह्मा-गरुडादि का सायुध होना आवश्यक है। इस सारी स्थिति को यो व्यक्त किया जा सकता है —

(अ) दैविक वासुदेव-प्रतिमा:—

ब्रह्मा रोहिणी प्रद्युम्न रेवती बलराम श्री वासुदेव भूमि अनिरुद्ध ऊपा साम्ब इदुकरी (रामा)[288]

(आ) मानुप वासुदेव-प्रतिमा:—

ब्रह्मा प्रद्युम्न बलराम रुक्मिणी वासुदेव सत्यभामा अनिरुद्ध साम्ब गरुड

मूर्तियो की विशिष्ट स्थिति की भाति ही इनके आवाहन-मत्र भी अलग-अलग दिये गये है। वासुदेव का आवाहन सभ्याग्नि मे बलभद्र का आहवनीय अनिरुद्ध का गार्हपत्य और प्रद्युम्न का आवाहन अन्वाहार्य अग्नि मे किया जाना चाहिए तथा सबके विशिष्ट आह्वान मत्र देते हुए कहा है कि प्रद्युम्न का आवाहन "रोहिणी पति प्रद्युम्न वीर बलशासन" मत्र से करना चाहिए।[289]

वैखानस आगम मे प्रद्युम्न का आवाहन दाक्षिणात्य अग्नि मे करने का भी विधान है।[290] वही यह भी लिखा है कि मत्र और अक्षरन्यासपूर्वक बलराम प्रद्युम्न आदि सभी देवताओ के नाम का आदि अक्षर लेते हुए परात्पर विष्णु का मनसा ध्यान करते हुए वासुदेव से लगा कर रुक्मिणी तक इन सब का क्रमश: आवाहन करना चाहिए।[291]

पचवीरो की प्रतिमा की स्थापना का स्थान-निर्देश करते हुए लिखा है कि ग्रामान्त नगरान्त पर्वतान्त, वनान्त, नदी-तीर, समुद्र-तट या अन्य किसी शान्त निर्जन स्थान

मे मूर्ति स्थापित करनी चाहिए।[292] विष्णसूक्त से प्रद्युम्न-मूर्ति को और एकाक्षरसूत्र से अनिरुद्ध-मूर्ति को स्नान कराना चाहिए। स्नान के अतिरिक्त आचमन, अर्घ्य और हवि-अर्पण सम्बन्धी विधियो के लिए व्यवस्था है कि प्रद्युम्न का आचमन 'योगेयोग.... मत्र से अर्घ्य 'इदमाप: शिवा ' मत्र से और हवि-निवेदन 'इहि-पुष्टि'....मत्र से करना चाहिए[293] यह भी उल्लेख है कि पचवीरो मे से किसी एक की ही कौतुक मूर्ति होने पर तथा अन्य मूर्तियो का अभाव होने पर अन्य का नाम से अर्चन करना चाहिए— 'येषा न मूर्तया सन्ति तेषा नामभिरर्चनम्।'[294] इससे पूजा की दृष्टि से सभी मूर्तियो का महत्त्व की अधिकारिणी होना सिद्ध है।

मूर्तियो की सापेक्ष उँचाई भी निश्चित है। बलभद्र की मूर्ति वासुदेव की मूर्ति से ऊँची है। अग्रजता के आधार पर ही सभवत यह सम्मान भावना व्यक्त की गयी है। प्रद्युम्न की मूर्ति वासुदेव मूर्ति के कान तक पहुँची हुई होनी चाहिए— 'प्रद्युम्नो-वासुदेवस्य कर्ण सीमान्तकोदय[295] रुक्मिणी और साम्ब की मूर्ति वासुदेव मूर्ति के नासिका भाग्र और स्तन तक तथा अनिरुद्ध की हिक्कान्त तक होनी चाहिए।

प्रद्युम्न-मूर्ति के स्वरूप और स्थिति के विषय मे यह भी लिखा है कि वासुदेव के उत्तर मे उत्तर दिशा की ओर उन्मुख सर्वाभरण सुसज्जित द्विभुजाकार प्रद्युम्न-मूर्ति होनी चाहिए जिसका शस्य श्यामवर्ण होना चाहिए और दाहिना हाथ अभय मुद्रा मे और बायाँ हाथ कटि पर अविलम्बित हो।[296] अग्निपुराण मे प्रद्युम्न की शालग्राममूर्ति का उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठो मे किया जा चुका है।

परवर्ती वैष्णव उपनिषद् साहित्य मे भी मूर्तियो सम्बन्धी ज्ञातव्य है। गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् मे कृष्णवन और भद्रवन नामक दो महावनो के अन्तराल मे पवित्रतम बारह वन होने का उल्लेख है। इन वनो मे राम (बलराम) की राममूर्ति, प्रद्युम्न की प्रद्युम्न मूर्ति, अनिरुद्ध की अनिरुद्ध मूर्ति और कृष्ण की कृष्ण मूर्ति स्थापित होने तथा उन मूर्तियो की पृथक्-पृथक् रूप से रुद्रोपासको, ब्रह्मोपासको, ब्रह्मजा: (सनक, सनन्दन, सनत्कुमारादि) मुनियो मरुद्गुणो, विनायको, वसुओ, ऋषियो, गधर्वो, अप्सराओ द्वारा उपासना होने की बात कही गयी है।[297] भगवान् कहते हैं कि जो मथुरामण्डल की इन मूर्तियो का अर्चन करता है वह मुझे और भी प्रिय हैं क्यो कि मैं ही प्रद्युम्न, बलराम और अनिरुद्ध रूप हूँ अत जो इनकी उपासना करता है वह मेरी ही अर्चना करता है।[298]

इससे स्पष्ट होता है कि मथुरा मण्डल मे प्रद्युम्नादि व्यूहो के मदिर और मूर्तियाँ किसी समय विपुल सख्या मे थे तथा अनेक सम्प्रदाय अपनी-अपनी भावना और विधि अनुसार उनका पूजन करते थे।

त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषद् मे 24 प्रणव-मत्रो का उल्लेख है और उनमे से कुछ मत्र पच वशवीरो के नाम पर भी हैं। उन्ही 24 प्रणवमत्रो मे से एक

प्रणव मत्र 'ॐ प्रद्युम्नाय नम' भी है ।[299] इसी प्रकार त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि वायु के अ श नकर्षण, अग्नि के अ श प्रद्युम्न तथा व्योम के अ श वासुदेव का सदा स्मरण करना चाहिए ।[300]

प्रद्युम्न का महत्त्व मदिर और मूर्तियो तक ही सीमित नही रहा । उनके नाम पर (1) तीर्थ (2) पीठ और (3) राजधानी के उल्लेख भी प्राप्त होते है—

1 प्रद्युम्न तीर्थ—पुराणो मे प्रद्युम्न तीर्थ का उल्लेख आता है जिसका एक नाम 'दक्षिण प्रयाग' भी है । इसकी स्थिति कहाँ है, इसके विषय मे तीर्थप्रकाश मे लिखा है—'तच्च गौड देशे सप्तग्रामे मोक्षवेणीति प्रसिद्धम्'[301]

2 प्रद्युम्न पीठ—कश्मीर में श्रीनगर के अन्तर्गत हरि पर्वत पर स्थित एक पवित्र तीर्थ-क्षेत्र[302]

3 प्रद्युम्नपुर — प्रद्युम्न की राजधानी जो चद्रभागा नदी के तीर पर स्थित थी ।[303]

4 प्रद्युम्न-नगर—हुगली जिले मे पाण्डुआ (रघुनदन के "प्रायश्चित-तत्त्व" मे गगामाहात्म्य के अन्तर्गत महाभारत का उद्धरण–) अनुश्रुति है कि कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने इसी स्थल पर शवरासुर का वध किया था जिससे इस स्थान का नाम ऋक्षवन्त से वदल कर प्रद्युम्ननगर या मारपुर हो गया (हरिवश अ० 166) कोशल राज्य पर अधिकार करने वाले पितृघाती विरुद्धक के चगुल से बचने के लिए पाण्डु शाक्य ने शाक्य राजधानी का परित्याग कर इसी स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित की थी । उसकी पुत्री भद्रकच्छनिका का सिहपुर (वर्तमान सिंगुर, जि० हुगली, वगाल) के राजकुमार पाण्डु वासुदेव से विवाह हुआ था, जो बाद मे सीलोन नरेश पर विजय के बाद वहाँ की गद्दी पर बैठा (द्रष्टव्य· टर्नर सपादित महावश, अ० 8) प्रतीत होता है कि पाण्डु शाक्य के नाम पर ही, जो अनिरुद्ध का पुत्र तथा बुद्ध का भतीजा (या भानजा) था, प्राचीन प्रद्युम्ननगर पाण्डुआ कहा जाने लगा था ।[304]

प्रतीत होता है कि 13 वी सदी के अ त मे पाण्डुआ पर मुसलमानो का अधिकार हो गया । वादशाह फिरोजशाह द्वितीय के भानजे शाह सूफी ने पाण्डुआ के तत्कालीन हिन्दू नरेश को जो 'पाण्डुराज' कहलाता था, अपने मामा की सैन्य सहायता के वल पर धकेल कर गद्दी मे हटा दिया । तभी पुराना मदिर नष्ट किया जाकर उसके मलवे से वर्तमान मस्जिद का निर्माण हुआ होगा । ऐसा कहा

जाता है कि पाण्डुग्रा की 125 फीट ऊँची मीनार, दिल्ली की कुतुबमीनार के अनुकरण पर ही, शाह सूफी द्वारा इस विजय की खुशी मे निर्मित की गयी थी। यह मुअज्जिन द्वारा अजान देने के काम आती थी। हुगली जिले मे स्थित यह पाण्डुग्रा मालदा जिला स्थित पाण्डुग्रा से भ्रमवश एकरूप नही समझा जाना चाहिए। मालदा जिला स्थित पाण्डुग्रा का सम्बन्ध पुण्ड्रवर्धन से है न कि प्रद्युम्न से।[305]

32. निष्कर्ष: प्रद्युम्न के देवता-रूप का महत्त्व और प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो पर प्रभाव

इस प्रकार हम देखते हैं कि कैसे 'द्युम्नता' (तेजस्विता) का एक मानसिक अमूर्त भाव 'अग्नि' तथा 'काम' तत्त्वो के सहचर्य से विकसित होता हुआ और अपना स्वरूप ग्रहण करता हुआ विष्णु के अवतार वासुदेव के चातुर्व्यूहात्मक विग्रह के अन्तर्गत एक महिमावान और सम्पूर्ण व्यक्तित्वशाली देवता के पद पर प्रतिष्ठित हो गया। विकास की यह मजिल ऋग्वेद काल से प्रारभ कर महाभारत के नारायणीय पर्व की वीथिका मे से होती हुई पुराणो तथा वैष्णव सहिता-साहित्य के प्रशस्त प्रागण से सक्रमण करती हुई अपनी परिपूर्णता तक पहुँची है। तथापि परवर्ती उपनिषद-काल तथा उसके भी पश्चात् 16 वी सदी मे चैतन्य सम्प्रदाय तक इसके पद-चिन्ह हमे प्राप्त होते है।

देवता-रूप मे प्रद्युम्न का विकास अपनी परिपूर्णता तक पहुँचा। देव-कल्पना विषयक कोई पक्ष अछूता नही रहा। न केवल हमे प्रद्युम्न के देवता-रूप मे उनके स्वरूप, वर्ण, वस्त्राभरण, आयुध, महिषि, अनुचर, ध्वजा, लाछन, इत्यादि के ही विवरण मिलते है, उनके जप-ध्यान, स्नपन समारोह, वसतोत्सव, प्रतिष्ठा-विधि, उनके आह्वान-मत्र तथा मुद्रा आदि का भी परिचय प्राप्त होता है। उनका प्रभाव और माहात्म्य भी कम नही हैं। वे भगवत-विग्रह के ही सक्षिप्त व्यूह-रूप है। 'मनस' तत्त्व के अधिष्ठाता और पुरुष रूप मे प्रजा को विशेषत भगवभक्तो को उत्पन्न करने वाले भी वे ही है। पुरुष रूप मे उनका माहात्म्य ऋग्वेदोक्त अथवा शतपथीय कल्पना के पुरुष से भी बढ कर है क्योकि उक्त दोनो ग्रन्थो का पुरुष केवल सृष्टि-कार्य मे ही सक्षम है जब कि प्रद्युम्न-रूप न केवल चातुर्वर्ण्य और सृष्टि का उत्पादक ही है, जगत का तथा भगवद्भक्तो का उपकारी भी है। इसी दृष्टि से वह विष्णु से भी बढ कर है।[306] प्रद्युम्न-व्यूह से ही तीन अवान्तर व्यूहो—त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर की उत्पत्ति है।[307] प्रद्युम्न से ही 'सत्य' की उत्पत्ति तथा राघव रामचन्द्र का अवतार हुआ है तथा प्रद्युम्न ही चेतना की जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय स्थिति मे स्वप्न-स्थानीय देवता है।[308] पितृ-तर्पण मे वे पितृ-परम्परा मे पिता-स्थानीय है।[309] देह-शुद्धि तथा योग मे तादात्म्य-प्राप्ति के लिए उनका स्तवन उपयोगी है।[310] अश्लील-भाषण

तथा गुरु-निन्दा के दोष के प्रायश्चित्त के लिए उनके मत्र का जाप अमोघ उपचार है। वे नाना सिद्धि-प्रदाता तथा ओकार रूप सर्वात्म परमात्मा मे उकार स्थानीय देवता होने से शब्दब्रह्म के भी अगभूत हैं।[312] वे स्वरमूर्ति भी हैं।[313] यम, शिव, कुमार कार्तिकेय और पाचजन्य उन्ही के अ श से समुद्भूत हैं।[314] वे वैष्णव मदिर-मूर्ति-उपासना विधि अर्थात् 'क्रिया' के अधिकारी और मुक्ति प्रदाता देवता है[315] उन्ही से 'ब्रह्मा' और 'श्री' की उत्पत्ति हुई है।[313] वे ही अनिरुद्ध और सरस्वती के भी जनक है।[317]

इस प्रकार, देवता-रूप मे प्रद्युम्न का सर्वातिशायी व्यक्तित्व असदिग्ध है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि देवता-रूप मे प्रद्युम्न के विकास का अध्ययन, हमारे लिए अर्थात् प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की रचना के लिए किस रूप मे और कहाँ तक उपयोगी है। प्रथम तः स्पष्ट है कि किसी भी पौराणिक चरित्र-नायक के स्वरूप और व्यक्तित्व का अध्ययन, यदि वह देवत्व की कोटि तक भी पहुँचा हुआ है तो, तब तक तलस्पर्शी और सर्वांग हो ही नही सकता जब तक कि उसके देवता-रूप का भी यथोचित आकलन नही कर लिया जाय। वस्तुत सभी देशो मे प्राचीन मानव-मनीषा की यह सामान्य वृत्ति रही है कि एक ओर वह अपने लोक-वीरो को देवत्व से मण्डित करती रही है तथा दूसरी ओर अपने कल्पित देवताओ के स्वरूप (व्यक्तित्व) मे मानवीय उदात्त भावनाओ का प्रत्यारोप भी करती रही है। यही कारण है कि लौकिक तथा देवता मूलक अभिप्राय निजधरी एव पौराणिक कल्पनाओ मे परस्पर घुलमिल गये है। हमारे यहाँ ही, इन्द्र एक ओर देवता है दूसरी ओर वह एक ऐतिहासिक वीर लोकनायक भी।[318] वही वात राम, कृष्ण और अन्य ऐसे ही वीर पुरुषो पर भी घटित होती है। प्रद्युम्न भी एक ऐसे ही 'व्यक्तित्व' हैं। भारतीय अवतारवाद की कल्पना भी मानव-मन की इसी प्रवृत्ति की देन है। यही प्रवृत्ति मध्य-युग तक गोगा, तेजा रामदेवजी आदि लोक-देवताओ अथच ऐतिहासिक पुरुषो तक अभिव्यक्त होती रही है।

अत स्पष्ट है कि प्रद्युम्न के लोक-नायक (अथवा चरित-नायक) रूप का सम्यक् अध्ययन उसके देवता रूप के अध्ययन के बिना नही हो सकता। प्रद्युम्न के लौकिक और अलौकिक अर्थात् लोक-नायक और देवता-रूप परस्पर इतने घुले-मिले हैं कि बिना उनके अलौकिक रूप का अध्ययन किये, उनका लौकिक रूप पूर्णत उद्घाटित नही हो सकता। उनके चरित-नायक रूप पर उनके देवता-रूप का प्रभाव बहुमुखी और स्पष्ट है जिसका सक्षिप्त रोचक निदर्शन यहाँ प्रसगप्राप्त और उपयोगी होगा।

प्रद्युम्न-चरित्र ग्रथो मे प्रद्युम्न सर्वत्र असाधारण वीर-कृत्य करते हुए चित्रित किये गये है। वे छ दिन के बालक थे तभी धूमकेतु ने पूर्वभव के वैरवश उनका अपहरण कर उन्हे पर्वत शिला के नीचे रख दिया। उनके श्वासोच्छ्वास

से वह विशाल शिला स्पदित होने लगी । यही से उनके अतिमानुषिक अलौकिक कार्यों का प्रारभ हो जाता है । वे सोलह गुफाओ मे जाकर अनेक नागो, राक्षसो, दैत्यो को मार कर या पराजित कर अनेक विद्याएँ और उपहार प्राप्त करते है । मायासैन्य से कालसवर नृप को, दुर्योधन सैन्य को, यहाँ तक कि अपने पिता कृष्ण को भी पराजित कर देते हैं । प्रश्न है कि इन अतिमानुषिक अलौकिक वीर कृत्यो के वर्णन की पृष्ठ-भूमि मे कौनसी प्रवृत्ति कार्य कर रही है ? निस्सदेह वे ऐतिहासिक वीर रहे होगे और अनेक बाधाओ और विरोधो को झेलकर उन्होने अनेक युद्धो मे जय-लाभ किया होगा किन्तु मात्र इतने से उनके अलौकिक वीरतापूर्ण कृत्यो की प्रेरणा-भूमि स्पष्ट नही होती । इस स्पष्टता के अभाव मे ही हम अज्ञानवश इन निजधरी पौराणिक व्यक्तियो और उनके कृत्यो को तथ्यहीन मिथ्या गल्प कह कर तिरस्कृत कर उठते है । अलौकिक-पक्ष (देवता-रूप) के अध्ययन का अभाव ही इस अक्षम्य किन्तु भ्रान्तिमूलक स्थिति का जनक है ।

परन्तु ज्यो ही हम प्रद्युम्न के वीर-रूप की सगति उसके देवता रूप से स्थापित कर लेते है त्यो ही सारी भ्रान्ति विकर्ण होकर समाधान हो जाता है । हम देखते है कि प्रद्युम्न व्यूह-रूप मे मुख्यत. षाड्गुण्य-विग्रह के प्रमुख दो गुणो (1) ऐश्वर्य तथा (2) वीर्य गुणो का अधिष्ठाता है । स्वतत्रता शक्ति से उन्मीलित जगत कर्तृत्व ही 'ऐश्वर्य', सृष्टि कार्य मे अविकारी रहना अश्रान्त रहना ही 'वीर्य' और जगत-व्यापार मे श्रम या श्राति का अभाव ही 'बल' है । इस दृष्टि से देखने पर प्रद्युम्न द्वारा अविराम अलौकिक वीरकृत्य सम्पादित करने, उनमे अविश्वसनीय रूपो से निर्बाध अप्रतिहत सफलता प्राप्त करने और निर्विघ्न नाना विद्याओ और अलौकिक लाभो की उपलब्धि करने का रहस्य समझ मे आ जाता है । यही बात उनके द्वारा माया-सैन्य की रचना करने, नाना रूप धारण करने आदि के सम्बन्ध मे भी है । इन सब की सगति देवता-रूप के अध्ययन के बिना नही हो सकती । स्पष्ट है कि प्रद्युम्न को सामान्य जन-मानस भले ही वीरतापूर्ण कार्यो के सम्पादन करने के कारण वीर चरित्र के रूप मे जानता रहा हो । किन्तु प्रद्युम्न-चरित्र का यह अलौकिक अविश्वसनीय वीरत्व लोक-मानस की भावज्ञता तथा साहित्य-सृष्टि की कल्पनाशीलता के अतिरिक्त वैष्णव तत्त्वज्ञ की उक्त दार्शनिक पृष्ठ-भूमि मे भी अवस्थित है और इसी दार्शनिक पृष्ठ-भूमि मे वह मौलिक रूप से सुरक्षित है ।

यह बात नही है कि प्रद्युम्न-चरित्र का व्यापक ढाचा ही देवता-विषयक कल्पना पर खडा है, उसके व्यक्तित्व की सरचना और उसके कर्तृत्व-व्यापार के सूक्ष्म ततुओ की निर्मिति मे भी वैष्णव तत्त्वज्ञता की यही मिट्टी काम आयी है । उदाहरण के लिए, प्रद्युम्न की पत्नी 'रति' के नाम की सार्थकता यदि सूक्ष्म मनस्तत्त्व 'काम' की सहचारिणी वृत्ति के रूप मे उसके कामावतार होने से है तो उसकी अन्य पत्नी 'मायावती' के अस्तित्व और उसके रति की अवतार होने की कल्पना की सार्थकता

इस बात को जाने बिना नही हो सकती कि प्रद्युम्न केवल 'काम' का अवतार ही नही है अपितु पाचरात्र सृष्टि–कल्पना मे 'कूटस्थपुरुष' भी है और इस रूप मे 'माया' ही सृष्टि–रचना मे उसकी सहचारिणी या सहयोगिनी है। पाचरात्र मत मे 'माया' का जो स्वरूप है वह शाकर अद्वैत से किंचित भिन्न है। शकराचार्य जहा माया को मिथ्या मानते है- (ब्रह्म सत्यजगन्मिथ्या) वहा पाचरात्र मे 'माया' को भगवद्‌शक्ति, मूल प्रकृति, शाश्वत विद्या कहा गया है। जिस प्रकार 'कूटस्थ' या 'पुरुष' जीवात्माओ की समष्टि है उसी प्रकार यह माया समस्त भौतिक पदार्थो की समष्टिरूप और उनका मूल स्रोत है। 'पुरुष' या 'कूटस्थ' के साथ ही 'मूल प्रकृति' अथवा 'माया' शक्ति उत्पन्न होती है तथा इन दोनों के सयोग से ही भौतिक शरीरो और जीवो की उत्पत्ति होती है। भूतिशक्ति का ही विकास 'कूटस्थ' या 'पुरुष' एव 'माया' शक्ति के रूपो मे होता है। 'पुरुष' के रूपो मे प्रद्युम्न का जगत्कर्तृत्व और विष्णु से भी अधिक माहात्म्य पिछले पृष्ठो मे हमने पाचरात्र ग्रथो मे वर्णित देखा। 'कूटस्थ' या 'पुरुष रूपो मे प्रद्युम्न की 'माया' सहचारिणी है। यही कारण है कि प्रद्युम्न की भार्या रति का नाम, जब वह शबर के घर मे रहती है, 'मायावती' है। इस प्रकार शम्बरगृहनिवासिनी 'रति' का नाम 'मायावती' रखे जाने के पीछे जो कल्पना है वह इसी पाचरात्र तत्त्ववाद से प्रेरित है।

प्रद्युम्न के विलक्षण कार्य–व्यापार की सगति भी हम पाचरात्र तत्त्ववाद मे कल्पित उसके देवता रूप मे ही पा सकते हैं उदाहरणार्थ, प्रद्युम्न-चरित्र का एक प्रमुख तत्त्व उसकी भक्षण विलक्षणता है। वह सत्यभामा के घर मे वृद्ध-विप्र-वेश मे भानुकुमार के विवाह के लिए निर्मित समस्त मिष्टान्नादि सामग्री और प्राप्त अन्नधान्यादि का आहार कर जाता है तथा रुक्मिणी के आवास मे पहुँच कर कृष्ण के जलपानार्थ रखे गरिष्ठ दुष्पाच्य लड्डुओ का एकत्र भक्षण कर डालता है। यह असाधारण भक्षण-विलक्षणता उसे कहा से मिलती है? निस्सदेह उस युग के पेटू और भोजी ब्राह्मण भी इसके प्रेरक है किन्तु मात्र इतने से इस कार्य-व्यापार मे अविश्वसनीय अलौकिकता का समावेश सभव नही था। किन्तु हम देखते है कि पाचरात्र मतानुसार विष्णु के सुदर्शन चक्र (सकल्प शक्ति) से उत्पन्न 'माया' शक्ति से 'नियति' एव नियति से 'काल' और काल से ही 'गुण' की उत्पत्ति है। 'काल' कलनात्मक शक्ति है। 'कलना' का एक अर्थ गणना है और कलना का ही एक अन्य अर्थ 'पाचन' भी है क्योकि काल सकल पदार्थो का पाचन भी करता है।[319] इस प्रकार 'कूटस्थ' या 'पुरुष' अपनी सहयोगिनी शक्ति 'माया' से उत्पन्न 'कला' (कलनात्मक शक्ति) के द्वारा समस्त पदार्थो का पाचन करता है। इसी दार्शनिक कल्पना ने प्रद्युम्न-चरित्र विधायक तत्त्वो मे से एक, उसकी 'भक्षण-विलक्षणता' को प्रेरित किया है, इसमे सन्देह नही।

यही बात प्रद्युम्न को प्राप्त विभिन्न लाभो तथा प्रद्युम्न द्वारा प्रयुक्त विविध

आयुधो के सम्बन्ध मे भी है। इनका भी उत्स हमे अ शतः पाचरात्र तत्त्ववाद की देवता विषयक कल्पनाओ मे ही मिलता है। अहिर्बुध्न्यसहिता (अ० 30) मे देवताओ के जो अस्त्र कहे गये है उन्ही मे से अनेक कालान्तर मे अलौकिक शक्तियो के प्रतीक बन कर प्रद्युम्नादि चरित-नायको को अतिप्राकृत और अतिमानुषी कार्य करने की सामर्थ्य-कल्पना से मण्डित करते हैं । प्रद्युम्न-चरित्र-ग्रथो मे (तथा अन्यत्र भी) कृष्ण द्वारा प्रयुक्त या प्रयोगेच्छित सर्वोपरि शस्त्र 'सुदर्शन' की ही कथा ऐसी नही है, अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रो के सम्बन्ध मे भी यही तथ्य है। पाचरात्र मत मे, जैसा कि हम पूर्ववर्ती पृष्ठो मे देख चुके हैं, विष्णु की 'सकल्प' शक्ति ही सुदर्शन है जिससे मूल प्रकृति या 'माया' की उत्पत्ति है। समस्त चराचर सृष्टि की तथा प्राणियो के मोक्ष और वध की अधिष्ठात्री यह सुदर्शन शक्ति ही है। सुदर्शन शक्ति का ही एक रूप क्रिया शक्ति भी है और क्यो कि शक्ति स्पन्द तत्त्व है इसीलिए सुदर्शन 'चलन चक्र' भी है।[320] इस प्रकार भगवान की 'सकल्प' शक्ति की कल्पना क्रमश विकसित होती हुई 'सुदर्शनचक्र' मे रूपायित हो उठी है। अन्य अनेक अस्त्र-शस्त्रो तथा अलौकिक सामर्थ्य सम्पन्न विद्याओ तथा पदार्थ-लाभो के सम्बन्ध मे भी यही तत्त्वचिन्तनात्मक प्रक्रिया कार्यरत दीख पड़ती है।

हमने अहिर्बुध्न्यसहिता के तीसवे अध्याय मे देवताओ के अस्त्र-शस्त्रो के जन्म और नाम के विवेचन के प्रसग मे सहिताकार द्वारा भगवान के पैरो से उत्पन्न असि, रत्न, मदन, मायाधर आदि और अपराग से उत्पन्न मोहन, मकर, अनिद्र, कामरूप, कामरुचि आदि उपसहारास्त्रो के वर्णित किये जाने का उल्लेख किया है। इसी सहिता के 40वें अध्याय मे कहा गया है कि देवताओ के ये अस्त्र 'गुह्य' और 'अति दुर्लभ' है और सुर-असुर मत्र-रूप से ही उनका प्रयोग करते है किन्तु स्व-स्वरूप मे मत्ररूप इन अस्त्रो को असाध्य जानकर देव-कार्य निमित्त इन्द्र के लिए ये भीषण अस्त्र गोचर-रूप मे भी आविष्कृत किए जाते है जिनके दर्शनमात्र से ही शत्रु-सैनिको का विनाश हो जाता है।[321] फिर इन अस्त्रो का स्वरूप वर्णित करते हुए इन देवास्त्रो के मूर्तत्व-अमूर्तत्व के सम्बन्ध मे नारद द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर कहा गया है कि ये अस्त्र मूर्त है या अमूर्त इसका सशय–निवारण देवेश ही कर सकते है।[322] पुन इन देवास्त्रो का मूर्तत्व प्रतिपादित करते हुए सहिताक र का कहना है कि इन अस्त्रो के भीमरूप गात्र होते हैं, विकराल डाढे और घूर्णित रक्तिम नेत्र होते है, विद्युत्-पुजवत् केश होते हैं। इनमे कुछ धूम्रवर्ण के होते हैं तो कुछ शुक्ल और भास्कर वर्ण के। ये अस्त्र निर्बाध रूप से यथाकाम समस्त भुवनो मे विचरण करते हैं। इन अस्त्रो का स्वरूप रहस्यपूर्ण और विचित्र है जैसे शतोदर अस्त्र की कल्पना मे तारो के जाल की रचना है।[323] इसी प्रकार 'विनिद्रास्त्र' की कल्पना मे आषाढ के आकाश, मेघ और अग्नि के उपादानो का विचित्र सयोजन किया गया है।[324]

इस प्रकार हमे इन अस्त्रो की कल्पना मे मत्रो–यत्रो–प्रतीको तथा भौतिक अस्त्र–रूपो का एक विचित्र सम्मिश्रण दीख पडता है। सहिताकार ने स्वय कहा है—'मत्रमेत विचक्षणाः।' प्रद्युम्न–चरित्र के अलौकिक पक्ष की सृष्टि मे इन देवास्त्रो से सम्बद्ध कल्पनाएँ किस प्रकार क्रियाशील रही है इसका एक सक्षिप्त निदर्शन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

देवास्त्र (अहिर्बुध्न्यसहितोक्त)	प्रद्युम्न–चरित्र में उपलभ्य कथा–सूत्र से साम्य
1 काल-पाश (भीमाकार पाशमेव कालपाशमितिस्मृतम्)	1 प्रद्युम्न अपने शत्रुओ,यथा काल-सवर नृप और दुर्योधन के सैनिको को पाश मे बाँध लेता है।
2 आग्नेयास्त्र (पटकोणाग्र ज्वलज्ज्वालमस्त्रमाग्नेय-मुत्तमम्)	2. प्रद्युम्न अनेक वार युद्ध-प्रसगो मे अग्नि वाण का प्रयोग कर अग्नि-वृष्टि करता है।
3. हयशिर (ज्वालाविल वाजिवक्त्रमस्त्र हयशिरोमतम्)	3. प्रद्युम्न मायावी अश्व रचता है जो सत्यभामा का वाग चर जाते हैं। मायावी अश्वरचना कर वह सत्य भामा के पुत्र 'भानुकुमार' को छक'ता है। (लैटिन साहित्य मे 'ट्रोजन हॉर्स' की कल्पना से तुलनीय)
4 तामसम् (सतोयतोयदप्रख्यतामसास्त्रमुदीरितम्)	4 प्रद्युम्न युद्ध–प्रसगो मे भीपण वर्पा कर देता है।
5 शोपणम् (शोपण विकट शृगमस्त्रपर-विशोपणम्)	5. प्रद्युम्न कमण्डलु मे सारी वावडी का जल सोखलेता है।
6 असिरत्न असिरक्त वा (असिरत्नाह्वयदिव्यमस्त्रखगो-महाद्युति)	6. प्रद्युम्न को 16 गुफाओ मे प्रवेश करने पर यक्षादि से रत्नजटित तलवारे भेट मे मिलती है।
7. मोदकी (मोदकी नाम परमावल्लरी पुष्पशालिनी)	7 प्रद्युम्न को भेट मे गदा की प्राप्ति होती है।

8 वैद्याधरम् (वैद्याधरास्त्रमाहुस्तत्पुष्पमालातु मोहिनीम्	8 प्रद्युम्न को भेंट मे विद्याधरो से मालाएँ मिलती हैं।
9 वारुणम् (वारुण जालकाकार द्वात्रिंशच्छिद्र सयुतम्	9 प्रद्युम्न युद्ध मे वारुणास्त्र के प्रयोग से जल-वृष्टि कर देते हैं।
10 शतोदरम् (शतोदरास्त्र भूत स्याच्छतोदर समन्वितम्)	10 प्रद्युम्न सत्यभामा के पुत्र भानु के विवाह हेतु निर्मित समस्त भोज्य सामग्री का भक्षण कर जाते हैं।

इसी प्रकार कदर्पयित, कामरूप, कामरुचि, मदनास्त्र, मायाधर नामक अस्त्रो की संगति प्रद्युम्न के कामदेव के अवतार होने तथा यथाकाम रूप धारण करने (कभी, वृद्ध विप्र, कभी क्षुल्लक, कभी ब्रह्मचारी, कभी भिल्ल कभी बालक कभी डोम या चाण्डाल आदि रूप धारण करने) से तथा अपने पक्ष मे मायासैन्य रचने तथा शत्रु-सैन्य को मूर्च्छित करने आदि से है। अहिर्बुध्न्यसहिता (अ० 41) मे भगवान के सर्वास्त्र-धारी स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि सब अस्त्रों को स्वरूपत. धारण कर भगवान मधु-कैटभ से युद्ध के लिए चले और उन्होंने माया से महासेना का निर्माण किया—'सन्नद्धम्या ताम्या च माययामहासेना निर्माणम्।' प्रद्युम्न भी युद्ध के अनेक अवसरो पर माया-सैन्य की रचना करते हैं।

प्रद्युम्न के लोक-नायक रूप पर उसके अलौकिक देवतारूप के प्रभाव का यह सक्षिप्त निदर्शन मात्र है। इससे उसके देवता-रूप के अध्ययन का महत्त्व असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाता है। हम यह तो नहीं कहना चाहेंगे कि चरित-नायको के अलौकिक अतिमानुषी कृत्यो की समस्त कल्पनाएँ मूलत दार्शनिक सरणि से ही उद्भूत हैं अथवा सर्वांगत दार्शनिक आधारो पर ही प्रतिष्ठित हैं क्यो कि लोकप्रसिद्ध वीरो के निजधरी रूप की सर्जक स्वतत्र कल्पना को जातीय महापुरुषो अथवा काव्य-नायको के चरित्र-क्षेत्र मे उडान भरने का अवकाश मिलता ही है किन्तु इतना तो सप्रमाण कहा ही जा सकता है कि इन लोक-नायको और वीरो के चरित्र-निर्माण मे जो अतिमानुष अतिप्राकृत कृत्यो का विधान है उसके मूल मे पर्याप्त अ श तक सूक्ष्म दार्शनिक कल्पनाओ का भी योगदान है। उनके अलौकिक कार्य-व्यापारो का दार्शनिक आधार भी असदिग्ध है। यह स्वाभाविक ही है क्योकि हमे भूलना नही चाहिए कि इन पात्रो के व्यक्तित्व-रूपो का विकास दार्शनिक (पुराण,सहिता) और साहित्यिक (काव्य) दोनो ही दिशाओ मे हुआ है। अत' एक ही प्रद्युम्न एक ओर भगवद्व्यूह रूप है और दूसरी ओर लौकिक चरित-नायक-रूप भी। इसलिए दार्शनिक अनुचिंतनाओ

श्रौर स्वतन्त्र कल्पनाओं के सयोग से ही काव्य-नायक के रूप मे प्रद्युम्न की चरित्र-सृष्टि हो सकती थी श्रौर तथैव हुई भी है। वस्तुतः एक ही मूल कल्पना एक ओर दार्शनिक क्षेत्र मे अपना सूक्ष्म वैचारिक ताना-बाना बुनती है और दूसरी ओर स्वैर विहार से भी आदिम मन की कौतुकी वृत्तिवश अतिरंजनाओ और अलौकिकताओ की सृष्टि करती है। कल्पना के इन द्विविध रूपो की प्रक्रिया इतनी संश्लिष्ट है कि उन्हे नितान्त विच्छिन्न रूप से देख सकना शक्य नही है तथापि काव्य--नायको के चरित्र--निर्माण मे प्रयुक्त अतिरजित कल्पनाओ के दार्शनिक उत्स और आधार को रेखाकित किये जाने की आवश्यकता स्वत स्पष्ट है। इसी दृष्टि से प्रद्युम्न के लौकिक चरित--नायक रूप और सर्वागीण व्यक्तित्व के अनुशीलन के लिए उनके देवता--रूप के अध्ययन का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है।

संदर्भ * अध्याय 3

1. "आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि. "
श्रीमद्भगवद्गीता 10, 21; 37;
2. ए० डी० पुसालकर: स्टडीज् इन दि एपिक्स एण्ड दि पुराणाज्, पृ० 65.
3 महाभारत, शांतिपर्व, अ० 46 श्लोक 10;
4 वही. अ० 47, 31; 5. वही, अ० 47, 92;
6. वही, अनुशासन पर्व, अ० 147, 44–45;
7. वही, हरिवंशमाहात्म्य, अ० 3, 11; (हरेजाप्य द्वादशाक्षर विद्यया)
8 वही, भीष्मपर्व, अ० 60, 40, तथा नारायणीय उपपर्व, 340, 33–41;
9. वही, शांतिपर्व, अ० 339, 24–27; 72–74, 340, 28, 341, 13–17; 344, 14, 347, 17; 348, 57–58, तथा 351, 12,
10. विस्तृत समीक्षार्थ द्रष्टव्य 'राजवाड़े लेखसंग्रह, प्र० साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ० 85
11. ए० डी० पुसालकर . स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड दि पुराणाज पृ० 74–79
12. एस० के० आयंगार : प्रोसिडिंग्स आफ दि सेकण्ड ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स, कलकत्ता, पृ० 353
13. आर० जी० भण्डारकर · वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रेलिजस सेक्ट्स ऑफ इण्डिया, पृ० 8, 12, 26,
14 वही पृ० 13
15 सी० वी० वैद्य; हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० 38–41
16 लोकमान्य तिलक गीतारहस्य, परिशिष्ट भाग, पृ० 511–25;
17 विण्टरनिज : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर भाग 1, पृ० 465–7
18. सी० वी० वैद्य महाभारत मीमांसा, पृ० 598
19. फर्कुहर आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 45
20 बलदेव उपाध्याय : भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पृ० 35 तथा पद-टिप्पणी सं० 2 पर ई० जे० चिन्नोक कृत एरियन के अंग्रेजी अनुवाद से उद्धृत।
21 पतञ्जलि पाणिनीय अष्टाध्यायी का महाभाष्य, 2, 2, 25
22. महाभारत, उद्योगपर्व, 47, 72;
23 वही, आरण्यकपर्व, 13, 36;
24. बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, पृ० 95

25 ऐपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 10, अभिलेख सं. 669

26 वलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, पृ० 95

27. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० 69

28 वी० आर० आर० दीक्षितार; पुराण इण्डेक्स, भूमिका, पृ० 28

29 वलदेव उपाध्याय; भागवत संप्रदाय, पृ० 65

30. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 24, पृ० 194.

31 'पुराण श्रवण कुर्यात् कृष्णपूजनपूर्वकम्'
—महाभारत हरिवंशपर्व, 4, 8;

32 'सलक्ष्मीपुत्रसहित गोपालं स्थापयेत्तत;'
—वही, 2, 23;

33. वही, 3, 2, 34. वही, शान्तिपर्व, 348, 57;

35 वही, 334, 10, जहां सतयुग मे भगवान वासुदेव के चार अवतारो नर, नारायण, हरि और कृष्ण का उल्लेख है।

36 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द 16 पृष्ठ 25 तथा आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, पृ० 60

37. महाभारत, आश्वमेधिक अनुगीतापर्व, अ० 109.

38. महाशय रामकृष्ण कवि: इण्ट्रोडक्शन टु समूर्तार्चनाधिकरण, पृ० 9

39. ऋग्वेद, 10, 90, 40. शतपथब्राह्मण, 13, 6, 2, 12,

41 महाभारत, शान्तिपर्व, 337, 30, (राजा वसु उपरिचर की कथा के लिए द्रष्टव्य शान्तिपर्व का सम्पूर्ण अध्याय 337)

42. डॉ० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ० 375

43 श्रेडर: इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र, पृ० 144–5,

44. महाभारत, शान्तिपर्व, 341, 15–18, जहाँ अनिरुद्ध को ही सत्त्वप्रधान विराट् आदि पुरुष कहते हुए उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का भी जनक तथा सृष्टि और प्रलय का कर्ता कहा गया है।

45 वही, 348, 57, ('एकव्यूह विभागो वा क्वचित् द्विव्यूह.... ...)

46 सृष्ट्वा सकर्षणं देव स्वयमात्मानमात्मना।
कृष्णं त्वमात्मनास्राक्षी : प्रद्युम्नं चात्मसंभवम्॥
प्रध्युम्नादनिरुद्ध त्व....... इत्यादि। महाभारत, भीष्मपर्व, 65, 70–72;

47 चतुर्व्यूह—कल्पना के लिए द्रष्टव्य . महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 339 से अ० 341

48 वही, 339, 36;

49 'स मन: सर्वभूतानां प्रद्युम्न परिपठ्यते' तथा
'सकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते'
—वही, श्लोक 38 तथा 41

50 वही, 339, 73. 51 वही, श्लोक 74
52 वही, अ० 340, श्लोक 29–33,
53. 'ददृशु सर्वभूतानि कार्ष्णि सर्वेषु शत्रुषु ।
अन्तरात्मनि वर्तन्त क्षेत्रज्ञमिव तं विदु ॥
—वही, हरिवंशपर्व, 2, 96, 67;
[यहाँ कार्ष्णि (प्रद्युम्न) को श्रद्धाभाव से ही 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया प्रतीत होता है न कि दार्शनिक स्थापनापूर्वक ।]
54 एस० के० डे० वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट, पृ० 242
55 महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 339, 65, 71–72,
56 वही, 103–6, 57 वही, 77–107 तथा 349, 37;
58 हेस्टिंग्ज एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड एथिक्स, जिल्द 7, पृ० 193,
59 महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 344, 14–18,
60. वही, 348, 2–6, 61. वही, 336, 20;
62 आर० सी० हाजरा स्टडीज इन दि उपपुराणाज्, कलकत्ता संस्कृत कॉलेज रिसर्च सिरीज़, पृ० 21–22;
63. ए० डी० पुसालकर ' स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड दि पुराणाज पृ० 2
64 वही, पृ० 61
65. राजवाडे लेख–संग्रह, पृ० 84
66 बलदेव उपाध्याय. भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा, पृ० 15
67. फर्कुहर आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 143
68 विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवतपुराण मे दी गई विभिन्न पुराणो तथा उनकी श्लोकसंख्या कुल अठारह पुराणो की श्लोकसंख्या चार लाख होती है। श्रीमद्भागवतपुराण (10, 13, 1–8) से विण्टरनिज का क्रम–साम्य है, केवल वायु तथा हरिवंशपुराण का उल्लेख भागवत में नहीं है।
69 बलदेव उपाध्याय 'पुराण–विमर्श' छठा संस्करण, पृ० 530–569
70. वही, पृ० 545, 71. वही 72. वही, पृ० 576,
73. वही, पृ० 551,
74. वही, पृ० 548, 75 वही, पृ० 570, 76. वही, पृ० 563,
77. वही, पृ० 562, 78. वही, पृ० 552; 79. वही, पृ० 560,
80 वही, पृ० 550, 81. वही, पृ० 581; 82. वही, पृ० 567,
83. वही, पृ० 554, 84 वही, पृ० 558; 85 वही, पृ० 553,
86. वही, पृ० 540–41, 87 वही, पृ० 539;
88 वही, पृ० 100–105,
89 फर्कुहर आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 139

90. वी० आर० आर० दीक्षितार पुराण इण्डेक्स (मद्रास युनिवर्सिटी हिस्टारिकल सिरीज, 1951 ई०) जिल्द 1, भूमिका—भाग, पृ० 28
91 वही, पृ० 27
92. वी० ए० स्मिथ. अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 24
93. दीक्षितार: पराण इण्डेक्स, पृ० 18
94 वही, पृ० 22; 95. वही, पृ० 24, 96. वही, पृ० 29,
97 आर० सी० हाजरा. स्टडीज इन दि उपपुराणाज, पृ० 239
98. फर्कुहर आउटलाइन प्राफ रेलिजस लिटरेचर आफ इण्डिया, पृ० 143, 232,
99 वलदेव उपाध्याय भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पृ० 15
.00 फर्कुहर आउटलाइन आफ रेलिजस लिटरेचर ..... .पृ० 143,
01. राजवाडे लेख—संग्रह पृ० 84,
02. आर० सी० हाजरा · स्टडीज इन दि उपपुराणाज, पृ० 23–24,
03 वही, पृ० 27, 104, वही, पृ० 20,
05 मत्स्यमहापुराण, 53, 59,
06 आर० सी० हाजरा स्टडीज इन दि उपपुराणाज, जिल्द 1, पृ० 16,
07 वही, पृ० 18–19;
08 भविष्यपुराण, 1, 4, 89,
09 विशेष विवेचन हेतु द्रष्टव्य, डा० हाजरा की उक्त पुस्तक का अन्तिम अध्याय 'सम लॉस्ट सौर एण्ड वैष्णव उपपुराणाज'
10. वही. पृ० 16, 111 वही, पृ० 14–15, 112. वही, पृ० 239,
113 वही, पृ० 288–91,
114. विष्णुपुराण, 5, 18, 58 'ॐ नमो वासुदेवाय, नमस्संकर्षणाय च, प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्य अनिरुद्धाय ते नम '
15. आर० सी० हाजरा की उक्त पुस्तक, पृ० 143,
16 विष्णुधर्मपुराण, अ० 102, 103,
17 वही, 66, 127;
18. हाजरा स्टडीज इन. . . पृ० 18–19;
19 वायुपुराण, 111, 21, मत्स्यपुराण, 276, 8;
20. वायुपुराण, 97, 1,
21. नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नम संकर्षणाय च ।।
—श्रीमद्भागवतपुराण, 6, 16, 18;
22 'नमो विश्वप्रवोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने'
—वही, 4, 24, 35;

123. वही, 10, 89, 60;

124. 'सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्र : प्रद्युम्नो नीलदीर्घक '
—अग्निपुराण, खण्ड 1 (संस्कृति संस्थान, बरेली) पृ० 111;

125. 'षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्न · संकर्षणश्च सप्तभि '
—वही, पृ० 113;

126. 'गदी शंखगदी चक्री प्रद्युम्न · पद्मभृत्प्रभु .'
—वही, पृ० 117,

127. वही, पृ० 118;

128. 'प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं शांखं वामे धनु : करे गदाधन्वावृता प्रीत्या.... .
वही, पृ० 120;

129. जनार्दन मिश्र भारतीय प्रतीक विद्या, पृ० 216,

130. एकदेवं चतुष्पादं चतुर्धापुनरच्युत ।
विभेद वासुदेवोऽसो प्रद्युम्नो हरिरव्यय ।। तथा—
अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्म, प्रद्युम्नः काम एव च ।
बलदेव स्वय शेषः कृष्णश्च प्रकृते पर ।।
—ब्रह्मवैवर्तपुराण, अ० 116;

131 विष्णुपुराण, अ० 5

132 श्रीमद्भागवतपुराण, 1, 5, 18, 6, 16, 69, 10, 40, 182; 11, 5, 20;

133. वही, 4, 24, 35–36, 134 वही, 5, 25, 2,

135. वही, 5, 17, 16,

136 शतपथब्राह्मण, 1, 8, 1, 1;

137. वही, 7, 5, 1, 5, 138. वही, 14, 1, 2, 11,

139 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1, 1, 3, 5,

140. वाल्मीकिरामायण, 2, 110;

141 शतपथब्राह्मण, 1, 2, 5, 1;

142. 'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमही, तन्नो विष्णु प्रचोदयात् ......
—तैत्तिरीय आरण्यक, 10, 1, 6;

143 बलदेव उपाध्याय : पुराण–विमर्श, छठा संस्करण, पृ० 164–166,

144 मत्स्यपुराण, 47, 34,

145. हरिवंशपुराण, 1, 41, 18–20,

146 ब्रह्मपुराण, 71, 16; 41, 42,

147. महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 342, अ० 347 तथा अ० 356

148. इति सा सात्विकी मूर्ति अवतारं करोति च।
प्रद्युम्नोति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥
—ब्रह्मपुराण, 71, 16; 41–42;
प्रोद्धतानसुरान् हन्ति धर्मव्युच्छित्तिकारिणः।
पाति देवान् सगन्धर्वान् धर्मरक्षापरायणान् ॥ —वही, 71, 24;

149. बलदेव उपाध्याय : भागवत संप्रदाय, पृ० 115

150 श्रेडर : इण्ट्रोडक्शन टु पांचरात्र, पृ० 96

151. वही, पृ० 16

152. बलदेव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय, पृ० 115–117;
(जहाँ प्रकाशित संहिताओं की सूची दी गई है)

153 वही।

154 फर्कुहर : आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० 182.

155 श्रेडर इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र एण्ड अहिर्बुध्न्यसंहिता, पृ० 3; 19;

156 डॉ० बी० भट्टाचार्य : जयाख्यसंहिता (गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा) भूमिका–भाग

157. वही, पृ० 37, 158. वही, पृ० 259,

159, श्रेडर . इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र, पृ० 15

160. एम० डी० रामानुजाचार्य अहिर्बुध्न्यसंहिता, अडयार लायब्रेरी, मद्रास, जिल्द 1, पृ० 12

161 बी० भट्टाचार्य . जयाख्यसंहिता, पृ० 35

162 प्रद्युम्नसंहिता, गवर्नमेण्ट ऑरिएण्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स, यूनिवर्सिटी लायब्रेरी बिल्डिंग, ट्रिप्लिकेन, मद्रास, पञ्जीयन सं० 3959 बी

163. जयाख्यसंहिता, पृ० 119

164. वही, पृ० 48; 165, वही, पृ० 308, 166 वही, पृ० 306–7;

167. वही, पृ० 70, 168, वही, पृ० 74, 169. वही, पृ० 263;

170. वही, पृ० 284, 171 वही, पृ० 32, 172. वही, पृ० 278;

173 वही, पृ० 74; 174 वही, पटल 31, श्लोक 22–30;

175. बृहद्ब्रह्मसंहिता (आनन्द आश्रम संस्कृत सिरीज़, पूना) पाद 3, अ० 10, श्लोक 26–30,

176 वही, 4, 4, 134, 177. वही, 3, 2, 71–74;

178 वही, 1, 9, 5–25; 179 वही, 1, 13, 149–151;

180. वही, 1, 13, 196; 181, वही, 1, 5, 12, 182. वही, 1, 8, 30,

183 यमः शिवः कुमाराश्च भक्ता ये भूतभाविन।
पाञ्चजन्य मया प्रोक्त. प्रद्युम्नांशसमुद्भवः ॥
—वही, 1, 2, 107;

184. एस० के० आयगार पारमेश्वरसंहिता, भूमिका-भाग, पृ० 4
185 पाञ्चरात्र रक्षाग्रथ (अडयार लायब्रेरी, मद्रास सिरीज) पृ० 84
186 पारमेश्वरसंहिता, अ० 15, श्लोक 691–92;
187. श्रेडर इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र एण्ड अहि० सहिता, पृ० 36
188 लक्ष्मीतन्त्रम्, अ० 10, श्लोक 31–33, 189 वही, श्लोक 37–38
190 वही, अ० 10, श्लोक 34–36, 191 वही, 38, 56,
192. वही, 55, 10–11, 193 वही, 20, 34
194 वही, 45, 54–57; 195 वही, 24, 28,
196. वही, 18, 28–30, 197. वही, 202, 17,
198 अनिरुद्धस्त्वकारोऽत्र, प्रद्युम्न· पञ्चम स्वर ।
संकर्षणोमकारस्तु, वासुदेवस्तु बिन्दुक: ।।
—वही, अ० 24, श्लोक 8
199 वही, 23, 38,
200 दि वैष्णव उपनिषद्स (अड्यार लायब्रेरी सिरीज, मद्रास) पृ० 143,
201 शुकरहस्योपनिषद्, 2, 5,
202. लक्ष्मीतन्त्रम् 24, 28,
203 एकमेवाद्वय ब्रह्म मायया च चतुष्टय ।
रोहिणीतनयो विश्व अकाराक्षरसभव ।।
तैजसात्मक प्रद्युम्न उकाराक्षरसभव, ।
प्रज्ञात्मकोऽनिरुद्धोऽसौ मकाराक्षरसभव ।।
अर्द्धमात्रात्मक कृष्णोयस्मिन्विश्व प्रतिष्ठितम् ।
कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूल प्रकृति रूपिणी ।।
—गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद्, श्लोक 10–13,
204 अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ० 5, श्लोक 17–60,
205. बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 121,
206. अहिर्बुध्न्यसहिता, 5, 17–60, तथा द्रष्टव्य इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र (श्रेडरकृत) पृ० 37–40
207 अहिर्बुध्न्यसहिता, अ० 5, 21; 208 वही, 5, 22,
209. वही, 5, 23–24: 210 वही, 5, 17–60,
211. महाभारत, शान्तिपर्व, 339, 40, 32;
212 लक्ष्मीतन्त्रम्, 5, 9–14,
213. अहिर्बुध्न्यसहिता, 55, 16, 214 वही, 6, 9–12,
215. वही, 55, 18, 216. वही, 6, 33, 217 वही, 6, 7–10.
218 वही, 6, 10–13, 219 वही, 6, 5, 18,

220 बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० 545,
221. एस० एन० दासगुप्त ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, पृ० 42–43;
222. बृहद्ब्रह्मसहिता, पाद 1, अ० 13, श्लोक 11;
223. अहिर्बुध्न्यसहिता, 5, 35; 36;
224 वही, 59, 28–31; 225. वही, 5, 47–48;
226 श्रेडर इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र, पृ० 40 तथा आगे।
227. पौष्करसहिता (अड्यार सिरीज) अ० 36, श्लोक 146–68;
228. बृहद्ब्रह्मसहिता, अ० 13
229 लक्ष्मीतन्त्रम्, 2, 55
230. वेदान्तसूत्र पर शांकरभाष्य, 2, 2, 42;
231 लक्ष्मीतन्त्रम्, 6, 9–14:
232. अहिर्बुध्न्यसहिता, 6, 57;
233. दासगुप्त ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, तृतीय खण्ड, पृ० 158.
234 पुराणसंहिता (चौखंभा सस्कृत सिरीज) अ० 24, श्लोक 44.
235. सुशीलकुमार डे . वैष्णव फ़ेथ एण्ड मूवमेण्ट, पृ० 242.
336. वही, पृ० 246; 237. वही, पृ० 249
238. लक्ष्मीतन्त्रम्, अ० 5 (प्राकृत सृष्टि प्रकाश)
239 श्रीरगराजस्तव, 2, 40;
240. लक्ष्मीतन्त्रम् (वी० कृष्णमाचार्य सम्पादित, अडयार लायब्रेरी, मद्रास सिरीज) पृ० 25
241 सात्त्वतसंहिता, 4, 7–20;
242 लक्ष्मीतन्त्रम् पृ० 37.
243 स्कान्दे, (अप्रकाशिता उपनिषद :, मद्रास), पृ० 175
244 नारसिह (अप्रकाशिता उपनिषद ', मद्रास) पृ० 176
245 श्रीमद्भागवत, 3, 24, 31; 246. वही, 10, 69,
247 वही, 10, 40, 7,
248 गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्, मन्त्र सं० 20
249 लघुभागवतामृत, पृ० 13
250 विष्णुपुराण, 5, 1, 319,
251 श्रेडर : इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र, पृ० 48
252 विश्वक्सेनसहिता (द्रष्टव्य, उपर्युक्त सदर्भ) लक्ष्मीतत्र, 2, 55,
253 पद्मतन्त्र, 1, 2, 81;
254 सात्त्वतसहिता, अ० 12 तथा अहिर्बुध्न्यसहिता, अ० 66;
255 श्रेडर ` इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र, पृ० 45

256 अहिर्बुध्न्यसहिता, 4 62–65; अहि० सहिता की प्रलय–कल्पना पर महाभारत के नारायणीय पर्व की प्राकृत–प्रलय और मोक्ष–कल्पना का स्पष्ट प्रभाव है, द्रष्टव्य महाभारत, शान्तिपर्व, 347, 16, तथा 344, 13–20

257. दि वैष्णव उपनिषदाज, अडयार लायब्रेरी सिरीज, पृ० 29,

258 महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 354, श्लोक 13–20;

259. पाद्मसंहिता, ज्ञानपाद, 12, 49–53,

260 अहिर्बुध्न्यसहिता, 55, 16–19; 261 वही, 55, 38–40,

262 दि वैष्णव उपनिषद्स, अडयार लायब्रेरी सिरीज, पृ० 193,

263 अहिर्बुध्न्यसहिता, अ० 6 श्लोक 9,

264 महाभारत, शान्तिपर्व, 348, 82, 265 वही, 349, 64,

266 अहिर्बुध्न्यसहिता, जिल्द 1, पृ० 185.

267 वही, पृ० 158, 268, वही, 16, 10, 269 वही, 16, 4-6,

270 अहिर्बुध्न्यसहिता, जिल्द 1, पृ० 158,

271 वही, पृ० 73–75; 272 वही, 17, 3, तथा आगे के श्लोक।

273 विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य जयाख्यसहिता, 42–58, तथा अहिर्बुध्न्य सहिता, अ० 16 तथा 17,

274 वी० भट्टाचार्य जयाख्यसहिता, भूमिका–भाग, पृ० 27–30,

275 अहिर्बुध्न्यसहिता, अ० 17, श्लोक 42–46,

276 बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० 13,

277 वही, पृ० 14,

278 दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 448,

279 विष्णु च पुरुष सत्यमच्युत चानिरुद्धकम्।
विष्ण्वादिमूर्तयस्त्वेता : पञ्चमूर्तयईरिता ॥
—अत्रिप्रोक्त समूर्तार्चनाधिकरण, पृ० 183;

280 वही, पृ० 184,

281 परमेश्वरसंहिता, अ० 15, श्लोक 191–192,

282 वैखानस आगम, पृ० 384,

283 मरीचिसंहितायां श्री विमानार्चनकल्प, व्यंकटेश्वर प्रेस, मद्रास, पृ० 146;

284 वैखानस आगम, पृ० 384–85, 285 वही।

286 अत्रिप्रोक्त समूर्तार्चनाधिकरण अ० 61, श्लोक 5–6,

287 वही, अ०61, श्लोक 25,

288 मरीचि प्रोक्त वैखानस आगम मे 'ऊषा' की जगह 'रामा' को अनिरुद्ध की पत्नी बताया गया है।
—मरीचि प्रोक्त वैखानस आगम, स० के० साम्बशिवशास्त्री, अनन्तशयनम् संस्कृत ग्रंथावलि, त्रिवेंद्रम, पृ० 206

289 मरीचिसंहितायां श्रीविमानार्चनकल्प, पृ० 385,

290 वैखानस आगम, क्रियाधिकार भृगुसंहिता, व्यंकटेश्वर ओरिएण्टल इण्स्टी-ट्यूट, तिरुपति, पृ० 363.

291 वही, पृ० 364; 292. वही, पृ० 365, 293 वही, पृ० 366,

294 वही, पृ० 367 295. वही, पृ० 360, 296 वही, पृ० 361,

297. 'द्वे वने स्त कृष्णवनं भद्रवनं तयोरन्तर्द्वादश वनानि
पुण्यानि पुण्यतमानि तेष्वेव देवास्तिष्ठन्ति सिद्धा
सिद्धिं प्राप्तास्तत्र हि रामस्य राममूर्ति प्रद्युम्नस्य
प्रद्युम्नमूर्तिरनिरुद्धस्यानिरुद्धमूर्ति कृष्णस्य कृष्णमूर्ति-
र्वनेष्वेव मधुरास्वेव द्वादशमूर्तयो भवन्ति ....'इत्यादि ।
—गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद्, 25,

298 वही, 42,

299 त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषद्, 7, 41;

300 त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्, 143,

301 रामशंकर भट्टाचार्य इतिहासपुराण का अनुशीलन, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, पृ० 77;

302 द्रष्टव्य नगेन्द्रनाथवसु कृत 'हिन्दी विश्व-कोष'

303 वही ।

304 नंदलाल डे : 'हिस्ट्री ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट आफ हुगली' (जर्नल ऑफ एसियाटिक सोसायटी आफ बंगाल 1910 ई० पृ० 610)

305 नंदलाल डे . ज्योग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० 158;

306 अहिर्बुध्न्यसंहिता, 5, 35-36,

307 पौष्करसंहिता, 36, 146-68;

308. बृहद्ब्रह्मसंहिता, अ० 13; लक्ष्मीतंत्रम् पृ० 37; तथा सात्त्वत-संहिता, 4, 7, 20;

309. बृहद्ब्रह्मसंहिता, 30, 10, 26-30; तथा जयाख्यसंहिता, पृ० 284,

310 बृहद्ब्रह्मसंहिता, 5, 12, तथा पाञ्चरात्ररक्षा ग्रंथ, पृ० 84;

311 जयाख्यसंहिता, पृ० 284;

312 अहिर्बुध्न्यसंहिता, 5, 17-60,

313. बृहद्ब्रह्मसंहिता, 8, 30, 314. वही, 2, 107;

315 वही, 1, 13, 196; 316. लक्ष्मीतन्त्रम्, अ० 5;

317 महासनत्कुमार संहिता, श्रेडर के इण्ट्रोडक्शन टु पाञ्चरात्र में पृ० 36 पर उद्धृत

318 "इंद्र तथा अश्विन की पूजा का प्रारंभ इसलिए हुआ कि मूलत ये ऐतिहासिक वीर थे जिन्होंने अतीत मे अमित पराक्रम के कार्य किये थे। पीडितो की रक्षा और दुष्टो का दलन करने के कारण ये अपनी मृत्यु के पश्चात् अथवा अपने जीवन–काल से ही, देवता-रूप में पूजे जाने लगे तथा निजन्धरी कथाओ एवं उपासना–विधियों मे इनका रूप अन्य देवताओ से घुल–मिल गया।"

—लायनेट डी० बार्नेट हिंदू गॉड्स एण्ड हीरोज, पृ० 25,

319. अहिर्बुध्न्यसंहिता, जिल्द 1, पृ० 57, कालस्य पाचनं रूपं यत्रतत्कलनात्मकम्

320. वही, अ० 16, श्लोक 4–6, 321. वही, अ० 40, श्लोक 4–7,

322. वही, अ० 35,

323 'तारं प्रमाणपर्याय लुप्तास्त्रेति पदं तत:। जालायेतिप्रयोक्तव्यं विद्दु'

—अहिर्बुध्न्यसंहिता, 35, 27,

324. मुण्डोमायी तथाऽऽकाश आषाढश्च तत परं ।।
मेषो मायायुतोऽत्रिश्च सदीर्घाग्निस्तत : पर ।
मुद्रायेति शिरोऽन्तोयं विनिद्रमभिधीयते ।।

—अहिर्बुध्न्यसंहिता. अ० 35, श्लोक 60,

अध्याय : चार

卐

प्रद्युम्न के व्यक्तित्व का लौकिक पक्ष

प्रद्युम्न के शाब्दिक अभिधान (या नामकरण) और उसकी प्रेरक मूल कल्पना तथा प्रद्युम्न के देवत्व (कामदेव के अवतार और स्वतन्त्र देवता-रूप मे उसके देवता-व्यक्तित्व के विकास) का अध्ययन पिछले तीन अध्यायों का विषय रहा है। प्रद्युम्न का मानव-व्यक्तित्व अभी तक अस्पष्ट रहा है जिसका अध्ययन समीचीन है।

1 चरित-नायकों के लौकिक व्यक्तित्व का महत्व

वस्तुत यह भारतीय श्रद्धाभिभूत पारलौकिकता-परक जन-मानस की सामान्य प्रवृत्ति रही है कि उसने आधिभौतिक उद्भावनाओ और कल्पनाओ की तुलना मे भौतिक तथ्यो और ऐतिह्य की उपेक्षा की है। यही कारण है कि हमारे चरित-नायको का लौकिक पक्ष उभर कर सामने नही आ सका है। पौराणिक चरितनायको के सम्बन्ध मे यह बात विशेष रूप से चरितार्थ होती है। अमूर्त भावो और व्यापारो के मानवीकरण और मानव व्यक्तित्वो और तथ्यो के अमूर्तिकरण की प्रवृत्ति मनुष्य का सहज स्वभाव है। यही कारण है कि लोकमान्य वीरो और जातीय पुरुषो के मानवीय व्यक्तित्व और दैवी रूप परस्पर घुल-मिल कर एकाकार हो गये है। इस एकीकरण की प्रक्रिया मे मानवीय पक्ष की ही अपूरणीय क्षति हुई। अतः हमारे इतिहास प्रसिद्ध लोकपुरुषो के मानवीय पक्ष का उद्घाटन, तार्किकता और तथ्यात्मकता के आग्रही इस बौद्धिक युग की, फलतः हमारे अध्ययन की अनिवार्य माग है। कृष्ण और उनके यादववंश सम्बन्धी इन जातीय और पारिवारिक सूत्रो का उल्लेख करने मे हमारा मुख्य उद्देश्य कृष्ण और उनके वश वीरो के अपेक्षाकृत उपेक्षित मानव-पक्ष को उद्घाटित करना है जिसमे वे परम भागवत या विष्णु और उनके व्यूह-अवतार-रूप मे देवता-पीठिका

पर स्थित न होकर लोक-जीवन की राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि मे क्रियाशील होते हुए हमारी राग-विरागादि भावानुभूतियो के सहज आलम्बन बनते है। कृष्ण के बाल्यकाल (गोकुल-जीवन) को लेकर कवियो ने भाव-प्रवण और सवेदनशील साहित्य की सृष्टि यत्किंचित की है, यद्यपि उसमे भी शकटासुर-भञ्जन, पूतना-हनन, कालिय-मर्दन, गोवर्द्धन-धारण जैसे अनेक अतुल अलौकिक शौर्य-प्रसगो से या चीर-हरण जैसी दार्शनिक रूपक-योजनाओ मे चमत्कृति या श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न बाधक हो जाता है। फिर, कृष्ण के प्रौढ-जीवन का मानवीय पक्ष तो और भी उपेक्षित है। डॉ० बलदेव उपाध्याय ने इसी अभाव की ओर इन शब्दो मे ध्यान आकर्षित किया है— 'वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व को इतनी अधिक चर्चा भक्ति-साहित्य तथा कृष्ण-काव्यो मे है कि उनका लौकिक व्यक्तित्व आलोचको तथा सामान्य जनो की दृष्टि से एक प्रकार से ओझल ही रहता है। भक्तो की उधर दृष्टि ही नही जाती कि उनका लौकिक जीवन भी उतना ही भव्य तथा उदात्त है जितना उनका अलौकिक जीवन मधुर तथा सुन्दर है। पुराणो मे विशेषकर श्रीमद्भागवत मे, श्रीकृष्ण वाणी के परम वर्णनीय विषय मान गये है। जो वाणी श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन नही करती, वह वायस तीर्थ के समान उपेक्षणीय तथा गर्हणीय है, हसतीर्थ के समान श्लाघनीय तथा आदरणीय नही"।[1] इस कथन का श्रीकृष्ण के लौकिक चरित्र के अनुरोध से भी सम्बन्ध स्वीकार किया जाना चाहिए।[2]

हरिवश तथा पुराणो मे कृष्ण का भगवद्रूप ही अधिक अर्चित-चर्चित है क्यो इनका उद्देश्य ही कृष्ण-भक्ति का उत्कर्ष था किन्तु महाभारत मे कृष्ण तथा उनके अन्य वशवीरो के लौकिक चरित्रो की अभिव्यंजना भी यथोचित रूप मे हुई है। अत प्रद्युम्न-चरित्र के लौकिक-मानवीय पक्ष की उद्‌घाटक सारसामग्री के लिए भी मूल स्रोत के रूप मे हम महाभारत के ही आभारी हैं। जब जन-मन-नायक, सधि-विग्राहक, धर्म-सस्थापक, युगावतार श्रीकृष्ण का लौकिक जीवन ही इतना उपेक्षाच्छन्न है प्रद्युम्न जैसे व्यूह या अ श-अवताररूप वशवीरो के चरित्रो का लौकिक पक्ष तो प्राय तिमिरावृत्त ही है। फिर भी खद्योतो की भाँति कुछ जीवन-स्फुल्लिग इस अमानिशा मे चमक ही गये है।

2. प्रद्युम्न-व्यक्तित्व के विविध रूप

प्रद्युम्न जितने अज्ञात और उपेक्षित रहे हैं उस अनुपात मे उनका व्यक्तित्व नगण्य नही रहा है। उनके चरित्र का विविध प्रसार, नाना-कर्तृत्व-सवलित उनका जीवन-व्यापार अनेकश साहित्य का उपजीव्य रहा है। पुरातन वाङ्मय (पुराण, महाभारत, वष्णव सहिता-साहित्य आदि) मे प्राप्य प्रद्युम्न-चरित्र तथा उसके अभिव्यजक सम्पूर्ण विवरणो को इस प्रकार
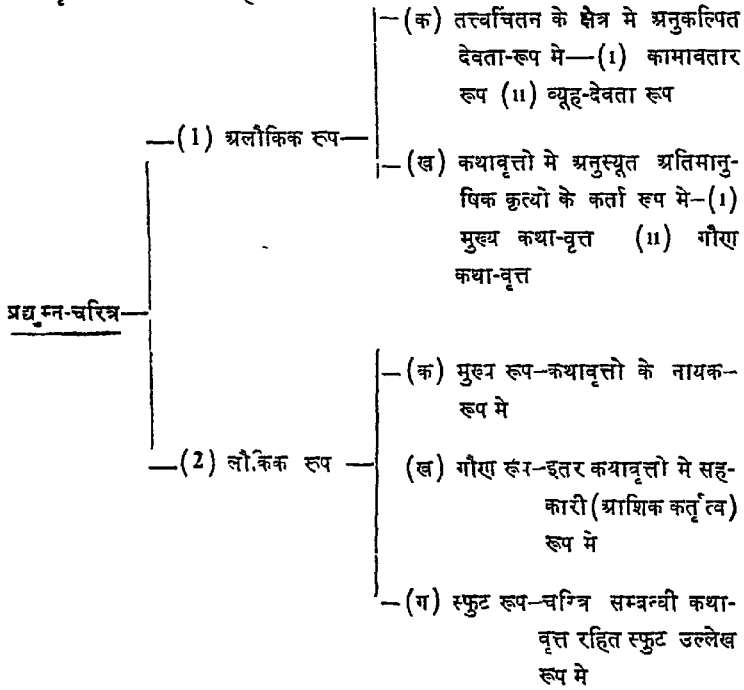
इस वर्गीकरण से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न के अलौकिक और लौकिक रूपो का विभेदीकरण सरल नही है। विशेषत कथा–वृत्तो मे तो ये दोनो रूप अविच्छिन्न रूप से सश्लिष्ट हैं। फिर भी हम यथास्थान उनके सापेक्ष महत्व और परस्परा–रोपण को स्पष्ट करने का यत्किंचित प्रयास करेंगे। उपर्युक्त सारणी मे उल्लिखित प्रद्युम्न–चरित्र–सग्राहक सार–सामग्री के अन्तर्गत पिछले अध्यायो मे हमने पद 1 (क) अर्थात् प्रद्युम्न के अलौकिक देवता रूप का अध्ययन प्रस्तुत किया। पद 1 (ख) तथा 2 (क) अर्थात् मुख्य कथा-वृत्तो मे प्रद्युम्न-चरित्र के लौकिक तथा अलौकिक पक्षो का अध्ययन आगामी अध्यायो मे प्रस्तुत किया जाएगा। प्रस्तुत अध्याय मे पद 2 (ख) (ग) अर्थात् गौरा कथावृत्तो मे तथा स्फुट उल्लेखो के रूप मे उपलभ्य प्रद्युम्न-चरित्र के लौकिक पक्ष का आकलन किया जाएगा।

पद-टिप्पणी—प्रद्युम्न–(1) एक राजा जो चक्षुर्मनु के बारह पुत्रो मे से एक था। इसकी माता का नाम नड्वला था। इसे प्रद्युम्न नामान्तर भी प्राप्त है।[1] भागवत में यह ध्रुव के वश में वरिणत है। ध्रुव को स्वायंभुव मनु का पौत्र

प्राचीन भारतीय इतिहास मे प्रद्युम्न नाम-धारी एकाधिक महापुरुष हुए हैं (द्रष्टव्य, पूर्व-पृष्ठ पर मुद्रित 'प्रद्युम्न' विषयक पद-टिप्पणी की नाम-सूची)। इस सूची से स्पष्ट है कि न केवल 'प्रद्युम्न' नाम महिमाशाली और लोकप्रिय था अपितु प्रद्युम्न नामक कुल चार नृपति इतिहास मे विख्यात हो चुके है जिनमे से दो महान नृपति हमारे चरित-नायक प्रद्युम्न से पूर्ववर्ती और एक परवर्ती हो चुके हैं। परवर्ती 'प्रद्युम्न कामदेव' (नेपाल नरेश) का नाम इसका भी परिचायक है कि ईसा के एक सहस्र वर्ष से अधिक पूर्व हुए कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न का नाम तथा उनके कामदेव के अवतारत्व का लोक-प्रवाद ईसा के एक सहस्र वर्ष बाद तक भी सुदूर नेपाल देश तक मे लोकप्रियता और गौरव का आस्पद रहा। 'प्रद्युम्न' नाम के मूल उत्स तथा 'द्युम्न' के समधात्विक किंतु भिन्न उपसर्गीय धृष्टद्युम्न, सुद्युम्न, इंद्रद्युम्न शतद्युम्न, बृहद्द्युम्न आदि अभिधानो के प्रचलन विषयक उल्लेखो की पौराणिक वाङ्मय तथा महाभारत मे उपलब्धि को हम पहले ही चिन्हित कर चुके हैं।[13]

कहा गया है। ध्रुव की पीढ़ी भागवत मे इस प्रकार है—
ध्रुव > वत्सर > पुष्पार्ण > व्युष्ट > सर्वतेजा > चक्षु. (चाक्षुष मन्वन्तर का संस्थापक) > प्रद्युम्न[5]। भागवत मे इस प्रद्युम्न के भाई उल्मुक की तीसरी पीढी मे पृथु को बताया गया है, उल्मुक > अंग > वेन > पृथु जबकि पृथु अन्यत्र पुराणों मे इक्ष्वाकु वंश मे वैवस्वत मनु की पांचवी पीढ़ी में है।[6] यदि भागवत का साक्ष्य सही है तो यह प्रद्युम्न चाक्षुष मन्वतर मे दूसरी ही पीढी मे होने से हमारे चरित-नायक प्रद्युम्न से कहीं प्राचीनतर होना चाहिए।

(2) सूर्यवंश के निमिकुल मे उत्पन्न एक राजा जो वायुपुराण के अनुसार भानुमत राजा का पुत्र था।[7] ब्रह्माण्डपुराण[8] तथा विष्णुपुराण[9] मे भानुमत का नाम 'भानुमान' कहा गया है जो विष्णुपुराणानुसार इक्ष्वाकु-पुत्र निमि के बाद मिथिला की गद्दी पर आसीन वैदेह जनक से बीसवी पीढ़ी मे हुए सीरध्वज (सीता के पिता) का पुत्र (भानुमान) था।[10] वायुपुराण भी कहता है कि सीरध्वज से भानु-मान का जन्म हुआ जो मैथिल नाम से विख्यात था। उस राजा भानुमान का पुत्र प्रतापशाली प्रद्युम्न हुआ।[11] इस प्रकार यह निमिवंशीय प्रद्युम्न सीता का भतीजा होने से कृष्णवंशीय प्रद्युम्न से पूर्ववर्ती सिद्ध होता है।

(3) सोम (चंद्र) वंश के क्रोष्टु-कुल मे उत्पन्न सुविख्यात कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न, हमारा चरित-नायक, जिसका वंश-वृत्त पिछले पृष्ठो पर दिया जा चुका है।

(4) 'प्रद्युम्न कामदेव' नामक राजा जो 1065 ई० मे नेपाल का शासक था। इसका अपर नाम पद्मदेव भी था। नवाकोट ठाकुरी बलदेव का पुत्र था। 'प्रद्युम्न कामदेव' का पुत्र नागार्जुनदेव हुआ जिसका पुत्र शंकर देव 1071–72 ई० मे नेपाल की गद्दी पर बैठा।[12]

प्राय. सभी पुराण तथा महाभारत एक स्वर से स्वीकार करते है कि प्रद्युम्न रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण के पुत्र थे ।[14] यही नही, वे कृष्ण की विभिन्न आठ पटरानियो से उत्पन्न साम्ब चारुदेष्ण आदि तेरह प्रधान पुत्रो मे भी सर्वप्रथम थे ।[15]. ये कामदेव के अ श से उत्पन्न वीर्यवान पुत्र थे ।[16] ब्रह्मपुराण भी यही कहता है ।[17] इन्हे वशवीर भी कहा गया है ।[18]

प्रद्यु म्न का वर्ण और काति तथा उनकी वेश-भूषा अतीव मनोहारी थे । उनका शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामवर्ण था । वे रेशमी पीताम्बर धारण करते थे । उनकी घुटनो तक लम्बी भुजाएँ थी, रतनार

3 प्रद्यु म्न का आकृति-सौंदर्य

नेत्र थे और अधरो पर मद-मद मुस्कान की छटा सदा रहती थी । उनके मुख-कमल पर नीली घुँघराली अलको रुपी भृ गावलि क्रीडानिरत रहती थी । उनकी आकृति मे अपने पिता श्रीकृष्ण ने इतना साम्य था कि जब वे शवर-वध के अनन्तर लौट कर द्वारका आये तो अन्त पुर की स्त्रियाँ उन्हे श्रीकृष्ण समझकर लज्जा से सकुचा गयी और इधर-उधर छिप गयी । फिर ध्यान से देखने पर स्त्रियो को ज्ञात हुआ कि इनमे तो श्रीकृष्ण से भी कुछ अधिक विलक्षणता है । कृष्ण से आकृति-साम्य के कारण ही रुक्मिणी को उन्हे देखकर अपने खोये हुए पुत्र का स्मरण हो आया और वात्सल्य-भाव-वश स्तनो से दुग्ध स्त्रवित होने लगा [19] क्यो कि प्रद्यु म्न का मुख, केश और केशात भाग नारायण के समान और उनकी दोनो जाँघे भुजाएँ और वक्ष-स्थल श्वसुर हलधर के सदृश है ।[20] रुक्मिणी को आश्चर्य होता है कि इसे शार्ङ्ग-पति श्रीकृष्ण की-सी रूपरेखा, अ ग-गठन, चाल-ढाल, मुस्कान-चितवन और वोल-चाल कहाँ से प्राप्त हो गयी ।[21] प्रद्यु म्न का रूप-रग श्रीकृष्ण से इतना मिलता था कि उन्हे श्रीकृष्ण समझ कर उनकी माताएँ भी मुग्ध हो जाती थी और उनके सामने से हट कर एकान्त मे चली जाती थी ।[22] पद्मदललोचन प्रलम्वबाहु प्रद्यु म्न मानव-लोक मे सबसे सुन्दर थे । उनका रूप-लावण्य इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखती थी उनके मन मे शृ गार रस का स्वत उद्दीपन हो जाता था ।[23] प्रद्यु म्न असाधारण रूप से कृष्ण से भी विलक्षण सु दर ही नही थे, उन्हे अपने सौंदर्य का गर्व भी था । उनके रूप-मद को कृष्ण स्वय प्रकट करते है । महाभारत मे कृष्ण ने अपनी विषम राजनीतिक स्थिति का वर्णन नारद से किया है जिससे तत्कालीन अस्त-व्यस्त विशृ खल राजनीतिक स्थिति और उनकी क्षुब्ध मनस्थिति का सजीव परिचय ही नही मिलता अपितु उनके प्रिय परिजनो के चरित्र की—जिनमे से एक प्रद्युम्न भी हैं—झाँकी भी मिलती है । कृष्ण कहते है—'हे नारद, नाम तो मेरा ईश्वर है परन्तु करता हूँ दासता अपनी जातिभाइयो की । अपने इन दायादो की चाकरी से भोग तो आधा ही मिलता है परन्तु गालियाँ खूब मिलती है । देवर्षे, जैसे अग्नि को प्रकट करने का इच्छुक व्यक्ति अरणीकाष्ठ का मथन करता है वैसे ही मेरे ये

स्वजन-सम्बन्धी कटुवाणी से मेरे हृदय को मथित और दग्ध करते रहते है। फिर भी मुझे क्षमाशील ही रहना पडता है। हे नारद जी, मेरे जेठ भाई बलरामजी में असीम बल है। वे सदा बल के नशे मे ही चूर रहते हैं। छोटे भाई गद मे अत्यत सुकुमारता है अत' वे नजाकत के मारे मरे जाते हैं। रह गया पुत्र प्रद्युम्न सो उसे तो सदैव रूप की मदहोशी बनी रहती है। इस प्रकार इन सहायको के होते हुए भी मै अत्यन्त असहाय हूँ। हे महामते, जैसे दो जुआरियो की एक ही माता दोनो पुत्रो मे से किसी की जीत चाहते हुए भी दूसरे की पराजय नही चाहती उसी प्रकार मेरे चित्त की भी द्विधापूर्ण स्थिति है। ऐसी दशा मे मेरा अपना तथा मेरे इन जातिभाइयो का जिस प्रकार भला हो वह उपाय बताने की आप कृपा करें।[24] कृष्ण के इन हार्दिक उद्गारो मे प्रद्युम्न इत्यादि कुटुम्बियो के प्रति आत्मीयता झलकती है। इनमे वास्तविक कौटुम्बिकता का जीवन्त स्पर्श है और एक पारिवारिक जन के भुक्त भोगी हृदय की सवेदनशीलता है। ये उक्तियाँ प्रद्युम्न आदि के लौकिक चरित्र की उत्कृष्ट अभिव्यजक है। यह खेद का विषय है कि आत्मीयता और चरित्र की लौकिकता के व्यजक जीवन-सितार के इस तार को आगे के कथाकार यथेष्ट कौशल से स्पन्दित और झकृत नही कर सके।

प्रद्युम्न अपने माता-पिता की एकमात्र सतान नही थे। पौराणिक साहित्य मे उनके अनेक भाइयो तथा एक-आध स्थल पर उनकी एक बहन का भी उल्लेख हुआ है।

4. प्रद्युम्न के भाई-बहिन

विष्णुपुराण का कहना है कि चक्रपाणि भगवान श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ एक रानियो से उत्पन्न आठ अयुत अर्थात् आठ लाख अस्सी हजार पुत्रो मे से रुक्मिणी-नदन प्रद्युम्न ही सर्वश्रेष्ठ थे। पुत्रो की यह सख्या भगवान के अलौकिक रूप का प्रभाव लिये हुए है क्योकि विष्णुपुराण ही यह भी कहता है कि इन लक्षाधिक पुत्रो मे 13 पुत्र ही प्रधान थे जिनमे प्रद्युम्न भी एक थे।[25] प्रद्युम्न के अतिरिक्त चारुदेष्ण और साम्ब का नाम भी लिया गया हैं। अन्य पुत्रो मे सत्यभामा के गर्भ मे भानु और भौमेरिक, रोहिणी के गर्भ से दीप्तिमान और ताम्रपक्ष, जाम्बवती से साम्ब, नाग्नजितीसत्या से भद्रविद शैव्या से सग्रामजित, माद्री से वृक, लक्ष्मणा से गात्रवान तथा कालिंदी से श्रुत आदि पुत्रो के उत्पन्न होने का उल्लेख है।[26] उक्त 13 प्रधान पुत्रो की सूची मे विष्णुपुराण मे 12 पुत्रो को गिनाया गया है। इनमे चारुदेष्ण के अतिरिक्त सभी प्रद्युम्न के सौतेले भाई है, सहोदर नही। श्रीकृष्ण के 13 प्रधान पुत्रो मे प्रद्युम्न ही सबसे बडे पुत्र थे।[27] श्रीमद्भागवत मे प्रधान पुत्रो की सख्या 18 कही गयी है। इन अठारह यशस्वी महारथी पुत्रो मे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध के नाम है।[28] इन पुत्रो मे भी सबसे श्रेष्ठ रुक्मिणी-नदन प्रद्युम्न थे जो सभी गुणो मे अपने पिता

श्रीकृष्ण के तुल्य ही थे।[29] अन्यत्र भागवतकार ने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों में से एक बताते हुए उसके 10 पुत्रों—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचंद्र, विचारु और चारु के नाम गिनाये है।[30] श्रीकृष्ण की आठों पटरानियों में से प्रत्येक के दस-दस पुत्रों का भागवत ने उल्लेख किया है।[31] इनमे सत्यभामा के भानु, सुभानु तथा जाम्बवती के साम्ब का नाम महत्त्वपूर्ण है क्योंकि प्रद्युम्न-चरित्र ग्रंथों मे प्रद्युम्न-कथा के व्यापारों से इनका भी सम्बन्ध है। महाभारत मे एक स्थान पर रुक्मिणी के 8 पुत्र गिनाये गये हैं जिनमे भागवतोक्त तीन नाम प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और सुचारु के साम्य के अतिरिक्त पाच अन्य नये नाम—चारुवेश, चारुश्रवा, चारुयश, यशोधर और शभु है।[32] किन्तु अन्यत्र महाभारत मे ही रुक्मिणी के 10 पुत्रों की दूसरी सूची है जिनमे भागवतोक्त, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुगुप्त, भद्रचारु, सुचारु, चारु—ये सात नाम समान और तीन नाम नये सुषेण, चारुबाहु और चारुविंदु है जो भागवत के चारुदेह, चारुचद्र और विचारु के स्थानीय है [33] एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्रद्युम्न की एक बहिन 'चारुमती' नाम वाली श्रेष्ट रुक्मिणी-पुत्री का भी उल्लेख हरिवशपर्व मे है। हरिवश मे ही अन्यत्र चारुमती को रुक्मिणी की पुत्री बताते हुए10 पुत्रों की एक और सूची दी है जिसके अनुसार प्रद्युम्न सबसे बडे पुत्र थे, उनसे छोटे चारुदेष्ण, फिर क्रमश चारुभद्र, चारुगर्भ, सुदेष्ण,द्रुम, सुषेण, चारुगुप्त, चारुविंद और सबसे छोटे चारुबाहु थे।[34] इस सूची मे 'द्रुम' और 'चारुगर्भ' नाम बिल्कुल नये हैं।

विष्णुपुराण मे भी रुक्मिणी के 10 पुत्र तथा एक पुत्री चारुमती का उल्लेख है। विष्णुपुराणोक्त 10 नाम—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविंद, सुचारु और चारु है।[36] विष्णुपुराण, भागवतपुराण और हरिवशपर्व की सूचियों मे पर्याप्त साम्य है। विष्णुपुराणोक्त सूची से भागवत मे सिर्फ दो नाम सुषेण और चारुविंदु नही मिलते। (जिनके स्थान पर भागवत मे विचारु और चारुचद्र नाम है) तथा हरिवश मे केवल एक नाम का अन्तर है—(विष्णुप्रोक्त चारुदेह के स्थान पर हरिवश मे चारुबाहु) अत: अपेक्षाकृत प्राचीनता प्रामाणिकता और अधिकाधिक साम्य की दृष्टि से विष्णुपुराण की सूची अधिक ग्राह्य और स्वीकार्य होनी चाहिए। महाभारत, अनुशासनपर्व की सूची अपूर्ण है और उसके 8 नामों मे से केवल 3 नाम ही उक्त सूचियों मे मिलते हैं। शेष 5 नाम तीनों सूचियों से अनमिल हैं अत उनकी स्वीकृति सदिग्ध है। इस प्रकार प्रद्युम्न के नौ सहोदर भ्राता तथा अनेक सौतेले भाई थे जिनमे सत्यभामा पुत्र भानु और सुभानु तथा जाम्बवती-नदन साम्ब प्रमुख थे। सहोदर भ्राताओं मे चारुदेष्ण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि उसके लिए यत्र-तत्र विशेष उल्लेख प्राप्त होते है। हरिवंश-पर्व मे लिखा है कि श्रीकृष्ण ने अपने चाचा (वसुदेव के छोटे भाई) अपुत्र गण्डूष को अपना पुत्र चारुदेष्ण तथा अन्य तीन पुत्र (दत्तक) दे दिये थे। यह

चारुदेष्ण रुक्मिणी का छोटा पुत्र महाभुज था और वह वीर सग्राम किये विना न् लौटता था। उसका यह नाम 'चारुदेष्ण' इसलिए पडा था कि उसके पीछे सैंकडो कौए इस इच्छा से चलते थे कि शत्रु को मार-मार कर हमे चारु (मिष्ट) मास देगा।[36]

साम्ब-जन्म के सकेतो से पता चलता है कि साम्ब का जन्म तब हुआ था जब प्रद्युम्न युवा हो चुके थे। अनुशासनपर्व मे श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते है कि जब रुक्मिणी के बुद्धिमान पुत्र प्रद्युम्न द्वारा शबरासुर का वध करने पर 12 वर्ष व्यतीत हो गये तब एक दिन जाम्बवती ने मुझसे पुत्र के लिए कहा। हे युधिष्ठिर, रुक्मिणी के प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि पुत्रो को देखकर जाम्बवती को भी पुत्र की कामना हुई थी। वह कहने लगी कि हे अच्युत, रुक्मिणी मे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, चारुश्रवा, चारुयश और शभु नामक पुत्रो को उत्पन्न किया है उसी प्रकार मुझे भी एक पुत्र दीजिए।[37] इसके बाद कृष्ण का उपमन्यु ऋषि के पास जाना, शकर के दर्शन कर तण्डि रचित शिवस्त्रोत सुन शिव-पार्वती मे आठ-आठ वरदान प्राप्त करना इत्यादि वर्णित है। इससे स्पष्ट है कि जाम्बवती-पुत्र साम्ब के जन्म से पूर्व प्रद्युम्न और उसके सात सहोदर भ्राता उत्पन्न हो चुके थे। साम्ब का जन्म प्रद्युम्न द्वारा शबर-वध के 12 वर्ष पश्चात् हुआ। प्रद्युम्न ने शबर-वध कब किया ? वैष्णव परम्परा मे निश्चित आयु न देकर यही कहा गया है कि वे रूढ यौवन'[38] अथवा 'यौवनस्थ' हो चुके थे।[39] हाँ, यह यौवनावस्था रसायन-प्रयोग से शीघ्र ही आयी थी।[40] जैन परम्परा मे प्रद्युम्न का कालसवर (शबर) के घर 16 वर्ष रहना लिखा है।[41] शीघ्र वर्धित यौवन और षोडशवर्षीय वय तत्त्वत एक ही बात है अत साम्ब के जन्म के समय प्रद्युम्न (16+12) = 28 वर्ष के हो चुके थे। इसी धारणा के आधार पर जैन परम्परा मे प्रद्युम्न के कौशल से ही जाम्बवन्ती के उदर मे (पूर्व भव मे मधु रूपी प्रद्युम्न के भ्राता कैटभरूपी) साम्ब का जन्म होता है। कौशल यह है कि प्रद्युम्न अपनी माया से जाम्बवती को सत्यभामा का रूप बनाकर कृष्ण के पास भेज देते है जिससे व्यतर रूप कैटभ देवता द्वारा कृष्ण को प्रदत्त हार जाम्बवती को मिल जाता है और सत्यभामा वचित रह जाती है। कैटभ ही उस हार के प्रभाव से साम्ब बनकर अवतीर्ण होता है। बाद मे सत्यभामा को श्रीकृष्ण दूसरा हार देकर समाश्वस्त करते है।[42] यदि प्रद्युम्न वय मे साम्ब से इतने बडे नही होते तो इस कथा-लाघव की सृष्टि के लिए इतनी सहज आधार-भूमि नही मिल पाती। किन्तु अनुशासनपर्व के विरुद्ध एक दूसरी कल्पना भी महाभारत मे है जिसके अनुसार शबरासुर ने जब प्रद्युम्न का अपहरण किया था, उसी महीने जाम्बवती के गर्भ से साम्ब का जन्म हुआ।[43] स्पष्ट है कि परवर्ती, अस्वाभाविक और रुचिर कथानक-सृष्टि मे अक्षम होने के कारण यह परम्परा ग्रहीत नही हुई।

5. साम्ब का विशेष महत्त्व

प्रद्युम्न के 3 भाइयो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका साम्ब की ही है। साम्ब

के व्यक्तित्व की ऐतिहासिकता के भी अनेक प्रमाण है। साम्ब द्वारा सूर्य-मंदिर की स्थापना की गयी थी यह तथ्य सुपरिचित है। भविष्यपुराण मे यह कथा वर्णित है कि किस प्रकार साम्ब को कुष्ठ रोग से मुक्त करने के लिए गरुड शकद्वीप से 'मग' ब्राह्मणो को द्वारका लाये जिन्होने द्वारका मे सूर्यमंदिर की स्थापना की और विधिवत अनुष्ठान-पद्धति भी प्रचलित की।[44] इन्ही मगो को 'भोजक' नामाभिधान प्राप्त है। ये भोजक लोग अनुष्ठानविहीन कहे गये है।[45] किन्तु अन्यत्र भविष्यपुराण 'मग' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ 'सूर्योपासक' बताते हुए (म मकर = सूर्य, गच्छतीति मग अर्थात् सूर्योपासक)[46] मगो को शुचिर्भूत ब्राह्मण (मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा) कहता है। गरुडपुराण के अनुसार भारतवर्ष मे इन्हे लाने का श्रेय श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को है जिन्होने अपने कुष्ठ रोग की निवृत्ति हेतु चद्रभागा नदी (वर्तमान चेनाब) के तीर पर सूर्य का मदिर बनवाया था परन्तु भारत मे उचित पुजारी के न मिलने पर इन ब्राह्मणो को शकद्वीप से गरुड द्वारा बुलवाया था।[47] श्री विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडे ने मगो के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कुषाणो से भी पूर्व मगो के भारत मे आगमन को सिद्ध किया है। डॉ० राजवाडे के अनुसार शको अर्थात् मदो का उल्लेख 681 ई० पू० ऐसरहेडन के इष्टिका लेख मे मिलता है। अत महाभारत के भीष्मपर्व के ग्यारहवें अध्याय मे वर्णित मद विवरण 681 ई० पू० से भी प्राचीन है इसमे सदेह नही।[48] यह तिथि महाभारत युद्ध के घटनाक्रम तथा साम्ब का श्रीकृष्ण-पुत्र होने आदि प्रसगो के काल-क्रम की सगति की दृष्टि से उचित प्रतीत होती है। विष्णुपुराण के अनुसार सगर के समय (महाभारत युद्ध से पचपन पीढी पूर्व) शको का चातुर्वर्ण्य भ्रष्ट हो चुका था। फिर भी कुछ आर्यधर्मनिष्ठलोग शाकद्वीप मे बने रहे होगे। उन्ही मे से मगो के अठारह कुलो को सूर्य प्रतिमा स्थापनार्थ साम्ब ले आये तथा उन्हे अठारह भोजक कन्याएँ दी। ये भोजक द्वारका के आस-पास के प्रदेश के वासी और कृष्ण के सवशीयो और प्रजाजनो मे थे। भोजक ब्राह्मण नही क्षत्रिय थे। उनकी कन्याएँ शाकद्वीपीय मग ब्राह्मणो (पुरोहितो) को दी गयी इससे मगो के भ्रष्ट ब्राह्मण होने के प्रवाद की पुष्टि होती है।[50] जो भी हो इस सबसे साम्ब की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। साम्ब कृष्ण के पुत्र थे और उन्होने द्वारका अथवा चिनाब तट पर पजाब मे कही सूर्य मदिर स्थापित कराया था यह स्पष्ट है। साम्ब सूर्य का भक्त था। वह विद्वान् भी था तथा उसके सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि उसने सूर्य की स्तुति मे एक 'साम्ब पचाशिका' की रचना भी की थी।

साम्ब कृत यह 'साम्ब पचाशिका' सस्कृत मे रचित कृति है। श्री क्षेमराज राजानक ने इसकी गद्य मे टीका लिखी है। जयपुर महाराजा के आश्रित प० दुर्गाप्रसाद तथा बम्बईवासी प० काशीनाथ पाण्डुरग परब ने इसका सम्पादन किया है। टीकाकार क्षेमराज राजानक काश्मीर मे 11 वी ईसवी सदी के प्रारभ मे वर्तमान थे जैसा कि उनके द्वारा अपने को आचार्य अभिनवगुप्त का शिष्य कहने से ज्ञात होता है।

'साम्बपचाशिका' मे कुल 53 छद हैं। इसमे सूर्य की स्तुति की गयी है तथा सुगठित भाषा और छद-सौष्ठव मे सूर्य के नाना रूपनामात्मक माहात्म्य का निरूपण है। साम्ब पंचाशिका के कर्ता वासुदेव (कृष्ण)-पुत्र साम्ब ही थे ऐसा टीकाकार का कथन है। वह लिखता है कि वाराह पुराण के 170 वें अध्याय मे उल्लेख है कि साम्ब ने कृष्ण की आज्ञा से मथुरापुरी मे जा कर पचास श्लोको मे सूर्य की स्तुति की थी।[51]

किन्तु वहाँ स्तुति नही दी गयी है। सभवत यही वह स्तुति है जिसका प्रणयन साम्ब ने किया था। सदर्भ के सकेत तथा कृति के स्वरूप से उनका कथन अनुमोदन योग्य प्रतीत होता है। प्रकाशित कृति का पाठ सम्पादक-द्वय ने दो प्रतियो के आधार पर किया है एक केरलवासी सदाशिव शास्त्री द्वारा कश्मीर से लायी गयी 17 पत्रो की प्रति तथा दूसरी, जयपुर के राजगुरु भट्ट लक्ष्मीदत्त के सुपुत्र श्रीदत्त शर्मा के सग्रह की 6 पत्रो की प्रति जिसमे टीका न होकर मूल कृति मात्र है। किन्तु प्रारम्भिक 50 श्लोको मे सूर्य-माहात्म्य वर्णन के अनन्तर दो ऐसे श्लोक भी निबद्ध है जिनमे श्री साम्ब कहकर अन्य पुरुष के रूप मे आदरास्पद सम्बोधन हैं। ये दो श्लोक 50 की निश्चित सख्या से अधिक हैं फिर भी शैली मे पूर्ववर्ती श्लोको से सादृश्य होने से इस कृति के साम्ब रचित होने को सदेहास्पद बना देते है।[52]

कुछ भी हो, साम्ब एक लोक-विश्रुत व्यक्तित्व के धनी रहे। यही कारण है कि हम (विशेषत' जैन परम्परा मे) साम्ब और प्रद्युम्न का साहचर्य ही नही मधु कैंटभ के रूप मे पूर्व भव मे बधु-युगल के रूप मे उन्हे क्रियाशील पाते है। सत्यभामा के अभिमानी और ईर्ष्यालु स्वभाव के कारण रुक्मिणी की उससे अनबन और प्रतिस्पर्द्धा तथा ऋजु सरल जाम्बवती के प्रति रुक्मिणी की रुभान के फलस्वरूप ही प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो मे, जैसा कि हम आगामी अध्यायो मे देखेंगे, प्रद्युम्न का सुभानु को छकाना और उपहास का पात्र बनाना तथा साम्ब को द्यूतक्रीडा मे जय-लाभ कराना, कृष्ण द्वारा दण्डित होने पर बचाना इत्यादि वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कि प्रद्युम्न का, सहोदर न होते हुए भी, साम्ब के प्रति विशेष अनुराग था। ध्यान देने की बात यह है कि बहुत ही सामान्य क्रियाकलापो (यथा नृगराजा के गिरगिट रूप मे कूप मे पड जाने इत्यादि) के प्रसगो मे चारुदेष्ण आदि अन्यान्य राजकुमारो का केवल स्फुट उल्लेख मात्र हुआ है। सहचारी कर्तृत्व के रूप मे सौतेले भाई साम्ब और पुत्र अनिरुद्ध का ही प्रद्युम्न के कार्य-व्यापारो मे विशेष योगदान है। प्रद्युम्न के अन्य भ्राताओ तथा बहिन चारुमती जैसे पात्रो का उपयोग चरित्र-लेखक कर नही पाये हैं। इस दृष्टि से साम्ब की विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थिति है।

वन्धु-समुदाय की ही भाँति प्रद्युम्न के विवाह सम्बन्धी विवरणो में भी पर्याप्त विभिन्नता है । विष्णुपुराण के अनुसार प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से विवाह किया था ।[53] महावीर प्रद्युम्न ने रुक्मी की सुदर कन्या को और उस कन्या ने भी भगवान कृष्ण के पुत्र

6 विवाह तथा सन्तान-सम्बन्धी विवरण

प्रद्युम्न को स्वयवर मे ग्रहण किया ।[54] मत्स्यपुराण भी वैदर्भी को प्रद्युम्न की पत्नी कहता है ।[55] ब्रह्मपुराण मे भी उल्लेख है कि महाबलशाली प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री को स्वयवर में ग्रहण किया ।[56] श्रीमद्भागवत भी भोजकट नगरवासी रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से प्रद्युम्न के विवाह का वर्णन करते हुए कहता है कि प्रद्युम्न मूर्तिमान कामदेव थे । उनके रूपगुण पर रीझ कर रुक्मवती ने स्वयवर मे उन्ही को वरमाला पहना दी । प्रद्युम्न ने युद्ध मे अकेले ही वहाँ इकट्ठे, हुए नरपतियो को जीत लिया और रुक्मवती को हर लाये । यद्यपि कृष्ण से अपमानित होने के कारण रुक्मी के हृदय की क्रोधाग्नि शान्त नही हुई थी फिर भी अपनी वहिन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए उसने अपने भानजे प्रद्युम्न को अपनी पुत्री ब्याह दी ।[57] हरिवश पर्व मे भी रुक्मी की यही कथा है । अ तर यही है कि रुक्मी की पुत्री का नाम यहाँ 'शुभागी' कहा गया है ।[58]

प्रद्युम्न को वैदर्भी के अतिरिक्त दो पत्नियाँ और थी--प्रभावती तथा मायावती । प्रभावती वज्रनाभ दैत्य की पुत्री थी । प्रद्युम्न ने इसका हरण किया था । हरिवश-पर्व मे यह कथा अत्यत सुललित शैली मे वर्णित है ।[59] प्रद्युम्न की तीसरी पत्नी मायावती थी जो प्रद्युम्न के कामदेव--रूप मे, शिव द्वारा भस्म होने और अनग होने से पूर्व, उनकी पत्नी रति ही थी । यह वेप वदलकर दासी--रूप मे शवरासुर के घर रहती थी । शंवर द्वारा प्रद्युम्न का शैशवावस्था मे ही हरण कर लेने पर इसी ने प्रद्युम्न का पालन किया और तरुण होने पर शवरासुर का माया--युद्ध मे हनन कर प्रद्युम्न मायावती सहित द्वारका लौट आये ।[60] जैसा कि हम आगामी अध्यायो मे देखेंगे, प्रद्युम्न--चरित्र सम्वधी यह कथानक पौराणिक साहित्य तथा महाभारत मे सर्वाधिक वर्णित है और इसी को आधार बनाकर प्रद्युम्न--चरित्र विषयक अधिकांश काव्य ग्रथो की रचना हुई है । प्रद्युम्न के इन तीनो विवाहो मे लौकिक धरातल पर सर्वांशत आधारित विवाह तो रुक्मी की पुत्री रुक्मवती (या शुभागी) से सम्पन्न विवाह ही है । प्रभावती से उसके विवाह मे यदि दैत्य वज्रनाभ को किसी जाति का प्रमुख या शासक अनुमित कर लिया जाए और पात्रो के वास्तविक अस्तित्व की सभावना के लिए अवकाश प्रदान कर दिया जाए तो भी, शेष कथानक मे असामान्य कल्पना और रूपक--तत्त्व की प्रचुरता (यथा प्रद्युम्न का गायक और अभिनेता वेश मे वज्रनाभ के नगर मे जाना और हस पक्षी का प्रणयी--युगल के बीच सदेश--वाहक

वनना इत्यादि) से इसमे अलौकिकता के पर्याप्त सन्निवेश को अस्वीकार नही किया जा सकता। जहाँ तक प्रद्युम्न–मायावती प्रसग का प्रश्न है यह प्रथम तो विवाह ही नही है क्योंकि इसमे पूर्वभव की रति का ही मायावती रूप से प्रद्युम्न से मिलन मात्र संघटित होता है। फिर, प्रद्युम्न का मत्स्य के उदर से जीवित निकल आना, छठे दिन ही प्रद्युम्न का हरण हो जाना, प्रद्युम्न के बालक–रूप पर ही मायावती का मुग्ध हो जाना, प्रद्युम्न द्वारा माया युद्ध से शम्बर–वध मे सफलता प्राप्त करना इत्यादि समस्त कथा–सूत्र अलौकिक और पुराकथात्मक हैं। इनमे लौकिक आधार का अनुसधान दूरारूढ कल्पना मात्र होगी। कामदेव का शिवनेत्र से भस्म होकर अनग रूप प्राप्त करना, रति के विलाप और अनुनय पर कृष्ण–पुत्र के रूप मे काम के पुनरोद्भव का वरदान प्राप्त करना इत्यादि शैव वैष्णव मतो के सपर्क और अन्तर्लाप सम्बन्धी मूल कल्पना ही समस्त कथानक की सिद्धि की हेतु है। इस कथानक पर पौराणिक धर्म–समन्वय–वृत्ति की छाप स्पष्ट है। अत. प्रद्युम्न-मायावती प्रसग लौकिक पक्ष की दृष्टि से सबसे दुर्बल है। फिर भी आश्चर्य है कि उक्त तीनो प्रणय प्रसगो मे से इसी अलौकिक प्रसग को ही काव्य का सर्वाधिक उपजीव्य होने का गौरव प्राप्त है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मध्ययुग पौराणिक प्रभाव का युग था। उसमे काव्य–सृजन का उद्देश्य मुख्यत धर्म की प्रभावना जाग्रत करना ही था। इसलिए कवियो की दृष्टि अलौकिक कथावृत्तो पर ही अधिक केन्द्रित हुई। जो हो, तथ्य यह है कि प्रद्युम्न के व्यक्तित्व मे लौकिक पक्ष का अभाव नही है किन्तु कथाकारो द्वारा उपेक्षित होने से वह काव्य–क्षेत्र मे परिपुष्ट और पल्लवित नही हो सका।

प्रद्युम्न के एक सासारिक व्यक्ति के रूप मे बन्धु–बाधव और विवाह सम्बन्धी विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया। प्रद्युम्न की सतति के सम्बन्ध मे भी पौराणिक इतिवृत्त मौन नही है। विष्णुपुराण के अनुसार प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से विवाह किया था। उमसे अनिरुद्ध नामक पुत्र का जन्म हुआ।[61] ब्रह्मपुराण भी इसकी पुष्टि करता है।[62] मत्स्यपुराण का भी कहना है कि प्रद्युम्न के वैदर्भी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम अनिरुद्ध था जो परम बुद्धिमान तथा रणागण में अडिग कह कर प्रशसित किया गया है।[63] भागवतपुराण भी, अनिरुद्ध को प्रद्युम्न-पुत्र बताता है।[64] विष्णुपुराण रुक्मी की पौत्री 'सुभद्रा' से अनिरुद्ध के विवाह का उल्लेख करते हुए उससे अनिरुद्ध के वज्र नामक पुत्र उत्पन्न होने और वज्र के प्रतिबाहु और और प्रतिबाहु के सुचारु नामक पुत्र की सूचना देता है।[65] भागवतपुराण रुक्मी की पौत्री का नाम 'रोचना' प्रकट करते हुए कहता है कि रुक्मी का भगवान श्रीकृष्ण के साथ पुराना वैर था। फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणी की प्रसन्नता के लिए उसने अपनी पौत्री 'रोचना' का विवाह रुक्मिणी के पौत्र अर्थात् अपने दौहित्र अनिरुद्ध के साथ कर दिया। यद्यपि रुक्मी को इस बात का पता था कि इस प्रकार का विवाह–

सम्बन्ध धर्म के अनुकूल नहीं है फिर भी स्नेह—बन्धन मे बध कर उसने ऐसा कर दिया। अनिरुद्ध के विवाह मे सम्मिलित होने के लिए भगवान श्री कृष्ण, बलराम रुक्मिणी, प्रद्युम्न साम्ब आदि द्वारका वासी भोजकट नगर मे पधारे थे।[66] अनिरुद्ध के रुक्मी की पौत्री (रोचना) के गर्भ से वज्र का जन्म हुआ। ब्राह्मणो के शाप से पैदा हुए मूसल के द्वारा यदुवश का नाश हो जाने पर एकमात्र वे ही बच रहे थे। वज्र के पुत्र है–प्रतिबाहु, प्रतिबाहु के सुबाहु, सुबाहु के शान्तसेन और शान्तसेन के शतसेन।[67] हरिवश मे रुक्मी की पौत्री और अनिरुद्ध की पत्नी का नाम 'रुक्मवती' है (जब कि विष्णु, भागवतादि अन्य पुराणो मे रुक्मवती को रुक्मी की पुत्री और प्रद्युम्न की पत्नी कहा गया है) और लिखा है कि रुक्मिणी ने ही रुक्मवती की याचना अनिरुद्ध के लिए की थी। राजा रुक्मी अनिरुद्ध के गुणो से आकृष्ट होकर ही अपनी पौत्री का विवाह उससे करना चाहता था अत. प्रद्युम्न तथा रुक्मिणी की प्रसन्नता के लिए उस महायशस्वी राजा ने श्री कृष्ण के साथ स्पर्द्धा रखते हुए भी वैर त्याग कर प्रसन्नतापूर्वक कहा कि मैं अपनी पौत्री अनिरुद्ध को दे रहा हूँ। तब कृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणी, भाई बलराम, पुत्र प्रद्युम्न तथा वृष्णि वीरो की सेना सहित विदर्भ देश मे गये तथा शुभ तिथि और उत्तम नक्षत्र मे अनिरुद्ध ने विदर्भ राजकुमारी 'रुक्मवती' का पाणिग्रहण किया।[68] अनिरुद्ध के 'सानु' नामक पुत्र हुआ, सानु से 'वज्र' वज्र से 'प्रतिरथ' और प्रतिरथ से 'सुचारु' का जन्म हुआ।[69] इस प्रकार प्रद्युम्न-सतति सम्बन्धी विवरणो मे विष्णु, भागवत तथा हरिवश मे किंचित अ तर होते हुए भी अनिरुद्ध और वज्र के बारे मे मैतक्य है। इनमे भी अनिरुद्ध का सर्वोपरि महत्त्व है क्यो कि वह चतुर्व्यूह परम्परा मे एक व्यूहावतार है और अनेक जीवन–व्यापारो मे भी प्रद्युम्न का सहयोगी है। वज्र का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि गृहयुद्ध से यादव–विनाश के अनन्तर भागवत के अनुसार वज्र ही शेष रहा था तथा महा–भारतकार का कहना है कि कृष्ण बलराम सहित सब वीरो के देहपात के अनन्तर वसुदेव जी ने योग द्वारा जब उत्तम गति प्राप्त की तो वज्र ने ही वसुदेव को जलाञ्जलि दी।[70] विष्णुपुराण मे कृष्ण अपने देहपात से पूर्व दारुक को अर्जुन को इन्द्रप्रस्थ से द्वारका बुला लाने का सदेश देते हुए घोषणा कर देते है कि वज्र ही हमारे पीछे यदुवश का राजा होगा। तब कृष्ण के सारथी दारुक ने अर्जुन को द्वारका ला कर वज्र को राज्याभिषिक्त करा दिया।[71] फिर अर्जुन वज्र आदि यदुवशियो को लेकर इन्द्रप्रस्थ आते है और वहा यादव–नदन वज्र का राज्याभिषेक करते है।[72] इस प्रकार विष्णुपुराण मे वज्र का दो बार राज्याभिषेक होता है-एक बार द्वारका और दूसरी बार इन्द्रप्रस्थ मे। भागवत भी इन्द्रप्रस्थ मे वज्र के राज्याभिषेक की पुष्टि करता है।।[73] बचे हुए द्वारकावासियो को अर्जुन जब सुरक्षा के लिए पचनद हो कर कुरुक्षेत्र की ओर ले जा रहे थे तो उस निष्क्रमणार्थी दल मे वज्र ही यादवकुल के उत्तराधिकारी राजकुमार होने के नाते सबने आगे थे।[74] अर्जुन ने द्वारकावासियो को बसा कर वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया।[75] उन्होने द्वारका मे अवशिष्ट यादवो

की सभा कर पहले ही घोषणा कर दी थी कि इन्द्रप्रस्थ मे चलने पर ये श्रीकृष्ण-पौत्र वज्र ही तुम लोगो के राजा बनाये जाएँगे।[76] अत यादव वश के राज्य को, द्वारका—विनाश के बाद, आगे चलाने का श्रेय प्रद्युम्न के पौत्र वज्र को ही है।

अनिरुद्ध के रुक्मी-पौत्री 'रोचना' (या रुक्मवती) के अतिरिक्त बाणासुर-पुत्री उषा एक और पत्नी थी। उषा—अनिरुद्ध कथानक प्राय: सभी पुराणो मे वर्णित है, विशेषत. श्रीमद्भागवत और हरिवशपुराण मे।[77] यह कथानक भी कवियो के लिए अतीव रोचक रहा है और इसे आधार बना कर अनेक काव्य-ग्रथ रचे गये है। उषा—अनिरुद्ध प्रकरण मे उषा अपनी सखी चित्रलेखा द्वारा अ कित प्रद्युम्न का चित्र देखती है तो स्वभावत. अपने स्वप्न-द्रष्ट प्रेमी अनिरुद्ध के पिता होने के कारण आकृति-साम्य-वश, सलज्ज हो उठती है[78] अपनी भावी पुत्र—वधू द्वारा यह सलज्ज सम्मान-प्रदर्शन एक मनोरम पारिवारिक सदर्भ है जिसमे शील और मर्यादायुक्त भारतीय कौटुम्बिक सस्कृति का रुचिर स्पर्श है। उषा को अपनी पुत्र-वधू के रूप मे प्राप्त करने के लिए प्रद्युम्न को पुरुषार्थ करना पडता है। जब अनिरुद्ध शोणितपुर मे बाणासुर के नाग—पाश मे बध जाते है तब श्रीकृष्ण और बलराम सहित प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि इत्यादि बारह अक्षौहिणी सेना के साथ व्यूह बनाकर बाणासुर की राजधानी शोणितपुर को घेर लेते है। उस समय कृष्ण का शकर से तथा प्रद्युम्न का कार्तिकेय से युद्ध होता है और कार्तिकेय क्षत-विक्षत हो अपने वाहन मयूर पर आरूढ हो रणभूमि त्याग देते है।[79] इस प्रकार प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध के दो विवाह-सम्पन्न होते है जिनमे एक रुक्मी-पौत्री 'रोचना' से विवाह लौकिक धरातल पर है तो बाणासुर पुत्री उषा से विवाह पुराकथात्मक भूमि पर स्थित है। वह सामान्य विवाह न हो कर गान्धर्व विवाह है।[80] फिर बाणासुर को पराजित कर बलपूर्वक विजय द्वारा कन्या लाभ करने के कारण नारद जी के कहने पर 'वीर्य सज्ञक विवाह' सम्पन्न किया जाता है।[81] 'वीर्यविवाह' देखने की स्पृहा नारद जी को इसलिए है कि वे 'जम्बूलमालिका' देखने के अभिलाषी है। महाभारत के टीकाकार नीलकठ के अनुसार वर-वधू के विवाह के समय कन्यापक्ष की स्त्रियो को जो प्रेमपूर्ण परिहास के रूप मे गाली दी जाती है उसी का नाम 'जबुल है। उस परम्परा को ही 'जम्बूलमालिका' कहा गया है।[82] हमारी विनम्र सम्मति मे 'जम्बूल' मे केवल गालियो का ही समावेश न होकर नृत्य, अभिनय आदि से समधी पक्ष का परिहास किया जाता होगा। इसीलिए जम्बूल देखने ('द्रष्टु') का उल्लेख हुआ है न कि सुनने का। अत हमारा अनुमान है कि आजकल जो 'टूँटिया' इत्यादि नामो से विवाह के अवसर पर स्त्रियो का पुरुष-प्रवेश-वर्जित, गुह्य गीत-नृत्याभिनय-युक्त मनोरजन कार्यक्रम होता है उसी का पूर्वज यह 'जम्बूल' प्रतीत होता है। उस समय यह इतना अश्लीलतायुक्त न होकर शिष्ट कलापूर्ण प्रहसन कार्यक्रम होताहोग, अथवा कुछ अश्लीलता का समावेश रहा भी हो तो क्या आश्चर्य क्योकि नारद की गति तो सर्वत्र अबाध रूप से थी। जो भी हो, नारद जैसे ब्रह्मचर्यव्रत-दीक्षित मुनि

द्वारा जम्बूल-रसास्वादन की लालसा की अभिव्यक्ति ने हास्यरस की सृष्टि के साथ-साथ इस अलौकिक 'वीर्य विवाह' को भी अपूर्व लौकिक स्पर्श दे दिया है। इससे सिद्ध है कि कथा-सृष्टि की अलौकिकता या लौकिकता के दो पक्ष हैं—(1) पात्र और घटना पक्ष जिसे हम 'वस्तु'-पक्ष भी कह सकते हैं, और (2) शैली-पक्ष। लौकिकता या अलौकिकता के समावेश की दृष्टि से इन दोनो पक्षो की एकरूपता अनिवार्य नही है। वस्तु-पक्ष लौकिक होते हुए भी कथाकार उसे अपनी अमानुषी कल्पनाओ और रूपक-विधान से अलौकिक रूप प्रदान कर सकता है तथा अलौकिक (अयथार्थ अथवा काल्पनिक, प्रतीकात्मक या रूपकात्मक) वस्तु-विधान को भी वह लौकिक यथार्थ के सवेद्य स्पर्शों से सजीवता प्रदान कर सकता है। निश्चय ही इनमे यदि विकल्प का ही प्रश्न हो तो पूर्वापेक्षा द्वितीय स्थिति अधिक ग्राह्य होनी चाहिए। तथापि देखा यह जाता है कि पूर्ववर्ती प्रवृत्ति और परम्परा का ही साहित्य मे अधिक प्रचलन है। अलौकिकता का आग्रही, प्रौढ वय का भी बाल-मन, कौतूहलवृत्ति की तुष्टि हेतु अथवा धार्मिक नैतिक पक्षो की सिद्धि हेतु, प्रकृत जीवन-व्यापारो पर अतिप्राकृतता के आरोप द्वारा लौकिक को अलौकिकता से मण्डित करने की प्रक्रिया मे, जीवन के यथार्थ को भी अयथार्थ मे परिवर्तित कर देता है। यह स्थिति शोचनीय है क्यो कि इसी प्रवृत्ति के कारण हमारे चरित्र-नायक प्रद्युम्न जैसे जातीय महापुरुषो का व्यक्तित्व पटावृत हो जाता है और उनकी ऐतिहासिकता के आगे एक प्रश्न-चिन्ह लग जाता है।

अनिरुद्ध के विवाह प्रसगो के अतिरिक्त जाम्बवती—नदन साम्ब और सत्यभामा-सुत सुभानु के विवाह सम्बन्धी विवरण भी न केवल प्रद्युम्न-चरित्र के लौकिक पक्ष अथच उसकी कौटुम्बिकता की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है अपितु प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो मे अधिग्रहीत कथा-वृत्तो की दृष्टि से भी इनका महत्त्व है क्यो कि तत्सम्बन्धी कथानको की योजना भी उनमे हुई है। विष्णुपुराण मे लिखा है कि जाम्बवती-नदन वीरवर साम्ब ने स्वयवर के अवसर पर दुर्योधन की पुत्री का वलपूर्वक हरण किया तब कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण आदि ने क्रुद्ध होकर उसे युद्ध मे हराकर बाध लिया। वलराम अकेले ही मदिरा के उन्माद में साम्ब को छुडाने चल दिये किन्तु वहाँ कौरवपक्ष द्वारा यादव-कुल को हीन कह कर तिरस्कृत करने पर वलराम ने हस्तिनापुर दुर्ग के प्राकारमूल मे हल की नोक लगा कर खीचा जिससे वह तिरछा होकर गगा की ओर झुक गया। तब कौरवो ने साम्ब को वधू और दहेज सहित विदा किया।[83] इस प्रसग मे विष्णुपुराण ने साम्ब-पत्नी दुर्योधन-सुता का नाम नही दिया है किंतु भागवत ने दुर्योधन-पुत्री का नाम 'लक्ष्मणा' बताते हुए यही कथा दी है।[84] हरिवश मे वज्रनाभ के भाई सुनाभ की पुत्री 'गुणवती' का साम्ब से विवाह वर्णित है। प्रद्युम्न की पत्नी प्रभावती मनोनुकूल पति प्रदात्री विद्या अपनी बहन को देती है जिसके फल मे प्रद्युम्न की प्रेरणा पर 'गुणवती' साम्ब का चिन्तन करती है। प्रद्युम्न की माया मे छिपे हुए साम्ब प्रकट होते हैं और साम्ब और गुणवती का मत्रोच्चारपूर्वक गधर्व-विवाह सम्पन्न होता है।[85] विष्णुपुराण और भागवतपुराण मे प्रद्युम्न-प्रभावती

प्रकरण और उसके अन्तर्भुक्त साम्ब-गुणवती विवाह का उल्लेख नही है। साम्ब की इन दो पत्नियो 'लक्ष्मणा' और 'गुणवती' के अतिरिक्त एक तीसरी पत्नी 'काश्या' का भी उल्लेख है जिससे सुपार्श्व नामक पुत्र हुआ था।[86] हरिवंश मे ही यह भी वर्णित है कि जब अनिरुद्ध को वाण पुत्री 'उषा' से व्याह कर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न द्वारका लाये तो उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से कह कर उषा के साथ द्वारका आयी उसकी सखी कुभाण्ड की सुलक्षणो वाली 'कन्या' 'रामा' का (चित्रलेखा अप्सरा का अंश होने से जिसका नाम एक चित्रलेखा भी है) विवाह साम्ब से करा दिया। इस प्रकार साम्ब के कुल चार पत्नियाँ थी जिनके नाम 'लक्ष्मणा', 'गुणवती' 'काश्या' और 'रामा' (या 'चित्रलेखा') थे।

साम्ब को अपुत्र 'गण्डूप' ने गोद लिया था। 'काशि' नामक पत्नी से साम्ब के पाँच वीर पुत्र थे।[187] साम्ब पाँच वंशवीरो मे से एक थे[88] भागवत मे कृष्ण की पटरानियो के प्रमुख पुत्रो मे प्रद्युम्न, साम्ब और साम्ब की गणना है।[89] उन्हे पहले पार्वती के गर्भ से जन्म धारण करने वाला कार्तिकेय भी कहा गया है। अनेको व्रतादि करके जाम्बवती ने इन्हे जन्म दिया था।[90] वे जाम्बवती के दस पुत्रो मे सबसे बडे थे।[91] उषा-अनिरुद्ध प्रसग मे वाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर बारह अक्षौहिणी सेना सहित घेरा डालने मे साम्ब भी प्रद्युम्न आदि के साथ थे।[92] इसी प्रकार वे अनिरुद्ध-रोचना (रुक्मी-पौत्री) के विवाह मे भी कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न आदि के साथ भोजकट नगर गये थे।[93] वे कृष्ण के अठारह महारथी पुत्रो मे से एक थे जिनका यश सारे जगत मे फैला हुआ था।[94] वे गिरगिट योनि मे पडे नृग राजा को कूप से निकालने के प्रयत्न मे[95] तथा शाल्व द्वारा द्वारका का घेरा डालने पर शाल्व के विरुद्ध युद्ध करने मे भी, प्रद्युम्न के साथ थे।[96] वे सूर्यग्रहण के अवसर पर स्यमत-पचक तीर्थ मे भी प्रद्युम्न के साथ गये थे।[97] पौराणिक विवरणो से प्रद्युम्न के इस सौतेले किन्तु अत्यन्त प्रिय भाई साम्ब के दो गुणो का और परिचय मिलता है। वे दो गुण हैं असाधारण सौंदर्य और क्रीडाशील विनोदप्रियता जो वेष-परिवर्तन, आकृति-अनुकरण तथा अभिनय आदि माध्यम से व्यक्त होती थी। साम्ब इतने सुदर थे कि कृष्ण की सोलह हजार रानियाँ साम्ब मे अनुरक्त थी और उन्हे प्रणय दृष्टि से देखती थी। अत: कृष्ण ने कुपित हो उन्हे लुटेरो द्वारा लूटी जाने का शाप दिया जो द्वारका-विनाश के बाद आभीरो द्वारा उनके अपहरण के समय फलीभूत हुआ। दाल्भ्यऋषि द्वारा उपदिष्ट अनगदानव्रत के पालन से ही वे शापमुक्त हुई।[98] भविष्य-पुराण मे यही कथा कुछ अन्तर से विस्तारपूर्वक दी गयी है। वहाँ साम्ब द्वारा पिंगलनेत्र, रुक्ष, कृशकाय दुर्वासा का मुँह चिढाने और नकल उतारने पर पहले दुर्वासा उसे कुष्ट रोग मे पीडित होने का शाप देते हैं।[99] फिर नारद कृष्ण के अन्त पुर मे जाते है तो प्रद्युम्न आदि अन्य राजकुमार तो नारद के स्वागत मे विनम्रता से तत्पर हो जाते है किन्तु रूप-यौवन-गर्वित साम्ब स्त्रियो के साथ क्रीडा-निरत ही रहते हैं।

यह देख नारद उसे दण्ड देने के विचार से कृष्ण को भडकाते है कि तुम्हारी सोलह हजार स्त्रियाँ इस सचराचर जगत मे अलौकिक रूपवान साम्ब मे ही सदा अनुरक्त रहती है।[100] यही नही, वे रैवतक पर्वत पर कृष्ण की स्त्रियो को मद-पान करती हुई तथा साम्ब मे अनुरक्तिवश अस्त-व्यस्त दशा मे दिखा भी देते है। कृष्ण स्त्रियो को लुटेरो द्वारा लूटी जाने का शाप देते है जिससे रुक्मिणी, सत्यभामा और जाम्बवती ही पतिव्रता होने से बचती है। वे साम्ब को भी कुष्ट-पीडित होने का शाप देते है। पिता से शापमुक्ति की याचना करने पर वे उसे नारद की शरण मे जाने को कहते है। नारद की प्रेरणा पर साम्ब चद्रभागा तीर पर द्वादशादित्य की प्रतिमा स्थापित कर साम्बपुर नगर बसाते है।[101] सूर्यप्रतिमा-पूजन के लिए वे शाक्य द्वीप से मग ब्राह्मणो को लाते है तथा उन्हे भोजक कन्याएँ प्रदान करते है।[102] इस प्रकार रूप-यौवन गर्वित होने, पिता से अभिशप्त होने, क्रीडाप्रिय, विनोदी, चपल स्वभाववश पूज्य ऋषि मुनियो का तिरस्कार करने, उच्छृंखल श्रृगारिक आचरण करने इत्यादि साम्ब की चारित्रिक विशेषताओ ने उन्हे लौकिक चरित्र प्रदान करते हुए सजीव व्यक्तित्व के धनी प्रद्युम्न-भ्राता के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। साम्ब की इन्ही चारित्रिक विशेषताओ को उभारते हुए, कथ्य और पात्र सम्बन्धी नवीन उद्भावनाओ के साथ जैन कवियो ने प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो मे चरित-नायक प्रद्युम्न के साथ उन्हे प्रमुख भूमिका प्रदान की है। साम्ब की कौतुक-प्रियता का चरम रूप साम्ब के उदर से मुसलावतार की कथा मे दीखता है। विष्णुपुराण मे कथा है कि एक बार कुछ यदु-कुमारो ने महातीर्थ पिंडारक क्षेत्र मे विश्वामित्र, कण्व, नारद आदि मुनियो को देखा। तब यौवन से उन्मत्त हुए उन बालको ने होनहार की प्रेरणा से जाम्बवती के पुत्र साम्ब का स्त्री-वेष बनाकर[103] उन मुनीश्वरो से पूछा कि इस स्त्री को पुत्र की इच्छा है, कहिए यह क्या जनेगी ? मुनिजनो ने कुपित होकर कहा—यह एक लोकोत्तर मूसल जनेगी जो समस्त यादवो के नाश का कारण होगा। फिर साम्ब के पेट से यथासमय मूसल उत्पन्न होने, उग्रसेन द्वारा उस लौह-मूसल का चूर्ण करा डालने, यादव-कुमारो द्वारा समुद्र मे उस चूर्ण को फेकने से सरकण्डे (एरका) उत्पन्न होने और प्रभास क्षेत्र मे उन वज्रोपम सरकण्डो को अस्त्ररूप मे प्रयुक्त कर लडे गये यादव-युद्ध मे यादव-वश-विनाश की कथा वर्णित है।[104] भागवतपुराण मे यही कथा अधिक रोचकता और विस्तार से वर्णित है।[105] फिर प्रभास क्षेत्र मे मैरेयक मदिरा पीने के कारण हुए युद्ध मे यदुवशी जब मूढतावश सौहार्द सम्बन्ध और प्रेमभाव को भूल गये और पुत्र पिता का, भाई भाई का मित्र मित्र का, चाचा भतीजे का खून करने लगा तो अनिरुद्ध सात्यकि से और प्रद्युम्न साम्ब से उस क्षण आत्मघाती युद्ध करने लगे और प्राणो के ग्राहक हो गये तो क्या आश्चर्य है ?[106] जो जितना अधिक प्रिय था वह उतना ही कालवशात् वैरी हो गया। फलतः प्रद्युम्न-साम्ब का घनिष्ट सहोदर और साहचर्य भाव ही शत्रुता मे परिणत हो गया। प्रकारान्तर मे यह प्रसग भी प्रद्युम्न साम्ब के गहन प्रेम और आत्मीयता को ही व्यक्त करता है।

मूसलावतार की रूपक-कल्पना को हटा कर देखने पर इसमे प्रद्युम्न और साम्ब के सासारिक पात्रो के रूप मे रागद्वेष-जन्य लौकिक चरित्र का पक्ष ही उद्घाटित होता है ।

प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे प्रद्युम्न के बाद प्रमुख भूमिका ग्रहण करने वाले पात्रो मे अनिरुद्ध और साम्ब के अतिरिक्त सत्यभामा के पुत्र भानु और सुभानु का भी उल्लेख आता है और उनमे सम्बद्ध सक्षिप्त कथावृत्तो की योजना भी जैन कथाकारो ने की है । इस सम्बन्ध मे पौराणिक उल्लेख मात्र इसी आशय के प्राप्त होते हैं कि कृष्ण और सत्यभामा का पुत्र 'भानु' था ।[107] भागवत ने सत्यभामा के दस पुत्रो के नाम गिनाये है जिनमे 'भानु' और 'भानुमान' और 'सुभानु' इन तीन पुत्रो के नाम भी हैं । भागवत कृष्ण के 18 महारथी और यशस्वी पुत्रो मे 'भानु' की गणना करता है ।[108] हरिवश सत्यभामा के आठ पुत्रो का उल्लेख करते हुए उनमे केवल 'भानु' को ही सम्मिलित करता है । इसके अतिरिक्त 'भानु' के 'भानु' नामक ही बहिन की भी सूचना देता है[109] वायु-पुराण भी सत्यभामा की एक पुत्री का नाम 'भानु' बताता है ।[110] इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय मे 'भानु' और 'सुभानु' का उल्लेख प्रद्युम्न के सौतेले भाइयो के रूप मे है किन्तु उनके क्रिया-कलापो अथवा प्रद्युम्न से उनके साहचर्य और सहकर्मित्व का वर्णन नही है । प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो मे इस सूत्र को आगे वर्द्धित किया गया है ।

अब तक हमने प्रद्युम्न के जन्म, विवाह, सतति, बधु-बाधव सम्बन्धी परिचय देते हुए सासारिक व्यक्ति के रूप मे उनकी जीवन-गाथा के सूत्रो को स्पष्ट किया । अब उनके लौकिक कृत्यो का सक्षिप्त अवलोकन उचित होगा । महाभारत मे यदुवश के एक कुटुम्बी के रूप मे उनके पारिवारिक सम्बन्धो और विविध कार्य-कलापो का अनेकश· उल्लेख है । वे प्राय किसी भी अवसर पर महाभारतकार द्वारा विस्मृत या उपेक्षित नही हुए हैं । हरणहारिक पर्व में लिखा है कि अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण करने पर जब कृष्ण बलराम उपहारादि भेंट लेकर पाण्डवो के पास पहुँचे तब उनके पास प्रद्युम्न भी था ।[111] भगवद्यान पर्व मे उल्लेख है कि कृष्ण खाण्डव प्रस्थ से चल कर जब द्वारका पहुँचे तो बलराम को अभिवादन कर प्रद्युम्न, अनिरुद्ध भानु, चारुदेष्ण तथा अन्य लोगो से पहले गले मिले तब रुक्मिणी के महल मे गये ।[112] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए बलराम और गद इत्यादि के साथ प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा अन्य यदुवशी वीर भी आये थे । महाभारत के आश्वमेधिक पर्व मे उल्लेख है कि कृष्ण अश्वमेध के अवसर पर प्रद्युम्न, गद तथा साम्ब सहित उपस्थित हुए थे ।[113] इन्द्रलोकाभिगमनपर्व मे श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को कौरवो का

7 प्रद्युम्न के चारित्र्यिक गुण और लौकिक क्रिया-कलाप

महार कर उन्हे उनकी राज्यलक्ष्मी लौटाने का वचन देते समय जिन वीरो के बाहुबल पर भरोसा करते है उनमे बलराम, भीम, अर्जुन जैसे योद्धाओ के साथ प्रद्युम्न और साम्ब भी है। सजय भी धृतराष्ट्र को भावी युद्ध की सूचना देते हुए विश्वविश्रुत अजेय वीरो की श्रेणी मे कृष्ण, बलराम और अर्जुन के साथ-साथ प्रद्युम्न, साम्ब और सात्यकि की भी गणना करते है। प्रद्युम्न साम्ब का एकत्र सहोल्लेख ऐसे प्रसगो मे दोनो के घनिष्ट साहचर्य, सहकर्तृत्व का सूचक है। एक जगह सजय यह भी कहते है कि इस भूमडल मे अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी तथा प्रद्युम्न ये चार पुरुष ही बल और पराक्रम मे पाण्डु-पुत्र सहदेव की समता कर सकते है।[114] अर्जुनाभिगमनपर्व मे द्रौपदी कृष्ण से कहती है कि आपका पुत्र प्रद्युम्न जैसा शूरवीर है वैसे ही मेरे भी पुत्र है।[115] इस उल्लेख से प्रद्युम्न की कृष्ण-पुत्रो मे सर्वश्रेष्ठ आदर्श और उपमेय वीर के रूप मे सस्तुति है। सैन्योद्योगपर्व मे सात्यकि गर्व और विश्वासपूर्वक घोषणा करता है कि गद प्रद्युम्न और साम्ब साक्षात् काल, सूर्य और अग्नि के समान अज्ञेय है। सात्यकि को खेद है कि बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब जैसे वीरो और स्वय उसके रहते भी अभी तक कुन्ती-पुत्रो को वन मे ही निवास क्यो करना पड रहा है।[116] उसे विश्वास है कि प्रद्युम्न द्वारा छोडे गये तीक्ष्ण बाणो को सहन करने की शक्ति कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, विकर्ण और कर्ण किसी मे नही है।[117] वह अभिमन्यु की वीरता की तुलना प्रद्युम्न (कार्ष्णि) से करता है।[118] सात्यकि इसी क्रम मे साम्ब और अनिरुद्ध के शौर्य की भी प्रशसा करता हुआ कहता है कि साम्ब बलपूर्वक शत्रुसेना को भेद कर अपनी दोनो भुजाओ से रथ और सारथी सहित दुशासन का दमन करने मे समर्थ है। गोल-जाँघो और लम्बी और मोटी भुजाओ वाले महारथी साम्ब के सम्मुख सग्राम भूमि मे कौन ठहर सकता है? जैसे अन्तकाल आने पर यमराज की भुजाओ मे पडे हुए मनुष्य का छुटकारा असभव है उसी प्रकार साम्ब की पकड में आये हुए योद्धा का बचना भी अशक्य है।[119] इस प्रसग मे सात्यकि का यह कहना बडा अर्थपूर्ण है कि जाम्बवती-सुत साम्ब ने बाल्यावस्था मे साहसपूर्वक शबरासुर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।[120] शबर द्वारा प्रद्युम्न का जन्म के छठे दिन अपहरण और किशोर होने पर प्रद्युम्न द्वारा शबरासुर का वध ही प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो का मुख्य कथा-सूत्र है। साम्ब द्वारा भी शबरासुर की सेना को बाल्य काल मे ही नष्ट कर देने के उल्लेख मे प्रद्युम्न और साम्ब का सहकर्मित्व दृढ रूप से स्थापित हो जाता है। वे मानो एक-प्राण-दो-शरीर है। इसलिए हम कवि द्वारा प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे साम्ब को इतनी प्रमुखता प्राप्त करते देखते है। इन काव्यो मे वर्णित साम्ब के प्रति प्रद्युम्न का स्नेह और पक्षपात की सीमा तक बढा हुआ अनुग्रह भी प्रद्युम्न-साम्ब के इस युग्म के महत्त्व और अद्वय कल्पना के कारण ही प्रतीत होता है। शौर्य की दृष्टि से वृष्णि-वशी वीरो मे प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध और सात्यकि इन चतुर्वीरो के पराक्रमो का महाभारत मे एकत्र अथवा एक ही क्रम मे प्राय उल्लेख होने से इनका प्रेमपूर्ण पारि-

वारिक सम्बन्ध और अप्रतिम शौर्य स्वयसिद्ध है। अपने जीवन के अ तिम काल तक, जैसा कि हम आगे देखेंगे, महाभारतकार ने इन्हे सहकर्ता और सहभोगी के रूप मे अविच्छेद्य रूप से सम्बद्ध बताया है। यह कहना अतिशयपूर्ण अथवा अयुक्तियुक्त नही होगा कि जिस प्रकार अलौकिक देवता-रू। मे वासुदेव, सकर्षण प्रद्यु म्न और अनिरुद्ध चतुर्व्यूहो के रूप मे प्रतिष्ठित है उसी प्रकार लौकिक क्षेत्र मे सात्यकि, प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध चतुर्वीरो के रूप मे महाभारत मे वर्णित है।

प्रद्युम्न के सौदर्य और शौर्य की ख्याति यादवकुल तक सीमित नहीं थी। उनके रूप का जादू पाण्डवकुल मे भी छाया हुआ था। रमणी-हृदय चुराने की प्रद्युम्न की कला सब पर प्रकट थी। वे स्त्रियो के मनोभावो के ज्ञाता और सब अस्त्रो के प्रयोग मे पारगत थे।[121] इसलिए महाभारत के द्रौपदी–सत्यभामा सवाद मे द्रौपदी सत्यभामा को पतिव्रता–धर्म का उपदेश देती हुई सावधान करती है कि यद्यपि प्रद्युम्न और साम्ब तुम्हारे पुत्र है तथापि तुम्हे एकान्त मे कभी उनके पास भी नही बैठना चाहिए।[122] सत्यभामा प्रत्युत्तर मे सद्शिक्षा प्रदान करने के लिए कृतज्ञता प्रकट करती हुई कहती है कि प्रद्यु म्न-जननी रुक्मिणी द्वारका मे जीवन व्यतीत कर रहे द्रौपदी–पुत्रो प्रतिविन्ध्य, श्रु तसोम, श्रु तकर्मा, शतानीक और श्रु तसेन आदि की सब प्रकार से सेवा और देखभाल करती है। कृष्ण भी भानु आदि पुत्रो से भी अधिक तुम्हारे पुत्रो से स्नेह करते हैं। यही नही, प्रद्यु म्न का भी तुम्हारे पुत्रो पर समान प्रेम है।[123] कुन्ती कौरवो से प्रतिशोध लेने के लिए कृष्ण को उकसाती हुई कहती है कि जिस कु ती के बलवानो मे श्रेष्ठ बलराम, तुम तथा महारथी प्रद्यु म्न, विजयी अर्जु न और दुर्धर्ष भीम जैसे पुत्र जीवित है वह ऐसे अपमान का दु ख सह रही है।[124] कौरव–सभा मे सधि–वार्त्ता मे असफल रहने पर कृष्ण अपने विश्वरूप का दर्शन कराते है तब उनकी दोनो भुजाओ से बलराम और अर्जु न प्रकट होते हैं तथा प्रद्यु म्न आदि अ धक-वृष्णिवशी योद्धा विशाल आयुध धारण किये भगवान के अग्रभाग मे प्रकट होते है।[125] यहा लक्ष्यार्थ को हटाने से इस वाच्यार्थ की प्रतीति सहज ही हो जाती है कि महाभारत-युद्ध मे बलराम और अर्जु न, उनके दाहिने बाए हाथ थे तो प्रद्यु म्न युवा योद्धाओ के प्रमुख के रूप मे अग्रिम पक्ति मे नेतृत्व करते थे। युधिष्ठिर भी प्रद्यु म्न के शौर्य से प्रभावित थे। अभिमन्यु को चक्र-व्यूह-वेध के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं कि मुझे तुम्हारे, अर्जु न, श्रीकृष्ण और प्रद्यु म्न—इन चार व्यक्तियो के अतिरिक्त इस चक्र-व्यूह को तोडने मे समर्थ अन्य कोई व्यक्ति नही दिखता।[126] द्रोणाभिषेक पर्व मे भी गद, प्रद्यु म्न, साम्ब और अनिरुद्ध की प्रमुख वृष्णि वीरो मे गणना है।[127] अभिमन्यु के मारे जाने पर अर्जु न अभिमन्यु को अन्य महारथियो से डेढ गुणा अधिक बलवान बताते हुए कहता है कि वह मेरा, प्रद्यु म्न का तथा श्रीकृष्ण का प्रिय शिष्य था। इससे युद्ध-विद्या मे प्रद्यु म्न की निपुणता तथा शिक्षण-प्रवीणता सिद्ध होती है।

जयद्रथ-वध के लिए प्रयाण करने से पूर्व अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर की रक्षा का भार प्रद्युम्न या सात्यकि पर डाल कर ही निश्चित हो सकने की धारणा प्रकट करता है।[129] सात्यकि के बाद अर्जुन को प्रद्युम्न के बाहुबल का ही भरोसा है।[130] युधिष्ठिर भी समस्त वृष्णिवंशीय वीरो मे सात्यकि और प्रद्युम्न को ही सर्वश्रेष्ठ अतिरथी योद्धा स्वीकार करते है।[131] सात्यकि भी कहते हैं कि मुझे यहा 'रौक्मिणेय' प्रद्युम्न के अतिरिक्त कोई ऐसा योद्धा नही दीखता जो द्रोणाचार्य का सामना करने मे समर्थ हो। यदि कामदेव के अवतार (मकरध्वज) कृष्णपुत्र (कार्ष्णि) प्रद्युम्न धनुष हाथ मे लिए इस समय यहा होते तो वे अर्जुन ही की तरह आपकी रक्षा कर सकते थे।[132] सात्यकि द्वारा अपने पुत्र भूरिश्रवा के मारे जाने पर क्रुद्ध सोमदत्त अर्जुन के बाण से छिन्नहस्त प्रायोपविष्ट (रण मे अस्त्र-शस्त्र त्याग कर शात भाव से मृत्यु-कामी) भूरिश्रवा पर प्रहार करने के कारण सात्यकि पर कुपित होता हुआ भी कहता है कि वृष्णि वश मे तुम (सात्यकि) और वीरवर वह प्रद्युम्न—ये दो ही योद्धा प्रख्यात है।[133] पुत्र-घात शोक से ग्रस्त प्रतिपक्षी द्वारा की गयी यह प्रशसा प्रद्युम्न के शौर्य और लोकप्रियता की अकाट्य साक्षी है। यही नही, प्रद्युम्न जैसे नर-रत्न को पुत्र-रूप मे पाकर कृष्ण भी अपने को गौरवान्वित अनुभव करते है। अश्वत्थामा द्वारा कृष्ण से सुदर्शन चक्र माँगने पर कृष्ण उसकी भर्त्सना करते हुए कहते है कि मैंने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन सहित हिमालय की घाटी मे रह कर तपस्या द्वारा जिसे प्राप्त किया है, मेरे ही समान व्रत का पालन करने वाली रुक्मिणी देवी के गर्भ से जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूप मे साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमार ने ही जन्म लिया है जो रणभूमि मे अप्रतिम है, उस मेरे प्रिय पुत्र प्रद्युम्न ने भी कभी इस दिव्य चक्र की याचना नही की जिसे तू अपनी चपल दुर्बुद्धिवश माग रहा है।[134] प्रद्युम्न अपने अस्त्र-शस्त्रो के सम्बन्ध मे सजग रहते थे। उचित युद्ध-प्रसग पर वे प्रसगोचित अस्त्र का ही प्रयोग करने मे अत्यत कुशल थे। धृष्टद्युम्न के विरुद्ध निकट से युद्ध करते हुए द्रोणाचार्य बित्ते भर लम्बे 'वैतस्तिक' बाणो से युद्ध कर रहे थे क्योकि निकट के युद्ध मे वे ही बाण काम आ सकते है। द्रोणाचार्य के अतिरिक्त इस प्रकार के बाण कृपाचार्य, अर्जुन, कर्ण, सात्यकि, प्रद्युम्न और अभिमन्यु के अतिरिक्त और किसी के भी पास नही थे।[135] ये सभी सदर्भ और तत्सम्बन्धी उल्लेख, प्रद्युम्न को एक प्रसिद्ध लौकिक युद्ध-वीर के रूप मे उद्घाटित करते है क्योकि इनके सूत्र किसी मायावी युद्ध का ताना-बाना न बुन कर कुरुक्षेत्र मे घटित प्रसिद्ध महाभारत युद्ध और उसके उपलक्ष से युद्ध सम्बन्धी सहज-स्फूर्त हार्दिक उद्गारो का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

प्रद्युम्न युद्ध-वीर के रूप मे ही नही, स्नेही और सवेदनशील कौटुम्बिक जन के रूप मे भी चित्रित है। प्रद्युम्न का अपने परिजनो के प्रति और परिजनों का प्रद्युम्न से गहन स्नेह था। जब प्रद्युम्न, साम्ब और चारुदेष्ण श्रीकृष्ण के द्वारका आगमन का शुभसवाद साम्ब ज्ञात होता है तो उनके हृदय मे इतना आनन्द उमडता हैं कि वे अपने

सभी आवश्यक नित्यकर्म यथा शयन, विश्राम, भोजन तक छोड़ बैठते हैं।[136] हर्षातिरेक और प्रेम के आतिशय्य में ही ऐसी स्थिति सम्भव होती है। कृष्ण से मिल कर उनकी भावी गतिविधि जानने के लिए गये हुए अर्जुन जब लौट कर आते हैं तो युधिष्ठिर वसुदेव, बलराम और श्रीकृष्ण आदि का कुशल क्षेम पूछने के बाद प्रश्न करते हैं—वृष्णिवंश के सर्वश्रेष्ठ वीर प्रद्युम्न तो सुख से हैं ?[137]

प्रद्युम्न के लौकिक व्यक्तित्व के प्रकाशक इन इतस्ततः स्फुट उल्लेखों के अतिरिक्त व्यापक विवृत्तियों में विस्तीर्ण उनके शौर्य और प्रणय सम्बन्धी कार्य-कलापों के सूचक

8 प्रद्युम्न-चरित्र व्यंजक प्रमुख कथा-वृत्त

कथा-वृत्तों में तथा इतिवृत्तात्मक लोक प्रसंगों में भी उनका लौकिक व्यक्तित्व यत्किंचित अनुस्यूत है। महाभारत तथा पुराणों में प्राप्य प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी प्रमुख कथा-वृत्त तथा इतिवृत्तात्मक प्रसंग निम्नलिखित हैं—

प्रद्युम्न-चरित्र व्यंजक कथा-वृत्त

(क) शौर्य सम्बन्धी कथा-वृत्त

(1) प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध[138]
(2) प्रद्युम्न-जयन्त युद्ध (पारिजात-हरण प्रकरण)[139]
(3) प्रद्युम्न-निकुंभ युद्ध[140]
(4) प्रद्युम्न-कार्तिकेय युद्ध (उषा-अनिरुद्ध प्रसंग)[141]

(ख) प्रणय (तथा शौर्य) सम्बन्धी कथा-वृत्त

(5) प्रद्युम्न-वैदर्भी परिणय[142]
(6) प्रद्युम्न-प्रभावती परिणय[143]
(7) प्रद्युम्न-मायावती मिलन (प्रद्युम्न-शंबर युद्ध)[144]

(ग) गौण इतिवृत्तात्मक प्रसंग

(8) नृग राजा की कथा[145]
(9) द्वारका के ब्राह्मण-पुत्रों की रक्षा[146]
(10) कृष्ण द्वारा प्रद्युम्न को ब्राह्मण-माहात्म्य का बोध[147]
(11) बलराम द्वारा प्रद्युम्न को प्राड्नीव स्तोत्र का उपदेश[148]
(12) प्रद्युम्न की समन्तपंचक तीर्थ-यात्रा[149]
(13) पिंडारक तीर्थ में जल-विहार[150]
(14) साम्ब के उदर से मूसल प्रसव तथा यादव-विनाश[151]

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह वर्गीकरण निर्वात-कोष्ठ वर्गीकरण नहीं है। न ऐसा वर्गीकरण सभव ही है क्यो कि पौराणिक और महाकाव्यीय सृजन-शैली मे तथ्य और कल्पना का नितान्त विच्छिन्न किया जाना शक्य नही है। तथापि व्यापक रूपरेखाओ के आधार पर यह एक उचित और उपादेय वर्गीकरण है। वस्तुत: महाकाव्यीय तथा पौराणिक साहित्य रूपक-शैली का साहित्य है जिसमे लौकिक तथ्य पर अलौकिक कल्पनाओ के आरोप की प्रवृत्ति प्रकृष्ट है। तथापि अलौकिकता के हिम-मडित आवरण मे यथार्थ जीवन के सजीव और जाज्वल्यमान स्फुलिंग भी छुपे हुए है जैसा कि इन कथा-वृत्तो और प्रसगो के विश्लेषण से स्पष्ट होगा।

इन कथा-वृत्तो मे प्रथम कथा-वृत्त प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध सम्बन्धी है। इसका महत्त्व प्रद्युम्न के शौर्य-वर्णन की दृष्टि से अद्वितीय है क्यो कि इसमें युद्ध-क्षेत्र मे जूझते हुए योद्धा की भावनाओ का सजीव और यथार्थ चित्रण है। प्रद्युम्न यहाँ एक ऐसे योद्धा के रूप मे प्रस्तुत है जिसे अपने कुल की वीरोचित मर्यादा और प्रिय परिजनो द्वारा अपने शौर्य के प्रति अडिग विश्वास की रक्षा की चिंता है। उसे यदुवंश की स्त्रियो द्वारा उपहास और निंदा का पात्र बनाये जाने की दुश्चिन्ता भी शाल रही है। इस प्रकार, चिन्ता, धृति, औत्सुक्य, ग्लानि आदि सचारी भावो से परिपुष्ट 'उत्साह' स्थायीभाव के आश्रय रूप से वह जिन गहन और उदात्त अनुभूत्यात्मक उद्गारो को प्रकट करता है वे वीर रस के परिपाक मे समर्थ हैं।

9 प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध

इस उत्कृष्ट भाव-चित्रण के कारण ही प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध मे जो महाभारत के वन-पर्व मे 16 वे अध्याय से 19 वे अध्याय तक वर्णित है, प्रद्युम्न दुर्द्धर्ष वीर योद्धा के रूप मे दीख पडता है। उक्त अवसर पर अस्त्र-शस्त्र, मायामय विमान आदि वस्तु-वर्णन मे अवश्य अलौकिक तत्त्वो का समावेश है किन्तु भाव-वर्णन समस्त प्रकरण को लौकिकता के स्पर्श से अनुप्राणित किये है। जब शाल्व ने सौभविमान सहित द्वारकापुरी पर आक्रमण किया तो प्रद्युम्न, साम्ब, और चारुदेष्ण—ये सब शाल्वराज के अनेक श्रेष्ठ योद्धाओ के साथ भिड़ गये। हर्ष मे भरे हुए साम्ब ने धनुष धारण कर शाल्व के मत्री तथा सेनापति क्षेमवृद्धि के साथ युद्ध किया। क्षेम-वृद्धि के युद्ध-स्थल से पलायन करने पर साम्ब ने वेगनाम नामक दैत्य के साथ युद्ध कर उसका सहार किया।[152] इस अवसर पर प्रद्युम्न के शौर्य का तो कहना ही क्या ? वह युद्ध की सारी कमान सँभालता हुआ भय से व्याकुल सेना को धैर्य और उत्साह दिलाता हुआ शाल्व से युद्ध मे जूझ पड़ता है। प्रद्युम्न यहाँ ओजस्वी वक्ता, वीरदर्पपूर्ण नायक, युद्धविद्या-विशारद और कुशल सेनापति के रूप मे दीख पडता है। वह शत्रु के आक्रमण से सत्रस्त सैन्य को उद्बोधन देते हुए कहता है—यादवो, आप लोग शात खडे रह कर मेरे पराक्रम को देखें। मैं किस प्रकार युद्ध मे राजा शाल्व सहित सौभ विमान की गति रोक देता हूँ। मैं अपने धनुर्दण्ड से छूटे

हुए, लोहे के सर्प तुल्य बाणों द्वारा सौभपति शाल्व की सेना को अभी नष्ट किये देता हूँ। प्रद्युम्न के ये हर्ष-पूरित वचन सुन सेना स्थिर हो पूर्ववत प्रसन्नता और उत्साह के साथ युद्ध करने लगती है।[153] प्रद्युम्न सुवर्णमय रथ पर आरूढ थे जिसमे वरतर पहने अश्व जुते हुए थे। उनके रथ के घोडे मानो आकाश मे उडे जा रहे थे।[154] प्रद्युम्न पीठ पर तरकस और कमर मे तलवार बाँधे हुए थे। हाथो मे उन्होने गोह के चमडे के बने हुए दस्ताने पहन रखे थे। उन्होने बिजली के समान चमकते धनुष (विद्युच्छुरित चाप) से समस्त सौभवासी दैत्यो को मूर्छित कर दिया। उनकी ध्वजा के सुवर्णदण्ड पर तिमि नामक जलचरो का प्रमथन करने वाले मुँह बाये एक मगरमच्छ का चिन्ह था जो शत्रु-सेना को भयार्त कर रहा था। युद्ध करते हुए प्रद्युम्न के मुख का रग तनिक भी नही बदलता था। उनके अग भी विचलित नही होते थे।[155] यहाँ सहिता-साहित्य मे वर्णित 'वीर्य' नामक भगवद्गुण का आरोप स्पष्ट है। यह वर्णन अनुभाव-चित्रण की दृष्टि से भी समृद्ध है। जब शाल्व के बाण से आहत और मूर्च्छित प्रद्युम्न को उसका सारथि अपने कर्तव्य पालनार्थ युद्ध भूमि से सुरक्षित स्थान मे हटा लाता है तो वीरवर प्रद्युम्न अपने सारथी को डाँटते है। इस अवसर पर वे एक अप्रतिम लौकिक वीर के रूप मे उभरते है। उनकी वीर दर्पपूर्ण उक्तियो के पीछे जागतिक सदर्भ जुडे हुए है। प्रद्युम्न अपने सारथी दारुक-पुत्र से कहते है—"सूत पुत्र, तूने क्या सोच कर युद्ध से मुँह मोडा है? युद्ध से पलायन करना वृष्णिवशी वीरो का धर्म नही है। शाल्व जैसे शत्रु को देख तू सम्मूढ तो नही हो गया अथवा युद्ध देखकर तुझे विषाद तो उत्पन्न नही हुआ? सारथी द्वारा अपने कर्म को सारथीधर्म-सम्मत बताने पर भी प्रद्युम्न रथ को पुन युद्ध भूमि की ओर लौटाने की आज्ञा देता हुआ कहता है—सूतपुत्र, आज से फिर कभी किसी भी अवस्था मे मेरे जीते-जी रथ को युद्ध भूमि से न लौटाना। वृष्णि वश मे ऐसा कोई वीर पुरुष नही पैदा हुआ है जो युद्ध छोड कर पलायन कर जाए अथवा आहत या शरणागत पर हाथ उठाए। इसी प्रकार स्त्री, बालक, वृद्ध, विरथ, भटके हुए या नष्टायुध योद्धा पर हथियार उठाने वाला भी वृष्णिवश मे उत्पन्न नही हुआ है। वृष्णि वशी वीरो का युद्ध मे क्या धर्म है इसे तू भली भाँति जानता है। हाय, तू मुझे रण-भूमि से क्यो हटा लाया है? हमने कभी नही सुना कि हमारे वश का कोई वीर कभी रणभूमि से हटा हो। यह कलक का टीका तो मेरे ही सिर लगा है। युद्ध से लौटते या उद्भ्रान्त हो कर भागने पर मेरी पीठ मे लगे शत्रु के बाण को देख कर दुर्धर्ष गदाग्रज मेरे पिता श्रीकृष्ण क्या कहेगे? अथवा उनके अग्रज नीलाम्बरधारी मदोत्कट महाबाहु बलराम क्या कहेगे? मै उन्हे क्या उत्तर दूँगा? सब यही कहेगे कि मै युद्ध-भूमि से भाग आया हूँ। सिंह सदृश पराक्रमी सात्यकि तथा समरविजयी साम्ब, गद, चारुदेष्ण इत्यादि वीर मुझसे क्या कहेगे? मै स्थिरचित्त शान्त अविचलित शूरवीर के रूप मे सदा सम्मानित हूँ। युद्ध मे भागने पर मुझे देख कर सगत हुई वृष्णि वीरो की स्त्रियाँ मुझे क्या कहेगी? सब लोग यही कहेगे न कि यह प्रद्युम्न भयातुर हो महान सग्राम छोड कर

भागा जा रहा है, इसे धिक्कार है। मेरी भाभियाँ (भ्रातृजामय) हँसती हुई मुझे ताने देंगी, 'कहो वीर, तुम नपुंसक कैसे हो गये ? युद्ध भूमि मे दूसरो ने तुम्हे नीचा कैसे दिखा दिया ? उस अवस्था मे किसी के मुख से मेरे लिए अच्छे शब्द नही निकलेंगे। मेरे अथवा मेरे जैसे किसी भी पुरुष के लिए धिक्कारयुक्त वाणी के प्रयोग द्वारा कोई उपहास कर दे तो वह मृत्यु से भी अधिक सन्त्रासकारी है। अत. तू फिर कभी युद्ध छोड कर न भागना। मेरे पिता मधुसूदन भगवान श्रीकृष्ण यहाँ द्वारका की रक्षा का सारा भार मुझे सौंप कर भरतवश-शिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ मे गये हैं। आज मुझमे जो अपराध हो गया है इसके लिए वे मुझे क्षमा नही कर सकेंगे। वीरवर कृतवर्मा शाल्व का प्रतिरोध करने पुरी से बाहर आ रहे थे। मैने ही उन्हे यह कह कर रोक दिया कि आप यही निश्चिन्त रहिए मै शाल्व को परास्त करके रहूँगा। मुझे इस कार्य मे समर्थ जान युद्ध से निवृत्त हुए वीर कृतवर्मा से जब आज मिलूँगा तो मैं युद्ध से भागा हुआ भगोडा उन्हे क्या जवाब दूँगा ? सात्यकि, बलराम और मुझमे शौर्य मे स्पर्द्धा रखने वाले अन्य अधक और वृष्णि वीरो से मै क्या कहूँगा ? तेरे द्वारा रण मे भूमि से भगाया हुआ मैं इस युद्ध को छोड़ कर और पीठ पर बाणो के घाव खा कर विवशतापूर्ण जीवन किसी भी प्रकार धारण नही कर सकूँगा। अत तू शीघ्र ही रथ पर आरूढ हो कर मुझे सग्राम-भूमि की ओर पुन लौटा। आज से मुझ पर ऐसी आपत्ति आने पर तू फिर कभी ऐसा वर्ताव मत करना। क्या तू मुझे कापुरुष और रणभीरु समझता है ? तुझे सग्राम-भूमि का त्याग करना कदापि उचित नही था, विशेषत: उस अवस्था मे जब कि मैं युद्ध की अभिलाषा रखता था। अत शीघ्र युद्ध-स्थल को चलो।[158] इसके पश्चात् नारद द्वारा यह कह कर वर्जित करने पर ही कि शाल्व का सहार कृष्ण द्वारा ही भावी का विधान है, वह युद्ध से उपरत होता है। कृष्ण-शाल्व युद्ध मे शाल्व का माया-रचित दूत जब यह मिथ्या समाचार दे कर कि शाल्व ने द्वारकापुरी मे वसुदेव का हनन कर दिया है, कृष्ण का मनोबल ध्वस्त कर देता है तो कृष्ण ने उस समय प्रद्युम्न के प्रति जो उद्गार किये है उनसे प्रद्युम्न मे उनके विश्वास और उनकी आकाक्षाओ की ही क्षोभ के रूप मे अभिव्यक्ति होती है। कृष्ण युधिष्ठिर से उस प्रसग की अपनी मनोदशा को प्रकट करते हुए कहते है कि हे युधिष्ठिर, वह महान अप्रिय वृत्तान्त सुनकर मैं मन-ही-मन सात्यकि, बलराम तथा महारथी प्रद्युम्न की निंदा करने लगा क्यो कि मैं द्वारका की तथा पिताजी की रक्षा का भार उन्ही लोगो पर रख कर सौभ विमान का नाश करने के लिए चला था। क्या शत्रुहता महाबली बलराम जी इस दुखद घटना के बाद भी अभी तक जीवित है ? क्या सात्यकि, रुक्मिणी-नदन प्रद्युम्न, महाबली चारुदेष्ण तथा साम्ब आदि अभी तक जीवन धारण किये हुए है ? इन वीरो के जीवित रहते साक्षात् इन्द्र भी मेरे पिता वसुदेव जी को किसी प्रकार मार नही सकते थे। अवश्य ही वसुदेव जी के मारे जाने के अनन्तर बलराम प्रद्युम्न आदि समस्त वीर भी प्राण-त्याग कर चुके है। इस प्रकार चिन्तन करता हुआ भी मैं

व्यथाकुल मन से शाल्व से पुन: युद्ध करने लगा।[157] इस प्रकार प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध का यह प्रसग वस्तु-वर्णन और पात्र-सगठन (चरित्र-सृष्टि) की किंचित अलौकिकता का आरोप लिये हुए भी सहज और प्रकृत वीररस का परिपोषक है और प्रद्युम्न को एक उत्कृष्ट लौकिक वीर के रूप मे प्रस्थापित करता है।

10. इतर शौर्य–प्रसंग व्यंजक कथा–वृत्तः प्रद्युम्न–जयंत युद्ध

प्रद्युम्न--चरित्र व्यजक शेष तीनो शौर्य--प्रसग प्रद्युम्न--जयन्त युद्ध, प्रद्युम्न--निकुंभ युद्ध और प्रद्युम्न--कार्तिकेय युद्ध अपेक्षाकृत अलौकिक तत्त्वो से ही अधिक आवृत हैं। प्रद्युम्न-जयत युद्ध का अवसर पारिजात–हरण प्रकरण के अन्तर्गत आता है। पारिजात हरण[158] प्रकरण सर्वाधिक कौशल और विस्तार से हरिवश मे वर्णित है। यह प्रसग मूलत कृष्ण और इन्द्र के देवता–रूप मे पारस्परिक द्वन्द्व और श्रेष्ठता की दृष्टि से आयोजित है अत इस कथा–वृत्त की सारी सरचना स्वभावत अलौकिक दैवी तत्त्वो से आयोजित है। विष्णुपुराण मे उक्त प्रसग सूक्ष्मता से वर्णित होने के कारण जयन्त–प्रद्युम्न युद्ध की योजना नही है। हरिवशपर्व मे ही इन्द्र-कृष्ण, प्रवर–सात्यकि के साथ-साथ जयत–प्रद्युम्न युद्ध भी वर्णित है। कृष्ण मानिनी सत्यभामा के सपत्नी–दाह की शांति के लिए पारिजात–हरण के उद्देश्य से आखेट के बहाने रैवतक पर्वत पर जाते हैं। सात्यकि को अपने साथ ही रथ पर आरूढ करा वे प्रद्युम्न को भी अपने पीछे आने की आज्ञा देते हैं। रैवतक पर्वत से कृष्ण सात्यकि के साथ नदन वन मे जा पहुँचते हैं। प्रद्युम्न भी एक पृथक् आकाशचारी रथ के द्वारा श्रीकृष्ण का अनुगमन करते है। जब इन्द्र–कृष्ण युद्ध के बीच ही मे गरुड पारिजात को हर ले जाना चाहते हैं तो जयत गरुड की पीठ पर रखे पारिजात को ले जाने मे विघ्न उत्पन्न करते है। तब कृष्ण प्रद्युम्न–जयन्त को रोकने के लिए कहते हैं। पिता की आज्ञा पाते ही प्रतापी प्रद्युम्न जयत का मार्ग अवरुद्ध कर देते है। फिर क्या था, एक ओर महेन्द्र–पुत्र और दूसरी ओर उपेन्द्र–पुत्र मे तुमुल युद्ध छिड जाता है। दोनो समतुल्य प्रतापी वीर थे। अग्नि कितनी ही प्रचड क्यो न हो वह दूसरी अग्नि को नही जला सकती। प्रद्युम्न रथदग्ध हो जाने पर भी वीर–दर्प युक्त उक्तियो से जयत को चुनौती देते हुए माया द्वारा हजारो रथ बनाने के अपने सामर्थ्य की घोषणा करते है।[159] युद्ध मे निरस्त्र हुए अपने चाचा सात्यकि को निर्मल आकाश के समान कातिमान खग देकर उनकी सहायता करते है और बारबार मूर्छित होकर गिरते हुए सात्यकि को आश्वासन देते हुए हृदय से लगाते है।[160] कृष्ण, युद्ध के बीच उन्हे दारुक सारथी सहित रथ को लाने की आज्ञा देते है जिसका वे सहर्ष पालन करते हैं और घडी भर मे दारुक और रथ सहित लौट आते है।[161] कृष्ण प्रद्युम्न और सात्यकि के साथ सुरम्य पारियात्र पर्वत पर युद्ध–विराम–रात्रि सहर्ष व्यतीत करते है।[162] अंत मे अदिति द्वारा मध्यस्थ बनकर सधि कराने पर जब कृष्ण पारिजात सहित द्वारका को

लौटते हैं तो रथियो मे श्रेष्ठ प्रद्युम्न ही पारिजात को अपने आगे गरुड़ पर रख कर सबसे पहले रमणीय द्वारकापुरी मे प्रवेश करते है ।[163] इन समस्त उल्लेखो से धार्मिक पुराकथा–रूप इस वृत्त मे भी लौकिक जन के रूप मे प्रद्युम्न के व्यक्तित्व की विशेषताएँ भी प्रच्छन्नतया व्यंजित हो ही गयी है। वे एक दुर्द्धर्ष योद्धा के रूप मे ही नही, एक आज्ञा–पालक, स्फूर्तिवान तथा विश्वासभाजन पुत्र के रूप मे भी उभर कर आते है। वे सकेत मात्र से ही आशय को समझ लेने वाले तथा अवसरोचित निर्णय लेने मे समर्थ प्रत्युत्पन्न मति वाले सिद्ध होते हैं। पिता के प्रति ही नही, चाचा के प्रति भी उनका निश्छल स्नेह, सेवातत्परता और हितचिन्ता उन्हे निष्पक्ष, निष्ठावान् और आत्मीयता के भावो से ओत-प्रोत कौटुम्बिक जन के रूप मे प्रतिष्ठित करती है।

11. प्रद्युम्न–निकुंभ युद्ध

निकुंभ–वध वृत्त मे भी वासुदेव अपने सहपाठी, उपाध्याय और अध्वर्यु षट्पुरवासी ब्रह्मदत्त ब्राह्मण के यज्ञ मे निकुंभादि दैत्यो द्वारा हविर्भाग और कन्यादि माँगने और न देने पर उनकी लूट मचाने पर कृष्ण बलदेव और गद का चिंतन करते है। कृष्ण तो सर्वज्ञ ठहरे। उन्होने प्रद्युम्न को आज्ञा दी 'पुत्र, जाओ और माया द्वारा ब्रह्मदत्त की कन्याओ की रक्षा करो' [164] वे स्वय भी सेना तैयार कर चल दिये। महाबली वीर कामरूप प्रद्युम्न पिता की आज्ञा का पालन करने वाले थे। वे पलक मारते-मारते पिता से भी पहले षटपुर पहुँच गये।[165] उन्होने कन्याओ का माया द्वारा हरण कर वैसी ही अन्य मायामयी कन्याओ को दैत्यो के पास छोड दिया तथा अपनी पितामही देवकी से कहा–'दादी जी आप चिंता न करे।[166] दैत्यो से युद्ध की घोषणा कर श्रीकृष्ण ने सबसे आगे प्रद्युम्न को सेना की रक्षा के लिए उसके ऊपरी भाग आकाश मे स्थापित किया।[167] जब निकुंभ यादव सेनापति अनाधृष्टि सहित कृतवर्मा, चारुदेष्ण, सनत्कुमार आदि अन्यान्य वीरो को षट्पुर गुहा मे बंदी बना देता है तो प्रद्युम्न ही उसके प्रतिकार और प्रतिशोध स्वरूप अनिरुद्ध, साम्ब इत्यादि वीरो के साथ घोर मायामयी गुफा की सृष्टि करके समस्त दैत्यपक्षीय क्षत्रिय नरेशो के समुदाय को उसमे फेंकने के लिए उद्यत हो गये। यहाँ प्रद्युम्न के स्वभाव मे 'शठे शाठ्य समाचरेत्' वृत्ति लक्षित होती है। वह ईट का जवाब पत्थर से देना जानते थे। शकर प्रदत्त पाश से कर्ण, दुर्योधन, शकुनि रुक्मी और शिशुपाल आदि समस्त शत्रुपक्षीय क्षत्रियो को बाँध कर प्रद्युम्न ने फुफकारते हुए सर्पो के समान लम्बी साँसें छोडते हुए उन्हे मायामयी गुफा मे डाल दिया। कर्तव्य मे सजग और तत्पर प्रद्युम्न ने अपने पुत्र अनिरुद्ध को उनका रक्षक नियुक्त कर दिया।[168] वे कृष्ण की आज्ञा से उन सब यादवो को भी छुडा लाये जिन्हे निकुंभ ने पहले बंदी बना लिया था।[169] अपने द्वारा कैद क्षत्रिय राजाओ को भी प्रद्युम्न ने बारम्बार 'वीर हमे मुक्त कर दो' इस प्रकार याचना करने पर छोड दिया।[170] इससे प्रद्युम्न मे शरणागत-वत्सलता और क्षमाशीलता की भावना भी झलकती है।

प्रद्युम्न–कार्तिकेय युद्ध उपा–अनिरुद्ध प्रसग का अन्तर्वर्ती कथा–वृत्त है इसीलिए इसमे प्रणय और शौर्य दोनो वृत्तियो मे सम्वन्वित

12. प्रद्युम्न–कार्तिकेय युद्ध

प्रद्युम्न-चरित्र की विशेषताओ के सूचक उल्लेख प्राप्त होते हैं। तव वाणासुर के मत्री कुम्भाण्ड (कूष्माण्ड) की पुत्री चित्रलेखा जो वाण-पुत्री उपा की सहेली थी, उपा के साथ स्वप्न मे समागमकर्ता अज्ञात पुरुष को जानने के लिए प्रमुख देवताओ आदि के चित्र वना कर लाती है तो वलदेव और श्रीकृष्ण के चित्र देखकर सुदर भ्रकुटि वाली उपा लज्जा से जड हो जाती है तथा प्रद्युम्न के चित्र को देख कर लज्जावश वह अपनी दृष्टि हटा लेती है। फिर प्रद्युम्नतनय अनिरुद्ध के चित्र को देखते ही उस विलासिनी की लज्जा न जाने कहाँ चली गयी और वह कह ही तो उठी—"वह यही है।"[171] प्रद्युम्न एक मर्यादाशील परिवार के सम्मानित सदस्य थे। भावी पुत्र-वधू का यह शील सकोच श्रद्धास्पद परिजन के रूप मे उनके व्यक्तित्व की महनीयता का निदर्शक है। हरिवशपर्व मे प्रद्युम्न-चित्र देख कर उपा का लज्जित होना वर्णित नही है[172] तथापि प्रद्युम्न के प्रति उसका आदर भाव अवश्य व्यक्त होता है जव कि युद्ध के अन्त मे उषा सखियो सहित आकर उन्हे प्रणाम करती है। अनिरुद्ध पहले ही विनीत भाव से अभिवादन कर चुके हैं।[173] जव उषा अनिरुद्ध द्वारका पहुँच जाते है तो रुक्मिणी प्रद्युम्न-पत्नी शुभागी से कहती है—वहू, आज तुम अपने पुत्र अनिरुद्ध को देख कर अभ्युदय-शालिनी हुई हो। यह वडे सौभाग्य की वात है। असुरसुदरी उपा को सवमे पहले मायावती ने निमंत्रित किया और वह उसे अपने गृह ले गयी। प्रद्युम्न-पत्नी सुमध्यमा मायावती ने उस सुदरी पुत्र-वधू का अन्न-पान और वस्त्रादि से सत्कार किया।[174] फिर कुलाचार के अनुसार यदु-वश की अन्य स्त्रियो ने उषा का सत्कार किया। ये सारे प्रसग मनोहारी पारिवारिक वातावरण की सृष्टि करते हैं। प्रद्युम्न कार्तिकेय युद्ध-प्रसग मे प्रद्युम्न की व्यूह-रचना-कुशलता पुत्र-हित-चिंता आदि विशेषताएँ सूचित होती हैं।

प्रद्युम्न के तीनो प्रणय-प्रसगो अथवा दाम्पत्य-सम्वन्धो का उल्लेख पिछले पृष्ठो मे प्रद्युम्न के विवाह सम्वन्धी विवरण देते हुए किया

13. प्रद्युम्न-जीवन के प्रमुख प्रणय-प्रसंग

जा चुका है। इस सम्वन्ध मे निष्कर्ष रूप से यही कहना अभीष्ट है कि इन तीनो (वैदर्भी अर्थात् शुभागी, मायावती तथा प्रभावती से) प्रणय सम्वन्धो मे सर्वाधिक लौकिक धरातल पर प्रद्युम्न-वैदर्भी परिणय स्थित है जिसके उपादान तत्त्व पूर्णत यथार्थ जगत से ग्रहीत है फिर भी यह कथानक उपेक्षित रह गया है और विस्तार नही पा सका है। इतिवृत्तात्मक कथन के रूप मे वर्णित होने तथा कल्पना से अभिमण्डित न होने के कारण यह प्रद्युम्न-चरित्र की विशेषताओ को विशद रूप से उद्घाटित करने के लिए अवकाश प्रदान नही कर सका है। विष्णुपुराणकार

ने पृथक् से अध्याय तक न प्रदान करते हुए वसुदेव-सतति वर्णन के प्रसग मे ही रुक्मी पुत्री रुक्मवती से प्रद्युम्न के विवाह का[175] तथा स्वयवर मे उसे ग्रहण करने तथा उसके द्वारा भी प्रद्युम्न का वरण करने का उल्लेख मात्र कर के उपरति प्राप्त कर ली है।[176] भागवतकार मूर्तिमान कामदेव प्रद्युम्न के सौंदर्य और गुणो पर रुक्मवती के रीझ कर उन्हे वरमाला पहनाने तथा प्रद्युम्न द्वारा स्वय अकेले ही समस्त नृपतियो को जीत कर रुक्मवती को हर लाने की बात और जोड देता है।[177] हरिवश मे ही कथानको का सर्वाधिक विस्तार और अभिमडन हुआ है फिर भी यह कथानक उसमे भी उपेक्षित रह गया है। उसमे रुक्मी-पुत्री का नाम शुभागी बताते हुए उसे प्रद्युम्न मे अनुरक्त कहा गया है। [173] इसमे नवीनता नही है। प्रद्युम्न का अप्रतिम सौंदर्य और नारी-सम्मोहन का सामर्थ्य अनेकत्र वर्णित है जिसका पर्याप्त उल्लेख किया जा चुका है।

हरिवशपर्व मे प्रभावती-प्रद्युम्न परिणय मे विशेष अभिरुचि और कौशल प्रदर्शित करते हुए कथानक को मनोरम विस्तार दिया गया है। [179] यद्यपि यहाँ दैत्य (वज्र-नाभ) पात्र है, प्रद्युम्न मे प्रभावती को अनुरक्त करने के लिए हसो को भेजने का कार्य देवाधिदेव इद्र करते हैं तथा माया-युद्ध यहाँ भी होता है तथापि इन अलौकिक तत्त्वो के होते हुए भी, जो कि पौराणिक युग मे एक प्रचलित शैली-विन्यास के सूचक मात्र है, प्रद्युम्न-चरित्र के अनेक स्वाभाविक और रोचक पक्षो की अवतारणा हुई है। हस इत्यादि पात्रो के आने से कथा मे वास्तविक जीवन-सदर्भ-प्रसूत रससृष्टि मे व्यवधान नही हुआ है। प्रणय के क्षेत्र मे अतिचेतन के विस्तार और जड-चेतन भेद के लोप को कालिदास जैसे मनीषी कवि पहले ही स्वाभाविक घोषित कर चुके हैं।[180] फिर इद्र के आदेश पर हस यदि प्रद्युम्न के उत्तम कुल, सुन्दर रूप, अच्छे शील स्वभाव और नवतारुण्यावस्थादि गुणों का वर्णन करते हैं तो क्या आश्चर्य ? शुचिमुखी नामक हसिनी प्रभावती के समक्ष प्रद्युम्न के रूपगुण की प्रशसा करती हुई कहती है कि उनके रूप और कुल की समानता करने वाला अखिल त्रैलोक्य मे कोई नही है।[181] महाबली प्रद्युम्न देवताओ मे देवता, दानवो मे दानव और मनुष्यो मे परम धर्मात्मा मनुष्य है[182] अर्थात् वे पात्रानुसार व्यवहार करने मे पटु हैं। प्रद्युम्न इतने रूपवान है कि जैसे पयस्विनी धेनुओ के स्तन और सरिताओ के स्रोत स्रवित होते है उसी प्रकार प्रद्युम्न के दर्शन मात्र से कामिनियो के जघन प्रदेश आर्द्र हो जाते हैं।[183] फिर भी इतने रूपवान होते हुए भी प्रद्युम्न कामुक या विलासी नही है। उन्होने मर्यादाहीन उच्छृङ्खल आचरण का प्रदर्शन कभी नहीं किया बल्कि शील की सदा रक्षा की है जिसका प्रमाण यह है कि शम्बर-वध के अनन्तर उनकी सारी मायाएँ प्राप्त कर सामर्थ्यवान होते हुए भी उन्होंने किसी के शील का विनाश नही किया।[184] प्रद्युम्न मे वे समस्त गुण है जिन की तीनो लोको मे विद्यमानता अथवा कल्पना है।[185] वे काति मे अग्नि तुल्य, क्षमा मे पृथ्वी समान, तेज मे सूर्य सदृश तथा गाभीर्य मे समुद्रवत् हैं।[186] फिर शुचिमुखी

की आयोजना पर श्रीकृष्ण के आदेश से प्रद्युम्न प्रभावती से सम्पर्क साधने और वज्रनाभ-वध के कार्य मे प्रवृत्त होते है। कृष्ण दैवी माया के आश्रय मे प्रद्युम्न को भद्र नामक मुनियो के वरदान-प्राप्त नट का वेष धारण करा उन्हे नायक बना कर उनके साथ नट वेष मे साम्ब को विदूषक और गद को पारिपार्श्विक बना कर अन्यान्य यादवो को भी उसी प्रकार विभिन्न भूमिकाओ मे सज्जित कर भेजते है। वे नटवेषी यादव पुरुषो मे पुरुष के अनुरूप थे तथा रूप-सौदर्य मे स्त्रियो के भी सदृश थे। साथ मे नटी की भूमिकाओ मे अनेक वारागनाएँ थी। वे महारथी प्रद्युम्न रचित रमणीय विमान पर आरूढ हो वज्रपुर के उपनगर सुपुर मे पहुचे। वहाँ प्रद्युम्न ने नट वेष मे रामायण की कथा के आधार पर नाटक किया।[188] फिर वज्रनाभ के महल मे पहुँच कर नटवेषी पराक्रमी प्रद्युम्न, गद और साम्ब ने नान्दी वाद्य बजाया।[189] गगावतरण से सम्बद्ध श्लोको का उत्तम अभिनयसहित पाठ किया। फिर रभाभिसार नाटक का अभिनय करते हुए प्रद्युम्न नलकूबर बने और क्रोध मे भर कर नलकूबर ने जिस प्रकार दुरात्मा रावण को शाप दिया था और रभा को सात्वना प्रदान की थी उसी प्रकार का अभिनय किया। साथ मे साम्ब विदूषक रूप मे थे।[190]

इस प्रसग का विशेष रूप से चयन करने से प्रद्युम्न की बुद्धिमत्ता सूचित होती हैं क्यो कि इस कथानक से, वज्रनाभ की उपेक्षा और प्रभावती को समाश्वासन भी, व्यग्य रूप से उस अवसर पर प्रद्युम्न के कार्य मे सहायक सिद्ध होता है। शुचिमुखी के प्रयत्न मे प्रद्युम्न प्रभावती के यहा ले जायी जाने वाली माला मे भ्रमर रूप मे छुप कर प्रभावती के प्रासाद मे पहुच कर उसके कर्णकमल मे छुप गये।[191] फिर हरिवंशपर्व मे प्रद्युम्न प्रभावती के गाधर्व विवाह का वर्णन है जो सूर्यकान्तमणि से प्रद्युम्न द्वारा प्रकट अग्नि की साक्षी मे सम्पन्न होता है। प्रभावती से समागम का रुचिपूर्वक वर्णन करते हुए हरिवशपर्वकार ने प्रद्युम्न के प्रणयी रूप को चित्रित किया है जिसमे वे अनुकूल, धीर-ललित वाग्चातुर्यसमन्वित नायक के रूप मे उभरते है। उन्हे 'रतिकोविद'[192] कहा गया है जो उनके स्त्री-स्वभाव को समझने की शक्ति तथा नायिका को अनुकूल करने की उनकी वाचिक-कायिक चेष्टाओ को देखते हुए सार्थक है। वे हस समुदाय से सुरक्षित हो प्रभावती के घर मे रहते थे और प्रत्येक रात्रि को अर्धाश रूप से ही उसका सेवन करते थे। माया से उनका छाया-रूप नटी के साथ दिखाई देने से सबको भ्रम बन रहा।[123] प्रणय के लिए तल्लीन होते हुए भी वे अपने कर्तव्य कर्म से विमुख नही हुए। उन्होने वज्रनाभ के भाई सुनाभ की दो सुन्दर कन्याओ 'चन्द्रवती' तथा 'गुणवती' का भी क्रमश गद और साम्ब से गाधर्व-विवाह सम्पन्न करा दिया। प्रभावती के समक्ष वर्षाऋतु का सरस वर्णन करते हुए एक प्रकृति-प्रेमी के रूप मे उनका परिचय मिलता है।[194] फिर उद्दीपन विभाव के रूप मे वर्षा-वर्णन करते हुए और अपने वश-गौरव का परिचय देते हुए वे प्रभावती की अनुरक्ति को प्रगाढ बनाने मे कृतकार्य होते है। इस अवसर पर भी वे अपने पिता श्रीकृष्ण

तथा उनका कार्य विस्मृत नही कर पाये है। श्वेत कमल सदृश चद्रमा जब मेघावृत होता है तो वे उसकी उपमा श्रीकृष्ण के मुख से देते हुए कृष्ण के गौरव का वर्णन करते है ।[195] वे अपने उत्तम नायकोचित व्यवहार से और सभापण कुशलता मे प्रभावती का इतना विश्वास प्राप्त कर लेते है कि वज्रनाभ द्वारा आक्रमण करने की सूचना देने तथा अपने कर्तव्य के सम्बन्ध मे पूछे जाने पर प्रभावती रोती हुई घुटनो के बल पृथ्वी पर गिर पड़ती है और मस्तक पर प्रणामाजलि बाध कर अपने पति को अपने पिता के विरुद्ध उठने और अपनी रक्षा करने का आह्वान करती है। यही नही, वह तथा उसकी बहिने अपने पतियो को अपने ही परिजनो के विरुद्ध युद्ध के लिए सहर्ष तलवारे अर्पित करती हुई विजय-लाभ का वरदान देती है ।[196] वज्रनाभ-वध के अनन्तर इन्द्र और उपेन्द्र (कृष्ण) ने वज्रनाभ के राज्य को चार भागो मे बाटते हुए जयन्तपुत्र विजय, गदपुत्र चद्रप्रभ, प्रद्युम्न–पुत्र और साम्ब-पुत्र, प्रत्येक को चौथाई भाग प्रदान कर दिया ।[197] गद, प्रद्युम्न और साम्ब तीनो महाबली वीर राज्य की कुशल व्यवस्था के लिए छह महीने वहा और रहे। मौसल युद्ध की समाप्ति पर वृष्णिवशीय वीरो के स्वर्गगमन पर गद, प्रद्युम्न और साम्ब वज्रपुर गये थे ।[198] हरिवशपर्वकार का कथन है कि आज भी मेरु पर्वत के उत्तर पार्श्व मे वे राज्य सुरक्षित है ।[199] इन सब सदर्भो से इन तथ्यो के ऐतिहासिक आधार के अनुमान को बल मिलता है जिसे विद्वानो द्वारा पौराणिक भूगोल और ऐतिह्य की यथार्थता के स्थापक प्रयत्नो के सदर्भ मे परिवीक्षित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस समस्त कथानक मे प्रद्युम्न–चरित्र की अनेक विशेषताओ यथा—नृत्य, गान, वाद्य, अभिनय, वेष-परिवर्तन आदि कलाओ मे कौशल, कर्तव्य–तत्परता, अनुकूल नायकत्व, सभापण–चातुर्य, शीलव्रत–पालन, प्रकृति–प्रेम इत्यादि का परिचय मिलता है।

प्रद्युम्न-मायावती प्रसग प्रणय–कथा–वृत्तो मे सर्वाधिक अलौकिक तत्त्वो मे पूर्ण है। पूर्व-भव तथा अनग रूप से भस्म काम के ही प्रद्युम्न रूप मे अवतरित होने, जन्म के छठे दिन ही शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न–हरण, करने मत्स्योदर से प्रद्युम्न के जीवित निकल आने, मायामय युद्ध मे शम्बर का वध करने आदि समस्त कथा-सूत्र अलौकिकतापरक हैं। यथार्थ का सबसे कम आधार इस कथा-वृत्त मे है। फिर कोई भी काव्य रागात्मकता से रहित होकर सवेद्य नही हो सकता अतः इस कथानक मे भी कुछ सप्राण लौकिक सदर्भ आ ही जुटे है। प्रद्युम्न के तारुण्य प्राप्त करने पर जब मायावती उस पर आसक्त हो जाती है तो माता द्वारा मातृ-भाव का त्याग कर यह अनपेक्षित अन्यथा आचरण प्रद्युम्न को आश्चर्यान्वित कर देता है। वह इसका कारण जानने की जिज्ञासा प्रकट करता है जिसका मायावती शीघ्र ही समाधान इस कथन से कर देती है कि प्रद्युम्न विष्णु-तनय है ।[200] इस त्वरित समाधान मे ही प्रद्युम्न शबर-वध के लिए प्रस्तुत हो जाते है। अतः यहा ऐसे नाजुक अवसर पर भी मानवीय

भावो का प्रस्फुटन होने से रह गया है। भागवतपुराण तथा हरिवशपर्व मे यह समाधान कुछ अधिक आश्वासक है क्यो कि इसमे मायावती प्रद्युम्न को रतिरूपीमायावती के कामदेव रूपी पति का ही प्रद्युम्न रूप मे पुनरोद्भव वर्णित कर दाम्पत्य सम्बन्ध की सूचना भी देती है।[201] प्रद्युम्न मायावती सहित द्वारका आते है तो रुक्मिणी के नेत्रो मे प्रेमवश आसू उमड आते है और वे कहती हैं कि यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होगा तो उसकी भी यही आयु होगी।[202] रुक्मिणी के स्तनो से दूध झरने लगता है तथा बायी बाँह फडकने लगती है। कृष्ण से रूप-साहश्य के कारण वे प्रद्युम्न को अपना ही पुत्र होने का अनुमान करती हुई भी असमजस मे ही रहती है।[203] इन उल्लेखो से प्रद्युम्न के प्रति माता का सहज स्नेह व्यक्त होता है। प्रद्युम्न के स्वरूप और आकृति परिचायक विवरणो को पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त अन्य लौकिक सदर्भों से यह कथानक अछूता ही रह गया है।

14. इतिवृत्तात्मक प्रसगो में प्रद्युम्न-चरित्र

इन प्रमुख कथा-वृत्तो के अतिरिक्त गौण इतिवृत्तात्मक प्रसगो से भी प्रद्युम्न के लौकिक चरित्र की कई विशेपताएँ ज्ञात होती है। 'नृगराजा की कथा' मे ब्राह्मण को दान मे दी गयी गाय के स्वामित्व को लेकर हुए दो ब्राह्मणो के विवाद को सुलझाने के लिए दानी नृग उस गाय को लेकर उसके प्रतिफल मे अनेक गाये देने को तत्पर होते है। फिर भी ब्राह्मण कुपित होकर शाप देते है जिससे राजा नृग गिरगिट की योनि मे जन्म लेकर कूप मे गिर पडते है। एक दिन गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि राजकुमार जो घूमने के लिए निकले थे, उस कूए के पास जाते हैं और पर्वताकार गिरगिट को देख आश्चर्यान्वित हो उसे कृपापूर्वक चमडे और सूत की रस्सियो से बाँध कर कुए से बाहर निकालने का उपक्रम करते है किंतु असफल रहते है। इस प्रकरण से किशोर प्रद्युम्न की घुमक्कड वृत्ति, क्रीडाप्रियता, कौतुक भावना और निरीह जीवो पर भी कृपाशीलता आदि गुण व्यक्त होते है।[204]

द्वारका के ब्राह्मण-पुत्रो की अरक्षा के प्रकरण मे अर्जुन गर्वपूरित भाव से अदृश्य राक्षस द्वारा अपहरण से ब्राह्मण के नवजात बालक की रक्षा के लिए सन्नद्ध होता है किंतु उसके सामर्थ्य के प्रति शकालु ब्राह्मण अर्जुन के गर्व को तिरस्कृत करता हुआ कहता है कि जहाँ बलराम, कृष्ण, धनुर्धर शिरोमणि प्रद्युम्न, अप्रतिम वीर अनिरुद्ध भी मेरे बालक की रक्षा करने मे असमर्थ रहे तो जगदीश्वरो के लिए भी दुष्कर इस कर्म को सम्पादित करने की अर्जुन की स्पृहा मूर्खता मात्र है।[205] फिर आशकानुरूप ही अर्जुन के अकृतकार्य हो जाने पर वह क्षुब्ध हो उसके गर्व को तिरस्कृत करता हुआ कहता है कि भला जिसे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और यहाँ तक कि बलराम और भगवान कृष्ण भी नहीं बचा सके उसकी रक्षा करने मे अन्य कौन समर्थ है ?[206] यह सदर्भ बडा महत्त्वपूर्ण है।

यहाँ एक ओर प्रद्युम्न आदि को जगदीश्वर कहा गया है तो दूसरी ओर उन्हे छोटे से कार्य मे भी असमर्थ बताया गया है। दैववशात् प्रबलतम सामर्थ्यवान व्यक्तित्व भी कुण्ठित हो जाता है। काल के आगे किसका गर्व टिका है या किसका वश चला है ? अभ्युदय के समय मनुष्य की बुद्धि, तेज और ज्ञान का विकास होता है और विपरीत समय आने पर इन सबका अपने आप ह्रास हो जाता है। उत्पत्ति और विनाश, वैभव और पराभव का बीज अर्थात मूल कारण काल ही है। इसी के इंगित मात्र से बलवान होकर व्यक्ति फिर दुर्बल हो जाता है और शासक होकर पुनः शासित हो जाता है। यही तो वह आदर्श है जो महाभारतकार मुनि वेदव्यास ने आभीरो द्वारा हतप्रभ अर्जुन को दिया था।[207] इसलिए प्रद्युम्न एक ओर ऐश्वर्य मे जगदीश्वर की कोटि तक पहुँच कर भी दूसरी ओर सामान्य अकिंचन मानव हैं। मानवोचित दुर्बलताएँ और असफलताएँ भी उनमे है। महाभारतकार की यह दृष्टि प्रद्युम्न को देव कोटि तक पहुँचा कर भी उन्हे सामान्य मानव के धरातल पर टिकाये रखती है। अपूर्णता और असफलता का यह भाव ही प्रद्युम्न को सामान्य मानव पात्र के रूप मे प्रस्तुत करता हुआ उनके व्यक्तित्व को सप्राणता और संतुलित परिपूर्णता प्रदान करता है।

कृष्ण और बलराम द्वारा प्रद्युम्न को क्रमश ब्राह्मण-माहात्म्य और आन्हीक स्तोत्र के उपदेश सम्बन्धी प्रकरणो का प्रद्युम्न-चरित्र की दृष्टि से विशेष महत्त्व नही है। इसमे यही पता चलता है कि प्रद्युम्न को धार्मिक शिक्षा अपने अग्रजो द्वारा घर मे ही प्राप्त हुई थी और उन्होने उसे एक विनम्र और श्रद्धालु जिज्ञासु की भाँति ग्रहण किया था। वे एक धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे और इसी प्रकार के पारिवारिक वातावरण मे पले थे। इसीलिए कुरुक्षेत्र के समतपचक तीर्थ मे, जहाँ प्रतापी परशुराम ने क्षत्रिय-सहार करने के उपरान्त यज्ञ किया था, सर्वग्रास सूर्यग्रहण के अवसर पर वसुदेव, उग्रसेन, अक्रूर, गद, साम्ब आदि यदुवशियो के साथ अपने पाप प्रक्षालनार्थ प्रद्युम्न भी गये थे।[208]

पिडारक तीर्थ पर कृष्ण तथा अन्य यदुवशियो द्वारा समुद्र मे जल-विहार का वर्णन हरिवशपर्व के 88 तथा 89 वे अध्याय (विष्णुपर्व) के अन्तर्गत हुआ है। इस सम्पूर्ण प्रकरण से भी प्रद्युम्न-चरित्र की अनेक विशेषताएँ उभर कर आती है। उस अवसर पर प्रद्युम्न अपने भाई साम्ब और भानु तथा सात्यकि एव अन्य यदुवशी कुमारो के साथ गाने लगे। राग मे सलग्न हो अत्यत सुदर गीत गाने वाले उन देवोपम यादव वीरो के साथ सम्पूर्ण ससार हर्षोल्लास से स्फूर्त हो उठा और सबके पाप-ताप शान्त हो गये।[209] दिव्य सगीत-नृत्यपूर्ण रमणीय छालिक्य गाधर्व गान भी इस शुभ अवसर पर हुआ। यह रमणीय छालिक्य नामक गाधर्वगान भगवान श्रीकृष्ण के ही प्रभाव से इस पृथ्वी पर प्रद्युम्न आदि मे प्रतिष्ठित हुआ। उदार-बुद्धि रुक्मिणी-कुमार प्रद्युम्न ने उक्त गाधर्व कला को प्रयोग मे लाकर सिखाया भी था। उन्होने ही ताम्बूल का

भी प्रयोग किया । इन्द्र-तुल्य पराक्रमी पाचो वीरो—कृष्ण, वलराम, प्रद्युम्न अनिरुद्ध और साम्ब ने यहाँ छालिक्य गाधर्व का आयोजन किया था जो मनुष्यो को सदा ही रुचिकर और इष्ट रहा है । यह छालिक्य गाधर्व शुभकारी, वृद्धिकारी, प्रशस्त, मगलमय, पुष्टि और अभ्युदयप्रदाता और पुण्यदाता है । उदारकीर्ति नारायण को भी वह इष्ट है ।[210] वह धर्म-लाभ, जय-प्राप्ति, दु स्वप्न-नाश और पाप-निवारण मे समर्थ है । उसके सुनने से श्रोता इतना तन्मय हो जाता है कि चार हजार युगो का समय भी एक दिन के समान व्यतीत होता है । इस छालिक्य गाधव से ही गधर्वो की कुमार तथा अन्य जातियाँ प्रवर्तित हुई है जैसे एक दीप से सैकडो दीप प्रज्वलित हो जाते है ।[211] प्रद्युम्न आदि मुख्य-मुख्य यादवो के साथ भगवान कृष्ण और नारद ही छालिक्य गुणोदय के इस विज्ञान को यथावत रूप से जानते है । ससार के दूसरे मनुष्यो को तो इसकी नाममात्र की जानकारी है ।[212] तपस्या किये विना छालिक्य गाधर्व को तथा उसके मूर्च्छना-विधान को हृदयगम नही किया जा सकता ।[213] इन विवरणो से ज्ञात होता है कि प्रद्युम्न गायन-विद्या मे भी पारगत थे । वे छालिक्य नामक विशिष्ट गान के अद्भुत गायक थे । इस कला को उन्होने अभ्यास और साधना के तप से प्राप्त किया था । गान-विधान की शिक्षा उन्हे अपने पिता श्रीकृष्ण से प्राप्त हुई थी । हरिवशकार का यह कथन कि प्रद्युम्न ने ही ताम्बूल का प्रयोग किया था, यदि कोरी कल्पना पर आधारित न होकर उस युग मे पूर्वकाल से प्रचलित लोकश्रुति पर आधारित है तो इस तथ्य की सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता कि जैसे मुगल काल मे नूरजहाँ की माँ अस्मत वेगम को गुलाव के इत्र का आविष्कार[214] करने का श्रेय दिया जाता है उसी प्रकार महाभारत-काल मे ताम्बूल-चर्वण के प्रचलन का श्रेय भी प्रद्युम्न को दिया जा सकता है । प्रद्युम्न का विदर्भ म ससुराल था । यह विदर्भ प्रदेश काव्य मे वैदर्भी शैली का दाता है और आज भी ताम्बूलो का उर्वर क्षेत्र है । अत प्रद्युम्न को वहाँ के वनो मे स्थित लतावल्लरियो मे से ही ताम्बूल-पत्र-लता (पान की बेल) का परिचय हुआ हो और अपने प्रयोग और अनुभव से उन्होने ताम्बूल का आविष्कार किया हो तो आश्चर्य नही होना चाहिए । ताम्बूल लता के गुणो से आकृष्ट हो कर उन्होने उसे द्वारका और आनर्त प्रदेश मे भी लगाया होगा । सभवत इसीलिए आगे चलकर सौराष्ट्र का वर्णन करते समय वहाँ के वनो के विषय मे यह वर्णन करने की परम्परा चली कि उन वनो मे नागवेले सुपारी के वृक्षो से लिपटी रहती हैं । ताम्बूल खाने वाले केवल चूना लेकर ही वहाँ जाते हैं ।[215] नागर (सौराष्ट्र) प्रदेश के सम्बन्ध से प्रसिद्ध होने के कारण ही सभवत पान की लता को 'नागर बेल' कहा जाने लगा जो राजस्थान मे आज भी प्रचलित है ।

15. प्रद्युम्न के जीवन के अन्तिम काल की झलक

प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी प्राप्य महाभारतीय और पौराणिक मुख्य कथा-वृत्तो, गौण इतिवृत्तात्मक प्रसगो और स्फुट उल्लेखो के साक्ष्य पर प्रद्युम्न के जन्म, विवाह तथा शौर्य, प्रणय, शिक्षा दीक्षा सम्बन्धी क्रिया-कलापो के आधार पर उनको

व्यक्तित्व के मानवीय पक्ष का आकलन ऊपर प्रस्तुत किया गया। अब उनके जीवन के अंतिम काल की झलक देख लेना भी अनुपयुक्त नही होगा। प्रद्युम्न के जीवन का अंत यादव-कुल के विनाश के समय अन्य यदु-वंशियो के साथ ही हुआ था। यादव लोग ब्राह्मण शाप-वश परस्पर ही लड बैठे और मारे गये। किंतु इस शाप का मूल कारण क्या था इस विषय मे हमे अनेक स्रोतों से ज्ञातव्य प्राप्त होता है। विष्णुपुराण मे लिखा है कि एक बार कुछ यदुकुमारो ने महातीर्थ पिण्डारक क्षेत्र मे विश्वामित्र, कण्व और नारद आदि मुनियो को देखा। तब यौवन से उन्मत्त उन बालको ने भावी की प्रेरणा से जाम्बवती-पुत्र साम्ब का स्त्री-वेष बनाकर उन मुनीश्वरो को प्रणाम करने के अनन्तर अत्यंत नम्रतापूर्वक पूछा-इस स्त्री को पुत्र की इच्छा है, हे मुनिजन ! कहिए, यह क्या जनेगी ? तब कुपित होकर मुनियो ने कहा कि यह एक लोकोत्तर मूसल जनेगी जो समस्त यादवो के विनाश का कारण होगा।[216] फिर यथासमय सम्ब के पेट से मूसल उत्पन्न होने, उग्रसेन द्वारा उसका चूर्ण कर समुद्र मे फिकवा देने, उससे वज्रोपम सरकण्डे उत्पन्न होने और उन सरकण्डो (एरको) से यादववंशियो के मदमत्त हो परस्पर लड मरने की कथा है। यद्यपि उग्रसेन, कृष्ण, बलराम, महामना बभ्रु के आदेश से समस्त द्वारकापुरी मे घोषणा करा दी गयी थी कि इस घटना के दिन से कोई भी वृष्णि या अंधकवंशीय क्षत्रिय मदिरा नही पीएगा[217] तथापि प्रभास क्षेत्र मे पहुँचने पर यादवो का मद्यपान प्रारंभ हुआ।[218] दैव ने उनकी बुद्धि हर ली और वे उस मैरेयक नामक मदिरा का पान करने लगे जिसके मद से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।[219] यही नही, ब्राह्मणो के लिए निर्मित भोजन मे भी मदिरा मिला कर उन्होंने उसे वानरो को बाँट दिया।[220] इस अवसर पर अपने-अपने भोजन की श्रेष्ठता और पवित्रता के प्रश्न को लेकर कुछ कलह होने का उल्लेख भी विष्णुपुराण करता है।[221] इस कलह मे विष्णुपुराणानुसार प्रद्युम्न और साम्ब आदि कृष्ण के पुत्रगण तथा कृतवर्मा, सात्यकि, और अनिरुद्ध आदि अन्य यादवगण एक दूसरे पर एरकारूपी वज्रो से प्रहार करने लगे जिससे कृष्ण भी क्रुद्ध हो कर एरका उखाड़कर सब यादवो को मारने लगे।[222] भागवतपुराण भी विष्णुपुराण का ही समर्थन करते हुए कहता है कि प्रद्युम्न साम्ब से और सात्यकि अनिरुद्ध से युद्ध करने लगे।[223] किन्तु इस कलह का वास्तविक और बुद्धिसंगत कारण तो यही प्रतीत होता है कि सात्यकि अचानक ही मदोन्मत्त हो उठे और यादवो की भरी सभा मे यह कह कर कृतवर्मा का अपमान करने लगे कि तेरे सिवा कौन ऐसा क्षत्रिय होगा जो अपने ऊपर आघात न होते हुए भी रात मे मुर्दे की तरह अचेत पडे हुए मनुष्यो की हत्या करेगा। सात्यकि के ऐसा कहने पर रथियो मे श्रेष्ठ प्रद्युम्न ने कृतवर्मा का तिरस्कार करके सात्यकि के उपर्युक्त वचनो की प्रशंसा और अनुमोदन किया। फिर प्रत्युत्तर मे कृतवर्मा ने सात्यकि की इसलिए निंदा की कि उसने युद्ध मे प्रायोपविष्ट

भग्नबाहु भूरिश्रवा का घात कर डाला था। इस पर कृष्ण ने क्रुद्ध हो टेढ़ी दृष्टि से कृतवर्मा की ओर देखा। सात्यकि ने फिर वाग्बाण छोड़ा कि कृतवर्मा ने ही मणि के लोभ से सत्राजित का वध करवाया था, यह सुन कर तो सत्यभामा के तन-बदन मे आग लग गयी। वह रोती हुई कृष्ण के अक मे चली गयी। तब सात्यकि ने यह कह कर कि जिस पापी दुरात्मा कृतवर्मा ने रात मे सोते हुए धृष्टद्युम्न आदि वीरो का अपघात किया था आज उसका प्राणान्त उपस्थित हो गया है, दौड कर तलवार से कृतवर्मा का सिर काट लिया। फिर क्या था, भोज और अधकवशीय वीरो ने सात्यकि को घेर लिया और जूठे बर्तनो से उन पर आघात करने लगे। सात्यकि को मारा जाते देख क्रोध मे भरे हुए रुक्मिणीनदन प्रद्युम्न उन्हे सकट से बचाने के लिए स्वय उनके और आक्रमणकारियो के बीच मे कूद पडे। प्रद्युम्न भोजो से भिड गये और सात्यकि अधको के साथ जूझने लगे। परन्तु विरोधियो की सख्या बहुत अधिक थी अतः श्रीकृष्ण के देखते-देखते वे दोनो मार डाले गये।[224] श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रो प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण और पोते अनिरुद्ध को भी मारा गया देख क्रोधाग्नि मे भर शेष यादवो का भी सहार कर डाला।[225] इस प्रकार यादव-विनाश मे भी सात्यकि-प्रद्युम्न का चिरपरिचित साहचर्य ही कारणभूत था। स्वय महाभारत से इसकी पुष्टि होती है। यादव-विनाश के उपरात द्वारका मे हुई वसुदेवजी से अर्जुन की बातचीत के समय वसुदेव जी कहते हैं कि हे अर्जुन, जो तुम्हारे प्रिय शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे उन्ही दोनो (सात्यकि और प्रद्युम्न) के अन्याय से समस्त वृष्णिवशी मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। वृष्णिवशी प्रमुख वीरो मे जिन दो को ही अतिरथी माना जाता था तथा तुम भी चर्चा चला कर जिनकी प्रशसा के गीत गाते थे, वे श्रीकृष्ण के प्रीतिपात्र प्रद्युम्न और सात्यकि ही इस समय वृष्णिवशियो के विनाश के प्रमुख कारण बने है।[226] फिर पश्चातापवश वे यह भी कहते है कि मै सात्यकि, प्रद्युम्न, कृतवर्मा और अक्रूर की निन्दा नही करूँगा। वास्तव मे ऋषियो का शाप ही यादवो के इस सर्वनाश का प्रधान कारण है।[227] किंतु यह तो दार्शनिक समाधान या धार्मिक आरोप मात्र है। तर्कसगत कारण तो वसुदेव पहले ही बता चुके है और इसीलिए उन्हे आक्रोश भी है।

यादव वीरो के विनाश के बाद उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भी अग्नि मे प्रवेश किया।[228] किंतु महाभारत का कहना है कि वसुदेव ने चित्त को परमात्मा मे लगाकर उत्तम गति प्राप्त की।[229] हाँ, वसुदेव जी के साथ उनकी चारो पत्नियाँ–देवकी, भद्रा, रोहिणी तथा मदिरा अपने पति के शव के साथ भस्म होकर पतिलोक को प्राप्त हुई।[230] भगवान कृष्ण की जो रुक्मिणी इत्यादि आठ पटरानियाँ थी उन्होने भी कृष्ण के शरीर का आलिंगन कर अग्नि मे प्रवेश किया।[231] महाभारत रुक्मिणी तथा जाम्बवती के अग्नि-प्रवेश[232] का उल्लेख कर लिखता है कि सत्यभामा तथा अन्य रानियाँ तपस्या का निश्चय करके वन मे चली गयी।[233] भागवत मे लिखा

है कि वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण के वियोग से दु खी होकर प्राण त्याग दिये । देवकी और रोहिणी पति के शव के साथ भस्म हो गयी । कृष्ण की पुत्रवधुओ के बारे मे केवल भागवत ही यह सूचना देता है कि वे अपने-अपने पतियो के शव लेकर अग्नि मे प्रवेश कर गयी ।[234] पद्मपुराण भी समर्थन करता है कि द्वारिका-दाह पर कृष्ण की पत्नियो के साथ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व उषा ने भी अग्नि मे प्रवेश किया ।[235] प्रद्युम्न के अग्नि-प्रवेश का यह उल्लेख सामान्य परम्परा से हट कर है । इसे कथानक का केन्द्रीय सूत्र या मूल स्वर नही कहा जा सकता । किसी की मृत्यु पर पुरुष का आत्मदाह परम्परानुमोदित न होने मे भी स्वीकार नही हो सकता । यो तो महाभारत मे ही प्रद्यु म्न के देहपात के बाद सनत्कुमार मे लीन हो जाने का उल्लेख है क्यो कि वे सनत्कुमार के ही देवाश थे।[236] किन्तु यह सब धार्मिक आरोप मात्र ही है । तथ्य यही प्रतीत होता है कि वे गृह-कलह वश भोजो द्वारा मारे गये । अनिरुद्ध-पुत्र वज्र को अर्जु न द्वारा राज्य-प्रदान करने का उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

इन समस्त विवरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रद्यु म्न के देवता-रूप का जो महत्त्व है उससे कम महत्त्व उनके मानव-रूप का नही है । उनके मानवीय व्यक्तित्व के सूत्र पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं किंतु प्रद्यु म्न-चरित्र लेखको ने प्रद्युम्न-कथा-पट बुनने मे उनका समुचित उपयोग नही किया है । विवेचित साक्ष्य के आधार पर प्रद्यु म्न का एक सर्वांगस्पर्शी, सतुलित परिपूर्ण मानवीय रूप उभरता है जो अनेकानेक काव्य ग्रथो का उपजीव्य हो सकता था । फिर भी कवियो का ध्यान, जैसा कि हम आगामी पृष्ठो मे देखेंगे, प्रद्यु म्न-चरित्र के अलौकिक सूत्रो की ओर ही अधिक आकृष्ट हुआ । उनके व्यक्तित्व का लौकिक पक्ष प्राय उपेक्षित ही रह गया । शौर्य और प्रणय सम्बन्धी अनेक कथानको के आधार पर, जिनकी विवृति ऊपर दी जा चुकी है, अनेकानेक उत्तमोत्तम काव्य ग्रथो की रचना की जा सकती थी जिनमे प्रद्यु म्न सर्वथा लौकिक पात्र रहते हुए भी श्रेष्ठ चरित्र-नायक बन सकते थे । किंतु ऐसा नही हो सका, यह खेद विषय है । अलौकिकता के प्रति ही कथाकारो की अधिक अभिरुचि के निदर्शन स्वरूप प्रद्यु म्न के प्रणय सम्बन्धी कथानको का दृष्टान्त दिया जा चुका है । इस सम्बन्ध मे यह भी निवेदन किया जा चुका है कि प्रद्यु म्न के प्रणय-व्यापारो मे प्रद्यु म्न-वैदर्भी परिणय सम्बन्धी कथा-वृत्त सर्वाधिक लौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित है ।

16. निष्कर्ष प्रद्यु म्न-चरित्र और काव्य-सृष्टि

किन्तु फिर भी दु खद आश्चर्य है कि इसी कथा-वृत्त को लेकर कथाकारो की ओर से घोर उपेक्षा बरती गयी है । न तो पुराणो मे ही इस कथा-वृत्तको पर्याप्त स्थान और गौरव प्राप्त हुआ है न ही परवर्ती कवियो ने इसे काव्य का मुख्य उपजीव्य बना कर स्वतत्र काव्य-ग्रथो के प्रणयन की परम्परा प्रवर्तित

की है । कृष्ण-रुक्मिणी परिणय को लेकर जो अजस्र काव्य-धारा प्रवाहित हुई है वह रसोल्लासकारी है किन्तु प्रद्युम्न-वैदर्भी क्षेत्र की यह शुष्कता क्षोभजनक है । पिता की सपत्ति से पुत्र को इस प्रकार वचित करना वाग्विरचियो के लिए उचित नही था । यह पौराणिक युग की अलौकिक-प्रियता का प्रभाव ही प्रतीत होता है कि इन तीनो प्रणय-सम्बन्धो मे सर्वाधिक अलौकिक तत्त्वो, निजधरी और पुराकथात्मक तत्त्वो से जिस कथा-यष्टि की रचना हुई है वह प्रद्युम्न-मायावती (या प्रद्युम्न-शम्बर-वध) प्रसग ही प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो की परम्परा मे सर्वाधिक ग्रहीत हुआ जिसे आधार बना कर प्राय शताद्धं काव्य-ग्रथो की रचना हुई । महत्व की दृष्टि से द्वितीय स्थान प्रभावती-प्रद्युम्न कथा-वृत्त को प्राप्त है जो सरसता की दृष्टि से मायावती-प्रद्युम्न कथा-वृत्त से कही अधिक समृद्ध होता हुआ भी परिमाण की दृष्टि से उसके पासग के समकक्ष भी नही है । फलत यह कथानक गुणात्मक दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी मात्रात्मक दृष्टि से विपन्न ही रह गया है ।

हरिवशपर्व मे प्रभावती-प्रद्युम्न सम्बन्धी प्रणयकथानक अतीव मनोहारी विस्तार मे चित्रित किया गया है जो अत्यत रसाविल और आकर्षक है किन्तु यह भी किसी अविरल काव्य-परम्परा को प्रेरित नही कर पाया । बहुत ही कम ग्रथो की रचना उस कथानक को लेकर हुई है । प्रेम-काव्य-परम्परा के सुधी अध्येता श्री परशुराम चतुर्वेदी का भी इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहना है कि प्रद्युम्न और मायावती सम्बन्धी पौराणिक कथा सबसे अधिक पुष्ट रूप मे भागवत के दशमस्कध के पचपनवें अध्याय और हरिवशपुराण के 163से167 वे अध्याय तक आती है । यही कथा प्रमुख है और नानाग्रथो का उपजीव्य रही है । किन्तु प्रद्युम्न सम्बन्धी एक दूसरी कथा वज्रनाभ राक्षस की पुत्री प्रभावती के साथ प्रणय सम्बन्धी है जो हरिवशपुराण के 141 से लेकर 144 वे अध्याय तक आती है और इसमे प्रेमी और प्रेमिका के बीच हसपक्षी (शुचीमुखी नामक हसी—लेखक) सदेशवाहक बनता है ।' ....इसी हरिवशपुराण की कथा पर आश्रित तेलुगु के प्रसिद्ध कवि पिंगला सुरन्ना की कृति 'प्रभावती प्रद्युम्न' है । इसमे दिखलाया गया है कि किस प्रकार दैत्य वज्रनाभ को मारने के लिए षड्यत्र किया जाता है । किस प्रकार एक हस उसके घर जाकर उसकी सुन्दरी कन्या प्रभावती के निकट श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के सौदर्य की भूरि-भूरि प्रशसा करता है, किस प्रकार प्रद्युम्न अभिनय-कौशल से महल मे प्रवेश कर युद्ध मे वज्रनाभ को मार कर प्रभावती को ले आते हैं । काव्य-ग्रथ का आधार पौराणिक होते हुए भी पिंगली सुरन्ना ने इसे अपने काव्य-कौशल से बहुत ही आकर्षक बना दिया है । कुछ आलोचको ने सुरन्ना की रचना 'प्रभावती प्रद्युम्न' की तुलना शेक्सपियर के रोमियो जूलिएट के साथ की है ।[237] तेलुगु के अतिरिक्त इस कथानक को सस्कृत में, केरल के राज

कुमार रविवर्मन उर्फ सग्रामवीर (जन्म 1265 ई.) ने, जो कोलम्बपुर (क्विलोन) का निवासी तथा परम वैष्णव था, अच्छा गायक तथा आलकारिक था, हरिवश तथा अन्य पुराणो मे प्राप्त कथा के आधार पर अपने पाँच अंको के नाटक 'प्रद्युम्नाभ्युदय' की रचना का।[238] यद्यपि रविवर्मा[239] की इस कृति में कथानक सामान्य और परम्पराभुक्त है तथापि इसमे एक रोचक नाटकीय योजना यह है कि प्रद्युम्न एक नाटक-मडली बनाकर प्रभावती के महल मे प्रविष्ट होता है। इस प्रकार नाटक के बीच मे नाटक की योजना दर्शको के लिए एक अभिनव योजना है। इसमे गद्य का प्रयोग और नाट्य तत्त्वो के सुन्दर अभिनिवेश के साथ अ को का सतुलित विभाजन तथा वर्णनात्मक एव भावात्मक अंशो की प्रचुरता भी उल्लेखनीय है किन्तु पूरा एक अ क प्रेमी के वियोग-वर्णन मे व्यय हुआ है तथा शैली कृत्रिमताग्रस्त है।[240] इसी प्रकार की एक अन्य कृति शकर दीक्षित लिखित "प्रद्युम्न विजय" नामक 7 अ को का नाटक है जो पिछली शताब्दी के मध्य-काल मे लिखा गया था। इसमे वज्रनाभ दैत्य पर प्रद्युम्न की विजय का वृत्तान्त है। यह कवि की अपेक्षा एक पण्डित की कृति अधिक प्रतीत होती है।[241] इसी कथानक पर ब्रज भाषा मे भी गणेश कवि कृत "प्रद्युम्न विजय" नाटक (प्र० 1864 ई०) एक प्रौढ एवं महत्त्वपूर्ण काव्य-नाटक है। भारतेंदु ने अपने निबध 'नाटक' मे गणेश कवि कृत जिस "प्रभावती" नामक नाटक का उल्लेख किया है वह यही नाटक है। गणेश कवि ने काशिराज की आज्ञा से इसकी रचना की थी। नाटक मे प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभ की सुन्दर कन्या प्रभावती से गधर्व-विवाह का वर्णन है। नाम से प्रतीत होता है कि यह वीररस का नाटक होगा। किन्तु यह सम्पूर्ण रूप से शृ गार रस का नाटक है। केवल सातवे अंक मे युद्ध-वर्णन है, वह भी पीछे से जोडा गया प्रतीत होता है। इस युद्ध मे भी प्रमुख पात्र कृष्ण है न कि प्रद्युम्न। प्रद्युम्न की विजय तो प्रभावती पर हुई है और वह भी रतिक्षेत्र मे। नाटक के नायक प्रद्युम्न ही हैं। कृष्ण नायक के प्रधान सहायक या पीठमर्द है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से यह काव्य-नाटक महत्त्वपूर्ण-रचना है। अन्य ब्रज भाषा काव्य-नाटको की भाँति यह काव्य-नाटक भी जन-नाट्य शैली का नाटक है। यह छद प्रधान नाटक है, इसकी शैली प्रबन्धात्मक है तथा इसमे जन-नाट्य शैली से सम्बन्धित सकेत प्राप्त होते है।[242] इस प्रकार प्रद्युम्न-प्रभावती-परिणय अथवा प्रद्युम्न-वज्रनाभ युद्ध को लेकर लिखी गयी कुल चार कृतियों का उल्लेख प्रमुखत पाया जाता है जो सभी नाट्य कृतिया हैं और जिनमे से एक तेलुगु, दो संस्कृत तथा एक ब्रज भाषा की रचनाएं है।

स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-प्रभावती-परिणय प्रसग भी यद्यपि प्रद्युम्न वैदर्भी-परिणय की भाति नितान्त उपेक्षित नही हुआ है तथापि अपना न्याय्य भी नही प्राप्त कर सका है। प्रद्युम्न सम्बन्धी जो कथानक जितना अधिक लौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित है वह उतनी ही उपेक्षा का पात्र बना है और जो जितना ही अलौकिक और अति-

प्राकृत तत्त्वो से पूर्ण है, वह काव्य मे उसी अनुपात मे समाहृत हुआ है। भारतीय प्रतिभा और रुचि पर अलौकिकपरकता का यह सस्कार पौराणिक युग का ही प्रभाव प्रतीत होता है। फिर भी, यह और भी आश्चर्यजनक और खेदकारी है कि पुराणकारो ने अपने युग मे वस्तु-तत्त्व को अलौकिकतापूर्ण रखते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति मे लौकिक यथार्थ के भी जीवन्त स्पर्श प्रदान किये हैं जो इस युग और वातावरण को देखते हुए उनके लिए श्रेयस्कर हैं। परवर्ती प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य लेखक तो उसका पोषण-सवर्द्धन करना तो दूर, निर्वाह तक भी नही कर पाये जैसा कि आगामी पृष्ठों में किये गये प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी सर्वाधिक पुष्ट कथा-धारा प्रद्युम्न-मायावती (या प्रद्युम्न-शम्ब) प्रसग को आधार बनाकर लिखे गये काव्य ग्रथो के अध्ययन स अनुमोदित होगा। इसी सकेत और सदाशा के साथ प्रस्तुत अध्याय का समापन किया जाता है कि इसमे प्रद्युम्न-चरित्र के जो लौकिक सदर्भ और विवेचित सूत्र है उनका समुचित उपयोग करते हुए आज के समर्थ कवि प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी काव्य-ग्रथो का प्रणयन करने की ओर प्रेरित और प्रवृत्त होगे।

संदर्भ : अध्याय * 4

1. श्रीमद्भागवतपुराण, 12, 12, 50;
2. बलदेव उपाध्याय पुराण-विमर्श, पृ० 198
3. श्रीमद्भागवतपुराण, 4, 13, 16, 4, वही, 4, 12, 35, 5. वही, 4, 13, 6–18;

6 बलदेव उपाध्याय पुराण–विमर्श, पृ० 367,

7 सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोश, पृ० 471; तथा द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी · भारतीय चरिताम्बुधि

8 ब्रह्माण्डपुराण, 3, 64, 19, 9 विष्णुपुराण, 4, 5, 30,

10 वही, 4, 5, 20–30

11 वायुपुराण, 89, 19;

12 एल० डी० बार्नेट · एण्टिक्विटीज् ऑफ् इण्डिया, पुंथी पुस्तक, कलकत्ता, पृ० 106,

13 द्रष्टव्य इसी शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय, पृ० 8,

14. ब्रह्माण्डपुराण, 3, 71, 245, 3, 72, 1, 4, 29, 128; वायुपुराण, 96, 237, भागवतपुराण, 1, 10, 29; अग्निपुराण, 12, 36, मत्स्यपुराण, 47, 15; 23; 93, 51, 101, 10; 248, 48, श्रीमद्भागवत, 10, 55, 1-2,

15. विष्णुपुराण 4, 15, 37, में कृष्ण की आठ महिषियों से उत्पन्न तेरह पुत्रो मे प्रद्युम्न को ही सर्वप्रधान कहा गया है—'तेषां च प्रद्युम्न चारुदेष्ण साम्बादय त्रयोदशप्रधाना.'

16. वही, 5, 26, 12, 'तस्या जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशस्सवीर्यवान्'

17 ब्रह्मपुराण, 199, 12; 18. वायुपुराण, 97, 1;

19 'त द्रष्ट्वा जलदश्याम पीत कौशेयवाससम् × × ×
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र हि × × ×
अस्मरत् स्वसुत-नष्टं स्नेहस्नुत पयोधरा '
—श्रीमद्भागवत, 10, 55, 27-30;

20. महाभारत, हरिवंश पर्व, 2, 108, 18; 21. वही, श्लोक 33;

22. वही, श्लोक 40, 23 वही, श्लोक 9-10;
24. बल संकर्षणे नित्यं सौकुमार्यं पुनर्गदे ।
रूपेणमत्तः प्रद्युम्न. सोऽसहायोऽस्मि नारद ।।
—महाभारत, शान्तिपर्व, 81, 5-7; तथा 11-12,
25. विष्णुपुराण, 4, 15, 34-37, 26 वही, 5, 32, 1-5;
27. 'प्रद्युम्नः प्रथमस्तेषां सर्वेषां रुक्मिणीसुत '
—वही, 5, 32,6,
28 श्रीमद्भागवत, 10, 90, 32-34; 29 वही, श्लोक 35;
30. वही, 10, 61, 8-9; 31. वही, 10, 61, 10-17,
32 महाभारत, अनुशासनपर्व, 14, 32-33,
33. वही, हरिवंश खण्ड 2, 60, 36-45, 34. वही, 103, 5-7,
35 विष्णुपुराण, 5, 28, 1-2,
36 महाभारत, हरिवंश पर्व, 35, 36-37,
37 वही, अनु० पर्व, 14, 27-34;
38. श्रीमद्भागतवपुराण, 10, 55, 9,
39. महाभारत, हरिवंशपर्व खण्ड 2, 104, 16;
40 'रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत्'
—वही, श्लोक 13, तथा—
'नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णि रूढयौवन '
—श्रीमद्भागवत, 10, 55, 9,
41. जिनसेन कृत हरिवंशपुराण (प्र० माणिक चन्द्र जैन दिगम्बर ग्रंथमाला) द्वितीय खण्ड, सर्ग 43, श्लोक 96,
42. वही, 48, 1-5,
43. महाभारत, हरिवशपर्व, खण्ड 2, 110, 1;
44 भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, अ० 139 तथा आगे ।
45 वही, 147, 30; 'अनुष्ठानविहीना: ये न भोज्यस्तु भोजका.'
46 वही, अ० 139, 'मकारो भगवान देवो भास्कर परिकीर्तित.
मकारध्यानयोगाच्च मगाह्यते प्रकीर्तिता:'
47. बलदेव उपाध्याय पुराण-विमर्श, पृ० 327,
48. राजवाड़े लेख-संग्रह (प्र० केन्द्रीय साहित्य अकादमी) पृ० 75
49 विष्णुपुराण, 4, 3,

50. राजवाड़े लेख-सग्रह, पृ० 100

51. साम्बपञ्चाशिका, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सं० 1889. पृ० 1

52 भक्तिश्रद्धाद्यखिल तरुणी वल्लभेनेदमुक्तं
श्रीसाम्बेन प्रकटगहन स्तोत्रमध्यात्मगर्भम् ।
य. सावित्रं पठति नियत स्वात्मवत्सर्वलोकान् ।
पश्यन्सोऽन्ते व्रजति शुकवन्मण्डल चण्डरश्मे. ।
—वही, पृ० 25-26;

53 विष्णुपुराण, 4, 15, 38; 54. वही, 5, 28, 6;

55. मत्स्यपुराण, अ० 47. 56. ब्रह्मपुराण, अ० 201

57. श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 61, 18-23; तथा 10, 90, 36,

58 महाभारत, हरिवंशपर्व, खण्ड 2, 61, 4, 59 वही, अ० 90-97,

60 विष्णुपुराण, 5, 27, 61 वही, 4, 15, 39;

62. ब्रह्मपुराण, अ० 201; 63 मत्स्यपुराण, अ० 47;

64 श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 61, 18-19,

65. विष्णुपुराण, 4, 15, 40-42,

66. श्रीमद्भागवत, 10, 61. 25-26, 67 वही, 10, 90, 36-38;

68 महाभारत, हरिवश, खण्ड 2, 61, 11-16,

69 वही, 103, 28-29, 70 वही, मौसलपर्व, 7, 27,

71. विष्णुपुराण, 5, 37, 62-65, 72. वही, 5, 38, 34,

73. श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 31, 25,

74. महाभारत, मौसलपर्व, 7, 38; 75 वही, 72; 76 वही, 7, 10-11;

77. उषा-अनिरुद्ध प्रकरण के लिए द्रष्टव्य विष्णुपुराण'5, 32, श्रीमद्भागतपुराण 10, 62, तथा 63; हरिवंशपर्व, 2, 117-127,

78 श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 61, 20-21;

79 वही, 10, 63, 3-4; 7, 15;

80. महाभारत, हरिवशपर्व, 2, 119, 74;

81 अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां विभो ।
जम्बूलमालिकां द्रष्टुं श्रद्धा हि मम जायते ॥
वही, 127, 21,

82. द्रष्टव्य · (1) महाभारत, खिलभाग हरिवंश, प्र० गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय सस्करण, पृ० 737 पर पद-टिप्पणी सं० 2,

(2) महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ का ही अनुकरण करते हुए कोशकारो ने ये अर्थ दिये हैं.—

(i) जम्बूलम = दूल्हे के मित्रो एव दुलहिन की सखियों द्वारा किया गया परिहास या परिहासात्मक अभिनन्दन ।

—संस्कृत-हिन्दी कोश, स० वामन शिवराव आपटे प्र० मोतीलाल बनारसीदास, 1966 ई० सं०, पृ० 397

(ii) जम्बूलम् = वरपक्षीय स्त्रीणां परिहासवचने ।

(iii) जम्बूलमालिका (स्त्री०) = कन्या वरयोर्मुखचंद्रिकायाम् । जम्बूलानां वरपक्षीय स्त्रीपरिहास वचनानाम् मालिका श्रेणी । इति हरिवंशटीकाया नीलकण्ठ ।

—शब्दार्थ-चिन्तामणि (सुखानदकृत) जिल्द 2, पृ० 971;

83 विष्णुपुराण, 5, 35;

84 श्रीमद्भागवत, 10, 68, 1-12; 43, 50-52,

85. महाभारत, हरिवंश पर्व 2, 94, 42-50;

86. वही, 2, 103, 28, 2, 128. 5, तथा मत्स्यपुराण, 47, 24,

87 ब्रह्माण्डपुराण, 3, 71, 191, 260, 3, 72, 1;

88 वायुपुराण, 97, 1,

89. श्रीमद्भागवत 1, 10, 29; 90 वही, 3, 1, 30;

91 वही, 10, 61, 10-12, 92. वही, 10, 63, 3-4, मत्स्य० 46, 27, 47, 18;

93. श्रीमद्भागवत, 10, 61, 26; 94 वही, 10, 90, 32-34;

95. वही, 10, 64, 1-4; 96 वही, 10, 75, 29; 10, 76, 14, 10, 77, 4,

97. वही, 10, 82, 6,

98. मत्स्यपुराण, 70, 5-10, 17-19, तथा अ० 62;

99 भविष्यपुराण, ब्रह्मपर्व, अ० 72;

100 वही, अ० 73, श्लोक 9; 101. वही, अ० 130,

102 वही, अ० 139-140,

103. विष्णुपुराण, 5, 37, 7; 104. वही, 37, 10-53;

105. श्रीमद्भागवतपुराण, 11, 1, 13-14; 106. वही, 11, 30, 16-17.

107. विष्णुपुराण, 5, 32, 1; वायु० 96, 238; ब्रह्माण्ड; 3, 71, 247-8; तथा मत्स्य० 47, 17;

108 श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 61, 10; तथा 10, 90, 33;

109. हरिवंशपुराण, 2, 103, 7-9;

110 वायुपुराण, 96, 240,

111. महाभारत, हरणहारिक पर्व, (सुखठंकर-संपादित पूना सं०) 1, 213, 27;

112 वही, खण्ड 2, एपेंडिक्स 1, 15;

113 महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, 88, 5, तथा 90, 8;
महाभारत के दक्षिण संस्करण में तो कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न आदि सहस्त्रों वृष्णिवीरो का अश्वमेध समारोह पर, युधिष्ठिर द्वारा विधिवत पूजन का भी उल्लेख है—.

'गोविन्दं च महात्मानं बलदेव महाबलम्
तयान्यान्वृष्णिवीरांश्च प्रद्युम्नादीन्सहस्रशः
पूजयित्वा महाराज यथाविधि..........'

—महाभारत, पूना सं०, 14, 91, 35; पद-टिप्पणी।

114. महाभारत, वनपर्व, 51, 28; 43-44; तथा उद्योगपर्व, 50, 32;

115. वही, 12, 74; 120, 4; 116. वही, 4, 19; 117. वही, श्लोक 11;

118. वही, श्लोक 12; 119. वही, श्लोक 12; 14, 15; 120. वही।

121. महाभारत, हरिवंशपर्व, 2, 104, 16;

122 महाभारत, वनपर्व, 234, 10; 123. वही, श्लोक 14 तथा 16;

124. वही, उद्योग पर्व, 90, 88, 125. वही 131, 8-9;

126. वही, द्रोणपर्व, 35, 15; 127. वही, 11, 27; 128. वही, 72, 33-34;

129 वही, 84, 32; 130. वही, 110, 59; तथा 111, 12;

131 वही, 110, 92; 132. वही, 111, 22; 25;

133 वही, 156, 4; 134. वही, सौप्तिक पर्व, 12, 30-32,

135 वही, 191, 43;

136. श्रीमद्भागवतपुराण, 1, 11, 17; 137. वही, 1, 14, 30;

138. प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध के लिए द्रष्टव्य . महाभारत, वनपर्व, अ० 16 से 19 तक तथा श्रीमद्भागवत, 10, 76;

139. प्रद्युम्न-जयन्त युद्ध के लिए द्रष्टव्य ब्रह्मपुराण, अ० 203 से 204; विष्णुपुराण, 5, 30; तथा महा०, हरिवंश पर्व, अ० 73

140 प्रद्युम्न निकुम्भ युद्ध के लिए द्रष्टव्य महा०, हरिवंशपर्व, 2, अ० 83 से 90;

141. प्रद्युम्न-कार्तिकेय युद्ध, (उषा-अनिरुद्ध प्रसग) के लिए द्रष्टव्य: विष्णुपुराण 5, 33, ब्रह्मपुराण, अ० 205 से 206, अग्निपुराण, अ० 12, श्रीमद्भागवत, 10, 63, महा० हरिवंशपर्व, 2, अ० 117 से 127, ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, उत्तरार्द्ध, अ० 114 से अ० 118 तथा शिवपुराण, रुद्र सहिता, पञ्चम युद्ध-खण्ड, अ० 51 से 55,

142. प्रद्युम्न-वैदर्भी परिणय के लिए द्रष्टव्य ब्रह्मपुराण, अ० 201, विष्णुपुराण 4, 15, 38; 5, 28, 6, मत्स्यपुराण, अ० 47, श्रीमद्भागवत, 10, 61, 18-19; 22-23, 10, 90, 36, तथा महा०, हरिवशपर्व, 2, 61, 4,

143. प्रद्युम्न-प्रभावती परिणय के लिए द्रष्टव्य महा० हरिवंशपर्व, 2 अ० 92 से 97;

144. प्रद्युम्न-मायावती मिलन (प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध) के लिए द्रष्टव्य विष्णुपुराण, 5, 27; ब्रह्मपुराण, अ० 200, श्रीमद्भागवत, 10, 55. महा०, हरिवंशपर्व, 2, अ० 104 से 108; तथा शेष संदर्भों के लिए, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का आगामी अध्याय।

145. नृग नृपति की कथा के लिए द्रष्टव्य: श्रीमद्भागवत, 10, 64;

146. श्रमद्भागवत, 10, 89; महा० हरिवंशपर्व, 2, 112;

147. महाभारत, अनुशासनपर्व अ० 159;

148. वही, हरिवशपर्व 2, 109;

149. श्रीमद्भागवत, 10, 82, 6,

150. महाभारत, हरिवशपर्व, अ० 88 तथा 89,

151. वही, मौसिलपर्व, अ० 1, विष्णुपुराण, 5, 37-38; ब्रह्मपुराण, अ० 210, श्रीमद्भागवत, 11, 1; 30,

152 वही, अर्जुनाभिगमनपर्व, अ० 16, श्लोक 8-20,

153 वही, श्लोक 29-33, 154 वही, अ० 17, श्लोक 2, 19, 9;

155. वही, 17, 6,

156 श्रीमद्भागवत, 10, 77, 29, 31; तथा महाभारत, वन पर्व, 18, 5-33;

157 महाभारत, वनपर्व, 21-16-21; 158 वही, हरिवंशपर्व, 2, 64-75;

159 वही, हरिवंश 2, अ० 73, श्लोक 55, 160. वही, श्लोक 72; 77,

161 वही, श्लोक 3; 6, 23-25;, 43-55; 102-105;

162 वही, 74, 13, 163 वही, 75, 50, 164. वही, 83, 19;

165 वही, श्लोक 20, 166 वही, श्लोक 22; 167. वही, अ० 84, श्लोक 4;

168. वही, श्लोक 27-63; 169. वही, अ०85, श्लोक 49;

170 वही, श्लोक 51,

171 विष्णुपुराण, 5, 32, 24-26, श्रीमद्भागवत, 10, 62, 20-21;

172 महा०, हरिवंशपर्व (2, 118, 69-70) में प्रद्युम्न-चित्र देख कर उषा कहती है—'तामय चौर कुतोऽय रतितस्कर ?'

173 महाभारत, हरिवंशपर्व, 2, 127, 15-17,

174. वही, 128, 14; 18-19;

175 विष्णुपुराण, 4, 15, 38; 176. वही, 5, 28, 6;

177 श्रीमद्भागवत, 10, 61, 22,

178 महा०, हरिवंशपर्व, 2, 61, 7; 179. वही, अ० 92 से 97,

180 'कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणश्चेतनाचेतनेषु'

—कालिदासकृत मेघदूत (पूर्वार्द्ध)

181 महा०, हरिवंशपर्व 2, 92, 20 (त्रिलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा)

182 वही, श्लोक 21,

183 य सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि ।
आपीनानीव धेनूनां स्रोतान्सि सरितामिव ।।

—वही, श्लोक 22;

184 'मायाश्च सर्वा. सम्प्राप्ता न च शीलम् विनाशितम्'

—वही, श्लोक 25;

185 वही, श्लोक 26; 186 वही, श्लोक 27: 187. वही, श्लोक 58-62;

188 वही, अ० 93, श्लोक 6, 189. वही, श्लोक 26;

190 वही, श्लोक 27-30;

191. वही, श्लोक 50; 53; 192. वही, अ० 94, श्लोक 18,

193. वही, श्लोक 30,

194 वही, अ० 95, 195. वही, 95, 16-17;
196. वही, अ० 96, श्लोक 33-41,

197. वही, 97, 24-26; 198 वही, श्लोक 39, 41, 199 वही, श्लोक 40,

200. विष्णुपुराण, 5, 27, 15-17; महा०, हरिवंशपर्व 2, 104. 24-30,

201 श्रीमद्भागवतपुराण, 10, 55, 12-13;

202. वही, 10, 56, 32, तथा विष्णुपुराण, 5, 27, 23;

203. श्रीमद्भागवत. 10, 55, 33-35

204. वही, 10, 64, 1-4, 205 वही, 10, 89, 31-32,

206. महा०, हरिवंशपर्व 2, 112, 21, 207 महा०, मौसलपर्व, 32-35,

208. श्रीमद्भागवत, 10, 82, 6,

209 महा० हरिवंशपर्व 2, 89, 19-22;

210 छालिक्य गांधर्वमुदारबुद्धि-
स्तेनैव ताम्बूलमथप्रयुक्तम् ।
प्रयोजितं पञ्चभिरिन्द्र तुल्यै-
श्छालिक्यमिष्ट सतत नराणाम् ।। इत्यादि
—वही, श्लोक 74-76,

211. वही, श्लोक 77-79; 212. वही श्लोक 79-80

213 शक्य न छालिक्यमृते तपोभि
स्थाने विधानान्यथ मूर्च्छनासु ।।
—वही, श्लोक 81,

214 बेनीप्रसाद हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर (इण्डियन प्रेस, प्रयाग) पचम सस्करण, पृ० 171 तथा रोजर्स एव बेवेरिज लिखित जहाँगीर, जिल्द 1, पृ० 271

215 नागवल्लीभिराश्लिष्टाः पूगवृक्षा वने वने ।
ताम्बूलार्थम् जना यत्र चूर्णं नीत्वा व्रजन्ति हि ।।
—आचार्य सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न-चरित्र

(हस्त० प्रति, आमेरशास्त्र भण्डार, वेष्टन स० 685) सर्ग 2, श्लोक 14;

216 विष्णुपुराण, 5, 37, 6-10, श्रीमद्भागवत, 11, 1, 12-20; महा०, मौसलपर्व 1, 18; में यादव कुमार साम्ब को बभ्रु की स्त्री कह कर पुकारते हैं ।

217. महा० मौसलपर्व, 2, 29-30,

218 वही, 3, 16; विष्णुपुराण, 2, 37-39;

219. श्रीमद्भागवत, 11, 30, 12;

220. महा०, मौसलपर्व, 3, 15;

221 विष्णु पुराण, 5, 37, 40-42; 222. वही, 5, 37 46-50;

223. श्रीमद्भागवतपुराण, 11, 30, 16,

224. महा० मौसलपर्व, 3, 17, 35; 225 वही, श्लोक 44-45;

226 वही, 6, 6-9; 'तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनंजय'

227. वही, श्लोक 9-10, 228. विष्णुपुराण, 5, 38, 4;

229 महा० मौसलपर्व, 7, 15; 230. वही, श्लोक 18; 25;

231 विष्णुपुराण, 5, 38, 2;

232 महा० मौसलपर्व, 8, 73; 233 वही, श्लोक 74;

234. श्रीमद्भागवत, 11, 31, 18-20;

235. पद्मपुराण, खण्ड 5, अ० 252;

236 'सनत्कुमार प्रद्युम्न प्रविवेश यथागतम्'
क्योंकि— महा०, स्वर्गारोहणपर्व, 5, 11;

शेषस्यांशस्तु नागस्य बलदेवो महाबल. ।
सनत्कुमारं प्रद्युम्न विद्धि राजन्महौजसम् ।।
वही, अ० 1, श्लोक 61;

तथा—

सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मन ।
प्रद्युम्नस्य महाबाहोः सग्रामे विक्रमिष्यतः ।।
—महा० हरिवंशपर्व 2, 122, 8,

तथा—

समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ।।
—वही, सौप्तिकपर्व, 12, 31:

237 परशुराम चतुर्वेदी: भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० 20; 110-11,

238 रविवर्मन (केरलराजकुमार) कृत प्रद्युम्नाभ्युदय' (नाटक)
सं० टी० गणपतिशास्त्री, प्र० त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज, 1910 ई०

239 रविवर्मा के लिए द्रष्टव्य कीलहार्न एपिक इण्डिया, जिल्द 4, पृ० 145 पर पाद—टिप्पणी ।

240 एस० एन० दासगुप्त तथा एस० के० डे ' हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर (कलकत्ता 1947 ई०) जिल्द 1, पृ० 466,

241. प्रद्युम्न—विजय (शंकर दीक्षित रचित) के लिए द्रष्टव्य. डॉसन कृत 'ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथॉलॉजी', (प्रद्युम्न शीर्षकान्तर्गत)

242 प्रद्युम्न-विजय (गणेशकवि कृत) के लिए द्रष्टव्य.

(क) हिन्दी साहित्य-कोश (प्र० ज्ञानमण्डल, वाराणसी) भाग 2, पृ० 325,

(ख) भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रथम भाग (सं० ब्रजरत्नदास) पृ० 752,

---

परिशिष्ट (I)

शब्दानुक्रमणी*

[प्रद्युम्न : देवत्व एवं व्यक्तित्व]

अग्नि—3, 12, 14, 30, 31, 33-37.

अच्युत—89

अथर्ववेद मे काम—2

अनग—26

अनगवती—24

अनिरुद्ध—78, 80, 81, 85, 88-92, 103, 104, 138, 139, 141, 142

अमूर्त विचारो और भावो का मानवीकरण—7

अवतार- कल्पना मे प्रद्युम्न—72, 95

अवतारवाद—8, 71

अवान्तर व्यूह—87, 88

अहकार—60, 92,

अहकृति—97

आहूनीक-स्तोत्र—157

उलूकपत्र नाराचधारी काम—43

ऋग्वेद मे काम—1, 57

काम, कामदेव—1

काम का अवतारत्व—1, 4

,, पुनर्जन्म—10, 24, 25

,, और अग्नि—27, 28, 30, 31

,, और प्रद्युम्न—33

,, ,, सनत्कुमार—33

,, ,, सुवर्ण—33

,, कथा के शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन रूप—38-41

,, कथा के वैष्णव रूप की विशेपताएँ—43

,, का ऋग्वेदीय रूप—1

,, का प्रद्युम्न रूप—4, 10, 33

,, का महाकाव्यीय और पौराणिक स्वरूप—3

,, का यक्षो अप्सराओ से सम्बन्ध—23, 27

,, का वैदिक स्वरूप—3

,, की अपत्यता—22

,, की केशव से सगति—27

,, की प्रतिमा तथा पूजा—27

,, की विष्णु और प्रद्युम्न से

*यह शब्दानुक्रमणी मात्र विषयवस्तुगत है। पुस्तको एवं लेखको के संदर्भ, विस्तार-भय एवं अल्प उपयोगिता के कारण, छोड़ दिये गये हैं।

एकरूपता—26
,, के अनेक नाम—23
,, के महत्त्व का ह्रास—28
,, के वशीकरण का मन्त्र—3
,, के विकास की क्रमिक अवस्थाएँ—3
,, तथा मान नामक यक्ष—28
,, दहन—10, 24, 25
,, देवता का लौकिक और शास्त्रीय रूप—45
,, व्रत—26
,, बाण—2, 3,
कृष्ण—29, 31, 36, 37, 44
,, की देवत्व-प्राप्ति—53, 54, 55, 56
कार्तिकेय—3, 13, 14, 30, 31, 34, 36
कूटस्थ पुरुष—97, 109
चतुर्विंशतिमूर्तिवर्णन—26
चतुर्व्यूह-कल्पना का उत्स—57
,, ,, का विकास क्रम और प्रद्युम्न—84
,, और चेतनावस्थाएँ—94
,, देवताओं की मूर्ति—101
,, योजना—26, 28, 46, 78, 79, 88, 91, 92
,, सिद्धान्त—59
तारक-वध—3
द्वादश अवान्तर व्यूह—88
,, आदित्य कल्पना—88
द्युम्न—6, 7,
देवात्व का स्रोत—53
देवास्त्र—111
दैविक वासुदेव—102, 103
,, सृष्टि—60
धनवन्तरि—96
धर्म-रुचि और दक्ष की सन्तानें—7
प्रजापति—36
'प्रद्युम्न' अभिधान का उत्स—6
प्रद्युम्नाभ्युदय नाटक—163
प्रद्युम्न एव पच वशवीर—56
,, और अग्नि तत्त्व—11
,, अवतार कल्पना—95
,, और अवान्तर व्यूह—87
,, और कार्तिकेय—13
,, और नृगराजा की कथा—156
,, और प्राकृत प्रलय—96
,, और षाड्गुण्य विग्रह—97
,, और सनत्कुमार—13, 14
,, कथा और कार्तिकेय-कथा—36
,, कथा काम-कथा ही है—14
,, का आकृति-सौंदर्य—129

प्रद्युम्न का कामदेवत्व महाभारत में—9
,, कामदेव के अवतार रूप में–21
, का देवता रूप, परवर्ती उपनिषदों में—83
,, का देहपात—161
,, कार्तिकेय युद्ध—152
,, का विवाह तथा सन्तान सम्बन्धी विवरण—135
,, का वीरत्व—97
,, के चारित्रिक गुण और लौकिक क्रिया-कलाप—142
,, के देवता-रूप का चरित-काव्यों पर प्रभाव—106
,, के देवता-रूप का महत्त्व–106
,, के देवता-रूप का विकास-काल—61,62
,, के भाई-बहिन—130
, के रूप में कामदेव का जन्म–10
,, के शौर्य-प्रसंग—11
,, की उपासना—56
,, चरित्र—127
,, चरित्र, इतिवृत्तात्मक प्रसंगों में—156
,, ,, और काव्य सृष्टि—161
,, ,, के प्रमुख कार्य-व्यापार–14
,, चरित्र व्यंजक प्रमुख-कथा वृत्त—146
,, जन्म—9
,, जयन्त युद्ध—150
,, जीवन के अन्तिम काल की झलक—158
,, जीवन के प्रमुख प्रणय-प्रसंग—152
प्रद्युम्न द्वारा छालिक्य-गान का प्रचलन—158
,, द्वारा ताम्बूल सेवन का प्रचलन—158
, नगर—105
,, नाम के अनेक व्यक्ति—8
, निकुम्भ युद्ध—151
,, प्रभावती प्रणय-प्रसंग—153, 162, 163
,, पुर—105
, पुरुष रूप में—87
, मंत्र—28, 98
,, मायावती प्रसंग—155
,, मूर्ति—28, 78
,, मूर्ति, तीर्थ, पीठ, राजधानी—101, 104
,, व्यक्तित्व के विविध रूप—126, 127
,, विजय नाटक
,, विषयक नाम-सूची—127, 128
,, वैदर्भी या शुभांगी प्रसंग—152, 161, 163
,, शाल्व युद्ध—147
,, सम्बन्धी मंत्र, तंत्र, आयुध—98
,, संहिता—74
प्रभास-क्षेत्र—141, 157
पांचरात्र संहिता-साहित्य—72
पांचरात्र संहिता-साहित्य में प्रद्युम्न का देवता-रूप—75
पारिजात-हरण—150
प्राकृत प्रलय—96
प्राकृतिक तत्त्वों का मानवीकरण—7

प्रादुर्भाव सिद्धान्त—60
पिण्डारक तीर्थ—157, 159
„ क्षेत्र—141, 159
पुराणों का रचना-काल—63
पुरुष-कल्पना की अर्थवत्ता—95
पुरुष शब्द के अर्थ—95
पुरुष सूक्त—57, 88
पौराणिक साहित्य में प्रद्युम्न का देवता-रूप—68
ब्रह्मा-पुत्री—25
बीज मत्र—82
भानु—142
भारतेन्दु—163
भोजक—133
भौतिक सृष्टि—60
मग, मानग, मनग—133, 141
मदन द्वादशी व्रत—26
महाभारत का रचना-काल—54
महत्तत्त्व—87
मानुष वासुदेव—102, 103
मार-समर—40
माया-सैन्य—112
मित्र—2
मोक्ष-सिद्धान्त—60
रति-विलाप—40
रुद्र—28, 29, 36
वरुण—2, 27
वसु उपरिचर—58
वासुदेव—36, 58, 60, 78, 92, 101, 102
विभव अवतार—96
विभूति द्वादशी व्रत—24
विश्वेदेवा—22, 28
विष्णु—26, 28, 29, 31, 89
वीरवाद—55
व्यूह अवतार—29, 85
व्यूह कल्पना—81
व्यूह रूपों का सापेक्ष महत्त्व—93
वैखानस—29, 57, 58
वैवस्वत मन्वन्तर—25
वैष्णव पुराण तथा संहिता-साहित्य—62
शाकद्वीपीय ब्राह्मण—133
शिव—33, 34, 36, 37
सृष्टि-कल्पना और प्रद्युम्न—86
संकर्षण—26, 59, 60, 78, 88–92
सध्या—25
सत्य—89
सविता—36
सनत्कुमार—33
सनन्दनादि—32
सप्तरत्न—82
साम्ब—132, 133, 138-141, 143, 157
साम्ब पञ्चाशिका—133
सावित्री—25
सुवर्ण—33, 35, 36
सूर्यमन्दिर—133
सोम—2
क्षेत्रज्ञ—60

☐ ☐

द्वितीय खण्ड

प्रद्युम्न-काव्य-विमर्श

विपय–सूची

पुरोवाक् □ डॉ० सत्येन्द्र पृ० (अ)

पूर्वेक्षण □ लेखक पृ० (क–छ)

कृतज्ञता–ज्ञापन □ लेखक पृ० (छ–ज)

□ विषय-वस्तु □ पृष्ठ संख्या

अध्याय एक/प्रद्युम्न–चरित काव्यो की कथा-वस्तु का उत्स और विकास [1–34]

1 प्रद्युम्न-कथा की वैष्णव तथा जैन पौराणिक भाव-भूमियाँ (1) 2. विष्णु पुराण मे प्रद्युम्न-कथा (1) 3. श्रीमद्भागवतपुराण मे प्रद्युम्न-कथा का रूप (3) 4. प्रद्युम्न-कथा हरिवशपुराण मे (3) 5. वैष्णव पुराणो मे प्रद्युम्न-कथा का तुलनात्मक अध्ययन (4) 6. प्रद्युम्न-कथा-रूपो पर हरिवंश का प्रभाव (8) 7. प्रद्युम्न-कथा जैन आगम-साहित्य मे (9) 8 प्रद्युम्न-कथा का जैन पुराणीय रूप (10) 9 जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण मे प्रद्युम्न-कथा (11) 10. जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण और गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के प्रद्युम्न-कथा-रूपो का तुलनात्मक अध्ययन (17) 11. पुष्पदन्त कृत महापुराण मे प्रद्युम्न-कथा का रूप और उस पर गुणभद्र का प्रभाव (19) 12. प्रद्युम्न-कथा के वैष्णव तथा जैन पौराणिक रूपो का तुलनात्मक अध्ययन (21) 13 मुख्य प्रद्युम्न-कथा के पूर्ववर्ती एव परवर्ती प्रसग (28) 14 जैन पुराण-परम्परा की विशिष्टताए (31) 15 प्रद्युम्न-कथा के पौराणिक रूपो मे काव्य-सौन्दर्य (32)

. . . सन्दर्भ अध्याय 1 [35–38]

अध्याय दो/सधारु-पूर्व रचित प्रद्युम्न-चरित काव्य [39–87]

1. सधारु-पूर्व प्रमुख कवि महासेन तथा सिद्ध और सिंह का कवि तथा कृति-परिचय (39) 2. महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न-चरित मे कथानक-सगठन (43) 3. महासेनाचार्य कृत वस्तु-वर्णन और रूप-वर्णन (47) 4. चरित्र-चित्रण तथा सवाद-योजना (49)

5. काव्य-सौन्दर्य, छन्द-अलकार-योजना, प्रबन्ध-काव्यत्व (49) 6 वर्णन-रूढियाँ (52) 7 महासेन का परवर्ती कवियो पर प्रभाव (53) 8 सिद्ध तथा सिंह कृत 'पज्जुण्णचरिउ' का कथा-शिल्प (54) 9 वस्तु-व्यापार-वर्णन (59) 10 प्रकृति-चित्रण तथा ऋतु-वर्णन (61) 11 रूप-वर्णन (61) 12. चरित्र-चित्रण (64) 13 सवाद-योजना (72) 14 भाव-सौन्दर्य तथा रस-निरूपण (75) 15. अलकार-विधान तथा छन्द-योजना (81)

......सन्दर्भ अध्याय 2 [88–102]

अध्याय तीन/सधारु कृत 'परदवणु चरितु' एक अध्ययन [103–183]

[क] वस्तु पात्र तथा रस

(1) वस्तु

1. कृति तथा कृतिकार का सक्षिप्त परिचय (103) 2 कथानक-सगठन (105) 3. वस्तु-व्यापार-वर्णन (110) 4. वर्णन-रूढियाँ (112)

(2) पात्र .

5. चरित्र-चित्रण (115) 6. सवाद-योजना (121)

(3) रस :

7 अलकार-योजना तथा छन्द-विधान (122)

8. भाव तथा रस-निरूपण (128)

[ख] प्रद्युम्न-कथा : स्वरूप-विवेचन तथा महत्त्व

9. आख्यायिका तथा कथा (133) 10 कथा के भेद (135) 11. कथा मे काम तथा प्रेम तत्त्व (136) 12 काम-कथा तथा प्रेम-कथा (136) 13. क्या प्रद्युम्न-चरित प्रेम-कथा है ? (138) 14. प्रेमाख्यानो के विविध वर्ग तथा प्रद्युम्न-चरित (140) 15. जैन प्रेमाख्यान-परम्परा की विशेषता (142) 16. निष्कर्ष (143) 17. क्या प्रद्युन-चरित वीर-कथा है ? (144) 18 प्रद्युम्न-कथा और चरितकाव्यत्व (145) 19 चरित-काव्य तथा कथा-काव्य (148) 20. जैन चरित-कव्यो की विशेषताएं (149) 21 चरित-काव्यो के भेद (150) 22. निष्कर्ष (151) 23 प्रद्युम्न-चरित एकार्थ-काव्य या सकल-काव्य ? (151) 24. क्या सधारु-कृत प्रद्युम्न-चरित सतसई-काव्य है ? (152) 25 सधारु-रचित प्रद्युम्न-चरित का हिन्दी-साहित्य में स्थान (153)

23 पूर्ववर्ती तथा सम-सामयिक प्रेम-कथाओ और चरित-काव्यो से तुलना (154)

[ग] प्रद्युम्न-चरित्र मे कथानक रूढ़ियाँ
27. प्रद्युम्न-कथा-चक्र (156) 28 प्रमुख कथानक-रूढियाँ (157) 29. विश्व-लोकवार्ता की कथानक-रूढियो से साम्य (161) 30. अनाथ बालक या बालदेव (164) 31 धर्मगाथा का 'बाल-देव' तथा लोक-कथा का 'बाल-वीर' (166) 32 महाभारत तथा पुराणो मे प्रद्युम्न-कथा रूढियो का मूल (168) 33. प्राकृत अपभ्र श काव्यो मे प्रद्युम्न-कथा-रूढियाँ (168) 34 'जोसेफ एण्ड पोटिफर्स वाइफ' तथा अन्य कथानक-रूढियाँ (170) 3५. निष्कर्ष (171)

[घ] प्रद्युम्न चरित्र मे अद्भुत् तत्त्वो की योजना :
36. अद्भुत् तत्त्व की सर्वातिशायिता (171) 37. अद्भुत् की योजना के विविध रूप (172) 38 अद्भुत् पात्र—यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व, राक्षस, नाग, असुर, दैत्य, दानव आदि (173) 39. नारद और मधु-कैटभ (178) 40. पदार्थो और व्यापारो के रूप मे अद्भुत् तत्त्व की योजना (179) 41 अद्भुत् तत्त्व के विविध रूप (181) 42. अद्भुत् तत्त्व की धर्मगाथा-मूलकता तथा निष्कर्ष (182)

.. ...सन्दर्भ अध्याय 3 [184–197]

अध्याय चार / सधारु-परवर्ती प्रद्युम्न-चरित काव्य [199–243]

1. पीठिका सधारु-परवर्ती काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ (199) 2. कृति-सूचियाँ तथा उनका विश्लेषण . भाषा, काव्य-विधा तथा रचना-काल की दृष्टि से (200) 3 विक्रम की 15वी तथा 16वी सदी के कवि सकलकीर्ति, रइधू, सोमकीर्ति, मल्लिभूषण प्रभृति (202) 4 प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी रचनाए तेलुगु, मलयालम तथा कश्मीरी मे (206) 5 विक्रम की 17 वी शताब्दी के कवि शुभचन्द्र कृत प्रद्युम्न-चरितम् (208) 6 कमलशेखर कृत प्रद्युम्न चुपई (209) 7. ब्रह्मरायमल्ल कृत प्रद्युम्नरासो (210) 8 17 वी सदी के अन्य कवि · जिनचन्द्र सूरि, वादिचन्द्र (216) 9. भट्टारक श्रीभूषण का प्रद्युम्नकुमार रास (217) 10. समय सुन्दर, गुणसागर तथा रत्नचन्द्र गणि (219) 11. देवेन्द्रकीर्ति

का प्रद्युम्न प्रबन्ध (224) 12 विक्रम की 19 वी सदी के कवि मयाराम भोजक, हर्षविजय बूलचन्द (226) 13. बीसवी शताब्दी की एक गद्य-रचना ज्वालाप्रसाद, बख्तावरसिंह तथा मन्नालाल कृत प्रद्युम्न-चरित्र भाषा-वचनिका (228) 14 बीसवी शताब्दी के प्रद्युम्न-चरित प्रणेता कवि अमोलक ऋषि, खूबचन्द महाराज, सूर्यमुनि, गुणभद्र अगास, जैनेन्द्रकिशोर इत्यादि (234)
..... सन्दर्भ . अध्याय 4 [244-252]

- ☐ शुद्धि-पत्र [253]
- ☐ तालिका (क) प्रद्युम्न-चरित ग्रन्थ-सूची [255-264]
- ☐ तालिका (ख) प्रद्युम्न-चरित विषयक हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रन्थो का विवरण [265 279]
- ☐ परिशिष्ट I (अ) शब्दानुक्रमणी (प्रद्युम्न-काव्य-विमर्श) [280-282]
- ☐ परिशिष्ट (II) सहायक पुस्तक-सूची [I VIII]

●●●

द्वितीय खण्ड
प्रमुख - भाषा - विमर्श

अध्याय : एक

卐

प्रद्युम्न-चरित काव्यों की कथावस्तु का उत्स और विकास

1. प्रद्युम्न-कथा की वैष्णव तथा जैन पौराणिक भावभूमियाँ

प्रद्युम्न के व्यक्तित्व, चरित्र और क्रिया-कलापो का एक सर्वांगीण और समन्तात आकलन प्रस्तुत करते हुए इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया कि प्रद्युम्न-चरित्र के विविध व्यापारो में से प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी काव्य-ग्रथो का जो सर्वाधिक उपजीव्य विषय रहा, वह है प्रद्युम्न-हरण (या प्रद्युम्न-शवर-युद्ध) सम्बन्धी कथानक। इस कथानक का विकास दो भाव-भूमियो पर हुआ है— (1) वैष्णव तथा (2) जैन। इन दोनो ही भाव-भूमि,यो मे कथानक के उत्स और विकास का क्रम उसके सगठन-सम्बन्धी मोद्दिष्ट अन्तरो को छोड कर, जिनका महत्त्व अपने स्थान पर कम नही है, प्राय. समान ही रहा है। दोनो ही परपम्राओ मे कथानक का उदय पौराणिक स्तर पर है। वैष्णव परम्परा मे प्रद्युम्न के अभिधान और अग्नि से उसके सम्बन्ध का मूल वैदिक साहित्य मे तथा उसके देवता-रूप और लौकिक व्यक्तित्व का उन्नयन क्रमश. सहिता-साहित्य एव महाभारत मे होते हुए भी प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे अभिनिविष्ट कथानक का उदय पौराणिक ग्रथो मे ही हुआ है जिनमे से स्फुट उल्लेखो को छोड देने पर कथानक के सम्यक् निर्वाह की दृष्टि से तीन ही पुराण-ग्रथो का विशेष महत्त्व सिद्ध होता है— (1) विष्णुपुराण (1) श्रीमद्भागवत तथा (3) हरिवश (महाभारत, खिलभाग, हरिवशपर्व)।

2 विष्णुपुराण मे प्र म्न-कथा

विष्णुपुराण (अ श 5, अध्याय 27) मे पराशर मैत्रेय को उनकी जिज्ञासा पर प्रद्युम्न-हरण और शबर-वध सम्बन्धी कथा सुनाते है जो सक्षेप मे इस प्रकार है—

काल के समान विकराल शवरासुर ने प्रद्युम्न को जन्म लेने के छठे दिन, अपना हननकर्ता अनुमानित कर, सूतिकागृह से हर लिया और तरगो से आवर्त,

मकरो के आलय, लवण समुद्र मे डाल दिया। वहाँ एक मत्स्य द्वारा निगले जाने पर जठराग्नि से जल कर भी वह नही मरा। कुछ मछुओ ने उस मत्स्य को जाल मे फसा कर असुरराज शवर को अर्पित किया। उसकी नाममात्र की पत्नी 'मायावती' सम्पूर्ण गृह की स्वामिनी और सूदो (रसोइयो) की अधिष्ठात्री थी। मत्स्य का जठर विदारित करते ही उसमे दग्ध कामवृक्ष के प्रथम अकुर के समान सुन्दर बालक दिखाई दिया। इस घटना से स्तब्ध मायावती के कौतूहल का शमन नारद ने वहा आ कर यह कह कर किया कि यह भगवान विष्णु का पुत्र है। इसे शवर ने सूतिका-गृह मे चुरा कर समुद्र मे फेंक दिया था जहाँ इसे यह मत्स्य नि-ल गया था। तू इस नररत्न का आश्वस्त होकर पालन कर। मायावती ने तथैव अनुरागपूर्वक उसका लालन-पालन किया और जब वह नवयौवनागमन से सुशोभित हुआ तो उस गजगा-मिनी की उसके प्रति अभिलाषा जाग उठी। प्रद्युम्न मे अपने हृदय और नेत्र समर्पित कर चुकी मायावती ने अनुराग से अधी हो कर उसे सारी मायाए सिखा दी। उस कमलनयनी के आसक्ति भाव पर प्रद्युम्न ने उसके द्वारा मातृभाव छोड कर अन्यथा व्यवहार करने का कारण पूछा। तब मायावती ने प्रद्युम्न के कृष्ण-तनय होने, शम्बर द्वारा अपहरण कर समुद्र मे फेक दिये जाने और मत्स्योदर से प्राप्त होने का रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा कि हे कात, तुम्हारे वियोग में पुत्रवत्सला तुम्हारी जननी आज भी रोती होगी। मायावती के यह कहते ही प्रद्युम्न ने क्रोध से आकुल हो शम्बर को युद्ध के लिए ललकारा और युद्ध मे उस दैत्य की सारी सेना का हनन कर उसकी सात मायाओ का अतिक्रमण करते हुए आठवी माया का प्रयोग किया। प्रद्युम्न उस माया के प्रयोग से दैत्य कालशवर को मार कर मायवती सहित उड कर अपने पिता के नगर मे आ गये।

मायावती सहित अन्त पुर मे उतरने पर कृष्ण की रानियो ने उन्हे देख कर कृष्ण ही समझा किन्तु आनदित रुक्मिणी के नेत्रो मे प्रेमवश अश्रु उमड आये और वह कहने लगी—अवश्य ही यह किसी बडभागिनी का पुत्र है और इस समय नव-यौवन मे स्थित है। यदि मेरा पुत्र जीवित होगा तो उसकी भी यही आयु होगी। हे वत्स, तूने किस भाग्यवती जननी को विभूषित किया है? अथवा तेरे प्रति मेरे स्नेह को और तेरे स्वरूप को देख कर मुझे ऐसा भी प्रतीत होता है कि तू श्रीहरि का ही पुत्र है।

तभी कृष्ण के साथ वहाँ नारद आ गये। उन्होने यह कह कर कि हे सुभ्रू, यह तेरा ही पुत्र है जो अपने अपहर्ता शवरासुर को मार कर आया है। मायावती भी शवर-पत्नी न हो कर तेरी ही पुत्रवधू है क्योकि कामदेव के भस्म हो जाने पर उसके पुनरोद्भव की प्रतीक्षा करते हुए इस सुन्दरी ने अपने मयामय रूप से शवरासुर को मोहित किया था। यह मदिरलोचना विहारादि उपभोगो के समय उस दैत्य को अपने

अतिसुन्दर मायामय रूप दिखाती रहती थी। कामदेव ने ही तेरे पुत्र के रूप मे जन्म लिया है और यह सुदरी उसकी प्रिया 'रति' ही है। यह तेरी पुत्रवधू है, तू इसमे विपरीत शका मत कर। यह सुन कृष्ण–रुक्मिणी को अतिशय आनद हुआ और समस्त द्वारकापुरी भी साधुवाद करने लगी। चिरकाल से खोये हुए पुत्र के साथ रुक्मिणी का मिलन देख कर द्वारकावासियो को अतीव आश्चर्य हुआ। इसी से मिलती-जुलती कथा ब्रह्मपुराण[1] मे है। दोनो के सादृश्य से प्रद्युम्न-कथा का यही रूप प्राचीनतम सिद्ध होता है। दोनो मे सभी विवरण समान है।

3. श्रीमद्भागवत-पुराण में प्रद्युम्न-कथा का रूप

श्रीमद्भागवतपुराण (दशमस्कध, अध्याय 55) मे इसी कथा को शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं। शिव द्वारा भस्म कामदेव ही रुक्मिणी के गर्भ से कृष्णतनय के रूप मे उत्पन्न हो प्रद्युम्न नाम से जगत मे प्रसिद्ध हुए यह सूचना देते हुए शवर द्वारा प्रद्युम्न-हरण मे लेकर मत्स्योदर से मायावती को प्रद्युम्न की प्राप्ति, प्रद्युम्न द्वारा शम्बर-वध तथा मायावती सहित द्वारकापुरी मे आगमन की कथा वर्णित है।

अन्तर यही है कि विष्णुपुराण की सूक्ष्मकथा को भागवतकार ने विस्तार दिया है। यह विस्तार, कथा-सूत्रो की अनेकता, विविधता या विभिन्नता को लेकर नहीं है बल्कि भागवतकार की सुविदित अतिरंजित, अलंकृत अभिव्यंजना शैली तथा कार्यकारण-शृखला की तार्किक सगति-स्थापक हेतु-कल्पनाओ को लेकर है। इन्ही दो प्रवृत्तियो से प्रेरित हो कर पुराणकार ने हरिवंश मे इसी कथा को और भी विस्तृत और मनोहारी रूप दिया है।

4. प्रद्युम्न-कथा—हरिवंश पुराण में

हरिवश मे (अध्याय 104 से 109 तक) प्रद्युम्न-कथा विस्तार से दी गयी है। वैशम्पायन कथा के वक्ता और जनमेजय उसके श्रोता है। सर्वप्रथम हरिवशकार प्रद्युम्न के कामदेवत्व और सनत्कुमारत्व को सूचित करता है। फिर प्रद्युम्न-हरण प्रसग का वर्णन करते हुए पुराणकार लिखता है कि कालशवर ने कृष्ण के वालक पुत्र को जन्म से सात रात्रि पूर्ण होने पर माया से हर लिया और दोनो भुजाओ पर उसे उठाकर अपने नगर को चला गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हरिवशकार ने ही वैष्णव-पुराण परम्परा मे पहली बार प्रद्युम्न को समुद्र मे फेंके जाने और मत्स्योदर से प्राप्त होने के स्थान पर शवर द्वारा सीधे भुजाओ से उठा कर नगर को ले जाने और मायावती को देने की बात कही है। हरिवश महाभारत का खिल भाग है तथा अपने वर्तमान रूप मे महाभारत का रचनाकाल, जैसा कि हमने तृतीय अध्याय मे पुराण-रचनाकाल का

निरूपण करते हुए व्यक्त किया है, विंटरनिज 400 ई० तक निर्धारित करते हैं। यदि यह सत्य है तो हरिवश की इस कथा-योजना (प्रद्युम्न को समुद्र में न फेंके जाने और मत्स्योदर से उसकी प्राप्ति न होने) की 783 ई० में जैनपुराणकार जिनसेनाचार्य द्वारा रचित हरिवशपुराण से निकटता तो इससे स्पष्ट ही है। दोनो ने ही अपहर्ता (क्रमश शंवर तथा धूमकेतु) द्वारा प्रद्युम्न को भुजाओ से उठा कर ले जाने का वर्णन किया है— 'शिशुमुद्‌यत्य बाहुभ्यां' (जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 43) तथा 'दोर्भ्यामुत्क्षिप्य' (हरिवशपुराण, विष्णुपर्व, 104, 5)।

हरिवश का एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्वर यह भी है कि इसमे शवर-पत्नी (मायावती) को विष्णु और भागवत की भाति दासी या नाम-पत्नी न मान कर पतिगर्विता भार्या का स्तर प्रदान किया गया है। शवर-पत्नी का नाम परिवर्तित (कनकमाला) कर देने पर भी जैन हरिवशपुराण मे उसके चरित्र का अंकन यही रग लिये हुए है। जिनसेनाचार्य (जैन हरिवश रचयिता) से यही प्रभाव आगे के कवियो ने ग्रहण किया।

ब्रह्मवैवर्तपुराण की कथा और विवरण हरिवशपुराण से मिलते-जुलते हैं। अन्तर यही है कि प्रद्युम्न के बडे हो जाने पर एक दिन सरस्वती मायावती के पास आती है और शवर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त मायावती के समक्ष प्रस्तुत करती हैं।[2]

इन तीनो पुराणो के कथानक-सगठन के विश्लेपण से जो निष्कर्ष निष्पन्न होते है वे निम्नलिखित हैं —

5 वैष्णवपुराणों में प्रद्युम्न-कथा का तुलनात्मक अध्ययन

साम्य - कथानक का स्थूल प्रारूप तीनो मे ही समान है। स्थूल प्रारूप से हमारा आशय उस निश्चित लक्ष्य की ओर उद्दिष्ट और गतिशील कार्य-व्यापार से है जो एक निश्चित बिंदु से प्रारभ होकर निर्धारित पथ मे सक्रमित होता हुआ अन्तिम निश्चित बिंदु तक पहुँचता है। जो महत्त्व महाकाव्य मे आधिकारिक कथावस्तु का है वही महत्त्व सीमित विकास की परिधि मे कथानक के इस स्थूल प्रारूप का है। रूपक की भाषा मे कहा जाए तो कथानक का स्थूल प्रारूप वह शाखा है जिसका निश्चित मूल मे निश्चित वृन्तात तक विस्तार है। इसमें हेतु-कल्पनाओ के एकाधिक किसलय या वर्णन-वैचित्र्य के अनेक रगीन फूल तो हो सकते है किंतु एकाधिक सधियो अथवा उनसे प्रस्फुटित कथा-सूत्रों की अनेक शाखाओ के लिए स्थान नही है। हेतु-कल्पनाए कथा-शाखा की देह-यष्टि की शिराए है। उनका वही महत्त्व है जो शरीर-रचना मे स्नायु-सस्थान का। इसी प्रकार वर्णन-विचित्रताए शोभावर्द्धक प्रसून हैं। ये दोनो ही 'कार्य' की श्रेणी में परिगणित नही किये जा सकते क्योंकि इनमे व्यापारत्व की प्रकृष्टता का अभाव है। इस दृष्टि से इन तीनो पुराणो मे कथानक का स्थूल प्रारूप समान है। भाव-धारा की एक ऋजु

मोद्दिष्ट रेखा मे आवद्ध होने के कारण ही कथानक की सिद्धि है जिसे निम्नलिखित रूप से सूत्रवद्ध किया जा सकता है:-

(1) शवर द्वारा प्रद्युम्न का शैशवावस्था मे अपहरण, (2) मायावती की प्रद्युम्न मे आसक्ति और प्रद्युम्न की इस विषय मे उत्कण्ठा, (3) मायावती और प्रद्युम्न के रूप मे रति और काम के ही पुर्नजन्म लेने तथा प्रद्युम्न के कृष्णतनय होने का रहस्योद्घाटन, (4) पुत्रवियोगिनी रुक्मिणी की दीन दशा का वर्णन तथा प्रद्युम्न का शवर से युद्ध के लिए प्रेरित होना, (5) प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध और उस युद्ध मे शम्बर-वध और प्रद्युम्न की विजय,(6) रुक्मिणी का प्रद्युम्न को देखकर अपने खोये हुए पुत्र की स्मृति और प्रद्युम्न को ही पुत्र रूप मे अनुमानित करना, (7) कृष्ण का रुक्मिणी से प्रद्युम्न-मायावती को पुत्र और पुत्रवधू रूप मे अंगीकार करने का अनुरोध और कालसवर के घर पर रह कर भी मायावती का उसे लुभाते हुए अपने शील की रक्षा को नारद या कृष्ण द्वारा प्रमाणित करना, (8) कृष्ण-पत्नियो का श्रीकृष्ण से प्रद्युम्न के स्वरूप-साद्दश्य के कारण कामभाव से प्रद्युम्न के प्रति मुग्ध और सलज्ज होना तथा (9) मायावती-प्रद्युम्न के द्वारका आगमन पर कृष्ण-परिवार और द्वारकावासियो का हर्षित होना-ये नौ कथा-सूत्र तीनो पुराणो मे समान है। अन्तर इनके वर्णन-विवरण-आयोजन और गौण हेतु कल्पनाओ के सयोजन मे ही है।

अन्तर:—तीनो मे वर्णित कथानक के वक्ता और श्रोता है किन्तु प्रत्येक पुराण मे वे विभिन्न है। एक अन्तर कथानक के कलेवर मे है। विष्णुपुराण मे यह कथानक 32 श्लोको मे, भागवत मे 40 श्लोको मे और हरिवश मे 274 श्लोको मे वर्णित है। विवरण सम्वन्धी अंतर भी है। विष्णुपुराण मे प्रद्युम्न का हरण जन्म के छठे दिन, भागवत मे 10 वे दिन और हरिवश मे 7 रात्रियाँ पूर्ण होने पर कहा गया है।

कथानक की योजना की दृष्टि से भी कतिपय अंतर है। विष्णुपुराण मे शवर द्वारा प्रद्युम्न–हरण की सूचना से ही कथानक प्रारम्भ हो जाता है। भागवत सबसे पहले यह रहस्योद्घाटन कर देता है कि शिव द्वारा भस्म कामदेव ही रुक्मिणी-गर्भ मे उत्पन्न कृष्णतनय प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुए, तव प्रद्युम्नहरण के मूलविन्दु पर आता है। हरिवश भी भागवत का ही इस विषय मे अनुसरण करता है। विष्णु-पुराण मे मत्स्योदर मे वालक को प्राप्त कर आश्चर्यचकित मायावती के समक्ष नारद यह रहस्य प्रकट करते है कि प्रद्युम्न विष्णु का पुत्र है। यहा भी प्रद्युम्न पूर्वकाल मे कामदेव रूप से रतिरूपा मायावती के पति थे यह रहस्य उद्घाटित नही किया गया है। इस रहस्य का उद्घाटन विष्णुपुराण मे कथानक के अंत मे नारद रुक्मिणी के समक्ष करते है। इस प्रकार कौतूहल तथा कथानक–सगठन के कौशल का निर्वाह सवसे अधिक विष्णुपुराणकार ने किया

है। भागवत मे कामदेव के ही प्रद्युम्न रूप मे पुनरोद्भव का उद्घाटन तीन बार हु
है। हरिवश मे यह रहस्योद्घाटन चार बार हुआ है। विष्णु और भागवत
मायावती नारद से रहस्य ज्ञात करने पर प्रद्युम्न मे पत्नी भाव से अनुरक्त होती
जब कि हरिवश मे मायावती को स्वत पूर्वभव मे प्रद्युम्न के कामदेव होने का स्मरण
हो आता है और वह आकुल हो उठती है। विष्णुपुराण की अपेक्षा भागवत मे जो
कथा-कलेवर की वृद्धि है वह अत्यल्प है और वृद्धि का कारण कथासूत्रो की विपुलत
न हो कर मात्र अभिव्यञ्जना की स्पृहा है। विष्णुपुराण मे कथा को सीधी-सादी शैली
मे अभिधा के आश्रय से वर्णित किया गया है जब कि भागवत ने आलकारिक शैली
का आश्रय लेते हुए प्रद्युम्न के रूप-वर्णन और प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध-वर्णन मे रुचि ली
है जो आठ की सख्या मे श्लोकाधिक्य का कारण है। किन्तु हरिवश मे कथा का
अपेक्षाकृत विपुल विस्तार है। इसका सबसे बडा कारण हरिवश की युद्ध-वर्णन
विषयक रुचि ही है।

यदि मायावती द्वारा उत्साहित प्रद्युम्न के शम्बर से युद्धार्थ उद्यत होने को मध्य-विंदु और प्रद्युम्न के मायावती सहित द्वारका आगमन को उत्तरविंदु मान लिया जाए तो इसे यो व्यक्त किया जा सकता है—

पुराण	—	प्रद्युम्न-कथा सम्बन्धी कुल श्लोक सख्या	मध्य-विंदु (युद्धारभ) स्थिति-सूचक श्लोक सख्या	उत्तर-विंदु (युद्धात) स्थिति-सूचक श्लोक सख्या	युद्ध-वर्णन मे व्यय, कुल श्लोक सख्या	प्रतिशत निकटतम पूर्णांक तक
विष्णुपुराण	—	32	18	20	2	6
भागवत ,,	—	40	17	26	9	25
हरिवश ,,	—	274	34	242	208	76

उक्त अंक-पटल से स्पष्ट है कि हरिवशकार की रुचि युद्ध-वर्णन की ओर सर्वाधिक रही है। युद्ध-वर्णन मे यह विस्तार पुराणकार ने अनेक प्रकार से किया है। इसके अन्तर्गत उसने (1) इंद्र द्वारा अपने प्रतिहार गधर्व को सबोधित कर प्रद्युम्न के पूर्वभव का रहस्योद्घाटन करते हुए प्रद्युम्न के सामर्थ्य और विजय-लाभ मे विश्वास प्रकट करने, (2) इद्र के आदेश पर नारद द्वारा प्रद्युम्न को इद्रप्रदत्त वैष्णवास्त्र देकर प्रोत्साहित करने और शम्बर को पार्वती द्वारा प्रदत्त स्वर्णमुद्गर के प्रतिकार स्वरूप पार्वती की स्तुति करने का परामर्श देने, (3) प्रद्युम्न द्वारा पार्वती-स्तवन (जो 12 श्लोक परिमाण है) और पार्वती द्वारा प्रद्युम्न को स्वर्णमुद्गर के कमल-पुष्पमाला मे परिणत होने का वर प्रदान करने इत्यादि अगभूत कथा-सूत्रो की

योजना की है। अनेक श्लोक नाना प्रकार की मायाओ के वर्णन मे भी व्यय हुए है। लौकिक अस्त्र-शस्त्रो के अन्तर्गत हरिवश मे कंकपत्रयुक्त, गिद्धपत्रयुक्त, मयूरपखयुक्त, अर्धचद्राकार आदि अनेक प्रकार के वाणो के अतिरिक्त चक्र, तोमर, शूल, पट्टिश, परशु, शक्ति, कुन्त, भुशुण्डि, मूसल. गदा, प्रास, भल्ल भिंदिपाल. सायक, कुठार, कूटमुद्गर के नाम गिनाये है। इसी प्रकार युद्ध के अवसर पर वजाये जाने वाले वाद्य-यत्रो मे भेरी, मृदग, शख, पणव, आनक और दुदुभी नामक वाद्यो का उल्लेख किया गया है। हरिवशकार ने शवर के चार मत्रियो और सौ पुत्रो मे से पच्चीस के नाम गिना कर भी कलेवर बढाया है।

इन वर्ण्यविषयो की वृद्धि के अतिरिक्त हरिवश मे शकुनशास्त्र का भी आश्रय लिया गया है जिसके अन्तर्गत अशुभ और शुभ दोनो ही शकुन गिनाये गये हैं। शम्वर जब युद्ध के लिए निकलता है तो ये अपशकुन होते है-आकाश मे गिद्ध मडराने लगे, साऽग्रवर्ण रक्ताभ बादल गडगडाने लगे, गीदडिया अमगलसूचक ध्वनिया करने लगी, गिद्ध ध्वजा के अग्रभाग पर जा बैठा, रथ के सम्मुख कबन्ध पड़ा हुआ दिखाई देने लगा, इत्यादि तेरह अपशकुनो का वर्णन है। शुभ शकुनो का वर्णन प्रद्युम्न-मायावती के दर्शन करने पर रुक्मिणी के मुख से पिछले पहर मे देखे गये स्वप्न-वर्णन के प्रसग मे हुआ है जिसके अन्तर्गत-कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को स्वप्न मे फलयुक्त आम्रपल्लव देना, अक मे विठाकर मोतियो की माला कण्ठ में बाध देना, एक श्वेत-वसना कमलधारिणी श्यामा स्त्री का रुक्मिणी को स्नान करा कमल-पुष्पमाला पहना देना इत्यादि वर्णित है।

व्यक्ति-जाति-वाचक नाम-गणन, अस्त्रशस्त्र वाद्यवृदादि वस्तु-परिगणन और शुभाशुभ शकुन-स्वप्न-वर्णन के अतिरिक्त हरिवशकार ने युद्ध के आलकारिक वर्णनो से भी कलेवर का पर्याप्त विस्तार किया है जिसमे उपमा, उत्प्रेक्षा ही नही सागरूपको की भी सुदर योजना की है। एक स्थल पर छह श्लोको मे सेना का नदी से रूपक बाधा गया है। सैन्य-नद का यह सांगरूपक (अ० 105, श्लोक 60-65) आगे प्रद्युम्न-चरित काव्यो में दोहराया गया है जिससे इसकी लोकप्रियता द्योतित होती है। एक अन्य स्थान पर दैत्यसेना की उपमा रजस्वला स्त्री से देते हुए उसे समर रूपी सुरत से विमुख बताया गया है (अ० 105, श्लोक 83-84) यह साहश्य-विधान भी प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे यत्र-तत्र ग्रहीत हुआ है। कार्य व्यापार के स्वरूप की दृष्टि मे एक विशेपता का उल्लेख किया जाना यहा अत्यावश्यक है। विष्णु तथा भागवत दोनो ही पुराणो मे शम्वर द्वारा प्रद्युम्न-हरण के पश्चात् शंवर उसे समुद्र मे निक्षिप्त करता हुआ वर्णित है जब कि हरिवश मे इस परम्परा से हटकर पहली बार यह वर्णन है कि उस महासुर ने माया से उस वालक को हर लिया और उसे दोनो हाथो मे ऊपर उठाये हुए अपने नगर मे ले गया तथा आत्मजपुत्रवत् अपनी

भार्या को दे दिया। शम्वर द्वारा समुद्र मे प्रद्युम्न को डालने का यह सूत्र ही जैन प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे व्यापार-विधायक हुआ जिसके मूल मे अहिंसकता की भावना निहित है।

विष्णुपुराण मे मायावती को शवर की नाममात्र की पत्नी (नामपत्नी) कहते हुए भी उसे सूदो (रसोइयो) का आधिपत्य करनेवाली गृहस्वामिनी (गृहेश्वरी) कहा गया है। भागवत मे वह सूपोदन साधन (रसोई कार्य) मे नियुक्त (दासी) है किन्तु हरिवश मे वह शवर की भार्या है—ऐसी भार्या जिसे प्रद्युम्न रूप पूर्वपति की चाह होते हुए भी अपने वर्तमान पति पर भी गर्व है। अत शवर-पत्नी के जैन व्यक्तित्व-निरूपण मे भी हरिवंश का ही प्रभाव अधिक गृहीत हुआ है।

6 प्रद्युम्न-कथा-रूपों पर हरिवश का प्रभाव

मनोभाव-वर्णन की दृष्टि से भी हरिवश अपनी निजी विशिष्टता लिये हुए है। विष्णुपुराण तथा भागवत मे नारद से प्रद्युम्न के विष्णु या कृष्णपुत्र होने की बात ज्ञात करते ही मायावती प्रद्युम्न मे अनुरक्त हो कामिनीवत चेष्टाएँ करने लगती है और मातृभाव त्याग बैठती है किंतु हरिवश मे स्वयं उसे पूर्वकाल की चेतना का सचार हो उठता है और बालक प्रद्युम्न को एक धाय के हाथ मे सौप देती है तथा रसायन के प्रयोगो से शीघ्र ही प्रद्युम्न को बडा करती है। इस प्रकार हरिवश मे शम्बरपत्नी का चित्रण एक पतिगर्विता किन्तु चिनतनशील नारी के रूप मे हुआ है। जैन पुराणो मे भी कालसवर-पत्नी (कनकमाला) का यही पतिगर्विता रूप दीख पडता है। कथा-रूपो तथा चरित्र-गठन-स्वरूप की दृष्टि से वैष्णव पुराणो मे हरिवश ही जैन पुराणो की परम्परा के निकटतम है।

हरिवश से ही एक अन्य भावाभिव्यजक स्वर भी प्रद्युम्न-चरित्र की सगठना मे आगे काव्य-ग्रथो मे गृहीत हुआ है जो प्रद्युम्न को कुछ धृष्ट और स्त्री-जाति के प्रति अवमानना तथा शकाग्रस्त विचारो के व्यक्ति के रूप मे चित्रित करता है। अपनी माता (शंवर-पत्नी) द्वारा मातृभाव का परित्याग करने पर प्रद्युम्न कहते हैं— तेरे शीलस्वभाव मे यह उलट-फेर कैसा ? निश्चय ही नारीस्वभाव विद्युत्पातवत् चपल होता है। जैसे बादल पर्वत-शिखरो से ससक्त होते हैं उसी तरह कामार्त स्त्रियाँ पुरुषो पर आसक्त हो जाती है। प्रद्युम्न का माता के प्रति औद्धत्य और नारी-अवमानना का यह स्वर ही परवर्ती प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे ध्वनित हुआ है।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि प्रद्युम्न-हरण सम्बन्धी इन प्रद्युम्न-चरित्रकाव्यो के उपजीव्य कथानक का उन्मेष विष्णुपुराण युग मे (200–400 ई०पू०) अलकरण महाभारत (खिल भाग, हरिवंश) तथा भागवत पुराण-युग मे (400-

600 ई०) तथा पल्लवन और विस्तार जैन हरिवंशपुराण युग मे (8 वी सदी मे) हुआ। हरिवंश तक आते-आते इसकी कथानक-योजना दैवी तथा अलौकिक तत्त्वो की प्रचुरता, वर्णन-शैली की आलंकारिकता और भावाभिव्यजन की गहनता से समृद्ध हो उठी। कथानक-योजना के इन्ही सूत्रो का आगे विकास होने से वैष्णव पुराणों मे हरिवश का प्रभाव ही प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य ग्रथो पर सर्वाधिक लक्षित होता है, जिसके कतिपय निदर्शन ऊपर सकेतित किये जा चुके है।

7. प्रद्युम्न-कथा : जैन-आगम-साहित्य में

प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यों की उपजीव्य कथावस्तु के अध्ययन की दृष्टि से वैष्णव-पुराण साहित्य से भी अधिक महत्त्व जैन आगम और पुराण साहित्य का है। कथा के उत्स और उसकी प्रारम्भिक संरचना का श्रेय यदि वैष्णवपुराणकार को है तो उसे पुष्पित-पल्लवित और रूपायित करने का श्रेय जैन पुराणकार को प्रदान करना होगा। विवेच्य कथानक के आधार पर लिखे गये प्रद्युम्न-चरित्र ग्रथो मे, रविवर्मा, शकर दीक्षित, गणेश कवि और हरिऔध-कृत चार नाटको को छोड कर, सभी उपलब्ध काव्य-ग्रंथ जैन लेखको की कृतियां हैं। अतः जैनपुराणो का ही प्रभाव स्वभावत प्रद्युम्न-चरित्र काव्यग्रथो पर अधिक पडा है।

जैन आगम-साहित्य मे प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी काव्यो मे प्रयुक्त कथानक का अभाव है यद्यपि प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-ग्रथो के रचयिता कवियो ने अपने काव्य की कथा को आगमसाहित्य से ग्रहण करते हुए उसके प्रति आभार व्यक्त किया है। आगम-साहित्य के प्रति श्रद्धा और कृति के गौरव की दृष्टि से ही ऐसा हुआ है। उदाहरण के लिए कविवर समयसुंदर ने सवत् 1659 मे रचित अपनी प्रथम काव्यकृति 'साम्बप्रद्युम्न चौपई" मे तीर्थङ्करो को नमस्कार निवेदन करने के अनन्तर कहा है कि 8 वें अंगसूत्र (अंतकृत्दशा) मे इस कथा का सम्बन्ध सक्षेप से है परन्तु मैं यहां प्रकरण के आधार से विस्तृत प्रबन्ध कह रहा हू।[3] किन्तु 'अंतकृतदशा' (अंतगडदसाओ) नामक जैन आगम के आठवें श्रुतांग के प्रथम वर्ग मे मात्र इतना ही वर्णन है कि द्वारका के राजा कृष्ण वासुदेव के अधीन समुद्रविजय आदि 10 दशार्ह, बलदेव आदि 5 महावीर, प्रद्युम्न आदि 3 50 करोड कुमार शाव आदि 60 हजार दुर्दान्त और रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानिया थी।[4] इसी श्रुतांग के चतुर्थ वर्ग मे कृष्ण-रुक्मिणी की सन्तान के रूप मे प्रद्युम्न का उल्लेख हुआ है तथा यादव कुमारो एव अन्य परिजनो के साथ कृष्ण के अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जाने और अरिष्टनेमि द्वारा द्वारका-विनाश एव जरत्कुमार द्वारा कृष्ण की मृत्यु की भविष्यवाणी वर्णित है। इसमे कृष्ण यह भी घोषणा करते है कि जो कोई दीक्षा लेगा उसके कुटुम्बियो का पालन-पोषण रक्षण मैं करूंगा।[5] प्रद्युम्न ने अरिष्टनेमि से प्रव्रज्या ग्रहण कर शत्रुंजय पर्वत पर

सिद्धि प्राप्त की। इसलिए अंतकृत (मुक्त) महामानवो में उनकी भी गणन है। ऐसी ही स्फुट सूचनाए चतुर्थ श्रुताग 'समवायाग सूत्र' मे भी मिलती है। वस्तुत जैन आगम-साहित्य मे प्रद्युम्न के कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र होने तथा नेमि से प्रव्रज्या ग्रहण कर सिद्ध पुरुष होने के ही उल्लेख प्राप्य हैं। शबर द्वारा प्रद्युम्न-हरण, प्रद्युम्न द्वारा शबर-पराजय तथा नाना विद्या और लाभप्राप्त कर द्वारका आगमन आदि कथानक जैन आगम-साहित्य मे नही पाया जाता। प्रद्युम्न-कथा के ये सभी सूत्र जैन पुराण-साहित्य मे ही अकुरित हुए हैं। जैन आगम-साहित्य मे कृष्ण के भ्राता गजसुकुमार तथा अरिष्टनेमि-राजीमती से सम्बद्ध कथानक अवश्य है किन्तु प्रद्युम्न-हरण सम्बन्धी कथानक नही है। जैन आगम-साहित्य का सकलन महावीर-निर्वाण के लगभग 980 वर्ष पश्चात् वलभी मे देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा आयोजित हुआ था। उस समय जो 45–46 ग्रथ सकलित हुए थे वे ही आज तक सुप्रचलित है।[6] जैन परम्परानुसार महावीर का निर्वाण विक्रम से 470 तथा ईसवी सन् से 527 वर्ष पूर्व हुआ था। यही वीर-निर्वाण सवत पाचवी छठी शती से आज तक परम्परित रूप मे प्रयुक्त और प्रचलित है।[7] अत स्पष्ट है कि पाचवी शती ईसवी तक अर्थात् जैनागम-सकलन-काल तक, प्रद्युम्न चरित्र काव्यो मे उपनिविष्ट प्रद्युम्न कथा का सूत्रपात जैन परम्परा मे नही हो सका था जब कि वैष्णव परम्परा मे प्रद्युम्न कथा का सृजन चतुर्थ शती ईसवीपूर्व रचित विष्णुपुराण मे हो चुका था तथा छठी शताब्दी तक श्रीमद्भागवतपुराण मे उसे अलकृत रूप प्राप्त हो गया था।

8. प्रद्युम्न-कथा का जैनपुराणीय रूप

जैन-परम्परा मे प्रद्युम्न-कथा का उत्स जैन पुराण-साहित्य मे ही पाया जाता है। अर्धमागधी मे रचित जैनागम और सस्कृत मे रचित जैनपुराणो की मध्यवर्ती कडी के रूप मे 'वसुदेवहिंडी' जैसे प्राकृत भाषा के ग्रथो का उल्लेख किया जा सकता है। जैन कथा-साहित्य अपनी उत्कृष्ट सीमा पर चम्पू ग्रथो मे दिखाई देता है। उनमे प्राचीनतम ग्रथ 'वसुदेवहिण्डी' है जो छठी-सातवी सदी की रचना है। यह ग्रथ 100 लम्बको मे पूर्ण हुआ है। प्रथम खड मे 21 लम्बक है जिसके कर्ता सघदासगणि वाचक है। इसके 11,000 श्लोक हैं।[8] यह प्रथम खण्ड ही अभी तक प्रकाश मे आया है।[9] डॉ जगदीश चन्द्र जैन ने 'वसुदेव हिण्डी' को ईसा की 5 वी शती की रचना मानते हुए लिखा है कि इसकी पीठिका मे प्रद्युम्न और शबुकुमार की कथा का सम्बन्ध, रामकृष्ण की अग्रमहिषियो का परिचय, प्रद्युम्न का जन्म और उसका अपहरण, प्रद्युम्न के पूर्वभव, माता-पिता से उसका समागम और पाणिग्रहण आदि का वर्णन है।[10] इसका प्रद्युम्न-कथागत कथानकरूढियो के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

जैन हरिवशपुराण सज्ञक रचनाओ मे यादवकुल मे उत्पन्न दो शलाका-पुरुषो-बाईसवें जैन तीर्थङ्कर नेमिनाथ तथा नवे नारायण कृष्ण के चरित्र का विशेष रूप से

वर्णन हुआ है ।-इसी के अन्तर्गत प्रद्युम्न आदि यादवकुमारो तथा अन्यान्य यदुवंशियो और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियो के चरित्र वर्णित हुए है । इसी प्रकार पाण्डवपुराण, पाण्डवचरित्र, अरिष्टनेमिचरित्र तथा कृष्णचरित्र संज्ञक रचनाओ में भी अनेकशः प्रद्युम्न सम्बन्धी कथानक और उल्लेख प्राप्त होते है । सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश मे इस प्रकार के सैकडो प्रकाशित और अज्ञात ग्रंथ हैं ।[11] तथापि प्रद्युम्न-कथा की दृष्टि से प्राप्त जैन पुराणो मे पुन्नाटसघीय जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण ही प्राचीनतम और महत्त्व तथा प्रभाव की दृष्टि से सबसे प्रमुख पुराण ग्रथ है । अद्यावधि प्राप्य प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य ग्रंथो मे महासेनाचार्य (11 वी सदी) द्वारा सस्कृत मे रचित 'प्रद्युम्नचरितम्'[12] सर्वाधिक प्राचीन काव्यकृति है । इससे पूर्व प्रद्युम्न कथा का अभिनिवेश जिन महत्त्वपूर्ण पुराण ग्रंथो मे हुआ है तथा जिनका अध्ययन प्रद्युम्न-कथा के विकास की दृष्टि से प्रस्तुत किया जाएगा, वे क्रमशः निम्नलिखित हैं—

(1) पुन्नाटसघीय आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, रचना-काल शक सं० 705 (अर्थात् 783 ई)[13]

(2) गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (सेनसघीय जिनसेनाचार्यकृत महा-पुराण का अ श) रचना-काल सन् 897 ई०[14]

(3) पुष्पदन्तकृत हरिवशपुराण (इसी कवि के 'महापुराण' अथवा 'तिसट्ठि महापुरिसगुणालंकारु' का तृतीय अ ंश) रचना-काल शक-सवत् 887 अर्थात् 965 ई०[15]

9 जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण में प्रद्युम्न–कथा

जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण के 42 वें अध्याय (सम्पूर्ण) 43 वें अध्याय (सम्पूर्ण) 47 वें अध्याय (21 वें श्लोक से अंत तक) तथा 48 वें अध्याय (सम्पूर्ण) मे प्रद्युम्न-चरित्र काव्यग्रथो के उपजीव्य कथानक का गुम्फन हुआ है । इस कथानक की व्यापकतम परिधि के प्रथम छोर पर शृंगाररता सत्यभामा द्वारा अपनी अवहेलना से कुपित नारद द्वारा सत्यभामा के लिए सपत्नी के रूप मे कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण का आयोजन है तो अंतिम छोर पर प्रद्युम्न द्वारा नेमिचरणो मे दीक्षा ग्रहण कर सिद्धत्व की प्राप्ति का वर्णन है । इस प्रकार तरुणी-अपहरण से तीर्थङ्कर-शरण के उभय तटो के बीच यह जीवन की राग-विराग युक्त विविध-वर्णच्छाय वारधारा प्रवाहित हुई है । जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण मे इस कथा-वृत्त की व्यापकतम परिधि का आकलन हुआ है । इसलिए प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो के रचयिताओ को सर्वाधिक प्रेरित और प्रभावित इसी पुराण-कृति ने किया है ।

पुराणो मे अनुस्यूत कथानको की रचना मे कुछ स्थूल कथा–सूत्र प्रमुख होते है और अन्य सूक्ष्म कथा–सूत्र उन्ही को विस्तार देने और उनमे रग भरने के लिए प्रयुक्त होते है। प्रमुख, स्थूल और कथा–प्रवाह मे दिशान्तर लाने वाले कथा–सूत्रो को हम ततु–सूत्र तथा गौण, अनुरजक और कथा–प्रवाह मे तरगावर्ती कथा–सूत्रो को वितन्तु–सूत्र कह सकते है। इस दृष्टि से जिन सेनाचार्यकृत हरिवश पुराण के प्रद्युम्न-कथानक के तन्तु–सूत्रो की सक्षिप्त उद्धरणी निम्नलिखित रूप से आकलित की जा सकती है जिसमे प्रत्येक तन्तु–सूत्र के अन्तर्गत उससे सम्बद्ध वितन्तु–सूत्र वर्णित है :—

जिनसेनाचार्यकृत हरिवंश का प्रद्युम्न-कथानक

[तन्तु-वितन्तु सूत्र–पट]

[सर्ग 42, 43, 47 (श्लोक 21 से) सर्ग 48 (श्लोक 24 तक) सर्ग 55, 56, 57 तथा सर्ग 61 (श्लोक 16 से 40 तक) पर आधारित]

1. **सत्यभामा–नारद–प्रसंग**

   (i) सत्यभामा का शृंगार मे तल्लीन रहने से नारद का सत्कार न कर पाना

   (ii) क्रुद्ध नारद का सत्यभामा को सपत्नी दाह मे दग्ध करने के अभिप्राय से किसी सुन्दर कन्या की खोज मे निकल पडना।

2. **रुक्मिणी–हरण प्रसंग .**

   (i) नारद का कुण्डिनपुर पहुँच रुक्मिणी को कृष्ण मे अनुरक्त करना तथा रुक्मिणी का चित्रपट दिखा कृष्ण को रुक्मिणी–हरण के लिए प्रेरित करना

   (ii) रुक्मिणी की बुआ का रुक्मिणी को अतिमुक्तक मुनि द्वारा कृष्ण-रुक्मिणी-परिणय के आशीर्वाद का वृत्तान्त कहना

   (iii) बुआ का कृष्ण के पास दूत के हाथो सदेश भेजना कि माघशुक्ल अष्टमी के दिन नाग-पूजा के वहाने उद्यान मे आई रुक्मिणी का हरण कर लें

   (iv) कृष्ण–वलराम का कुण्डिनपुर पहुँच रुक्मिणी–हरण और भीष्म-रुक्मी–शिशुपाल को युद्ध के लिए ललकारना

   (v) प्रवल सैन्य के विरुद्ध भ्राता–युगल के सामर्थ्य मे आशकित रुक्मिणी को कृष्ण द्वारा ताल–वृक्ष–भेदन और मुद्रिका–वज्र–विचूर्णन के पराक्रम दिखा आश्वस्त करना तथा रुक्मिणी द्वारा कृष्ण से रुक्मी की प्राण–रक्षा की याचना

(vi) रुक्मी–पराजय और शिशुपाल–वध सपन्न कर रैवतक पर्वत पर कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह और द्वारका–आगमन ।

. कृष्ण द्वारा सत्यभामा से परिहास

(i) कृष्ण द्वारा प्रदत्त रुक्मिणी के उगाले हुए पान को सुगन्धित द्रव्य समझ सत्यभामा द्वारा अपनी देह पर मल लेना और कृष्ण द्वारा उपहास

(ii) रुक्मिणी के दर्शनो की अभिलाषी सत्यभामा द्वारा मूर्तिवत स्थित रुक्मिणी को वन देवी समझ चरणो मे पुष्पाजलि अर्पण कर सौभाग्य की याचना करना और कृष्ण का प्रकट हो परिहास करना ।

दुर्योधन द्वारा कन्या-दान का प्रस्ताव

केश-कर्तन प्रसंग :

(i) सत्यभामा द्वारा रुक्मिणी के पास इस आशय का प्रस्ताव भेजना कि दोनो मे मे जिसके पुत्र नही हो अथवा बाद मे उत्पन्न हो वह केश-कर्तन कराए और वर–वधू द्वारा उन्हे रौंदवाए

(ii) रुक्मिणी की इस प्रस्ताव पर स्वीकृति

प्रद्युम्न-भानु-जन्म

(i) रुक्मिणी द्वारा कृष्ण से समागम की रात्रि मे देखे हसविमान मे आकाश-विहार का स्वप्न–फल पूछना

(ii) कृष्ण द्वारा स्वप्न–फल के रूप मे पुत्र-जन्म का भविष्य-कथन

(iii) अच्युत् स्वर्ग से स्वय इन्द्र का रुक्मिणी–गर्भ मे आगमन

(iv) सत्यभामा के गर्भ मे भी उसी रात किसी देव का निवेश

(v) गर्भ–काल–समाप्ति पर दोनो को पुत्र-रत्न-प्राप्ति ।

7. चरण-शीर्ष वरिष्ठता प्रसंग

(i) सत्यभामा के दूतो का कृष्ण के सिरहाने और रुक्मिणी के दूतो का पैताने खडे रह कर पुत्र–जन्म की सूचना देना

(ii) रुक्मिणी–तनय के ज्येष्ठ होने का कृष्ण द्वारा निर्णय

(iii) दूतो का पुरस्कृत हो लौटना ।

8. प्रद्युम्न-हरण प्रसंग

(i) धूमकेतु राक्षस का नभ–चरण के समय विभग–अवधि–ज्ञान के बल पर प्रद्युम्न से पूर्व–भव के वैर का स्मरण

(ii) विद्या–बल से पहरेदारो को सुला प्रद्युम्न–हरण तथा

(iii) खदिरवन मे विशाल तक्षशिला तले प्रद्युम्न को दबा देना ।

9. कालसंवर-दम्पत्ति को प्रद्युम्न-प्राप्ति

(i) कालसवर-दम्पत्ति के विमान का स्तम्भन

(ii) कनकमाला द्वारा पाँच सौ पुत्रो पर वरीयता दे प्रद्युम्न को ही युवराज घोषित करने का वचन लेना

(iii) प्रद्युम्न को पुत्र-रूप मे ग्रहण कर कालसवर का राजधानी मे आगमन

(iv) रानी कनकमाला के गूढगर्भ से प्रद्युम्न-जन्म होने का प्रवाद प्रचारित करना

(v) सुवर्ण वर्ण होने के कारण बालक का 'प्रद्युम्न' नामकरण।

10. रुक्मिणी—विलाप

(i) पुत्र-वियुक्ता रुक्मिणी का विलाप

(ii) नारद मुनि द्वारा जिनराज सीमन्धर से प्रद्युम्न का विवरण ज्ञात करने की बात कह रुक्मिणी को आश्वस्त करना।

11 नारद द्वारा प्रद्युम्न की खोज

(i) नारद का सीमधर स्वामी के पास पहुँचना

(ii) पाँच सौ धनुष ऊँची देह के धारी का दशधनुष-देहधारी नारद को विस्मय से हथेली पर उठा लेना

(iii) सीमान्धर स्वामी द्वारा नारद का परिचय और प्रद्युम्न के पूर्व-भव का वृत्तान्त कहना

12 प्रद्युम्न-साम्ब के पूर्व-भव

(i) विद्याभिमानी द्विजपुत्रो अग्निभूत तथा वायुभूत का नदिवर्द्धन नामक दिगम्बर आचार्य के पास शास्त्रार्थ करने पहुँचना

(ii) अवधि-ज्ञानी सात्यकि द्वारा द्विजपुत्रो के पूर्व-भव मे शृगालयोनि मे जन्म लेने और प्रवरक नामक किसान के घर मे क्षुधावश चर्म उपकरण-भक्षण करने का रहस्योद्घाटन

(iii) अपने ही पुत्र के पुत्र रूप मे जन्मे प्रवरक की सभा मे उपस्थिति तथा कृषक-गृह मे शृगाल-चर्म से बनी ईति की विद्यमानता के साक्ष्य से चमत्कृत प्रवरक का मुनि-चरणो मे प्रणिपात

(iv) कुपित द्विज पुत्रो की सात्यकि के घात की कुचेष्टा

(v) यक्ष द्वारा द्विज पुत्रो को कील देना

(vi) मुनि सात्यकि द्वारा द्विज पुत्रो का उद्धार

(vii) द्विज पुत्रो का पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक श्रेष्ठि-पुत्रो के रूप मे जन्म

(viii) श्रेष्ठि-पुत्रो को मार्ग मे चाण्डाल और कुतिया का मिलना

(ix) मुनि द्वारा रहस्योद्घाटन कि ये चाण्डाल और कुतिया पूर्वभव मे श्रेष्ठि-पुत्रो के माता-पिता थे

(x) दोनो श्रेष्ठि पुत्रो (पूर्व-भव के द्विज पुत्रो) का अयोध्यानरेश हेमरथ के यहाँ मधु और कैटभ नामक राजकुमारो के रूप मे जन्म

(xi) राज्यासीन मधु का अपने सामन्त वीरसेन की पत्नी चन्द्राभा पर मुग्ध हो षड्यन्त्र से उसे छलपूर्वक अपनी पटरानी बना लेना

(xii) राजामधु द्वारा परस्त्री-लम्पट व्यक्ति का वाद प्रस्तुत होने पर उसे शिरच्छेद का दण्ड

(xiii) चन्द्राभा की व्यग्योक्ति कि राजा स्वय उसी दोष का भागी है, सुन कर मधु का वैराग्य और तप

(xiv) मधु को इन्द्र और कैटभ को सामानिक जाति के देव पद की प्राप्ति

(xv) इन्द्र और सामानिक जाति के देव का रुक्मिणी तथा सत्यभामा के गर्भ से क्रमशः प्रद्युम्न तथा साम्ब रूप मे जन्म विषयक सूचना

(xvi) सामन्त वीरसेन का धूमकेतु नामक असुर रूप मे जन्म

(xvii) धूमकेतु द्वारा विमान-स्तभन पर पूर्वभव के वैर का स्मरण तथा प्रद्युम्न-हरण

(xviii) सीमन्धर द्वारा प्रद्युम्न की सकुशल द्वारका मे वापसी का भविष्य-कथन और उस अवसर पर होने वाले शकुनो का कथन

(xix) कालसवर-कनकमाला के घर मे खेलते प्रद्युम्न को नारद द्वारा देखना और द्वारका मे जाकर रुक्मिणी को वृत्तान्त-कथन द्वार प्रबोध।

13. प्रद्युम्न के शौर्य और षोडशलाभ—प्राप्ति प्रसंग

(i) सिहरथ नरेश पर विजय

(ii) पाँच सौ राजकुमारो द्वारा घात से आत्म-रक्षा

(iii) नाना चैत्यालयो, गुहाओ, वापियो के वासी देवो, नागो, यक्षो, गन्धर्वो आदि से विभिन्न अस्त्र-शस्त्रो, आभूषणो, बहुमूल्य वस्तुओ तथा विद्याओ की प्राप्ति।

14 प्रद्युम्न-कनकमाला प्रसंग

(i) कनकमाला की प्रद्युम्न मे अनुरक्ति और विषय-भोग का प्रस्ताव

(ii) प्रद्युम्न को मुनि सागरचद्र से ज्ञात होना कि कनकमाला पूर्वभव मे उसी की पत्नी चद्राभा थी

(iii) फिर भी धर्म-विचार पर दृढ प्रद्युम्न द्वारा विषय-प्रस्ताव की अस्वीकृति और छलपूर्वक कनकमाला से गौरी और प्रज्ञप्ति नामक विद्याओ की प्राप्ति

(iv) कनकमाला द्वारा त्रिया-चरित्र से कालसंवर को प्रद्युम्न के विरुद्ध भड़काना।

15 प्रद्युम्न-कालसंवर युद्ध

(i) वापी मे माया-प्रद्युम्न को कुदा कर युद्धार्थं आए राजकुमारो को प्रद्युम्न द्वारा छलना

(ii) कालसवर का कोप और प्रद्युम्न से युद्ध

(iii) नारद-आगमन और शान्ति-स्थापना।

16. प्रद्युम्न का द्वारका को प्रयाण

17 उदधिकुमारी-हरण प्रसग

(i) प्रद्युम्न की वाग्दत्ता दुर्योधन-सुता उदधिकुमारी का सत्यभामा-सुत भानुकुमार से परिणय हेतु ससैन्य द्वारकापुरी को गमन

(ii) मार्ग मे कर वसूल करने के बहाने से दुर्योधन सैन्य से भीलवेषी प्रद्युम्न का युद्ध, उदधि-हरण एवं द्वारका-प्रवेश।

18. द्वारका मे प्रद्युम्नकृत क्रीडा-कौतुक

(i) वृद्ध मायावी अश्व-व्यापारी वेश मे भानुकुमार को छलना

(ii) मायामर्कट रूप धर सत्यभामा के उद्यान का विध्वस

(iii) माया-रथ-चालन

(iv) मेष रूप धर बाबा वसुदेव को छकाना

(v) भानु-विवाह की भोज्य-सामग्री का भक्षण

(vi) गरिष्ठ कृष्ण-जलपान मोदको का आहार

(vii) केश-कर्तनार्थ आई सत्यभामा की दासियो के कर्ण-नासिका-कर्तन

(viii) अडिग पैर रोप बलदेव को छकाना

(ix) प्रद्युम्न का वास्तविक रूप धारण कर रुक्मिणी को बाल-रूप-लीलाओ से हर्षित करना

(x) प्रद्युम्न द्वारा कृष्ण को चुनौती और रुक्मिणी-हरण

19 कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध और पिता-पुत्र मिलन

20 प्रद्युम्न-उदधि विवाह

(i) इस अवसर पर कालसवर-कनकमाला का भी आगमन

21 साम्ब-जन्म

(i) कैटभ का कृष्ण को हार देना और हार पाने वाली प्रिय रानी के गर्भ से स्वय के जन्म का सकल्प

(ii) सत्यभामा को हार देने का कृष्ण का निश्चय

(iii) रुक्मिणी की इच्छा पर प्रद्युम्न द्वारा जाम्बवती को ही सत्यभामा रूप मे कृष्ण के पास भेजना

(iv) कैटभ का जाम्बवती के गर्भ से शाम्ब कर जन्म

22. वैदर्भी-हरण और प्रद्युम्न-वैदर्भी विवाह

23 साम्ब-लीला

(i) प्रद्युम्न का माया से साम्ब को रूपमती कुमारी के रूप मे वन मे बैठा देना

(ii) वनक्रीडार्थ निकली सत्यभामा का उसे पुत्र सुभानु के लिए ले आना

(iii) साम्ब का वास्तविक रूप प्रकट कर सुभानु-परिणय के लिए आई एक सौ कन्याओ से स्वय विवाह कर लेना

24 उषा-अनिरुद्ध प्रसंग

25. नेमि-राजीमती प्रसंग

26. प्रद्युम्न दीक्षा

(i) नेमि को केवल-ज्ञान की उत्पत्ति तथा समवसरण-वर्णन

(ii) बलदेव की जिज्ञासा पर नमि द्वारा द्वैपायन मुनि के क्रोधवश द्वारका-दाह का भविष्य-कथन

(iii) कृष्ण-बलदेव द्वारा मद्य-त्याग

(iv) कृष्ण की अनुज्ञा पर प्रद्युम्न, भानु आदि कुमारो का अपनी माताओ और पत्नियो सहित दीक्षा-ग्रहण ।

जिनसेनाचार्य के हरिवशपुराण के कथा-विवरणो के पर्यालोकन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-ग्रथो मे सन्निविष्ट सभी प्रमुख कथा-सूत्रो का समावेश इस कृत मे है । इसलिए जैन परम्परा मे जिनसेनाचार्य को ही प्रद्युम्न-कथानक की प्रारम्भिक सृष्टि का श्रेय है ।

गुणभद्र के उत्तरपुराण (अ० 72, श्लोक 1-190) मे यही कथा दी गयी है । दोनो कथा-रूपो मे साम्य होते हुए भी कतिपय अन्तर है ।

10. जिनसेनाचार्यकृत हरिवंश-पुराण और गुणभद्रकृत उत्तरपुराण के प्रद्युम्न-कथा-रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

जिनसेनचार्य ने अपनी कथा का प्रारम्भ नारद की उत्पत्ति और स्वरूप बताते हुए शृंगाररता सत्यभामा द्वारा नारद की अवहेलना और नारद द्वारा अपमान का बदला चुकाने के लिए कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण की योजना के वर्णन से किया है जब कि गुणभद्र कथा का प्रारम्भ प्रद्युम्न-साम्ब के पूर्वभवो के वर्णन से करते है । दोनो के कथाक्रम के अवलोकन से स्पष्ट है कि जिनसेनाचार्य तथा गुणभद्र ने अपनी पुराणकृतियो मे प्रद्युम्न-कथा को अपनी रुचि से स्वतत्र क्रम से व्यवस्थित किया है । कथा-क्रम के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि गुणभद्र की

अपेक्षा जिनसेनाचार्य के कथानक–सगठन मे कथा–सूत्रो का गुम्फन अधिक सख्या और विस्तार म हुआ है । उदाहरणार्थ, गुणभद्र वर्णित प्रद्युम्न–कथा मे निम्नलिखित कथासूत्रो का समावेश नही है— (1) सत्यभामा द्वारा नारद का अपमान, (2) नारद की योजना से श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी–हरण, (3) कृष्ण का सत्यभामा को रुक्मिणी के पान की उगाली तथा रुक्मिणी के वन–देवी रूप से छकाना, (4) नारद का सीमधरस्वामी की शरण मे जाकर प्रद्युम्न विवरण ज्ञात करना और प्रद्युम्न को देखने मेघकूटपुर जाना, (5) द्विजपुत्रो के पूव भवो के वृत्तान्त मे शृगाल–योनि सम्बन्धी अ श (6) राजा मधु के समक्ष परदार-रत पुरुप के वाद प्रस्तुत होने का प्रसग (7) उदधिकुमारी का हरण, (8) वैदर्भी-हरण, (9) उपा-अनिरुद्ध प्रसग (10) नेमि-राजीमती-प्रसग तथा नेमि के धर्मोपदेश और समवसरण का वर्णन इत्यादि । इसी प्रकार गुणभद्र ने कुछ प्रसगो मे अपने औचित्य–विचार की दृष्टि से कई प्रसग–योजनाओ मे मनोनुकूल परिवर्तन भी किये हैं, उदाहरणार्थ, प्रद्युम्न पाण्डव-कन्या उदधि का हरण नही करता, दुर्योधन सैन्य के तिरस्कार मात्र से ही तुष्ट हो जाता है तथा द्वारका मे वास्तविक रुक्मिणी के स्थान पर मायामयी रुक्मिणी की रचना कर उसका हरण करता है । स्पष्टत गुणभद्र ने इस सूझ-बूझ से पुत्र के रूप मे प्रद्युम्न के शील की रक्षा की है । गुणभद्र की कथानक-योजना मे एक प्रमुख अन्तर यह भी है कि कालसंवर-पत्नी कनकमाला के उस पर विपयासक्त हो जाने के प्रसग मे वह नारी-चरित्र की जम कर निंदा करता है, जो आगे अनेक प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-लेखको की प्रिय तथा प्रेरणास्पद विपय-वस्तु रही है ।

इस समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिनसेनाचार्य की प्रद्युम्न-कथा का रूप अधिक व्यापक और वहुसूत्रीय है । उसकी शैली मे रम्यता और अलकृति भी अपेक्षाकृत अधिक है जव कि गुणभद्र का कथानक सीधी सरल शैली मे लक्ष्य की ओर गतिशील है तथा उसने कथा-सगठन मे सुरुचि और मौलिक सूझ-बूझ का भी परिचय दिया है ।

कथानक के क्रमिक सयोजन के अतिरिक्त जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण और गुणभद्रकृत उत्तरपुराण मे अनुस्यूत प्रद्युम्न-कथा के वितन्तु-सूत्रो की योजना मे भी प्रभूत अन्तर है जिसे विस्तार-भय से यहाँ नही दिया जा रहा है ।

जिनसेनाचार्य तथा गुणभद्र द्वारा षोडशलाभ-प्राप्ति प्रसग के वर्णन से स्पष्ट है कि षोडशलाभो मे विद्याओ की भी गिनती है । भौतिक पदार्थो यथा आभूषण, कवच आदि के अतिरिक्त कन्यारत्न भी 16 लाभो मे से एक है । गुणभद्र ने कन्या-रत्न (रति) का उल्लेख नही किया है । लाभो मे रति तथा पचवाण, मकराकित ध्वजा आदि की कल्पना पर प्रद्युम्न के कामदेव के अवतार होने की कल्पना का प्रभाव है ।

एक विशेषता यह भी है कि सोलह की संख्या मे लाभो का उल्लेख होने पर भी लब्ध पदार्थों की सूची सोलह की सख्या तक सीमित नही रह सकी है। जिनसेनाचार्य ने पदार्थों के स्थान पर 16 अभियान (या पराक्रम) वर्णित किये है और लब्ध-पदार्थों की सख्या 38 है। यह स्थिति तो तब है जब कि एक पदार्थ-समूह की विभिन्न इकाइयो को पृथक् न मान कर एक ही माना जाए। पचवाण, कु डल-युग्म, पादुका-द्वय आदि की सख्या क्रमश 5 और 2 न मानकर 1 मानने पर ही यह सूच्यक आता है। गुण-भद्र ने प्रद्युम्न के 10 पराक्रमो का ही वर्णन किया है जिनमे उसे 21 लाभो की प्राप्ति हो जाती है। लब्ध-पदार्थों की संख्या 16 कथित होते हुए भी इस सख्या-सीमा का निर्वाह नही किया जा सका है। हाँ, जिनसेनाचार्य ने पराक्रमो का 16 की सख्या मे अवश्य वर्णन किया है। परवर्ती प्रद्यु म्न-चरित्र-काव्यो के रचयिताओ मे से अधिकाश पराक्रमो की सख्या, लाभो की संख्या और नाम इत्यादि मे जिनसेनाचार्य से ही अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। लाभो के वस्तु-नामो तथा वर्णन-क्रम मे यत्किंचित अन्तर होते हुए भी जिनसेनाचार्य की परम्परा का ही अधिक प्रचलन हुआ है।

द्वारका मे प्रद्यु म्न कृत क्रीडा-कौतुक वर्णन के अवलोकन से स्पष्ट है कि जिन-सेनाचार्य की अपेक्षा गुणभद्र ने प्रद्युम्न के मायावी क्रीडा-कौतुको के वर्णन मे अधिक रुचि प्रदर्शित की है। कुल मिला कर गुणभद्र और जिनसेनाचार्य के 9 कौतुक-वर्णन समान हैं, 2 कौतुक-वर्णन (प्रद्युम्न द्वारा रुक्मिणी के अनुरोध पर वाल-रूप धारण तथा रुक्मिणी-हरण कर कृष्ण से युद्ध) कुछ अन्तर लिए भी मूल कल्पना से सादृश्य लिए हुए है, 4 कौतुक वर्णन गुणभद्र की 'अपनी मौलिक कल्पनाओ पर आधारित है यथा, शाल नामक वैद्य का रूप धारण कर कटे नाक-कान जोडने की कला की घोषणा, सिंह रूप धर वलभद्र को निगलना, श्रीकृष्ण का रूप धर विदूषक की भर्त्सना इत्यादि तथा जिनसेनाचार्य-वर्णित 2 क्रीडा-कौतुको (वृद्ध अश्वव्यापारी का रूप धर कर भानु का उपहास तथा नगर-द्वार पर मायावी डास मच्छरो को उत्पन्न कर कृष्ण का मार्ग-अवरोध) का गुणभद्रकृत कौतुक-वर्णन मे अभाव है। निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि गुणभद्र ने जिनसेनाचार्य का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी कौतुक-वर्णन मे विशेष रुचि प्रदर्शन करने के अतिरिक्त व्यापारान्तर और मौलिक कल्पना की क्षमता भी प्रदर्शित की है।

11. पुष्पदंतकृत महापुराण में प्रद्यु म्न–कथा का रूप और उस पर गुणभद्र का प्रभाव

पुष्पदन्तकृत हरिवशपुराण (तिसट्ठि महापुरिसगुणालकार अथवा महापुराण के अन्त-र्गत उसके द्वितीयखण्ड उत्तरपुराण का एक अ श) मे कथानक का प्रारम्भ प्रद्यु म्न के पूर्वभवो के वर्णन से होता है। इसमे व्यक्तियो, ग्रामो के नाम तथा कार्य-व्यापार गुणभद्रकृत उत्तरपुराण के अनुसरण मे हैं। प्रवर नामक कृषक और शृगालद्वय का

प्रसग गुणभद्र की ही भाति पुष्पदन्त ने भी नही दिया है। गुणभद्र ने अग्निभूति और वायुभूति द्वारा सात्यकि मुनि को तिरस्कृत करते हुए व्यक्त किया है। पुष्पदन्त ने भी उसी भगिमा मे इस प्रसग का वर्णन किया है।[17] अन्तर यही है कि सात्यकि मुनि के वचनो मे यहाँ तर्कशीलता का पुट अधिक है।[18] सात्यकि की तार्किकता से ही ब्राह्मण पुत्र-द्वय परास्त होते है और अपमान से क्षुब्ध होकर रात्रि मे मुनि पर खड्गप्रहार करने आते हैं। जिनसेनाचार्य ने प्रवर किसान और शृगाल के प्रसग से सात्यकि मुनि द्वारा द्विज-पुत्र-द्वय के पूर्वभवो को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर उन्हे निरुत्तर करते हुए वर्णित किया है। इसी प्रकार जिनसेनाचार्य की परम्परा से हट कर गुणभद्र के अनुकरण पर ही मधु राजा अपने शत्रु भीम को मारने नही जाता बल्कि कनकरथ अपनी प्रिया कनकमाला सहित स्वय ही मधुराजा की सेवा मे उपस्थित होता है जहा मधु कनकमाला पर आसक्त हो कर उसे अपनी पट्टमहिषी बना लेता है। पत्नी छिन जाने पर जिनसेनाचार्य ने चन्द्राभा (कनकमाला-स्थानीय) के पूर्वपति वीरसेन (कनकरथ-स्थानीय) का उन्मादग्रस्त होना वर्णित किया है जब कि पुष्पदत ने गुणभद्र का अनुसरण करते हुए उसे निर्वेद होने और द्विजट नामक तापस से व्रत ग्रहण करने का वर्णन किया है। इसी प्रकार जिनसेनाचार्य के अनुसार कालसवर के यहाँ अपहृत शिशु का नाम 'प्रद्युम्न' रखा जाता है क्यो कि वह स्वर्ण की भाँति कान्तिमान है। जब कि गुणभद्र की ही भाँति पुष्पदत भी प्रद्युम्न के स्थान पर अपहृत शिशु का नाम 'देवदत्त' (देवयत्त) रखे जाने का वर्णन करते हैं।[19] प्रद्युम्न द्वारा 16 लाभ प्राप्ति का वर्णन भी गुणभद्रकृत एतत्सम्बन्धी वर्णन से मिलता है। पुष्पदन्त भी उदधिकुमारी के हरण का वर्णन नही करते और मथुरापुरी के बाहर पाडव-कन्या को भानु के लिए ले जाते समय ही प्रद्युम्न को भील (पुलिंद) वेष धारण करते हुए व्यक्त करते है। द्वारका मे प्रद्युम्नकृत क्रीडा-कौतुको का वर्णन भी गुणभद्र की परम्परा मे ही है। वास्तविक नही बल्कि मायामयी रुक्मिणी का हरण, नरेंद्रजाल से कृष्ण को वश मे करना, प्रद्युम्न द्वारा जाम्ववती को सत्यभामा का रूप प्रदान करने मे काम-मुद्रिका का प्रयोग करना इत्यादि कथा-व्यापारो का वर्णन भी गुणभद्र के ही अनुरूप है। जिनसेन की कृति मे सात्यकि मुनि स्वय आगे हो कर द्विजपुत्रो को अपने निकट बुला कर इसलिए शास्त्रार्थ करते हैं कि कही वे नदिवर्द्धन के धर्मोपदेश मे बाधा न उत्पन्न कर दे जब कि गुणभद्र ने नदिवर्द्धन द्वारा मुनि-सघ को विवाद से दूर रहने की चेतावनी देते हुए व्यक्त किया है।[20]

इस निदर्शन से स्पष्ट है कि पुष्पदन्त पर जिनसेनाचार्य का प्रभाव नही है। उन्होने प्रद्युम्न-कथा का रूप गुणभद्र से ही गृहीत किया है और स्थान-स्थान पर उसे अपनी मौलिक सूझ-बूझ और वर्णन-सामर्थ्य से अभिमण्डित किया है।

इस प्रकरण की समाप्ति से पूर्व प्रद्यु म्न-कथा के वैष्णवपुराणीय और जैनपुराणीय रूपो का तुलनात्मक अध्ययन भी अभीष्ट होगा । प्रद्यु म्न-कथा के रूप-साम्य की दृष्टि से वैष्णव और जैन पुराण-परम्परा मे निम्नलिखित कथा-रूप परिगणित किये जा सकते हैं जो दोनो परम्पराओ मे समान है—

12. प्रद्यु म्न–कथा के वैष्णव तथा जैन पौराणिक रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

वैष्णव तथा जैन पुराण-परम्पराओं में प्रद्यु म्न कथा का साम्य—

1 दोनो ही पुराण-परम्पराओ मे कथा के निमित्त वक्ता-श्रोता की योजना की गयी है । वैष्णवपुराण मे वक्ता-श्रोता क्रमश पराशर और मैत्रेय (विष्णु०) शुकदेव और परीक्षित (भागवत०) वैशम्पायन और जनमेजय (हरिवश०) है तो जैन- परम्परा मे राजा श्रेणिक और गणधर गौतम (जिनसेनकृत हरिवशपुराण) बलदेव और गणधर वरदत्त (गुणभद्रकृत उत्तरपुराण) हैं ।

2. दोनो ही परम्पराओ मे प्रद्यु म्न के अनगत्व को स्वीकार किया गया है । वैष्णव-पुराणो मे प्रद्युम्न के अनग का अवतार होने के सदर्भ पिछले पृष्ठो मे निर्देशित किये जा चुके है । जैन पुराण-परम्परा मे भी प्रद्युम्न को मन्मथ, मदन, काम, कामदेव, मनोभव इत्यादि सार्थक नामो से युक्त बताया गया है । शरीर रहित नही होते हुए भी उसे 'अनग' कहा जाता था ।[21] किन्तु प्रद्यु म्न-कामदेव की यह अभिन्नता जिनसेन ने ही सकेतित की हैं गुणभद्र ने नही। अत जैन-परम्परा मे प्रद्यु म्न की गणना चौवीस कामदेवो मे की जाने[22] और प्रद्युम्न की कामदेव से अभिन्नता सकेतित होने पर भी वैष्णव-परम्परा की भाति शिव-नेत्र से भस्म कामदेव-रति के ही प्रद्युम्न-मायावती रूप मे जन्म लेने की कथा को ग्रहण नही किया गया है। उसमे 'मायावती' नाम का भी परित्याग कर दिया गया है। जिनसेनाचार्य सूचित प्रद्यु म्न-कामदेव की अभिन्नता के हलके सकेतो का भी आगे गुणभद्र निर्वाह नही कर पाये है अत प्रद्युम्न का अनगत्व आगे जैन-परम्परा मे क्षीण होता गया है । इस दृष्टि से जिनसेन वैष्णव-परम्परा के निकटतर प्रतीत होते हैं ।

3 प्रद्यु म्न का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म और शैशवावस्था मे अपहरण दोनो ही परम्पराओ मे है ।

4 शम्बर-पत्नी की अपने पोष्यपुत्र प्रद्यु म्न पर कामासक्ति और माता के इस अन्यथा आचरण पर प्रद्यु म्न की जिज्ञासा भी दोनो परम्पराओ मे वर्णित है ।

5. शम्बर-पत्नी का अपने आचरण के समर्थन मे प्रद्युम्न के अपने औरस-पुत्र न होने का रहस्योद्घाटन भी दोनो परम्पराओ मे वर्णित किया गया है। जैन-परम्परा मे जिनसेनाचार्य ने ही ऐसा किया है,[23] गुणभद्र ने नही। किन्तु प्रद्युम्न के पूर्वभव और कृष्णतनय होने का उद्घाटन जैन-परम्परा मे शवर-पत्नी द्वारा न होकर सागरचन्द्रमुनि द्वारा होता है।[24] वैष्णव-परम्परा शम्बर-पत्नी (मायावती) प्रद्युम्न को कामदेव का अवतार और कृष्णपुत्र होने का रहस्य उद्घाटित करती है।

6. प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध और अत मे प्रद्युम्न के माता-पिता से मिलन का मूलसूत्र भी दोनो परम्पराओ मे समान है यद्यपि इसके सयोजन मे दोनो मे पर्याप्त अन्तर है।

प्रद्युम्न-कथा के निरूपण मे वैष्णव और जैन पौराणिक परम्पराओ मे उपर्युक्त साम्य के अतिरिक्त अनेक अन्तर भी है जिन्हे निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है—

प्रद्युम्न-कथा-रूप
(अन्तर)

वैष्णव-पुराण-परम्परा	जैन-पुराण-परम्परा
1 प्रद्युम्न का हरण कालशवर द्वारा होता है। उसे कही शवर (विष्णु० तथा भागवत०) और कही कालशवर (हरिवश०) कहते हुए असुर बताया गया है। उसे ऋक्षवान नगर का शासक कहा गया है। (हरिवश० 2, 108, 2,)	1 प्रद्युम्न का हरण धूमकेतु नामक असुर द्वारा होता है। कालशबर के यहा उसका लालन-पालन होता है। कालशवर को विद्याधरो का राजा कहा गया है। वह विजयार्ध पर्वत पर मेघकूटपुर का शासक है ('मेघकूटपुराधिप कालसवर इत्याख्य.'[25] तथा 'विजयार्धगिरौ रम्ये प्रद्युम्नो सौ कलागुणो' तथा 'स विद्याधर-पुत्रक'[26] इत्यादि) गुणभद्र ने विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित 'मृतवती' नामक देश का उल्लेख और कियाहै।[27]

2. प्रद्युम्न–हरण का निश्चित दिन है, यथा जन्म का छठा (विष्णु०) सातवा (हरिवंश०) या दसवा (भागवत०) दिन प्रद्युम्न–हरण के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।[28]

2 प्रद्युम्न–हरण का कोई निश्चित दिन नही दिया गया है ।

3. शवर–पत्नी का नाम मायावती है । वह विष्णु–भागवत मे शवर की दासी या नाम–पात्र की पत्नी तथा हरिवश मे भार्या होते हुए भी शवर को अपने मायारूप से बहलाए रखती है । वह शवरासुर के घर मे चिरकाल तक रहते हुए भी उसकी प्रिय पत्नी कभी नही रही है । क्यो कि वह मूलत: काम-पत्नी 'रति' ही है अत प्रद्युम्न की ही सती–साध्वी शुभलक्षणा पत्नी है । वह अपने मायामय रूप से ही दैत्य शवरासुर को मोह मे डाले रहती है । कुमारावस्था मे कभी उसके वश मे नही होती अपितु अपनी माया से एक मनोहर नारी का रूप रच कर उसको शम्बरासुर के शयनागार मे प्रविष्ट कराती है ।[29]

3 शवर–पत्नी का नाम कनकमाला (जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण) या काचनमाला (गुणभद्रकृत उत्तरपुराण) है । वह कालसवर की प्रिय कान्तवल्लभा है और अपने मायारूप की रचना से उसे भ्रान्त नही रखती ।

4 प्रद्युम्न को शवरासुर द्वारा समुद्र में फेका जाता है जहाँ वह मछली द्वारा निगला जाता है । मछुए उस मत्स्य (मछली) को शवर को भेट करते हैं जहाँ चीरे जाने पर मछली के पेट से वह मायावती को प्राप्त होता है । (वैष्णव–परम्परा मे हरिवश मे ही यह प्रसग नही है ।)

4 प्रद्युम्न को समुद्र मे फेंके जाने और मछली द्वारा निगले जाने की कथा का अभाव है ।

5. धूमकेतु असुर नामक पात्र तथा उसके द्वारा प्रद्युम्न को शिला के नीचे दाबने, शिला के हिलने और वहाँ से शबरयुगल को बालक प्रद्युम्न की प्राप्ति सम्बन्धी कथानक नही है ।

5. धूमकेतु असुर प्रद्युम्न को खदिराटवी मे तक्षकशिला के नीचे दाब कर चला जाता है जहा से वह कालशबर और कनकमाला को प्राप्त होता है ।

6. प्रद्युम्न का अपहर्ता और पालनकर्ता एक ही व्यक्ति है–शबरासुर।

6 इसमे शिशु प्रद्युम्न के अपहर्ता और पालनकर्ता दो पृथक् व्यक्ति क्रमश. धूमकेतु और कालसवर हैं ।

7. शबरासुर द्वारा अपने कान के सुवर्णपट्ट बंध द्वारा शिशु प्रद्युम्न को यौवराज्य पद से विभूषित करने की कथा नही है ।

7 पत्नी कनकमाला के अनुरोध पर कालसवर अपने कान के सुवर्णपट्ट बंध से प्रद्युम्न को यौवराज्य पद प्रदान करते हैं । जिनसेन कालसवर द्वारा प्रद्युम्न को दूसरी बार अपने शत्रु सिंहरथ पर विजय के उपलक्ष मे यौवराज्य पद दिया जाना वर्णित करते हैं[30] जब कि गुणभद्र दूसरी बार यौवराज्य पद न देकर शत्रु (यहाँ सिंहरथ के स्थान पर 'अग्निराज' नाम है) को जय करने पर श्रेष्ट वस्तुए प्रदान कर सम्मानित करते हैं ।[31]

8. प्रद्युम्न का हरण पूर्व–वैर के प्रतिशोधनार्थ हुआ है इसका प्रच्छन्न सकेत मात्र है ('ममैष–हन्तेति मुने' विष्णु० 5, 27, 3; 'स विदित्वात्मन शत्रु'–भागवत० 10, 55, 3,) किंतु उस पूर्व–वैर की निदर्शक पूर्वभव कथाएं नही हैं।

8 प्रद्युम्न और उसके अपहर्ता का ही नही, साम्ब और रुक्मिणी के भी अनेक भवान्तरो का विस्तृत जटिल वर्णन है। भवान्तरो के वर्णन मे जैन साहित्यस्रष्टा की विशेष रुचि है। प्रद्युम्न–कथा का बहुलाश भवान्तर वर्णन मे ही व्यय हुआ है ।

9	शवर–पत्नी (मायावती) के गूढ गर्भ से प्रद्यु म्न–जन्म के प्रचारित होने की कथा नही है।	9	शवर–पत्नी (कनकमाला) के गूढगर्भ से प्रद्युम्न–जन्म प्रचारित होने की कथा आयोजित की गयी है।
10	शवर–पत्नी (मायावनी) प्रद्युम्न को रसायनो के प्रयोग से शीघ्र युवा करनी है (हरिवश० 2 108, 13)।	10	कालसवर पत्नी (कनकमाला)द्वारा प्रद्यु म्न को शीघ्र युवा करने विषयक कथा–सूत्र का अभाव है।
11	विमान–स्तभन की कल्पना का अभाव है।	11	प्रद्युम्न के अपहर्ता धूमकेतु और और पालनकर्ता कालसवर के विमानो का स्तभित होना वर्णित है
12	प्रद्यु म्न और उसकी प्रणयिनी शम्बर–पत्नी (मायावती) के क्रमशः कामदेव और 'रति' के अवतारत्व का स्पष्ट कथानक निरूपण है। मातृस्थानीय होते हुए भी शवर–पत्नी प्रद्युम्न पर इसलिए आसक्त होती है कि प्रद्यु म्न पूर्वभव मे उसका पति था।	12.	प्रद्युम्न के कामदेवत्व का सकेत मात्र है, कथात्मक निरूपण नही। कामदेव और रति के ही प्रद्यु म्न शवरपत्नी के रूप मे अवतरित होने का कथानक निरूपण नही है। 'रति' के हा शवरपत्नी होने का तो प्रच्छन्न सकेत तक नही है। हाँ, प्रद्यु म्न को प्राप्त 16 लाभो मे से ही एक 'रति' भी है।
13	शवर–पत्नी द्वारा प्रद्यु म्न को प्रज्ञप्ति आदि गुप्त विद्याए देने का उल्लेख नही है। या तो प्रद्यु म्न कृष्णपुत्र होने के कारण स्वय मायाविज्ञ है[32] या शवर-पत्नी (मायावनी) उन्हे सर्वमायाविनाशिनी 'माहामाया' विद्या प्रदान करती है[33] या अनुराग मे अघी होकर सब प्रकार की मायाएं सिखा देती है।[34]	13	कालशवर-पत्नी प्रद्युम्न को 'गोरी' तथा 'प्रज्ञप्ति' नामक विद्याएं प्रदान करती है।[35] अथवा बाल्य-काल मे ही 'आकाशगामिनी' आदि विद्याधरो के योग्य विद्यओ को सीख लेता है।[36] गुणभद्र ने केवल 'प्रज्ञप्ति' विद्या का उल्लेख किया है।[37]

14. शंबर–पत्नी प्रद्युम्न को शवर से युद्धार्थ उत्प्रेरित करती है । इसके लिए वह पुत्रवियुक्ता रुक्मिणी की दीन–दशा का वर्णन करती है या प्रद्युम्न के पूर्वभव मे अपना पति होने और इस जन्म मे कृष्ण-पुत्र होने का रहस्योद्घाटन करती है । किसी प्रकार के 'तिरिया–चरित्तर' का आश्रय नही लेती ।	14 कालसवर–पत्नी कालसवर को प्रद्युम्न के विरुद्ध युद्ध के लिए भडकाती है । इसकी सिद्धि के लिए वह प्रणय–व्यापार मे असफल होने पर 'तिरियाचरित्तर' का आश्रय लेती है ।
15. प्रद्युम्न शबर को कटुवचनो के प्रहार से मर्माहत कर अथवा उसका ध्वज भग कर युद्ध के लिए उकसते है ।	15 शवर स्वय ही अपनी पत्नी से उत्प्रेरित हो युद्ध के लिए तत्पर होता है । प्रद्युम्न को उसे उकसाने की आवश्यकता नही होती । ध्वज भग सम्बन्धी कथानक नही है ।
16 शवर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तो अनेक अपशकुन होते है (हरिवशपुराण) ।	16 प्रद्युम्न–कालशवर युद्ध मे अपशकुनो का वर्णन नही है ।
17 प्रद्युम्न–शबर युद्ध मे वैष्णव पुराणकार (विशेषत हरिवश पुराणकार) की अत्यधिक रुचि है । मायामय–युद्ध वर्णन के प्रसग मे अनेक आसुरी-सात्विकी मायाओ और अलौकिक दिव्यास्त्रो का वर्णन तथा युद्ध मे इद्र, पार्वती आदि दैवी पात्रो और नारद की भूमिकाएं है ।	17 जैन–पुराणकार की प्रद्युम्न–कालशवर युद्ध–वर्णन मे अपेक्षा–कृत कम रुचि है । उन्होने युद्ध का चलता वर्णन किया है । दैवी व्यक्तित्वो और दिव्यास्त्रो का वर्णन अपेक्षाकृत कम है ।
18 प्रद्युम्न-शवर युद्ध का अन्त शवर-वध मे होता है ।	18 प्रद्युम्न कालशवर को केवल पराजित कर छोड देते है । उसका वध नही करते ।

19 प्रद्युम्न युद्ध का अन्त होने पर, शबरपत्नी (मायावती) सहित उड कर द्वारका पहुचता है[38] अथवा अम्बरचारिणी मायावती स्वय प्रद्युम्न को आकाश-मार्ग से द्वारका ले जाती है ।[39]	19 प्रद्युम्न, युद्ध का अन्त होने पर, शबर–पत्नी (कनकमाला) को साथ लेकर द्वारका नही जाते बल्कि नारद के साथ विमान से[40] अथवा वृषभस्यदन नामक आकाशगामी रथ से जाते हैं ।[51] आगे जैन परम्परा मे स्पष्टत नारद और प्रद्युम्न द्वारा मायामय विमान रचने और इस प्रसग मे प्रद्युम्न द्वारा नारद से परिहास करने का वर्णन है ।
20. शबरासुर के 100 पुत्र हैं जिन्हे प्रद्युम्न युद्ध मे शंबर के साथ ही मार देता है । वह मायावती को अपने साथ द्वारका ले जाता है । शबर-परिवार के प्रति उसका स्नेही और क्षमाशील रूप नही है ।	20 कालशवर के 500 पुत्र है जिन्हे प्रद्युम्न वावडी मे उल्टा लटका देता है (केवल सबसे छोटे पुत्र को छोड़कर जिसे समाचार देने के लिए छोडा जाता है) नारद द्वारा मध्यस्थता से युद्ध–समाप्ति पर प्रद्युम्न अपने परिजनो माता पिता तथा वन्धुओ से क्षमा–याचना करता है ।
21 प्रद्युम्न का शबर-पत्नी मायावती से विवाह हो जाता है ।	21. प्रद्युम्न का कालसवर–पत्नी कनकमाला से विवाह नही होता । प्रद्युम्न का उदधिमाला आदि अन्य स्त्रियो से विवाह होने के अवसर पर कालसवर–दम्पत्ति द्वारका आते है जहाँ कृष्णदम्पत्ति द्वारा उनका कृतज्ञतापूर्ण सत्कार किया जाता है ।
22 कृष्ण से रूप-साम्य के कारण कृष्ण–पत्नियां प्रद्युम्न के रूप पर मुग्ध हो जाती हैं ।	22 कृष्ण–पत्नियो का प्रद्युम्न–रूप पर मुग्ध होना वर्णित नही है ।

23. नारद की भूमिका प्रद्युम्न–कथा मे अपेक्षाकृत कम महत्त्व की है। वे पहली वार मायावती को प्रद्युम्न–हरण का रहस्योद्घाटन करने के लिए आते हैं (विष्णु०) या प्रद्युम्न–शवर–युद्ध के वीच प्रद्युम्न की सहायता के लिए आते है (हरिवश०) अथवा कथा के अन्त मे प्रद्युम्न के द्वारका-आगमन पर वे सब रहस्योद्घाटन करते हैं (विष्णु०, भागवत०) अथवा उनसे प्राप्त ज्ञान के आधार पर कृष्ण द्वारा रहस्योद्घाटन होता है (हरिवश०)।	23 प्रद्यम्न–कथा मे नारद की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे सत्य–भामा से अपमानित होकर प्रतिशोधस्वरूप सपत्नी के रूप मे रुक्मिणी की खोज करने के साथ ही मुख्य कथा की पूववर्ती आनुपगिक कथा के साथ ही सम्वद्ध हो जाते है और रुक्मिणी–हरण, प्रद्युम्न कीखोज, प्रद्युम्न केद्वारका आगमन तथा के अ त मे पिता-पुत्र मिलाप सभी प्रमुख कथा-व्यापारो मे आद्योपान्न महत्त्वपूर्ण भूमिका सपादित करते है।
24. वैष्णव परम्परा मे प्रद्युम्न द्वीपायन मुनि के शापवश हुए यादवो के गृह-कलह रूप मौसल-युद्ध मे मारे जाते है। प्रद्युम्न की माता और पत्निया सती हो जाती है।	24 प्रद्युम्न अरिष्टनेमि के चरणो मे प्रणत होकर मुनिव्रत धारण कर लेते हैं और सिद्ध क्षेत्र गिरनार मे कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते है। इसीलिए उन्हे जैन परम्परा मे चरमशरीरी (उसी जन्म मे मोक्ष-प्राप्तिकर्ता) माना जाता है।

13. मुख्य प्रद्युम्न–कथा के पूर्ववर्ती और परवर्ती प्रसग

प्रद्युम्न-हरण से प्रद्युम्न-सम्मिलन तक की इस मुख्य कथा के परित (पूर्व और पर) प्रसगो की अवतारणा भी पुराणकारो ने की है। क्यो कि प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य-ग्रथो के रचयिताओ ने पुराण-परपरा से प्रभावान्वित होने के कारण अपनी कृतियो मे इन पूर्व-प्रसगो और पर-प्रसगो को भी कथा-निवद्ध किया है अत इन प्रसगो का सक्षिप्त आकलन भी विवेच्य है। प्रद्युम्न-जन्म से पूर्ववर्ती तथा कृष्ण-प्रद्युम्न मिलन के पश्चात्वर्ती निम्नलिखित प्रसगो की अवतारणा प्रद्युम्न कथा मे पुराणकारो (तथा उनके प्रभाववश परवर्ती काव्य-सृष्टाओ द्वारा भी) की गयी है—

(अ) **पूर्व–प्रसंग :—**

1 रुक्मिणी के पूर्वभव

2 प्रद्युम्न और साम्ब के पूर्वभव
3. सत्यभामा द्वारा नारद का अपमान
4 नारद की प्रेरणा और योजना से कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण
5. कृष्ण द्वारा सत्यभामा का उपहास (पान की उगाली तथा वनदेवी प्रसग)
6 दुर्योधन द्वारा भावी सन्तति-सम्बन्ध का प्रस्ताव
7. सपत्नियो (सत्यभामा तथा रुक्मिणी) के मध्य केश-कर्तन प्रस्ताव

(आ) पर-प्रसग :—

1 साम्ब-जन्म
2 साम्ब-सुभानु स्पर्द्धाएं
3. साम्ब-चरित्र और सावकृत कौतुक
4 प्रद्युम्न-साव द्वारा वैदर्भी-हरण
5 उषा-अनिरुद्ध-प्रसग
6. नेमि-राजीमती-प्रसंग तथा—
7. प्रद्युम्न द्वारा दीक्षा-ग्रहण और कैवल्य-प्राप्ति।

उक्त पूर्व और पर प्रसगो की योजना के विषय मे हमे यही कहना है कि रुक्मिणी और प्रद्युम्नादि के पूर्व भवो की योजना प्रद्युम्न-कथा के सदर्भ मे जिस ढग से की गयी है वह जैन पुराणकारो की अपनी ही उद्भावना है। इसी प्रकार प्रद्युम्न-कथा के सन्दर्भ मे श्रृंगाररता सत्यभामा द्वारा नारद का अपमान और नारद द्वारा प्रतिशोध-स्वरूप रुक्मिणी के रूप मे सौत का चुनाव भी जैन पुराणकार की ही योजना है। रुक्मिणी-हरण प्रसग वैष्णव पुराणकारो द्वारा भी वर्णित हुआ है किन्तु इस प्रसग-वर्णन मे जैन पुराणकार ने कुछ नये सूत्र भी सग्रथित किये है, उदाहरणार्थ, वैष्णव पुराण परम्परा मे रुक्मी और शिशुपाल के विशाल सैन्य के समक्ष कृष्ण-बलराम के एकाकी वपुयुग्म को देख कर रुक्मिणी भयभीत और आशकित तो होती है[42] किन्तु कृष्ण अपने युद्ध-कौशल और शत्रु-सहार-सामर्थ्य से ही उसे आश्वस्त करते हैं जब कि जैन पुराणकार ने इस निमित्त कृष्ण द्वारा अपने बाण से ताल-वृक्ष विदीर्ण करने और मुद्रिका की वज्र (हीरक) कणिका को हाथ से मसल कर चूर्ण करने की कल्पनाए की हैं।[43] इसी प्रकार सत्यभामा और रुक्मिणी मे सपत्नी-ईर्ष्या के बीज और नारद द्वारा इस ईर्ष्या-भावना को हवा देना पारिजात-

हरण प्रकरण मे वर्णित है[44] किन्तु प्रद्युम्न–कथा के सदर्भ मे इसका अभाव है तथा कृष्ण द्वारा अपनी प्रिय किन्तु दर्पवती वल्लभा सत्यभामा का नवपरिणीता विनीता रुक्मिणी के समक्ष उपहास करने के लिए रुक्मिणी के जूठे पान की उगाली को भ्रमवश सुगधि–द्रव्य समझकर सत्यभामा द्वारा अपने अ गो मे मलने तथा नवागता सपत्नी के दर्शनार्थ समुत्कठिता सत्यभामा का रुक्मिणी को वनदेवी समझ उससे अपने सौभ ग्य और सपत्नी-दौर्भाग्य की याचना करने के मनोरम कथानकों की कल्पना भी जैन-पुराणकार की ही देन है । इसी प्रकार दुर्योधनपुत्री लक्ष्मणा से साम्ब का विवाह वैष्णव–परम्परा मे भी वर्णित है[45] किन्तु दुर्योधन द्वारा सतान–जन्म से पूर्व ही कृष्ण के पास दूत भेजकर अपनी भावी सततियो के विवाह का प्रस्ताव, भानु-परिणय के लिए ले जायी जा रही दुर्योधन-कन्या उदधिमाला (यह नाम भी जैन-पुराणकार की ही देन है) का मार्ग मे भीलवेष मे अपहरण सम्बन्धी कथानक जैन-परम्परा का ही विशिष्ट योगदान है ।

पर-प्रसग के अन्तर्गत वैष्णव-परम्परा मे साम्ब-जन्म के सक्षिप्त उल्लेख मात्र मिलते हैं यथा, शबरासुर ने जिस महीने प्रद्युम्न का अपहरण किया उसी महीने मे जाम्बवती के गर्भ से साम्ब का जन्म हुआ इत्यादि[46] किन्तु रुक्मिणी की प्रार्थना पर जाम्बवती को काममुद्रिका देकर उसे सत्यभामा का रूप प्रदान करना, पूर्वभव के कैटभ के जीव का कृष्ण को हार समर्पित करना तथा सत्यभामा के धोखे जाम्बवती को कृष्ण द्वारा वह हार पहना देना जिसके फलस्वरूप कैटभ का जाम्बवती के उदर से साम्ब-रूप मे जन्म लेना, ये सारे कथासूत्र जैन कल्पना की ही सृष्टि हैं । मधु और कैटभ वैष्णव पुराण-परम्परा मे दैत्य रूप मे कल्पित हैं जिन्हे विष्णु द्वारा नष्ट किया जाता है ।[47] किन्तु जैन पुराणकार ने प्रद्युम्न-साम्ब को ही पूर्वभव मे मधु-कैटभरूप मे कल्पित किया है । इसी प्रकार यादवकुमारो द्वारा साम्ब का स्त्री-वेष बना कर ऋषियो का उपहास कर यादव-नाश का शाप मोल लेना वैष्णव-पुराण-परम्परा मे वर्णित है किन्तु साम्ब की द्यूतादि क्रीडाओ मे सुभानु पर विजय, कृष्ण द्वारा साम्ब को एक माह का राज्य देने, नारी-रूप धारण कर सत्यभामा को धोखे मे डाल कर सुभानु से विवाह कर पुन पुरुष-वेष धारण कर प्रवचित करने, सैकडो कन्याओ के साथ एक ही रात्रि मे विवाह करने इत्यादि कथासूत्र भी जैन–परम्परा की ही विशिष्टताए हैं ।[48] उषा–अनिरुद्ध प्रसग जैन परम्परा मे विशेष विस्तार से वर्णित नही है । कृष्ण, बलदेव आदि के साथ प्रद्युम्न अपने पुत्र अनिरुद्ध के लिए बाण-पुत्री उषा को वधू-रूप मे ले आते हैं ।[49] यहा बाण को भी शबर की ही भाति असुर न कहकर 'विद्याधर' जातीय बताया गया है । नेमिराजीमती प्रसग, नेमि द्वारा वैराग्य और तीर्थंकर के रूप मे विहार तथा प्रद्युम्न का नेमि से जिन–दीक्षा ग्रहण भी जैन पुराणकार की ही कल्पनाए हैं ।[50]

इस प्रकार हमने देखा कि प्रद्युम्न-कथा की दृष्टि मे जैन-पुराण -परम्परा की कतिपय अपनी विशिष्टताए है। यदि प्रद्युम्न-कथा की

14. जैनपुराण-परम्परा की विशिष्टताएं

मूल-कल्पना और प्रारभिक सृष्टि का श्रेय वैष्णवपुराणकार को है तो उसे पुष्पित, पल्लवित और विस्तीर्ण आयामो मे रूपायित करने का श्रेय जैनपुराणकार को। साथ ही, जैन पुराणकार ने जो नई उद्भावनाएँ की हैं वे नवीन पात्रो या पुराने पात्रो के ही परिवर्तित नये नामो को लेकर ही नही है अपितु नये कथा–व्यापारो को ले कर भी हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि ये नवीन उद्भावनाएँ मुख्य-कथा से भी अधिक उसकी पूरक पूर्ववर्ती और परवर्ती कथाओ मे दृष्टिगत होती है। इन नयी उद्भावनाओ की प्रेरक पृष्ठभूमि के रूप मे मुख्यतः तीन प्रकार की प्रवृत्तिया कार्यशील प्रतीत होती है—(1) अतिशयोक्ति अथवा ऊहात्मक प्रवृत्ति जो प्रभावशील बनाने की दृष्टि से बात को बढ़ा-चढा कर कहने मे लक्षित होती है–यथा, वैष्णव पुराणकार यदि शबरासुर के पुत्रो की सख्या-गणना मे कल्पना का शतक बनाता है तो जैन पुराणकार पाच शतक बनाने से नही चूकता। यही प्रवृत्ति कथा को विस्तार से वर्णन करने और नगर, उत्सव या किसी देश की समृद्धि के ऊहात्मक वर्णन मे अभिव्यक्त होती है। (2) धार्मिक आरोप की प्रवृत्ति। कथा को धार्मिक उद्देश्य की साधक बनाने मे कोई कोर-कसर नही छोडी गयी है। नाना भवान्तरो की कल्पना, तीर्थंकरो के समवसरण-विहारादि का वर्णन इसी प्रवृत्ति के निदर्शन है। इसी से प्रेरित होकर कर्मफल की अमोघता जैसे सिद्धान्तो को बार-बार दुहराया गया है। इसी से मिलती-जुलती तीसरी प्रवृत्ति है (3) मौलिकता के आग्रह की प्रवृत्ति। वैष्णव-परम्परा के प्रमुख पात्रो को अपेक्षाकृत गौण तथा गौण पात्रो को अपेक्षाकृत अधिक महिमाशाली निरूपित करने मे अपनी धार्मिक मान्यताओ के आरोप के अतिरिक्त अपनी परम्परा की पृथक् सत्ता और मौलिक विशिष्टता के आग्रह की यही स्वाभाविक प्रवृत्ति कार्यरत प्रतीत होती है। धार्मिक चेतना और उसका आरोप दोनो ही परम्पराओ मे है तथापि जैन परम्परा मे इस प्रवृत्ति से कथा–प्रवाह मे व्यवधान अधिक हुआ है जब कि पात्रो के व्यक्तित्व मे अधिक सौम्यता और मानवीयता का सन्निवेश भी इसी धार्मिक चेतना और सस्कार की देन है– उदाहरणार्थ, वैष्णव परम्परा मे शम्बर को असुर कहा गया है जब कि जैन परम्परा ने उसे विद्याधर के रूप मे चित्रित किया है। वैष्णव–परम्रा मे यदि प्रद्युम्न शबर का वध कर उसकी पत्नी से विवाह कर लेता है तो जैन परम्परा मे वह शबर परिवार से विदा होते समय क्षमायाचना करते हुए चित्रित किया गया है। कृष्ण–दम्पत्ति द्वारा शबर–दम्पत्ति को प्रद्युम्न के विवाह के अवसर पर आमत्रित करते हुए, आत्मीय स्नेही की भाति सत्कार करते हुए तथा अपने पुत्र के लालन-पालन रूप मे प्रदर्शित उपकार के प्रति विनम्र कृतज्ञता प्रकटते हुए चित्रित किया गया है। प्रद्युम्न शबर-पत्नी का औरस पुत्र न होते हुए भी मातृस्थानीय तथा विद्या-दात्री होने के कारण उसे माता और गुरु की श्रद्धा-भावना

से देखता है। वैष्णव परम्परा मे उपेक्षित अथवा अवमानित पात्रो को मानवीय गरिमा और कोमलता से मण्डित करने मे जैन पुराणकार ने कलाकार की सहज सवेदनशीलता तथा उदारता का परिचय दिया है। किंतु वैष्णव पुराणकार कथा के स्वाभाविक प्रवाह और लक्ष्य की ओर उसकी गति का निर्वाह करने मे अधिक सफल रहा है। कार्य-कारण-शृ खला की उसकी कल्पना मे सूत्रबद्धता तथा तार्किक सगति भी अधिक स्पष्ट है जिसका जैन परम्परा मे कही-कही निर्वाह नही हो पाया है —उदाहरण के लिए राजा मधु द्वारा अपने सामन्त वीरसेन (अथवा हेमरथ) की पत्नी चद्राभा (अथवा कनकमाला) का अपहरण कर लेने पर भी राजा मधु तो मर कर आरण अथवा महाशुक्र स्वर्ग मे इन्द्र बनता है किंतु बेचारे वीरसेन का जीव आर्तध्यान मे तत्पर रहता हुआ चिरकाल तक ससार-अटवी मे भ्रमण करता रहता है[51] और अधिक से अधिक धूमकेतु नामक ज्योतिषी देव ही बन पाता है।[52] यो तो किसी भी उचित अनुचित स्थापना के पक्ष-विपक्ष मे चाहे जो तर्क दिये जा सकते हैं। अत इसके औचित्य को सिद्ध करने के लिए भी कहा जा सकता है, जैसा कि पुराणकार ने स्वतः उ गित किया भी है कि दुराचार के द्वारा कमाया हुआ पाप सम्यक् चारित्र्य के द्वारा नष्ट हो ही जाता है—दुराचारार्जित पाप सच्चरित्रेण नश्यति'[53] तथा मधु ने घोर तप किया, स्वाध्याय, ध्यान तथा योग मे स्थिर रहा, किंतु कष्ट सहते हुए भी व्रत मे अडिग रह समाधि-मरण की स्थिति प्राप्त की[54] अत उसको यदि स्वर्ग मे इंद्रत्व प्राप्त हुआ तो यह उसका सुकृत-फल ही था। अपने स्थान पर यह तर्क उचित है तथा तप और सम्यक् चारित्र्य के मूल्य की मौलिक महत्ता भी किसी को अस्वीकार्य नही होगी। फिर भी जिस सदर्भ मे इस मूल्य की घटिति हुई है वह सहज बुद्धि से ही ग्राह्य नही हो सकता। अ तत पात्रो की सृष्टि, उनके काय—व्यापारो और फलाफल की योजना, कथा-सगठन के क्रम मे मानवीय मस्तिष्क ही करता है। अत पत्नी के अपहर्ता की स्थिति को अपहरण से कातर करुणा-पात्र (पूवपति) की स्थिति से श्रेष्ठतर प्रदर्शित करना—विशेषत ऐसे काव्यसृष्टाओ की परम्परा द्वारा जिसने दैत्य दानवादि रूप मे लाछित पात्रो को भी सहानुभूति और गरिमा प्रदान की है, सहज औचित्य और तार्किक सगति की दृष्टि से समझ से परे की बात है।

15 प्रद्युम्न-कथा के पौराणिक रूपों मे काव्य-सौन्दर्य

काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से वैष्णव पुराणो मे श्रीमद्भागवत और हरिवशपुराण तथा जैन पुराणो मे जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण और पुष्पदतकृत हरिवशपुराण (महापुराण) विशेष ध्यान आकृष्ट करते है। भागवतकार ने मायावती के मुख से पुत्रवियुक्ता रुक्मिणी की तुलना बच्चा खो जाने पर कुररी पक्षी अथवा बछडा खो जाने पर गाय से की है,—

परिशोती ते माता कुररीव गताप्रजा।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥[55]

इसी प्रकार आकाश मे अपनी अम्बरचारिणी पत्नी मायावती द्वारा लेजाये जा रहे प्रद्युम्न की शोभा का वर्णन करते हुए भागवतकार कहता है कि आकाश मे अपनी गोरी पत्नी के साथ सावले प्रद्युम्न की ऐसी शोभा हो रही थी मानों विजली और मेघ का जोडा हो।[56] प्रद्युम्न-शम्बर युद्ध-वर्णन मे सैन्य-नद का सागरूपक बाधते हुए हरिवशकार कहता है कि—

मकरध्वज (प्रद्युम्न) ने सेनाओ की भयकर नदी बहा दी जो रक्तिम जल तरगो से सुशोभित थी। मोतियो के हार उसमे उठती हुई लहरो के रूप मे थे। वसा और मेद कीच के समान जान पडते थे तो छत्र, दीप और वाण आवर्त के समान और रथ उस सैन्य-नद के तट सदृश थे। केयूर और कुण्डल उसमे कछुए का भ्रम उत्पन्न करते थे, ध्वजरूपी मत्स्यो, खगरूपी नाको तथा हाथी रूपी ग्राहो से युक्त वह भयकर प्रतीत होती थी। वह केशरूपी सेवार से ढकी थी। कटिसूत्र कमलनाल के समान प्रतीत होते थे, सु दर मुख ही उसमे विकसित कमल थे और हिलते हुए चवर ही हसो के पख सचालन की भाति उस नदी को हवा कर रहे थे। भग्न पशु- मस्तक उसमे तिमि नामक मत्स्य की भाति व्याप्त थे। प्रद्युम्न द्वारा प्रवाहित यह सैन्य-नद दुस्तर, दुर्लक्ष्य, दुर्गम, भयकर और यम-राज्य-वर्द्धक था जिसे पार करना निस्तेज पुरुषो के लिए दुस्साध्य था।[57]

इसी प्रकार प्रद्युम्न के भय से पीडित हो कर भागती हुई विषादग्रस्त दैत्यसेना की समररूपी सुरत से विमुख रजस्वला स्त्री से उपमा भी द्रष्टव्य है।[58]

जिनसेनाचार्य ने सुन्दर कल्पनाओ और अ लकारो की योजना की है। राजा मधु के चद्रामा पर मुग्ध होने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार अत्यत कठोर चद्रकान्त मणि की शिला, चंद्रमा को देखने से आर्द्र हो जाती है उसी प्रकार शस्त्र-शास्त्र के अभ्यासी कठोर हृदय मधु राजा की बुद्धि भी चद्राभा के दर्शन से द्रवित हो गयी। यहा श्लिष्ट उपमालकार द्रष्टव्य है—

शस्त्रशास्त्रकठोरा पि चद्राभादर्शनान्मधो·।
आर्द्रभावमगाद् बुद्धिश्चंद्रकान्तशिला यथा ।।[59]

इसी कल्पना को और भी मनोहारी ढग से आगे वढाता हुआ कवि राजा मधु के मुख से कहलाता है कि जिसप्रकार पूर्ण चद्रमा का कलक भी सुशोभित होता है उसी प्रकार चद्राभा के द्वारा आलिंगित मुझ राजाधिराज का कलक भी शोभादायी ही होगा। जैसे चद्राभा-(चद्रिका)-विकसित कुमुदवन की सुगध को कीचड की दुर्गन्ध नष्ट नही कर सकती वैसे ही चद्राभा के सग से प्रफुल्लित मेरी कीर्ति को लोकापवाद रूपी कीचड़ की दुर्गंध भी नष्ट नही कर सकेगी।[60] राजा मधु द्वारा तपस्या के प्रसग मे मन का मत्त हाथी से और इ द्रियों का मृगो से रूपक-विधान भी मनोहर बन पडा है।[61]

पुष्पदन्त ने भी काचनमाला की कामदशा और कामासक्ति चेष्टाओ का अत्यत सुन्दर वर्णन किया है।[62] उनके काव्य मे ध्वन्यात्मकता और वस्तुवर्णना भी मनोहारी है। कही-कही सादृश्य-विधान भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है—उदाहरणार्थ प्रद्युम्न रुक्मिणी से सोलह वर्ष के वियोग के उपरात मिलते है तो माता रुक्मिणी की स्तन्य-धारा से अभिषिक्त प्रद्युम्न, कवि की दृष्टि मे गगाजल से अभिषिक्त भरत नरेश की भाति ही सुन्दर प्रतीत होते है—

जणणीथण्णेण मुउ मिलतु अहिसितु किह।
गगातोएण पुप्फयतु पहु भरहु जिह ॥[63]

प्रद्युम्न-कृष्ण युद्ध के अन्त मे जब प्रद्युम्न कृष्ण-चरणो मे प्रणत होते हैं और कृष्ण उन्हे उठाकर अपनी भुजाओ मे आलिगनबद्ध कर लेते है तो पीताम्बर-वेष्टित श्यामलवर्ण पिता-पुत्र ऐसे प्रतीत होते है जैसे साध्य जलधर का अ जनगिरि श्रेणी से मिलन हो गया हो—

कदप्पु कणयणिहु अ गालीणउ मणहरु।
ण अ जणमहिहरमेहलहि केसवहु दीसइ सझाजलहरु ॥[64]

साराश रूप मे हम कह सकते हैं कि दोनो ही परम्पराओ मे पुराणरचयिता कवियो ने प्रद्युम्न-कथा का प्रभावोत्पादक गुम्फन और अपनी काव्य-प्रतिभा का सुन्दर प्रदर्शन किया है। यही कारण है कि, जैसा हम आगे देखेंगे, दोनो परम्पराओ के कवियो से ही प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य-ग्रथो के रचयिताओ ने वस्तु-वर्णना और अलंकार-योजना मे प्रभाव ग्रहण किया है। कथानक को विस्तृत आयाम और अभिनव रूप प्रदान करने तथा अदभुत् तत्त्व के सन्निवेश और पात्रो के मानवी उदात्त चरित्र-चित्रण करने इत्यादि गुणो के कारण, जिससे एक अविच्छिन्न प्रद्युम्न-चरित्र-ग्रथ परम्परा की सृक्षा और सुरक्षा सभव हो सकी, जैन पुराणकारो के प्रति काव्य-ससार सदैव कृतज्ञ रहेगा।

संदर्भ : अध्याय * 1

1. ब्रह्मपुराण, अध्याय 200, श्लोक 1-28.

2 ब्रह्मपुराण, अ० श्लोक

3 श्री अगरचंद नाहटा का लेख—'राजस्थानी भाषा का एक उल्लेखनीय कृष्ण (पुत्रों सम्बन्धी) काव्य", सप्तसिंधु मासिक पत्र, जुलाई 1967 की प्रति ।

4. 'पज्जुण्णपामोक्खाणं' अद्धट्ठाण कुमारकोडीण सम्ब पामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दन्त साहस्सीण'—

—सुत्तागमे-पुप्फ भिक्खु सम्पादित (अंतगडदसाओ नामक आठवां सूत्रांग) जिल्द 1, प्र० सूत्रागम प्रकाशन समिति, जैन स्थानक, गुड़गांव, पृ० 1161-63

5. वही, पृ० 1172-73.

6 डॉ० हीरालाल जैन · भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् भोपाल, 1962 ई० सस्करण, पृ० 55.

7. वही, पृ० 25 8. वही, पृ० 143

9. वसुदेव हिण्डी, रचयिता संघदास धर्मदास गणि, अनु० भोगीलाल सण्डेसरा, प्र० गुर्जरग्रथरत्न कार्यालय, गांधीरस्तौ, अहमदाबाद.

10. डा० जगदीशचंद्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास, प्र० चौखंभा विद्याभवन

11. डा० हीरालाल जैन तथा आ० ने० उपाध्ये : जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, अनु० पन्नालाल जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् 1962 ई० सस्करण मे सम्पादकीय वक्तव्य ।

12. प्रद्युम्नचरितम्, रचयिता महासेनाचार्य, प्र० माणिकचद्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बंबई, 8 वा पुष्प, विक्रमाब्द 1973.

13 पुन्नाटसघीय जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, सं० पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रस्तावना, पृ० सं० 6.

14. गुणसेनाचार्यप्रणीत 'महापुराणम्' (द्वितीयो विभागः उत्तरपुराणम्) सं० पन्नालाल जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथमावृत्ति 1954 ई. प्रास्ताविक, पृ० 2.

15. महाकवि पुष्पदंतविरचितम् अपभ्रंशभाषानिबद्धं 'हरिवंशपुराणम्' सं० डा० पी० एल० वैद्य, प्र० माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बम्बई, सन् 1941 ई० मे नाथूराम प्रेमी लिखित कवि-परिचय, पृ० स० 12.

16. नास्त्याप्तो नागमो नैव पदार्थो नग्नकेवलम् ।
किं क्लिश्नासि वृथोन्मार्गे मूढो दृष्टविनाशिनि ॥
—गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पन्नालाल जैन सम्पादित, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पर्व 72, श्लोक 11

17 वही, श्लोक 12-15 ।

18 सो भणिउ तेहिं रे मूढ णग्ग । मलमलिण मोक्खवाएण भग्ग ॥
पशु मारिवि खद्दु ण जण्णि मासु । तुम्हारिसाहं कहि तियसवासु ॥
ता सच्चइ मुणिवर भणइ एंव । जइ हिंसायक णर होंति देव ॥
तो सूणागारहु पढमु सग्गु । जाएसइ को पुणु णरयमग्गु ॥
—पुष्पदंतकृत हरिवंशपुराण, डॉ० पी० एल० वैद्य सम्पादित, प्र० माणकचद्र दिगम्बर जैन ग्रथमाला, बम्बई, 91 वीं संधि, द्वितीय कडवक, पंक्ति 7-10

19 वही, संधि 91, कडवक 9, पंक्ति 4 ।

20. जे खलु जोइवि णिय तणु चयंति । उवसमि वि थंति जिणु संभरंति ॥
जे जीविउ मरणु वि समु गणंति । परु पहणतु वि णउ पडिहणंति ॥
जे मिग जिह णिज्जणि वणि वसंति । मुणिणाहं ताहं मि वइरि होंति ॥
—वही, संधि 91, कडवक 2, पंक्ति 2-5.

21. मन्मथो मदन कामः कामदेवो मनोभव
इत्यन्वर्थाभिधान स नानंगोऽनंग नामक ॥
—जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, सर्ग 47, श्लोक 25.

22. सधारुकृत प्रद्युम्न चरित्र—प० चैनसुखदास तथा डा० कस्तूरचद कासलीवाल सपादित, प्र० दिगम्बर अतिशय क्षेत्र कमेटी, श्रीमहावीरजी, प्रस्तावना भाग.

23 जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 47, श्लोक 59,

24. वही, श्लोक 60-61 ।

25. जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 49

26. वही, सर्ग 47, श्लोक 21-22.

27 गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 54-55

28. विष्णुपुराण, अंश 5, अ० 27, श्लोक 3; हरिवशपुराण, 2, 104, 3; भागवतपुराण 10, 55, 3

29, हरिवशपुराण 2, 108, 24-27.

30 जिमसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, सर्ग 47, श्लोक 28.

31. गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 74

32. चक्रायुधात्मज. क्रुद्ध शंबर स समाह्वयत् । सर्वमायास्वभिज्ञो सो नाम विश्राव्य चात्मन. ।।

—हरिवंशपुराण 2, 104, 34

33. प्रभाव्यैवं ददौ विद्या प्रद्युम्नाय महात्मनै ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ।।

—भगवतपुराण 10, 55, 16 ।

34 मायावती ददौ तस्मै मायाऽसर्वा महामुने ।
प्रद्युम्नायानुरागान्धा तन्नयस्तद्धृदयेक्षणा ।।

— विष्णुपुराण 5, 27, 14.

35 गोरीं प्रज्ञप्ति विद्यां च त्व गृहाण यदीच्छसि ।

—जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, 47, 63.

36 वही, 47, 22.

37. गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 78.

38 विष्णुपुराण 5, 27, 20.

39 भागवतपुराण 10, 55, 25.

40. जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, 47, 83

41 गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, 72, 132. 42 भागवतपुराण 10, 54, 4,

43 जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, सर्ग 42, श्लोक 88-89.

44. हरिवंशपुराण, विष्णु पर्व, अ० 65.

45 संदर्भ के लिए द्रष्टव्य इसी शोधप्रबंध के प्रथम खण्ड का अ० 4

46 हरिवंशपुराण, विष्णु पर्व, अ० 110, श्लोक 1.

47 मधु-कैटभ प्रसंग के लिए द्रष्टव्य हरिवंशपुराण, भविष्यपर्व, अ० 13, अ० 26.

48 साम्बक्रीड़ाओ के लिए द्रष्टव्य जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण, सर्ग 48, श्लोक 13-20

49 वही, सर्ग 55, श्लोक 16-28 (उषा-अनिरुद्ध प्रसंग)

50. नेमि-राजीमती प्रसंग और समवसरणवर्णन के लिए द्रष्टव्य जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 55 से सर्ग 57 तथा गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पर्व 70 तथा 72.

51 जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 220

52. गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 47, 53 वही, श्लोक 46
54. जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 205-216.
55. श्रीमद्भागवतपुराण 10, 55, 15; 56 वही, श्लोक 26.
57 हरिवंशपुराण, विष्णु-पर्व, 105, 60-65।
58 क्षतजादिग्धवस्त्रा वै मुक्तकेशा विशोभना।
रजस्वलेव युवति सेना समवगूहते ।।
मदनशरविभिन्ना सैनिकानभ्ययायाद्।
युवतिसदृशवेषा साध्वसं पीड्यमानो ।।
रतिसमरमशक्ता वीक्षितु सोच्छ्वसंती।
स्वगृहगमनकामा नेच्छते स्थातुमत्र ।।
—हरिवंश, विष्णुपर्व, 105, 83-84.
59. जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण 43, 166।
60 चंद्राभयोपगूढस्य महोदय महीभृत । सपूर्णस्यैव चंद्रस्य कलंकोऽप्यतिशोभते ।। चंद्राभासंग संजातविकासस्यसुगन्धिताम्। कुमुदाकरराजस्य पकगधो न बाधते ।।
— वही, श्लोक 168-9.
61 वही, श्लोक 194-198.
62 पुष्पदन्तकृत हरिवंशपुराण, डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य सम्पादित, संधि 91, कडवक 11, तथा 12.
63 पुष्पदन्तकृत हरिवंशपुराण, डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य सम्पादित, संधि 91, कडवक 22.
64 वही, संधि 92, कडवक 3.
65 डा० हीरालाल जैन भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० 128, तथा पृ० 132.
66. डा० राजनारायण पाण्डेय महाकवि पुष्पदत, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृ० 21.
67. वही, पृ० 153
68. स्वयंभू का समय डा० भायाणी के अनुसार 677 ई० से 960 ई० के बीच कभी रहा होगा (पउमचरिउ की भूमिका, पृ० 13).
69. डा० हीरालाल जैन भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० 154.
70. वही, पृ० 155.

अध्याय : दो

卐

सधारु-पूर्व रचित प्रद्युम्न-चरित काव्य

सधारु-पूर्व रचित प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी काव्य-ग्रथो मे दो कृतियो का पता चलता है जिसमे से एक सस्कृत और दूसरी अपभ्र श भाषा मे है। प्रद्युम्न-चरित्र विषयक ये प्रारभिक काव्य-कृतियाँ निम्नलिखित है :—

(1) सस्कृत मे लिखित महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्'[1]
रचना-काल वि० स० 1031-1066 (ई० सन् 974-1009 के मध्य)

(2) सिद्ध तथा सिह कवि कृत अपभ्र श भाषा मे निवद्ध 'पज्जुण्ण चरिउ'[2]
रचना-काल वि० स० 1208 (सन् 1151 ई०) से पूर्व

प्रद्युम्न-चरितम् के रचयिता महासेन लाडबागड सघ के थे। प्रेमीजी की सूचना

1. सधारु-पूर्व प्रमुख कवि : महासेन तथा सिद्ध और सिह का कवि तथा कृति-परिचय

है कि इनका वनाया हुआ 'प्रद्युम्न चरितम्' नामक एक ही ग्रथ उपलब्ध है। जिस एक प्रति के आधार से उक्त ग्रथ प्रकाशित हुआ है, उसमे कोई प्रशस्ति नही थी। परन्तु उसके वाद डॉ० हीरालाल जैन को कारंजा के भण्डार से इसकी एक प्रति ऐसी भी मिली जिसमे प्रशस्ति दी गई है।[3] इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि लाडबागड़ सघ के आकाश मे पूर्णचन्द्र की भाँति सुशोभित सकल शास्त्रार्णव पारगामी, तपस्वी और सयमी जयसेन हुए। उनके शिष्य परम गुणी गुणाकर सेन सूरि हुए। गुणाकर सूरि के शिष्य, महासेन सूरि थे जो मुज राजा द्वारा भी समादृत थे। वे सिंधुराज के महत्तम (महामात्य) श्री पर्पट द्वारा पूजित थे। उन्ही के कहने से महासेन ने कामदेव का यह मोक्ष-प्रदाता चरित्र कोविदजनो के लिए लिखा है।

इस प्रशस्ति मे यद्यपि ग्रथ-रचना का समय नही दिया गया है तथापि यह एक प्रकार से निश्चित सा है क्यो कि मुज और सिंधुल का काल शिलालेखो और दूसरे साधनो से निर्णीत सा है। राजा मुज के दो दानपत्र वि० स० 1031 और

1036 के मिले हैं और 1050 से 1054 के बीच किसी समय तैलप राज ने उनका वध किया था। राजा सिंधुल सुप्रसिद्ध राजा भोज के पिता थे। उनकी मृत्यु गुजरात नरेश चामुण्डराय सोलकी के साथ लड़ाई मे वि० स० 1066 के कुछ पूर्व हुई थी। इससे स्पष्ट है कि महासेन ने अपने 'प्रद्युम्न चरितम्' की रचना वि० स० 1031 और 1066 के बीच किसी समय की होगी। अधिक सभावना यही प्रतीत होती है कि मुजदेव की मृत्यु से पूर्व वि० स० 1031–1050 के बीच ही यह रचना हुई है। अत. इसका रचना काल 1000 ई० के आस-पास निश्चित होता है।

सधारु-पूर्व रचित दूसरी प्रद्युम्न-चरित्र विषयक कृति अपभ्रंश मे लिखित 'पज्जुण्ण चरिउ' है। इसके कर्त्ता कवि सिद्ध और सिंह हैं। इसमे 15 सधियाँ हैं और श्लोक सख्या साढे तीन हजार से कम नही है। ग्रथ-प्रशस्ति अध्ययन से स्पष्ट है कि इसके रचयिता दो थे। उनमे से ग्रथ की प्रथम रचना करने वाले विद्वान् का नाम सिद्ध कवि है जो पपाइय और देवण का पुत्र था। उसका यह ग्रथ किसी तरह खण्डित हो गया था जिसका उस खण्डावस्था से सिंह कवि ने उद्धार किया।[4] सिद्ध कवि ने यह ग्रथ कब रचा इस सम्बन्ध मे प्रशस्ति मौन है। कवि सिंह सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी—इन चार भाषाओ के ज्ञाता थे। उन्होने विविध छदो के प्रयोग से ग्रथ को और मनोहर बना दिया। कवि सिंह प्रतिष्ठित गुज्जर कुलोद्भूत थे और उनके पिता का नाम 'बुधरल्हण' था।[5] कवि के पिता सस्कृत तथा प्राकृत के ज्ञाता थे। कवि की माता का नाम जिनमती था तथा उनके तीन भाई और थे जिनके नाम शुभकर, गुणप्रवर, और साधारण थे। कवि ने अपने को सामर्थ्यवान्, भावभेदन चतुर, शमी, कवित्वगर्वमण्डित, सार-असार विचारण मे प्रवीण असामान्य काव्य-प्रतिभा का धनी, जैनमत मे निष्णात तथा विद्वानो की विद्वत्ता का सम्पादक आदि विरुदो से विभूषित किया है।[6] दूसरी ओर अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को छद अलकार व्याकरण शास्त्र से अनभिज्ञ, तर्कशास्त्र से अपरिचित तथा साहित्य के नाम से भी अनजान कहा है ऐसा अकिंचन कवि सिंह देवी सरस्वती के प्रसाद को पा कर सत्कवियो मे अग्रणी तथा मनस्वी कवि हो सका है। एक साथ ही आत्म-गर्व और दैन्य-कथन की यह वृत्ति बरबस अभिमान-मेरु पुष्पदन्त का स्मरण करा देती है।

कविवर सिंह के गुरु भट्टारक अमृतचन्द्र थे। प्रस्तुत भट्टारक अमृतचन्द्र पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के रचयिता तथा कुदकुदाचार्य कृत समयसार के टीकाकार अमृतचद्र से भिन्न हैं जिनका समय पट्टावली मे स० 962 दिया हुआ है। भट्टारक अमृतचद्र के गुरु माधवचन्द्र थे। 'पज्जुण्ण चरिउ' की ग्रथ-प्रशस्ति मे 'वम्हणवाड' नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि मालव-नरेश रणधोरी या रणधीर के पुत्र वल्लाल का माण्डलिक भृत्य अथवा सामन्त गुहिलवशीय क्षत्रिय भुल्लण उस समय

वह्मणत्राड का शासक था ।[7] श्री परमानद जैन शास्त्री ने 'प्रशस्ति-संग्रह' मे ध्यान आकृष्ट किया है कि मत्री तेजपाल के आबू के लूणवसति के स० 1287 के शिलालेख मे मालवा के राजा बल्लाल का यशोधवल के द्वारा मारे जाने का उल्लेख है ।[8] यह यशोधवल गुजरात के नृपति कुमारपाल का माण्डलिक भृत्य था—इसकी पुष्टि अचलेश्वर मदिर के शिलालेख के पद्य से भी होती है ।[9]

अजरी गांव के वि० स० 1202 के एक शिलालेख मे यशोधवल को परमारवंश का महामण्डलेश्वर कहा गया है–'प्रमारवशोद्भव महामण्डलेश्वर श्री यशोधवलराज्ये' । कुमारपाल ने विक्रमसिंह को पराजित कर उसका राज्य उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया जिसने बल्लाल का मारा था ।[10] क्यो कि कुमारपाल का राज्य काल वि० स० 1199 से 1229 तक था और बल्लाल-वध की सूचक वडनगर-प्रशस्ति का काल सवत् 1208 है, अत बल्लाल की मृत्यु पज्जुण्ण चरिउ की रचना वि० स० 1208 से पूर्व अवश्य हो चुकी थी । प्रेमी जी का भी कहना है कि भावसेन के शिष्य जयसेन लाडवागड सघ के है जो उक्त जयसेन के ही शिष्य थे और परमार राजा मु ज और सिंधुल के समय मे थे । उनसे भी यह समय ठीक वैठ जाता है ।[11]

यह तो कृति के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर स्पष्ट है कि 'पज्जुण्ण चरिउ' की रचना पहले सिद्ध कवि ने की थी । उस विनष्ट कृति का ही पुनःसम्कार या अर्द्धविनष्ट कृति का परिपूर्णन सिंह कवि द्वारा सम्पन्न हुआ है । किन्तु सिद्ध और सिंह नामक दो कवियो का कृतित्व इस रचना मे होते हुए भी दोनो मे किस कवि का कृतित्व कितनी मात्रा मे है—यह भी एक प्रश्न है। यद्यपि श्री नाथूराम प्रेमी को "ऐसा मालूम होता है कि इस ग्रथ के प्रारम्भ की आठ सधियाँ तो सिद्ध नामक कवि की हैं जो देवण पिता और पपाइय माता के पुत्र थे और शेप की पूर्ति अल्हण (यह नाम रल्हण होना चाहिए —ले०) और जिनमती के पुत्र कवि सिंह ने की है ।'[12] तथापि इस अनुमान का कोई कारण उन्होने नही दिया है, किन्तु आमेर शास्त्रभडार की जिस प्रति के आधार पर हमने इस शोध-प्रवंध मे उद्धरण दिये है उसमे आठवी सधि ही अ तिम सधि है, जहाँ सधि की समाप्ति मे 'सिद्ध' कवि का नाम स्पष्ट उल्लिखित है—"इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ काममोक्खाए कइ सिद्ध विरइआए अट्ठम परिछेअ समत्तो ।" इसके पश्चात् 9 वी सधि के अ त से ही सिंह कवि का माता-पिता के नामोल्लेख सहित, कृतिकार के रूप मे आना प्रारंभ हो जाता है—"इय पज्जुण्य कहाए पयडिए धम्मत्थ काममोक्खाए वुह रल्हण कइ सीह विरइयाए णवमो सधि परिछेअ समत्तो ।" इस प्रकार 8वी सधि तक निरपवाद रूप मे सिद्ध कवि तथा 9वी से 15वी (अन्त) तक सिंह कवि का नाम आने से सिद्ध है कि आठवी सधि तक रचना सिद्ध कवि की है और उसके वाद सिंह की । ग्रथ कलेवर की दृष्टि से सिद्ध तथा सिंह के कृतित्व का अनुपात क्रमश लगभग 45.55 है ।

अत· कृतित्व की दृष्टि से दोनो का प्राय समान महत्त्व है। प्रारम्भिक प्रशस्ति मे उल्लेख है कि भट्टारक अमृतचद्र ने सिद्ध को काव्य-सृजन की प्रेरणा दी तथा अतिम प्रशस्ति से ज्ञात होना है कि सिह कवि के पिता रल्हण मलधारी माधवचन्द्र के श्रद्धालु शिष्य थे और सिंह स्वय माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचद्र के शिष्य थे। अमृतचद्र ही सिंह कवि से कहते हैं कि सिद्ध कवि कृत प्रद्युम्न-चरित्र विनष्ट हो गया है तुम उसे अपने गुणो से साधु-वचन मे पूर्ण करो।[13] इससे स्पष्ट है कि सिद्ध और सिंह के कृतित्व के मूल प्रेरक एक ही व्यक्ति के होने से दोनो कवियो की काव्य-रचना मे 20-25 वर्ष से अधिक का अन्तर नही होना चाहिए। "कई सिद्ध हो विरयत हो विगासु सपण्णउ कम्मवसेण नासु" का अर्थ अब तक विद्वानो ने यही किया है कि सिद्ध कृत कृति नष्ट हो गई। हम समझते हैं कि इसका अर्थ यह होना चाहिए कि प्रद्युम्न चरितम् की रचना करते हुए ही दैववशात् सिद्ध कवि मृत्यु को प्राप्त हुए। अन्यथा इतनी अल्प अवधि मे कृति का नष्ट होना और उसकी पूर्ति की आवश्यकता और महत्त्व स्वाभाविक नही है। अत स्पष्ट है कि सिद्ध कवि अधूरा प्रद्युम्न-चरित्र लिख कर ही काल-कवलित हो गये जिसकी पूर्ति दोनो कवियो के गुरु की प्रेरणा से सिंह कवि ने की।

श्री परमानद जैन शास्त्री ने कवि सिंह के तीन भ्राताओ के नाम शुभकर, गुणप्रवर और साधारण दिए है।[14] किन्तु हमारी सम्मति से ये नाम क्रमश शुभकर, साधारण और महादेव या महिदेव होने चाहिए क्यो कि आमेर भण्डार की प्रति स० 696 मे इस सम्बन्धी पाठाश से स्पष्ट है कि गुणप्रवर पृथक् नाम न होकर 'शुभकर' के लिए प्रयुक्त विशेषण है। ये चारो भाई—क्रमश सिंह, शुभकर, साधारण तथा महदेव अच्छे स्वभाव के तथा परोपकारीजन के रूप मे लोगो मे पसिद्ध थे।[15]

'पज्जुण्ण चरिउ' ग्रथ के प्रारभ में कवि ने क्षम-दम-मय-निलय, त्रिभुवन-तिलक, विगलित कर्म-कलक, हरिकुल-गगन-शशाक नेमि जिनेश्वर की स्तुति की है। फिर कवि सिद्ध सरस्वती-वदना करते है।

देवी सरस्वती कवि को स्वप्न मे दर्शन देती है। वे एक श्वेतवस्त्र-धारणी, मनोहारी, कमलहस्ता, अक्षसूत्र-धारिणी नारी के रूप मे प्रकट होकर कवि से प्रश्न करती हैं—"हे सिद्ध कवि, तू अपने मन मे किस चिंता मे लीन है ?" इसे सुनकर सिद्ध प्रत्युतर मे कहते हैं—"हे माता, अपनी काव्य-बुद्धि का स्मरण कर मुझे लज्जा आती है। मुझे चिंता है कि क्षुद्र (बौना) होते हुए भी मैं ताल-वृक्ष के फल की इच्छा करता हूँ। अधा होते हुए भी नवल नृत्य देखने का अभिलाषी हूँ। बहरा होते हुए भी गीत सुनना चाहता हूँ। अर्थात् सब प्रकार से असमर्थ होते हुए भी कविकर्म का इच्छुक और कवियश प्रार्थी हूँ।" तब देवी सरस्वती कवि को काव्य-सृजन का वरदान देती हैं।[16]

फिर मलधारी माधवचन्द्र के शिष्य भट्टारक अमृतचद्र वाभनवाड़े नगर मे आते हैं। कवि ने जैसा इन यतिवर के विषय मे सुना था वैसा ही उन्हे नियमशील, सयम-निधान, प्रबुद्ध-जन-प्रधान पाया। कवि द्वारा मुनि-का अभिवादन करने पर मुनि ने कवि से नाना कौतुकपूर्ण अति मनोज्ञ प्रद्युम्न-चरित्र की रचना तुरन्त प्रारम्भ करने के लिए कहा। कवि, इस वार असामर्थ्य की नही, किंतु दुर्जन-विघ्न की वात कह आशका व्यक्त करते है।

इस प्रसग मे कवि का यह कहना कि जिन चतुर्मुज ने अद्भुत शब्दो मे काव्य-रचना की थी उन्हे ही ये भयकर मत्त दुर्जन रूपी सर्प डसने पर उतर आये तो मेरी रक्षा कहाँ है ?"[17] वडा महत्वपूर्ण है। इससे विद्वानो के इस अनुमान की पुष्टि होती है कि स्वयभू से पूर्व चतुर्मुज अपभ्र श के मान्य कवि थे और उन्होने हरिवशपुराण की रचना की थी जिसके अन्तर्गत, सिद्ध कवि के सकेतानुसार, प्रद्युम्न-चरित्र भी समाविष्ट था। यह भी हो सकता है कि चतुर्मुज ने प्रद्युम्न चरित्र की स्वतत्र ग्रथ के रूप मे ही रचना की हो। सिद्ध कवि ने जिस सदर्भ मे यह वात कही है उससे यह अनुमान भी असगत नही होगा। इस प्रकार स्वयभू से भी पूर्व अपभ्र श के श्रेष्ठ कवि के रूप मे चतुर्मुज को विद्व मानता तथा हरिवश और प्रद्युम्न-चरित्र विषयक उनके यशस्वी कृतित्व के सम्बन्ध मे स्वयभू (8वी-9वी शती) पुष्पदत (10वी शती) तथा धवल (10वी-11वी शती)[18] के अतिरिक्त सिद्ध कवि (12वी शती या उससे पूर्व) के साक्ष्य से प्रामाणिकता और प्रबल हो जाती है।

उपलब्ध प्रद्युम्न-चरित काव्यग्रथो मे महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' को प्रद्युम्न-चरित विषयक प्रथम स्वतत्र प्रबन्धात्मक काव्य-कृति होने का गौरव प्राप्त है।

2. महासेनाचार्यकृत प्रद्युम्न-चरित्र में कथानक-संगठन

इसलिए इसके अध्ययन का विशेष महत्त्व है। इससे पूर्व प्रद्युम्न-कथा पौराणिक रूपो मे ही निवद्ध हुई है। यद्यपि इससे पूर्व भी प्रद्युम्न-चरित्र विषयक रचनाएँ अवश्य हुई होगी इसमे सदेह नही। चतुर्मुज का उल्लेख सिद्ध कवि के साक्ष्य के आधार पर ऊपर किया जा चुका है। महासेनाचार्य भी कहते है कि गणेश्वर इत्यादि मर्यादा प्राप्त कवियो ने अतीत मे जो कुछ विस्तार से कहा है उसी को सक्षिप्त रूप से कहने का श्रम ही मैंने तो किया है।[19] इससे स्पष्ट है कि गणेश्वर ने तथा अन्यान्य कवियो ने भी प्रद्युम्न-चरित काव्य-ग्रथो की रचना की थी जो अद्यावधि प्रकाश मे नही आये अथवा विलुप्त हो गये है। अत वर्तमान स्थिति मे तो महासेनाचार्य की कृति का सम्बन्ध सीधा वैष्णव तथा जैन पौराणिक सन्दर्भो से ही जुड़ सकता है।

महासेन ने ग्रथ के प्रारम्भ मे नेमि जिनेश्वर की स्तुति की है। उसके पश्चात् देवी भारती की वदना करता हुआ कवि आगम साहित्य के आधार पर उपेंद्र-सूनु

(कृष्ण-पुत्र) प्रद्युम्न का पावन चरित्र वर्णन प्रारभ करता है। जम्बूद्वीप में सौराष्ट्र देश और द्वारका नगरी का वर्णन करने तथा कृष्ण-महिमा का स्तवन करने के बाद कवि सत्यभामा द्वारा नारद-अपमान से प्रद्युम्न-कथा का प्रारभ करता है। अन्त मे प्रद्युम्न द्वारा वैराग्य-धारण और तप, कवि द्वारा प्रद्युम्न-साम्व-अनिरुद्ध की स्तुति द्वारा महासेनाचार्य ने अपने कथानक की इतिश्री की है। कवि ने इस समस्त कथानक को 14 सर्गों मे निबद्ध किया है।

इस कथा-सगठन पर जैन पौराणिक प्रभाव स्पष्ट है। कथा का मुख्य रूप तथा उसके विभिन्न प्रमुख सूत्रो का आदान जैन पुराण परम्परा से ही हुआ है। किन्तु कवि पर वैष्णव परम्परा का भी प्रभाव है। हम यह देखते हैं कि वैष्णव परम्परा का प्रभाव आगे के कवियो पर क्रमश क्षीण होता गया है। किन्तु महासेन पर वैष्णव पौराणिक प्रभाव अनेक रूपो मे है। कृष्ण-महिमा और कृष्ण के पराक्रमो का कवि ने अपेक्षाकृत अधिक गौरवपूर्ण वर्णन किया है। कवि ने कृष्ण के लिए 'विष्णु' शब्द का प्रयोग किया है। लोक मे उनके ईश्वर तथा विश्वभर रूप मे ख्याति का उल्लेख किया है तथा ग्रथ के अ त मे भक्तिपूर्वक प्रद्युम्न, साम्ब तथा अनिरुद्ध की स्तुति करते हुए उनसे इष्ट सुख प्रदान करने और कल्याण करने की प्रार्थना की गयी है। इस प्रसग मे कवि ने इन कृष्ण परिजनो को 'पूज्यो मे भी पूज्य 'भगवान' तथा 'विभु' कहा है।[20] प्रद्युम्न-हरण का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि 'पुत्रोत्सव के पाच दिन व्यतीत हो जाने पर' प्रद्युम्न का हरण हुआ अर्थात् छठे दिन प्रद्युम्न-हरण की सूचना कवि देता है।[21] प्रद्युम्न-कथा के जैन पौराणिक उत्स और वैष्णव रूप से उसके अ तर को स्पष्ट करते समय हमने सूचित किया था कि जैन पुराण-परम्परा मे प्रद्युम्न-हरण का निश्चित दिन निर्धारित नही है। अत कवि इस सम्बन्ध मे विष्णुपुराण से ही परोक्ष या अपरोक्ष रूप से पभावित है। जैन परम्परा मे कालसवर को विद्याधर तथा ज्योतिषीदेव और बाण को भी असुर के स्थान पर विद्याधर नरेश आदि कहे जाने की परिपाटी का उल्लेख पहले किया जा चुका है। जैन परम्परा मे उक्त दैत्य, दानव, असुर आदि को विद्याधर तथा व्यतर आदि देव-वर्ग मे सम्मानित स्थान प्रदान करने की सामान्य प्रवृत्ति ही है, किन्तु महासेनाचार्य के अनुसार धूमकेतु प्रद्युम्न का हरण करते समय कहता है कि पूर्व-जन्म मे मेरी पत्नी का मधु नृप के रूप मे हरण करने वाले इस शिशु का यदि आज मैंने हरण नही किया तो मेरी 'दैत्यता' व्यर्थ है।[22] इसी प्रकार प्रद्युम्न द्वारा सोलह लाभ प्राप्ति के प्रसग मे कवि ने प्रद्युम्न द्वारा विद्याधरो, यक्षो और नागो के साथ-साथ राक्षसो, दनुजो और दैत्यादि के पराजित होने और उसे भेंटें प्रदान करने का जो उल्लेख किया है उस पर भी वैष्णव प्रभाव परिलक्षित होता है। जैन कवियो ने प्राय युद्ध सम्बन्धी प्रसगो का चलता हुआ वर्णन किया है। किन्तु महासेनाचार्य ने कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। इस प्रसग मे कवि ने दिव्य अस्त्र-शस्त्रो[23] मायामय आयुधो,[24] आग्नेयास्त्र,

वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, कामास्त्र आदि अस्त्रो और उनके प्रभावो का वर्णन किया है[25] इस वर्णन पर वैष्णव हरिवशपुराण तथा सहिता-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। प्रस्तुत ग्रथ के प्रथम खड के तृतीय अध्याय मे उल्लिखित सहिता-साहित्य मे वर्णित अस्त्र-शस्त्रो से यह वर्णन तुलनीय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महासेनाचार्य पर वैष्णवपुराण परम्परा का अनेक रूपो मे प्रभाव है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि कथा के मुख्य स्रोत, स्वरूप और तंतु-रचना के लिए कवि ने जैन पुराणो को ही आधार बनाया है।

कथानक-सगठन मे महासेनाचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण की अपेक्षा जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण से अधिक प्रभावित हैं। सत्यभामा द्वारा नारद का अपमान, नारद की प्रेरणा से कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण, कृष्ण का सत्यभामा को रुक्मिणी के पान की उगाली तथा वन-देवी रूप से छकाना, प्रद्युम्न को खोजने के लिए नारद का पुष्कलावती देश मे सीमधर स्वामी की शरण में जाना, नारद का मेघकूटपुर जाकर प्रद्युम्न को देखना, नारद का रुक्मिणी को 16 वर्ष बाद प्रद्युम्न के लौटने तथा उस समय पुत्रागमन सूचक चिन्हो के प्रकट होने की बात कहना, प्रद्युम्न के पूर्व-भव-वर्णन मे द्विज-पुत्रो, अग्निभूति-वायुभूति का शृगाल रूप मे उत्पन्न होना और प्रवर ब्राह्मण का मौन तोडना, राजा मधु का भीम नामक शत्रु से युद्ध करने के लिए प्रयास, अपने सामत हेमरथ को स्त्री सहित वसतोत्सव के बहाने से राजधानी बुला कर रोक रखना और हेमरथ को विदा करना, राजा मधु के समक्ष परदारसेवी पुरुष का वाद न्याय के लिए प्रस्तुत होना, पत्नी-वियोग मे हेमरथ का उद्भ्रान्त हो जाना (कनकरथ का पर्याय जो गुणभद्र ने प्रयुक्त किया है, जिनसेन ने इसके स्थान पर वीरसेन नाम दिया है अत नाम गुणभद्र के अनुसरण मे है और कथा-सूत्र जिनसेन के अनुसार) कनकमाला के प्रद्युम्न पर आसक्त होने के प्रसग मे नारी-निन्दा मे कवि का रुचि न लेना, (जबकि गुणभद्र ने इस अवसर पर दृष्टातादि सहित नारी निन्दा की है, जिसका अनुसरण आगे के अनेक कवियो ने किया है) द्वारकापुरी को लौटते हुए मार्ग मे दुर्योधन-कन्या उदधिमाला का प्रद्युम्न द्वारा हरण, प्रद्युम्न द्वारा मायामयी रुक्मिणी का नही अपितु वास्तविक रुक्मिणी का हरण करना, प्रद्युम्न के सौतेले भाइयो का प्रद्युम्न को यौवराज्य पद देने की घोषणा से ईर्ष्यालु होकर प्रद्युम्न को मारने की घात करना, कनकमाला का प्रद्युम्न पर सोलह लाभ प्राप्ति के बाद ही कामासक्त होना (उसमे पूर्व नही), प्रद्युम्न और साम्ब द्वारा चाण्डाल वेष मे वैदर्भी का हरण इत्यादि कथा-सूत्रो की योजना महासेन ने जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण के अनुसरण मे ही की है क्यो कि गुणभद्र मे इनमे से एक-दो प्रसग यथा कनकमाला की कामासक्ति और प्रद्युम्न के सौतेले भइयो का षडयत्र परिवर्तित रूप मे वर्णित है और शेष कथा-सूत्रो का नितान्त अभाव है। सोलह लाभ वर्णन के प्रकरण मे महासेनाचार्य ने चौदह अभियानो का उल्लेख किया है। इन अभियानो का क्रम तथा स्थान, अधिवासी देव और प्राप्य वस्तुओ के नाम इत्यादि भी जिनसेनकृत

के वर्णन से ही अधिक सादृश्य रखते है । द्वारका के मार्ग मे प्रद्युम्न द्वारा किये गये कौतुक तथा द्वारका मे प्रदर्शित क्रीडा कौतुको का क्रम और विवरण रूप भी जिनसेन से ही साम्य रखता है । अत कतिपय नामो को छोड कर कथानक के स्वरूप और उसकी योजना की दृष्टि से महासेनाचार्य की कृति जिनसेन की परम्परा मे ही है । उस पर गुणभद्र का विशेष प्रभाव नही है ।

किन्तु कवि ने जिनसेनाचार्य का पूर्णत अनकरण नही किया है । पात्रो के नाम तथा पदार्थों के नाम और क्रम मे सूक्ष्म अतरो के अतिरिक्त कवि ने कथा मे नयी योजना द्वारा अपनी मौलिक कल्पना और रचना-कौशल का भी परिचय दिया है । उदाहरण के लिए, जिनसेनाचार्य ने द्वारका-गमन हेतु प्रद्युम्न द्वारा विमान रचने के प्रसग का वर्णन मात्र एक श्लोक मे उल्लेख रूप से किया है ।[26] इसी प्रकार गुणभद्र ने भी वृषभ नामक रथ पर नारद सहित प्रद्युम्न के आरूढ होने का क्षिप्र उल्लेख कर कथा को आगे बढ़ा दिया है[27] जब कि महासेनाचार्य ने पहली बार इस प्रसग का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है और हास्य की सृष्टि के लिए मार्मिक प्रसग के रूप मे इस कथा-स्थल की उद्भावना कर अपने कौशल का परिचय दिया है ।

प्रद्युम्न नारद-रचित विमान को पल भर मे तोड-फोड देता है और 'शिल्प-कोविद' कह कर नारद का उपहास करता है ।[28] ध्यान देने की बात यह है कि विमान रचने और इस अवसर पर नारद से परिहास करने का यह प्रसग इतना रोचक और लोकप्रिय हुआ कि आगे के बहुसख्य प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य लेखको ने महासेन से इसे ग्रहण किया । इसी प्रकार प्रद्युम्न द्वारा वृद्ध अश्व-व्यापारी वेष मे भानु को अश्व-सचालन मे अपटु सिद्ध करने और उपहास करने के प्रसग मे महासेनाचार्य ने वृद्ध व्यापारी वेश का जो चित्रण किया है,[29] वह भी पर्याप्त लोकप्रिय रहा है और परवर्ती कवियो को उसने प्रभावित किया है । ऐसे ही एक नवीन कथा-सूत्र की योजना साम्बकृत क्रीडा कौतुको के प्रसग मे भी है । जिनसेनाचार्य ने स्वय साम्ब को रूपमती कन्या का वेष धारण करवाया है तथा साम्ब भानु विवाहार्थ एकत्र सौ कन्याओ को स्वय ब्याह लेता है जब कि महासेनाचार्य की कृति मे शाब वन मे एक सुन्दर कन्या देखता है जिसके माता-पिता बिछुड जाते हैं । वह घर लेजा कर उस कन्या का रक्षण करता है और अन्त मे सुभानु को यह कन्या प्रदान कर देता है ।

महासेनाचार्य ने कथा मे सौष्ठव लाने की दृष्टि से कही-कही कथा-सूत्रो की योजना मे परिवर्तन भी किये है । हरिवशपुराण मे जिनसेन ने कालसवर द्वारा प्रद्युम्न को दो बार यौवराज्य पद देने का वर्णन किया है-पहली बार तब जब कि प्रद्युम्न उसे शिला तले शिशु रूप मे प्राप्त होता है और वह उसे निस्सतान कनकमाला को देना चाहता है । तब कनकमाल की इस आशका पर कि अपने पाच सौतेले भाइयो के रहते उसकी दुर्दशा होने की आशका है, कालसवर अपने कान के सुवर्णपट्ट से शिशु प्रद्युम्न

का पट्ट-बंध कर उसे युवराज पद प्रदान करता है ।[30] दूसरी बार अपने शत्रु सिंहरथ को पराजित करने पर पुन वह प्रद्युम्न के यौवराज्य पद का महापट्ट बाधता है ।[31] गुणभद्र ने केवल प्रथम बार ही पट्ट बाधने का उल्लेख किया है । और दूसरी बार केवल श्रेष्ठ भेंटे दे कर ही प्रद्युम्न को सम्मानित किया जाता है ।[32] किंतु महासेनाचार्य ने केवल कालशवर द्वारा प्रद्युम्न को यौवराज्य पद देने का वचन देना ही वर्णित किया है तथा प्रद्युम्न द्वारा अपने शत्रुओ को पराजित करने पर भी कालशवर प्रद्युम्न को युवराज पद देने की इच्छा ही प्रकट करता है[33] जिससे प्रद्युम्न के सौतेले भाइयो को उससे ईर्ष्या हो जाती है और वे उसे मारने का उपक्रम करते है । कथानक-योजना मे यह परिवर्तन कर महासेनाचार्य ने शिथिलता दोष से उसे बचा कर कौतूहल का निर्वाह किया है । इसी प्रकार उपा-अनिरुद्ध प्रकरण को हटा कर भी कवि ने कथानक-योजना को अनावश्यक विस्तार से बचा लिया है ।

किंतु कही-कही कथानक-सगठन मे पुनरुक्ति और असगति दोष भी आ गया है । प्रद्युम्न के पूर्व भवो के उल्लेख के पहले सीमधर स्वामी द्वारा मधुरूप मे प्रद्युम्न को कौशल नगर के हेमनाभ राजा तथा धारिणी रानी का पुत्र कहा गया है किंतु सोलह लाभ प्राप्ति प्रसग मे विजयार्द्ध गिरि पर प्रद्युम्न की एक भुजग से भेंट होती है जो प्रद्युम्न के पूर्व भवान्तर्गत उसे कनकनाभ तथा अनिला रानी का 'हिरण्य' नामक पुत्र बताता है । वही मदन (प्रद्युम्न) के रूप मे जन्म लेता है ।[34] इस प्रकार एक ही व्यक्ति के दो समान पूर्व भवो का पृथक् रूप से उल्लेख अनावश्यक और असगत है । भवान्तर-वर्णन मे रुचि का अतिरेक ही इस असंतुलन और असगति के लिए उत्तरदायी है । भवान्तर-वर्णन के क्रम मे इस अतिरिक्त अनावश्यक कड़ी का सूत्रपात महासेनाचार्य से ही होता है, जिसका परवर्ती कवियो ने रुचि-भेद से व्यर्थ ही निर्वाह किया है ।

3. महासेनाचार्य कृत वस्तु–वर्णन और रूप–वर्णन :

वस्तु-वर्णन और रूप-वर्णन के अन्तर्गत कवि ने अनेक सुन्दर चित्रांकन प्रस्तुत किये है । नारद द्वारा चित्रपट पर अंकित रुक्मिणी के मनोहारी सौदर्य को कवि इन शब्दो मे व्यजित करता है— "विधाता ने विरोधी उपादानो के एकत्र सयोग से रुक्मिणी की रचना की है । "न तो चन्द्रमा ही विलीन हुआ, न हाथी ही पगु हुए, न कोकिला निर्वाक् हुई, न हरिणियाँ ही दृष्टिहीन हुई, न मयूर ही शिखाहीन हुए फिर भी आश्चर्य है कि विधाता किस प्रकार रुक्मिणी की देह सृष्टि मे चन्द्रमा-मुख, गज-गति, पिकस्वर, मृगनयनो तथा केकीकलाप की रचना कर सका ।"[35] रमणी-रूप की ही भाँति कवि ने शिशु-रूप के वर्णन मे भी रुचि व्यक्त की है । कालशंवर और कनकमाला को शिला तले शिशु प्रद्युम्न की प्राप्ति के अवसर पर तथा द्वारका मे नाना क्रीडा-कौतुक सम्पन्न करने के बाद रुक्मिणी के समक्ष वास्तविक

रूप मे प्रकट हो उसके आग्रह पर बाल-रूप मे लीलाएँ प्रदर्शित करते समय बालक के सौंदर्य और उसकी सहज स्वाभाविक चित्ताकर्षक चेष्टाओ का कवि ने मनोरम वर्णन किया है।[36] कामासक्ता कनकमाला का चित्र अंकित करते हुए कवि कहता है कि कभी वह विवश भाव से अपने कुचतटो की ओर दृष्टिपात करती हुई बार-बार अंगड़ाई लेती थी तो कभी बिखरे हुए बालो को जूडे मे बाधने-का व्यर्थ उपक्रम करने लगती थी। वह बार-बार अपना जूडा बांधती-खोलती थी। अपनी कोमल हथेली पर अपना मुख कमल टिकाये हुए कभी वह हर्षित होती थी तो कभी अचानक उदास हो जाती थी।[37] इसी प्रकार कवि ने प्रद्युम्न को षोडश-लाभ प्राप्ति के प्रसग मे उससे युद्धकर्ता कपि, वराह, भुजगादि का,[38] प्रद्युम्न द्वारा धारण किये गये भील (शबर) वेषका,[39] वृद्ध अश्व-व्यापारी के रूप का,[40] भोजनभट्ट वृद्ध विप्र का,[41] क्षुल्लक रूप का,[42] भी सुन्दर वर्णन किया है। इन सबके अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने मानव व्यक्तित्व के सभी रूपो तथा अवस्थाओ के चित्रण मे रुचि लेते हुए देव-दनुजादि कोटियो के पात्रो का भी आकृति-वर्णन किया है। उसने मानवीय रूप के रौद्र, भयावह और सुरम्य सभी पक्षो के चित्रण मे लेखनी चलायी है। उसके रूप-वर्णन मे सुन्दर आलकारिकता के साथ ही अनुभाव-चित्रण और औचित्य-निर्वाह की भी झलक मिलती है। यह अवश्य है कि उसकी प्रतीक-योजना और अलकार-विधान परम्परागत, रूढिबद्ध और सीमित रहा है।

रूप-वर्णन की ही भाँति कवि का वस्तु-वर्णन पक्ष भी पर्याप्त परिपुष्ट है। कवि ने देश, नदी, वन, उपवन, ऋतु, सध्याकाल, सैन्यसज्जा, युद्ध इत्यादि का सरस और रुचिकर वर्णन किया है। सुराष्ट्र देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वहा की बाडियो मे रस से भरे हुए गुरु भार वाले गन्ने पवन से प्रकपित होते हुए भी मानो इस भय से पृथ्वी पर नही गिरते कि नीच मनुष्यो द्वारा जड से उखाड कर काट डाले जाएँगे। परिपक्व पीतवर्ण धान के पौधे-वहा कमलो से सुवासित जल को पीने की इच्छा से झुके हुए है। वहा के गोचर वनो मे नवीन तृणाकुरो को चरते हुए गायो के झुण्डो से आच्छादित भूमि इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होती है जैसे तारा गणो से शोभित आकाश।[43]

वसंत-वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मधुरस रूपी आसव के लोभ मे श्वेत कुडमल पुष्प पर आसीन भ्रमर ऐसा प्रतीत होता है मानो मोती पर इन्द्रनीलमणि विराजित हो। कोकिल-स्वर रूपी मृदग बजाती हुई और भ्रमर-गुजन रूपी गीत गाती हुई नाचती-इठलाती दक्षिण पवन-वनराजियो को सुशोभित करती है।[44] द्वारका की ओर लौटते हुए प्रद्युम्न को मार्ग मे नारद वन की शोभा दिखाते हुए कहते हैं कि हे प्रद्युम्न, अपनी तीक्ष्ण दाढो और नखो से वनशूकर को विदीर्ण करते हुए, उसके मास-भक्षण और रक्त-पान से भयकर रूप धारण किये हुए, पूछ को पीछे की ओर उछालते हुए गहन-शैलरध्रो को अपने गभीर नाद से कम्पित करते हुए, भयकर किंतु मनोहर रूप धारण करने वाले क्रीडानिरत सिंह को देखो।[45] इस प्रसग मे स्वभावोक्ति का

अच्छा निर्वाह हुआ है। अनुरणन और ध्वन्यात्मकता से अतिरिक्त वीर भावो और वीरोचित चेष्टाओ का वर्णन करते हुए भाव और विभाव दोनो पक्षो के सम्यक चित्रण की ओर ध्यान दिया है।[46]

4 चरित्र-चित्रण तथा सवाद-योजना

पात्रो का चरित्र-चरिए घटनाओ के माध्यम से तो व्यक्त हुआ ही है किंतु कवि ने कही-कही अपनी ओर से अथवा पात्रो की अपनी उक्तियो के रूप मे भी सुन्दर चरित्र-व्यजक स्थलो की उद्‌भावना की है। सत्यभामा का चरित्र-चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि 'सत्यभामा दीन वश मे उत्पन्न नही थी, न वह चंचल स्वभाव की थी, न पंकिल अधोगामी प्रवृत्तियाँ ही उसमे थी। वह जडमति भी नही थी। अत॰ वह नदी नही थी बल्कि उससे भी कही पवित्र थी।"[47] इसी प्रकार रुक्मिणी के मुख से उद्‌गारित ताम्बूल-चूर्ण के प्रसग मे जब कृष्ण द्वारा सत्यभामा का उपहास किया जाता है तो वह अपने चातुर्यपूर्ण वचनो से विगडी हुई परिस्थिति को भी अपने पक्ष मे सँभाल लेती है। इस समय वह हीन भावना से कुण्ठाग्रस्त नही होती अपितु उदाराशयता, शालीनता, बुद्धिमत्ता और स्वाभिमान भावना प्रकट करती है। सपत्नी-ईर्ष्या-दग्ध नारी के स्थान पर उसके इस वचनविदग्ध प्रणयिनी रूप[48] से सोमकीर्ति आदि परवर्ती कवि अत्यन्त प्रभावित हुए है। उन्होने उसके इस रूप की रग-रेखाओ को और भी उभारा है। नारद का चरित्र-चित्रण करते हुए महासेनाचार्य ने उनके गुणो और परिहास-कुशल रूप को रेखाकित किया है। वे कलहप्रिय होते हुए भी जिनमार्ग मे निरत है। वे अभिमान धनी और सयमी हैं। वे मनुष्यलोक मे सर्वत्र तीर्थंकरो और जैन तपस्वियो के मदिरो और आवास स्थानो की सदा वन्दना करते है।[49]

महासेनाचार्य ने सवाद-योजना मे भी अच्छी गति का परिचय दिया है। सवाद-कौशल की दृष्टि से अनेक स्थल कलात्मक हैं, विशेषत॰ ऊपर उल्लिखित सत्यभामा के कृष्ण से सवाद, श्रीकृष्ण के प्रति सारथी की उक्ति एव युद्ध के लिए परस्पर एक दूसरे को ललकारते हुए पिता-पुत्र (कृष्ण और प्रद्युम्न) के सवादो मे कवि ने सवाद-लेखन की क्षमता का प्रशसनीय परिचय दिया है।[50]

5 काव्य-सौन्दर्य, छद-अलंकार-योजना, प्रबध-काव्यत्व

कविवर महासेनाचार्य ने अपनी इस कृति मे वशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसततिलका, अनुष्टुप, नलिनी, हरिणी, मत्तमयूर, शार्दूल-विक्रीडित, उपजाति, मदाक्रान्ता इत्यादि अनेक प्रसिद्ध और अल्पप्रयुक्त सस्कृत छंदो का सफल प्रयोग किया है। प्रत्येक सर्ग के अत मे छद-परिवर्तन की सूचना तथा नये छद से नये सर्ग का प्रारभ करने की सस्कृत प्रबन्धकाव्य-परम्परा का भी कवि ने सफल निर्वाह किया है। एक ही सर्ग मे एक से अधिक छदो का प्रयोग भी कवि की छद-योजना की विशेषता है। कथानक मे गति की तीव्रता या

मद मथरता तथा भावो की उग्रता, सौम्यता, सकुलता, क्षिप्रता इत्यादि के अनुरूप ही कवि ने छद-परिवर्तन किया है। छद-चयन मे उसने अच्छी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इस दृष्टि से इस कृति का आठवाँ तथा नवाँ सर्ग विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमे अनेक छदो का सफल प्रयोग कथा-गति और भाव-स्थिति के अनुसार हुआ है। नवे सर्ग मे कवि ने छद-योजना मे अपने चमत्कार-प्रदर्शन की रुचि का भी परिचय दिया है। उसने छदो के नामोल्लेख सहित (और उन नामो के सामान्य वाच्यार्थ की कथा-विवृत्ति मे भी सगति सिद्ध करते हुए) द्रुतविलम्बित, मालिनी, हरिणी, मत्तमयूर और शार्दूलविक्रीडित छदो का एक ही क्रम मे सुन्दर प्रयोग किया है।[51] कवि ने सर्ग के अन्त मे छद-परिवर्तन करने के अतिरिक्त काव्य के प्रारभ मे इष्ट-स्तुति करने तथा सध्या-प्रभात, ऋतु, युद्ध, नदी. तडाग आदि जलाशयो और द्यूत-क्रीडा आदि के वर्णनो द्वारा दण्डी निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणो का पूर्ण निर्वाह किया है।

अलकारो मे कवि ने शब्दालकार और अर्थालकार दोनो प्रकार के अलकारो का प्रयोग किया है। कवि को उत्प्रेक्षा, श्लेष, उपमा, रूपक विशेष प्रिय है। सुराष्ट्र देश के वर्णन-प्रसग मे उसने प्रथमसर्ग के आठवे श्लोक मे वस्तूत्प्रेक्षा, उससे अगले ही श्लोक मे स्वस्थाबरा, (स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ आकाश) शब्द मे श्लेष अलकार, का तथा इसी क्रम मे गन्ने के भूमि पर पामरजनो के भय से न गिरने की कल्पना मे हेतूत्प्रेक्षा अलकार का तथा गो-मडल से तारकगणो के सादृश्य-विधान मे पूर्णोपमा अलकार[52] का सुदर प्रयोग किया है। एक ही क्रम मे इतने अलकारो का रसपेशल प्रयोग कवि के काव्य-अभ्यास और लक्षण ग्रथो के अध्ययन का सूचक है। कवि ने अनेक स्थलो पर अलकार का सश्लिष्ट प्रयोग भी किया है। प्रथम सर्ग के अठारहवे श्लोक मे नदी का वर्णन करते हुए 'मातग' (चाण्डाल, हाथी) तथा 'द्विज' (पक्षी, ब्राह्मण) शब्दो के श्लिष्ट प्रयोग से विरोधभास अलकार[53] का सुन्दर विधान किया है। इसी प्रकार समुद्र के द्वारका के तटो से टकराकर दूर लौट जाने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अपने तरल कल्लोल रूपी हाथो से तट रूपी नितम्बो को थपथपा कर भी (द्वारका का कृष्ण भोग्या होने के कारण) परागनासग के भय से कम्पित समुद्र रूपी नायक असफल मनोरथ ही वापस लौट जाता है। यहाँ कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय देते हुए कवि ने रूपकाश्लिष्ट हेतूत्प्रेक्षा[54] का सुदर प्रयोग किया है। इसी क्रम मे जैन विद्यालयो के वर्णन मे रूपकाश्लिष्ट वस्तूत्प्रेक्षा तथा सत्यभामा के चारित्र्य-वर्णन मे 'नदीनजाता' (न दीन जाता, नदी न जाता) तथा 'जलाशया' (या जडाशया) आदि शब्दो मे श्लेष के आश्रय से रूपक समन्वित भ्रान्तापन्हुति अलकार[55] प्रयुक्त हुए हैं। द्वारका-वर्णन के प्रसग मे दोष दीनभाव से श्रीकृष्ण से निवेदन करते हैं कि 'हे प्रभो, आपने हमे तो अपने राज्य से निष्कासित कर दिया, हमारा पालन नही किया, फिर आप 'विश्वभर' किस प्रकार कहे जाते है।[56] यहाँ कवि ने कल्पनाशक्ति का सुदर परिचय देते हुए जड तत्त्वो मे भी मानवीय व्यापारो का आरोप करते हुए

मानवीकरण का प्रयोग किया है। यह व्याजस्तुति अलकार का अच्छा निदर्शन है। कृष्ण द्वारा नारद के स्वागत के वर्णन मे रसिक शिरोमणि कृष्ण की मेघ से तथा तापस श्रेष्ठ नारद की हेमगिरि से तुलना मे औचित्य और अर्थगर्भिता स्वय स्पष्ट है।[57] रुक्मिणी के चित्रपट-लिखित सौन्दर्य-वर्णन के प्रसग मे कवि ने विरोधाभास, भ्राति, श्लेष तथा सागरूपक[58] इत्यादि कई अलकारो का एकत्र प्रयोग किया है। प्रद्युम्न-हरण की पूर्वकालीन सध्या के वर्णन मे भी श्लेप, सागरूपक अलकारो के अतिरिक्त मानवीकरण, जड मे चेतन व्यापारो के आरोप और चित्रोपमता के दर्शन होते हैं।[59] कौशलदेश के वर्णन-प्रसग मे भी कवि ने अनेक सुन्दर अलकारो की माला गूँथी है। वहाँ की नदियो के वर्णन मे सागरूपक, नागरजनो के वर्णन मे परिसख्या तथा श्लेष और कौशल की सुदरियो के वर्णन मे अतिशयोक्ति[60] अलकारो का आश्रय ग्रहण किया है। वपिका का वनिता से सागरूपक बाँधते हुए कवि ने श्लेष का प्रयोग किया है। इस छद मे इन अलकारो के अतिरिक्त माधुर्य गुण और वैदर्भी वृत्ति का भी सुदर निर्वाह हुआ है।[61] कवि महासेनाचार्य अवसरोचित काव्य गुणो और वृत्तियो के निदर्शन मे कुशल हैं। युद्ध-वर्णन के आधार पर कवि ने उचित ही गौडी रीति की काव्य-शैली मे ओजपूर्ण रचना की है।[62] कवि ने नाटकीय व्यग्य (ड्रैमैटिक आइरनी) के प्रयोग से सामान्य वर्णन के साथ-साथ ही भावी घटनाओ का भी परोक्ष सकेत दे दिया है। उदाहरण के लिए कालशबर-दम्पत्ति को शिला तले प्राप्त शिशु प्रद्युम्न के सौदर्य की प्रशसा मे उसे वैरियो के भी मन को जीतने वाले परम सुदर विविधिलक्षण विभूषित देह के धारक कहने के साथ ही 'विविधलक्षण' 'विग्रह' 'चरमदेह, नयनोत्सवः, जितेवैरिण' आदि शब्दो के माध्यम से शिशु-रूप प्रद्युम्न के भविष्य मे चरमशरीरी (अर्थात् इसी जन्म मे मुक्त) होने विविध लाभ प्राप्त करने सधि-विग्रह आदि घटनाओ के घटित होने तथा वैरियो पर जय-लाभ के द्वारा नाना नेत्ररजक उत्सवो के आयोजन होने आदि भावी जीवन-व्यापारो को कौशल से सूचित कर दिया है।[62] अनुरणन तथा ध्वन्यात्मकता की ओर कवि की रुचि नही रही है।

कवि के उक्त काव्योचित गुणो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सस्कृत के काव्य और लक्षणग्रथो का उसका अच्छा अध्ययन और अभ्यास था। साथ ही वह परिपाटी का ज्ञाता होते हुए भी मात्र जड परम्परागामी कवि नही है। उसके काव्य मे चित्रोपमता, मानवीकरण, नाटकीय व्यग्य और औचित्य के निर्वाह से सिद्ध है कि वह एक श्रेष्ठ कवि है। उसे काव्य की अच्छी पकड है और उसकी पैठ गहरी है। वसंत तथा वन-वर्णन मे विशेषत, और अन्यत्र भी, उसके वस्तु-व्यापार-वर्णन मे केवल स्थूल वस्तु-परिगणन की प्रवत्ति की पुनरावृत्ति न होकर सश्लिष्ट विम्ब-रचना की सामर्थ्य दीख पडती है। अधिकाश परवर्ती प्रद्युम्न-चरित्र प्रणेता कवियो ने इस महाकवि से वर्णन की रूढियो को तो ग्रहण किया किंतु उसके द्वारा उद्वेलित रसाविलता की स्रोतस्विनी को वे आगे प्रवाहित नही कर पाये। उनके काव्य मे क्रीड़ा-कौतुक के प्रति

आकर्षण और अघट-घटना-पटीयता का विस्तार होता चला गया, किंतु काव्य गुणो की समृद्धि का विकास नही दीख पडता। महासेनाचार्य की भाति रस-सृष्टि करने मे तो वे सफल नही हुए किंतु इस कवि की वर्णन रूढियो का अनुकरण उन्होने खूब ही किया है।

कविवर महासेनाचार्य द्वारा प्रयुक्त जो वर्णन-रूढियाँ प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य-परम्परा मे लोकप्रिय और प्रचलित हुई हैं उनमे से कुछ प्रमुख वर्णन-रूढियाँ ये है —

6. वर्णन-रूढ़ियां

1. नारी-रूप के प्रति जिज्ञासा: नारी रूप को देख कर पुरुष या स्त्री का इस प्रकार चमत्कृत हो जिज्ञासा प्रकट करना—'यह इद्र की पत्नी है, किन्नर रमणी है, चद्रमा की पत्नी है, यक्ष-कन्या है, नाग कन्या है, इत्यादि। रुक्मिणी के चित्रपट को देखकर द्वारकावासी ऐसी ही जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। सत्यभामा वनदेवी रूप मे रुक्मिणी के सौदर्य को देख कर यही जिज्ञासा व्यक्त करती है, यक्ष वसत की पुत्री रति को देख कर प्रद्युम्न भी इसी शैली मे औत्सुक्य प्रकट करता है।

2 स्त्री-औत्सुक्य वर्णन अपूर्व सुन्दर नायक-नायिका के युगल रूप के दर्शनार्थ आतुर स्त्रियो के औत्सुक्य-वर्णन मे उनके अस्त-व्यस्त और विपर्यस्त आचरण का उल्लेख यथा— कज्जल का भाल पर तिलक करना और कुकुम को नयनो मे तिलकवत आँज लेना, नूपुरो को कानो मे और कर्णाभूषणो को पैरो मे पहन लेना, करधनी को वक्षस्थल पर और हार को कटि मे धारण कर लेना इत्यादि। कृष्ण-रुक्मिणी के दर्शनार्थ उत्सुक्त स्त्रियो का ऐसा ही वर्णन कवि ने किया है। रति सहित प्रद्युम्न को सोलह लाभ प्राप्ति के बाद आते देख कर मेघकूटपर की स्त्रियो की भी ऐसा ही दशा होती है।

3 वैर-शोध हेतु विकल्प-चिंतन. अपने पूर्व भव के शत्रु का शिशु-रूप मे हरण करने पर धूमकेतु वैर-शोधार्थ अनेक विकल्पो का चिंतन करता है इसे तीक्ष्ण नखो से विदीर्ण कर दूँ, समुद्र मे मत्स्यो का भोजन बनाने के लिए या बाडवाग्नि से दग्ध होने के लिए डाल दूँ या काक इत्यादि पक्षियो की बलि के लिए शिला के नीचे दाब दूँ इत्यादि।

4 मुनि-आगमन-चिन्ह मुनि के आगमन पर उपवन का हरा-भरा हो जाना। यह भी अति प्राचीन पौराणिक रूढि है। महासेनाचार्य ने नदिवर्धन मुनि के आगमन पर इसी रूढि का प्रयोग किया है।

5 सैन्य-नद-वर्णन सेना अथवा युद्ध स्थलो का समुद्र या नद से सागरूपक बाँधते हुए कबन्धो का कच्छप, उछलते अश्वो का तरग, चमरो का फेन, इत्यादि के रूप मे

वर्णन करना। वैष्णव हरिवशपुराण से यह वर्णन-रूढि गृहीत हुई है, यह दिखाया जा चुका है। महासेन ने भी हेमरथ और भीम के युद्ध प्रसग मे इस रूढि का प्रयोग किया है।

6 शूर-कवच-भजन युद्ध के लिए सन्नद्ध शूरवीर के कवच का शौर्यातिरेक से हर्ष स्फुरण के कारण स्वत तडक कर टूट जाना। यह भी प्राचीन पौराणिक वर्णन रूढि है। महासेनाचार्य ने प्रद्युम्न द्वारा रुक्मिणी-हरण के अवसर पर यादव वीरो के शौर्य–वर्णन मे इस रूढि का प्रयोग किया है।

उक्त सभी वर्णन-रूढियाँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई है और प्रद्युम्न–चरित्र–काव्य परम्परा के अधिकाश परवर्ती कवियो ने इन वर्णन-रूढियो का आश्रय लिया है।

महासेन का महत्त्व, न केवल प्रद्युम्न-चरित्र विषयक सर्वप्रथम प्रबन्ध-काव्यकार के रूप मे वल्कि एक श्रेष्ठ समर्थ कवि के रूप मे भी असदिग्धहै।

7. महासेन का परवर्ती कवियो पर प्रभाव वस्तु-विन्यास और अभिव्यजन मे परवर्ती कवियो ने उनसे पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया है। महासेनाचार्यकृत सुराष्ट्र देश संध्याकाल आदि के उपर्युक्त वर्णन इतने लोकप्रिय हुए कि परवर्ती अनेक कवियो ने शब्दान्तर से उन्ही का छायानुवाद किया है। महासेनाचार्य का प्रभाव विशेषत सोमकीर्ति पर इतना अधिक पडा कि उन्होने अपने सस्कृत मे रचित प्रद्युम्न–चरित्र (रा० का० स० 1530) मे महासेन की कल्पनाओ और उक्तियो को किंचित शब्द–भेद से यथावत् ग्रहण कर लिया है। यथा—महासेनाचार्य की ही भाति सोमकीर्ति भी सौराष्ट्र देश का वर्णन करते हुए कहते है कि वहा के गन्ने भूमि पर नही गिरते। उन्हे भय है कि हम नीच पुरुषो द्वारा बाधे जाएँगे।[63] धान्य के खेत पीले होकर नीचे झुक रहे है मानो वे जल पीने के लिए नीचे झुके हो[64] इसी प्रकार प्रद्युम्न-हरण दिवसकालीन सध्या के वर्णन मे भी उक्ति-साम्य बहुलाश मे दीख पडता है।[65] महासेनाचार्यकृत सत्यभामा के रूप वर्णन, सैन्य-नद वर्णन, प्रणयी-युगल के दर्शनार्थ स्त्रियो की उत्कण्ठा–वर्णन[66] का प्रभाव भी सोमकीर्ति रचित उक्त प्रसगो—सत्यभामा–रूप वर्णन, सैन्य–नद वर्णन, तथा स्त्री औत्सुक्य-वर्णन पर पड़ा है।[67] यही नही, प्रद्युम्न-रूप वर्णन, रुक्मिणी-रूप-वर्णन तथा अन्यान्य स्थलो पर भी महासेनाचार्य का प्रभाव सोमकीर्ति पर स्पष्ट है। इसमे सन्देह नही कि महासेन पर भी पूर्ववर्ती प्रभाव है। अपनी अनेक अभिव्यजनाओ के लिए वह पूर्व-परम्परा का ऋणी है। महासेन द्वारा कृत सैन्य-नद वर्णन पर हरिवश का प्रभाव स्पष्ट है। इसी प्रकार अपनी अनेक उक्तियो के लिए उन पर कालिदास आदि रससिद्ध कवियो का प्रभाव भी ढूढा जा सकता है। फिर भी महासेन के सोमकीर्ति पर इस सीमा तक और इतने व्यापक प्रभाव से कवि-रूप मे महासेन का वर्चस्व और लोकप्रियता स्वय सिद्ध है। स्वय सोमकीर्ति ने इसको स्वीकार करते हुए कहा है कि पूर्वकाल मे महासेन आदि आचार्यों ने जिस प्रद्युम्न-चरित्र की रचना की है उस निर्मल चरित्र की

रचना मे मैं अल्पमति कहाँ समर्थ हू ?[68] प्रद्युम्न-चरित्र विषयक सर्वप्रथम प्रबन्ध-काव्य के रचयिता के अनुरूप ही उनका कृतित्व समृद्ध और काव्य-सौष्ठव-पूर्ण है।

8. सिद्ध तथा सिंह कृत 'पज्जुण्ण-चरिउ' का कथा-शिल्प

प्रद्युम्न-चरित्र विषयक उपलब्ध काव्य-कृतियो मे अपभ्रंश भाषा मे सिद्ध तथा सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण-चरिउ' कालक्रम की दृष्टि मे द्वितीय रचना है। इसके कृतिकारो का परिचायक विवरण पूर्ववर्ती पृष्ठो मे दिया जा चुका है। अत्र इसके कथा-शिल्प और काव्य-सौंदर्य का आकलन कर लेना उचित होगा। 'पज्जुण्ण चरिउ' पद्रह सधियो मे विभक्त है। इनमे से प्रथम आठ सधिया सिद्ध कवि कृत और अतिम सात सिंह कृत हैं। इसकी प्रथम सधि मे नेमि जिनेश्वर और देवी सरस्वती की वन्दना, सज्जन-दुर्जन-स्तुति, आत्मलाघव-प्रदर्शन के अनन्तर आठवी सधि प्रद्युम्न द्वारा शत्रुओ को पराजित करने पर प्रसन्न हो कालसवर द्वारा प्रद्युम्न को यौवराज्य पद देने, अन्य पाँच सौतेले भाइयो का ईर्ष्यावश प्रद्युम्न मे घात करने किंतु पुण्यवश प्रद्युम्न को सोलह लाभ प्राप्त होने और प्रद्युम्न के रूप पर कनकमाला के मुग्ध होने के बिन्दु तक पहुंचती है। यहां तक की रचना सिद्ध कवि कृत है।

नवी सन्धि से सिंह कवि की रचना प्रारभ होती है। इसमें कनकमाला के त्रिया-चरित्र और प्रद्युम्न-कालसवर युद्ध के प्रसगो से अग्रसर होती हुई कथा, प्रद्युम्न के द्वारका-गमन, क्रीडा-कौतुक प्रदर्शन एव वैदर्भी-हरण के प्रकरणो मे सक्रमित होती हुई नेमि द्वारा द्वारका-विनाश की भविष्यवाणी तथा प्रद्युम्न द्वारा दीक्षा-ग्रहण एव तप पर विश्रान्त होती है। अत मे धर्मतत्त्व-निरूपण करते हुए कवि सिंह प्रद्युम्न साम्ब, भानु, अनिरुद्ध आदि के निर्वाण-गमन की सूचना देता हुआ प्रशस्ति सहित ग्रथ की समाप्ति करता है।

सिद्ध तथा सिंह कविकृत 'पज्जुण्ण चरिउ' भी कथा-सगठन की दृष्टि से जिनसेनाचार्य और महासेनाचार्य की परम्परा मे ही आता है। इसके कथा-रूप के व्यापक विन्यास तथा वर्णन शैली पर भी, महासेनाचार्य का प्रभाव स्पष्ट है। सिंह कवि ने भी महासेन की ही भाति द्वारका के वैभव और कृष्ण-महिमा के वर्णन तथा कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे विशेष रुचि व्यक्त की है। कवि ने राजसी वृत्ति की सूचक उभय पक्षो की दर्पोक्तिया व्यजित करने के अतिरिक्त प्रद्युम्न तथा कृष्ण द्वारा वारुणास्त्र, पवनास्त्र, तथा कामदेव के पचबाणादि अस्त्र-शस्त्रो के प्रयोग का उल्लेख करते हुए मायामय युद्ध मे मायावी सैन्य की रचना तथा नरेंद्रजाल आदि अलौकिक अस्त्रो से अग्निवर्षा करने का वर्णन किया है।[69] अत महासेनाचार्य की परम्परा में ही सिद्ध तथा सिंह कवि पर भी वैष्णवपुराण परम्परा का प्रभाव स्पष्ट है। यह प्रभाव परवर्ती प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-ग्रथो मे क्रमशः क्षीण होता चला गया है।

यद्यपि सिद्ध तथा सिंह कवि ने अपने 'पज्जुण्ण चरिउ' में कथानक का सगठन जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराण और महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न-चरित्म' के अनुसरण मे ही किया है तथापि कही-कही सूक्ष्म अन्तर भी लक्षित होता है। जिनसेनाचार्य ने वटपुर नरेश वीरसेन की पत्नी चद्राभा पर मधुराजा की कामासक्ति का उल्लेख किया है। किन्तु इस प्रसग मे मत्री की भूमिका वर्णित नही है। गुणभद्र के उत्तरपुराण मे यह प्रसग केवल दो श्लोको मे ही समाप्त कर दिया गया है। गुणभद्र ने कथा के मनोरम स्थल को व्यर्थ ही हाथ से गवा दिया है। जिनसेन ने वसंतोत्सव के बहाने चद्राभा को अपनी राजधानी बुलाने, आभूषणो के बहाने से उसे रोक लेने, पत्नीहरण फलस्वरूप वीरसेन के उद्भ्रान्त होने तथा मधु के समक्ष परदारनिषेवी पुरुष का वाद प्रस्तुत होने इत्यादि कथा सूत्रों को गुम्फित किया है जिससे कवि को कामावेग, वियोग, छल, विश्वासघात, अन्याय, पश्चात्ताप आदि कोमल-जटिल भावो की सरस अभिव्यक्ति के लिए मनोरम प्रसग प्राप्त हो गये है। फिर भी, मत्री और धाय को पहली बार इस प्रसग मे महासेनाचार्य ने ही कथा मे उतार कर इस प्रसंग की स्वाभाविकता और सवाद-कौशल मे वृद्धि की है।

महासेनाचार्य ने इस प्रसग मे मत्री-नृपति एव धात्री-रानी के मध्य प्रभावशाली सवाद-योजना की है। सिद्ध कवि ने मत्री और धात्री की योजना के प्रसगो मे महासेनाचार्य का अनुसरण किया हैं किन्तु इस अवसर पर भावो की अभिव्यजना तथा सवाद-रचना मे उनका अपना ही रग है। वडपुर (वटपुर), कणयरहु (कनकरथ) तथा कणयप्पह (कनकप्रभा) इत्यादि नाम उन्होने महासेनाचार्य के अनुसार ही रखे हैं तथापि कथासूत्रो के आदान और अभिव्यजना की स्वतत्रता से स्पष्ट है कि कविवर को मार्मिकप्र सगो को अवतारणा मे रुचि थी। राजा मधु और मत्री के बीच हुए सवाद का कवि सिद्ध ने रोचक ओजपूर्ण वर्णन किया है। यह देख कर कि काम-विह्वल राजा को न अन्न रुचता है न गीत, मत्री राजा से मैत्रीवत बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न करता है—"हे देव, आप इस प्रकार खिन्नमन क्यो हैं? क्या आप इस विचार से चिंतित है कि दूसरे की सीमा को अतिक्रान्त नही करना चाहिए? अथवा शत्रु नरेश भीम से युद्ध करने मे आशकित हैं?" यह सुन कर मधु नरेश प्रत्युत्तर देता है—" मदनशल्य से विद्ध होने के कारण ही मेरा यह तन तृणतिलवत् कपित हो रहा है और तालावेलि लगी हुई है। जब से मैंने कनकरथ की रमणी को देखा है तब से यही दशा है। मैं भीम नरेश से क्यो डरने लगा? क्या कभी हाथी को देख कर सिंह त्रास पाता है?[70] इसी प्रकार धाय के प्रसग की योजना से भी कवि सिद्ध ने कनकप्रभा के रूप मे एक पश्चात्ताप-दग्ध नारी के निगूढ भावो के वर्णन के लिए अवकाश प्रशस्त कर दिया है।[71]

इस निदर्शन से स्पष्ट है कि जैन पुराणकारो ने प्रद्युम्न-कथा को जिस रूप मे निवद्ध किया है उसे प्रद्युम्न-चरित काव्यकारो ने और भी सुन्दर ढग से विकसित

किया है। अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न पुराणकारो की काव्यात्मक शैली का अ श विभिन्न रूप और मात्रानुसार है। गुणभद्र की अपेक्षा जिनसेनाचार्य मे कवि-प्रतिभा और काव्यात्मक अभिरुचि अधिक है। इसीलिए जिनसेनाचार्य द्वारा अनुस्यूत प्रद्युम्न-कथा मे क्षिप्र इतिवृत्तात्मकता के प्रतनु प्रवाह के मध्य भी भावाभिव्यजक रसाविल प्रसगो की योजना अनेक स्थलो पर दीख पडती है। महासेनाचार्य ने रसपेशल प्रसगो की योजना मे और भी वृद्धि की। सिद्ध तथा सिंह ने एक कुशल प्रबन्धकार कवि के नाते महासेनाचार्य की परम्परा को ही ग्रहण किया। इस बात का महत्त्व इस दृष्टि से विशेष है कि आगे के अनेक कवि, जिनमे सधारु जैसे प्रसिद्ध कवि भी है, प्रबध-कौशल की इस परम्परा से वियुक्त हो गये है। आचार्य शुक्ल का यह कथन सारपूर्ण है कि "इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नही कराया जा सकता। उसके लिए घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओ और व्यापारो का प्रतिबिम्बवत् चित्रण होना चाहिए जो श्रोता के हृदय मे रसात्मक तरगे उठाने मे समर्थ हो।"[81] कहना न होगा कि इस दृष्टि से महासेनाचार्य और सिद्ध तथा सिंह कवि-युग्म का महत्त्व असदिग्ध है।

कथानक के स्थूल प्रारूप की दृष्टि से सिद्ध तथा सिंह कवि ने जैन पुराणकारो मे जिनसेनाचार्य का अनुगमन किया है किन्तु गौण इतिवृत्तो और व्यापार-वर्णन मे वे महासेनाचार्य से ही विशेष प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए, अपहरण के पश्चात् कचनमाला इस आशका से प्रद्युम्न को पुत्र-रूप मे अ गीकार करने मे हिचकती है कि सवर के अन्य पाँचसौ पुत्रो द्वारा उसका ताडन और निरादर होगा। उसकी शका के निवारणार्थ जिनसेन कालसवर द्वारा अपने कान के सुवर्णपत्र से प्रद्युम्न के यौवराज्य-पट्ट बाँधने का उल्लेख करते है। गुणभद्र ने भी कचनमाला के सशय निवारणार्थ इसी युक्ति का आश्रय लिया है। किन्तु जिनसेन, गुणभद्र तथा पुष्पदन्त की सर्वानुमत परम्परा से हट कर महासेन ने यौवराज्य-पद के वचन-मात्र से इस प्रसग को सक्षिप्त किया है।[73] सभवत महासेन तथा सिद्ध कवि की दृष्टि मे राजा का वचन मात्र पर्याप्त था। यौवराज्य-सूचक पट्ट बाँधने से राजा और रानी की पारस्परिक अविश्वसनीयता अथवा रानी की शकालुता और राजा की नीति शून्यता और त्वरा सूचित होने से इन पात्रो की चरित्र-सृष्टि मे हीनता आने की सभावना थी।

ऐसी बात नही है कि सिद्ध कवि ने सर्वत्र पूर्वगामी कवियो के कथा-व्यापारो से ही अपने कथा-सूत्रो का निरपवाद रूप से चयन किया है। उन्होंने पात्रो के नाम तथा कार्य-व्यापार वर्णन मे निजी रुचि और स्वतन्त्रचेता प्रकृति का भी परिचय दिया है। उदाहरण के लिए प्रद्युम्न-साम्ब के पूर्व भवो के प्रसग मे भवान्तर की शुष्क क्षिप्र परम्परित बालुका-धारा मे भी कवि सिद्ध ने सौंदर्य की रसलहरी बहा

कर अपनी प्रबव-पटुता प्रमाणित की है ।[74] सरल स्थलो की उद्भावना की ओर उसकी दृष्टि अत्यन्त सजग रही है ।

"पज्जुण्ण-चरिउ" के कवि की एक अन्य प्रबन्धगत विशेषता यह भी है कि उसने कथा-हेतुओ की मनोरम कल्पनाएं की हैं । प्राय: सभी कवियों ने राज्य से वैराग्य होने का हेतु पूर्व-भव का स्मरण अथवा किसी मुनि द्वारा प्रबोध देना ही बनाया है । किन्तु सिद्ध कवि ने पहली बार इस धार्मिक हेतु के अतिरिक्त सहज नैसर्गिक हेतु-व्यापार की कल्पना इस विषय में की है । कवि कहता है कि नृप कनकनाभ को राज्य करते जब बारह वर्ष की अवधि व्यतीत हो गयी तो एक दिन वन-पर्वत की यात्रा करते हुए वर्षाजल से रिक्त एक मेघखण्ड को देख कर कौशलपति को यह स्मरण हो आया कि शारदीय निर्जल मेघखण्ड की भाति ही यह राज्य-वैभव भी क्षणभगुर है और इसी प्रकार रूप-रग-श्री-हीन हो जाने वाला है । यह विचार आते ही राजा को राज्य से विरक्ति हो जाती है और राजा कनकनाभ अपने ज्येष्ठ युवराज मधु (आगामी भव मे प्रद्युम्न) को राज्य सौंप कर स्वय जिनदीक्षा ग्रहण कर लेता है ।[75] मधु को भी अपने पिता कौशल नरेश कनकनाभ की ही भाँति वैराग्य हो जाता है । कमल-सम्पुट मे वद्ध मधुलोभी भ्रमर की दशा देख कैंटभ को भी ससार की असारता और भोगो के दुष्परिणाम की प्रतीति हो जाती है और वह अपने पुत्र को राज्यभार हस्तगत कर स्वय जिनदीक्षा ग्रहण कर लेता है ।[76] इस प्रकार शुष्क धर्मोपदेश से अथवा सशयास्पद भवान्तर-फल की आशका से प्रेरित न होकर कनकनाभ और कैंटभ का राज्य-त्याग नैसर्गिक और सवेदनशील प्रकृत व्यापारो से प्रेरित है । कवि का प्रबन्ध-लाघव इस प्रकृत मनोरम हेतु-व्यापार कल्पना से असदिग्ध रूप से सिद्ध है ।

किंतु कवि के प्रबन्ध-सौष्ठव मे कही न्यूनता या अनौचित्य नही है, ऐसा भी नही कहा जा सकता । प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यकारो और प्रद्युम्न कथा को पुराणवद्ध करने वाले कवियो मे कथानक-सगठन की दृष्टि से सबसे बडा दोष है --इतिवृत्तो की पुनरावृत्ति । पुनरुक्ति दोष से कोई भी रचनाकार मुक्त नही रह सका है । सिद्ध और सिह कवि-युगल भी इसके अपवाद नहीं हैं । व्यापक कथा-वृत्त के अन्तर्गत उन्ही पात्रो के अनेक भवान्तरो के वर्णन से जीवन-व्यापरो के सूचक अन्तर्वृत्तो की पुनरपि आवृत्ति हो गयी है जो रसविघातक हैं । उदाहरण के लिए प्रद्युम्न-हरण की कथा सर्वप्रथम् कवि स्वय वर्णन करता है फिर इसी को सीमधर स्वामी कहते हैं । इसी कथा का सकेत कनकमाला काममोहित होने पर करती है । कनकमाला के विपर्यस्त आचरण से स्तब्ध प्रद्युम्न के समक्ष भट्टारक उदधिचद्र मुनि नदिवर्द्धन मुनि द्वारा पहले ही कही जा चुकी उसी कथा की पुन. उद्धरणी करते हैं । प्रद्युम्न-कालसवर युद्ध के अन्त मे नारद प्रकट होकर कृष्ण और द्वारका के वर्णन तथा प्रद्युम्न-हरण को फिर से दुहराते है । नारद और प्रद्युम्न जब द्वारका पहुचते है तो कवि पुन: द्वारका-वर्णन मे प्रवृत्त

हो जाता है। सोमधर स्वामी प्रद्युम्न के पूर्व-भव कथा के अन्त मे पुन दोहराते हैं।[77] इसी प्रकार सपत्नी-स्पर्द्धा और केशकर्तन की कथा, जिसका कवि पहले ही वर्णन कर चुका है, क्षुल्लक वेषी प्रद्युम्न के समक्ष रुक्मिणी को फिर से कहनी पडी है।[78] इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि कथावृत्तो की व्यर्थ पुनरुक्ति ने प्रबधपटुता को नष्ट कर दिया है। कवि सिद्ध तथा सिह कही-कही कथा को रूपायित करने मे जैनेतर प्रभाव को ग्रहण करने मे नही झिझके हैं। प्रद्युम्न का नामकरण एक ऐसा ही प्रसग है। जिनसेनाचार्य ने जीवन की वास्तविक स्थिति के अनुकूल ही अपने वस्तु-विधान की सगति बैठाने की दृष्टि से कालसंवर और कनकमाल द्वारा ही, उपलब्ध शिशु का नाम 'प्रद्युम्न' रखे जाने का वर्णन किया है।[79] यही नही, उन्होंने यह भी लिखा है कि सुवर्ण के समान श्रेष्ठ कान्ति का धारक होने से ही बालक का नाम प्रद्युम्न रखा गया। गुणभद्र ने शिशु का नाम 'देवदत्त' रखा जाना वर्णित किया है।[80] महासेन ने भी सवरदम्पत्ति द्वारा 'प्रद्युम्न' नामकरण का वर्णन किया है।[81] किन्तु जैन परम्परा मे सर्वप्रथम सिद्ध ने ही जन्म के छठे दिन ज्योतिषियो द्वारा राशि के अनुसार 'प्रद्युम्न' नामकरण का उल्लेख किया है,[82] जिस पर वैष्णव पुराणो का प्रभाव स्पष्ट है।

सिद्ध तथा सिह कवि कथा के स्वाभाविक मूल प्रवाह के अन्तर्गत सहज रूप से आने वाले ऐसे प्रसगो की भी उपेक्षा कर गये हैं जहाँ मानवीय कोमल भावनाओ और तीव्र अन्तर्द्वन्द्व के लिए प्रचुर भूमिका प्रस्तुत थी। ऐसा ही एक उपेक्षित स्थल मधु द्वारा कनकाभा को वसन्तोत्सव के बहाने से अन्त पुर मे रख लेने का है। इस अवसर पर कनकाभा बिना किसी हिचक के अकस्मात् परपुरुष (मधु) के साथ रमण के लिए प्रस्तुत हो जाती है। पूर्वपति से इतना प्रेम करने वाली नारी का अकस्मात् परपुरुष के लिए प्रस्तुत हो जाना कदापि तर्कसगत और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नही है।[83] महासेनाचार्य भी यहा चूक गये है। कनकाभा के मानसिक द्वन्द्व को उन्होने भी नही उभारा है।[84] जिनसेनाचार्य ने और गुणभद्र ने भी मधु द्वारा कनकाभा को 'निजीकृत' करने या 'स्वीकृत' करने का वर्णन एक-एक श्लोक मे ही कर डाला है।[85] किंतु प्रद्युम्न-चरित्र लेखक सभी कवि यहा चूक गये हो ऐसी बात नही है। आचार्य सोमकीर्ति (16 वी सदी) ने इस प्रसग का प्रबन्ध-पटुता पूर्वक रोचक वर्णन किया है और चद्रप्रभा (कनकाभा) के मानसिक द्वन्द्व का कुशल चित्रण किया है।[86] कथानक-सगठन के गुण-दोष का विवेचन करते हुए निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि अनेक स्थलो पर सिद्ध तथा सिह कवि ने अपनी सूक्ष्म सारग्राहिणी बुद्धि का परिचय देते हुए मार्मिक स्थलो की उद्भावना की है, केवल कुछ प्रसग ही उनकी सवेदनाशील दृष्टि-पथ से ओझल रह गये हैं। किंतु अपने पूर्ववर्ती प्रद्युम्न चरित्र-कारो से उनकी प्रबध-पटुता किसी भी दृष्टि से न्यून नही है।

सिद्ध तथा सिंह कवि की वस्तु-वर्णन मे पर्याप्त रुचि है तथा गतिशील जीवन के नाना व्यापारो और दृश्यो के प्रति उत्कण्ठा है। इस कवि-युग्म ने जड और चेतन जगत के नाना दृश्यो और कार्य-व्यापारो को रूपायित किया है। वस्तु-वर्णन की उनकी क्षमता मुख्यत: देश-वर्णन, युद्ध-वर्णन, विमान-रचना, अश्व-सचालन, विवाह एव उत्सव समारोहादि से सम्बन्धित वर्णन स्थलो मे प्रकट हुई है। सौरठ प्रदेश का वर्णन करते हुए कवि सिद्ध लिखता है कि बालियाँ दवाये शुकपक्ति आकाशमार्ग से उडती हुई इस प्रकार सुशोभित होती है मानो पद्मराग और मरकतमणि खचित-हारावली नभ-श्री के कठ को विभूषित कर रही हो।[87]

9. वस्तु-व्यापार वर्णन

सोरठ देश की ही भाति द्वारिकापुरी का वर्णन करते हुए सिद्ध कवि कहता है कि इस नगरी के सौदर्य से आकृष्ट समुद्र रूपी नायक इसी का रात-दिन अनुचितन करता हुआ इसकी चरणसेवा करता है किंतु साथ ही वह यह भी नही भुला पाता कि अन्तत यह परायी स्त्री है। अत समुद्र की दशा सीता के समक्ष प्रणयाकाक्षिणी किंतु राघव-प्रताप से आतकित दशानन की भाति है। समुद्र रूपी यह नायक अपनी तरग रूपी विशाल भुजाओ से मानो द्वारिका के तट रूपी नितम्बो का आस्फालन करता है किंतु मूढ की भाँति अन्त मे खाली हाथ लौट जाता है। प्रणय की प्राप्ति मे अकृतकार्य पयोनिधि फिर गजदत, शख, मुक्ता, प्रवाल इत्यादि की भेटें द्वारका नगरी रूपी प्रणयिनी के चरणो मे अर्पित करते नही थकता धन की पुष्कल भेट देने पर भी असफल मनोरथ हो वह बिलख-बिलख कर लहरो रूपी भुजाओ को उठा कर पुकार करने लगता है।[88] कवि सिद्ध ने वस्तु-वर्णन मे सूक्ष्म कल्पना शक्ति के द्वारा ऊँची उडान भरने का प्रयत्न किया है। वह आलकारिक और चित्रोपम वर्णन की ओर विशेषत: प्रवृत्त है। साथ ही परम्परागत चित्रण-शैली का प्रभाव भी उस पर स्पष्ट है। हस्ति-मिथुन द्वारा परस्पर कडु-निवारण का चित्र कालिदास द्वारा अभिज्ञान शाकुन्तल मे इमी कार्य मे प्रयुक्त मृगी के चित्र का बरबस स्मरण करा देता है।[89] सौराष्ट्र प्रदेश तथा द्वारकापुरी के वर्णन मे सिद्ध कवि पर महासेनाचार्य का प्रभाव स्पष्ट है। महासेनाचार्य का "गोमडलमण्डित मध्यदेशा, तारागणेधीरिव सौम्यभावा" ही सिद्ध कवि की उक्ति "गोहणाइण गहे णखत्तइ" मे रूपान्तारत हो गया है। द्वारका मे नदनवन होने, द्ववारका के अमरावती के समान सुन्दर होने, बारह योजन मे द्वारका के विस्तार आदि परागनासग भय से पलायन करते पयोधि[70] तथा सौन्दर्य मे द्वारका के अमरावती से सादृश्य रखने की सिद्ध कवि की कल्पनाएँ भी प्राचीन पौराणिक कल्पनाएँ हैं जिनका उत्स वैष्णव हरिवशपुराण मे देखा जा सकता है।[91]

कवि सिंह ने गौण से गौण वस्तु मे भी उतनी ही रुचि-प्रवणता और काव्य-कुशलता व्यक्त की है जितनी कि असामान्य वस्तु और व्यापारो के वर्णन मे अपेक्षित है। उदाहरण के लिए सिंह कवि कृत विमान-रचना-वर्णन देखा जा सकता है।

सिंह कवि ने स्थिर वस्तुओ और दृश्यो का ही नही, गतिशील व्यापारो का भी मनोयोगपूर्वक चित्रण किया है। प्रद्युम्न द्वारा वृद्ध अश्व-व्यापारी वेष मे अश्व-सचालन का वर्णन करते हुए कवि ने अश्वसचालन की अनेक गतियो का भी उल्लेख किया है। इस सदर्भ मे कवि ने घोडे की चाल के अनेक पारिभाषिक नामो– यथा 'समचलण, (सतुलित सधी हुई चाल), 'फाल', 'मिल्लन्न,' 'दुक्कम्मि,' (दुलकी ?) आदि को गिनाया है।[92] युद्ध तथा सैन्य-सज्जादि के वर्णन मे भी सिद्ध तथा सिंह की विशेष रुचि रही है।

कवि ने युद्ध वाद्यो—ताटक, भेरी, पटह, काहल इत्यादि का वर्णन अनुरणनात्मक शब्दावली मे करते हुए, जिससे इन वाक्यो की ध्वनि व्यजित होती है, युद्ध की उमग मे घोडो के जनसकुल सैन्यदल के बीच उमडने, चामर-दोलित माडलिक सामन्तो के शान से चलने, रथ के खभो पर कामदेव के (मकराकित) ध्वज फहराने, तलवारो और भालो के झलझलाने, घोडो द्वारा भूमि को रौदने इत्यादि नाना सैन्य व्यापारो का सश्लिष्ट चित्रण करते हुए युद्धोद्यत सेना का दृश्य प्रस्तुत किया है।[93]

ऐसे वर्णन विरल ही हैं जहाँ युद्ध के प्रत्यक्ष गतिशील सजीव व्यापारो का सश्लिष्ट विम्ब प्रस्तुत करने की कवि ने चेष्टा की है। अधिकाश स्थलो पर सिंह कवि ने परम्परानुगतिक युद्ध-वर्णन शैली का आश्रय ग्रहण करते हुए चिरपरिचित रूढ व्यापारो की ही अवतारणा की है। युद्ध वर्णन की दृष्टि से सिंह कवि की एक विशेषता यह भी है कि उसने युद्ध की तीव्रता के अनुरूप ही गतिशील और त्वरायुक्त छद का प्रयोग किया है[94]

सिद्ध तथा सिंह कवि जीवन के सुखद मगलमय प्रसगो का वर्णन करना भी नही भूले है। सिद्ध कवि ने सर्वप्रथम कृष्ण–रुक्मिणी के विवाहोत्सव का रोचक वर्णन किया है। रुक्मिणी–हरण के उपरात कृष्ण द्वारका की ओर लौटते हुए मार्ग मे एक उद्यान मे स्थित लतागृह मे ही रुक्मिणी से अग्नि की साक्षी मे विवाह का औपचारिक अनुष्ठान सम्पन्न कर लेते है। यह विवाहोत्सव वस्तुत औपचारिक जनान्तिक उत्सव न होकर एकान्त मनोत्सव है अत. क्या आश्चर्य है यदि कोकिलाए ही मगलाचार करती है, भ्रमर ही गीत गाते हैं, मयूर ही सरस नृत्य करते है तथा तोते ही श्लोक पाठ करते हैं।[95] कृष्ण–रुक्मिणी के इस प्रकृत अलौकिक विवाह का वर्णन सिद्ध कवि की अपनी निराली सूझ–बूझ प्रतीत होती है, क्योकि उनसे पहले जिनसेनाचार्य, महासेनाचार्य आदि किसी ने इस प्रसग मे ऐसी अभिव्यक्ति नही की है। वैष्णव पुराणकार का आग्रह भी कृष्ण–रुक्मिणी के वेदोक्त विधिवत विवाह की ओर ही अधिक रहा है। इससे गतिशील व्यापार के अनुरूप ही छद-चयन की कुशलता प्रमाणित होती है।

सिद्ध तथा सिंह कवि ने यथाप्रसग प्राकृतिक दृश्यो यथा वन–उपवन, गिरि–सरितादि का वर्णन करते हुए मनोरम प्राकृतिक वेलाओ के चित्र प्रस्तुत किये है। इनमे से विशेषत सध्या, निशागमन तथा चाँदनी रात के दृश्यो ने इन कवियो को अधिक आकृष्ट किया है। प्रकृति–चित्रण के इस क्रम मे प्राथमिक चित्र सिद्ध कवि द्वारा प्रस्तुत वन–उपवन सम्बन्धी चित्रण है। यहाँ कवि ने वृक्षो और लताओ के नाम किसी क्रम से नही गिनाये है तथा दोनो के नामो को परस्पर गड्डमड्ड कर दिया है जिससे सामान्य अर्थबोध के लिए भी बौद्धिक व्यायाम अपेक्षित है। इन वृक्षलतादि की स्थिति के लिए भौगोलिक पृष्ठभूमि के औचित्य को भी भुला दिया गया है तथा कवि ने मनचाहे ढग से विषम ऋतुओ और भूमियो मे उत्पन्न होने वाले लतावृक्षादि का एकत्र उल्लेख कर पारम्परिक निरंकुशता का ही परिचय दिया है। शुष्क वस्तु परिगणन की प्रवृत्ति सिद्ध कवि से भी कही अधिक सिंह कवि मे दीख पडती है। विमान मे मेघकूटपुर से द्वारका को जाते हुए प्रद्युम्न और नारद को मार्ग मे अनेक वन–उपवन दृष्टिगत होते है। इस प्रसग मे अपने वानस्पतिक शब्द कोष के प्रदर्शन मे कवि इतना व्यग्र है कि पीपल, ताड जैसे नाम तीन–तीन बार दोहरा दिये गये हैं।[96] वस्तु-परिगणनात्मक यही अपभ्रंशयुगीन शैली रीतिकाल के प्रवर्तक केशव जैसे कवियो मे सक्रमित होती हुई दीख पडती है[97]

10. प्रकृति–चित्रण तथा ऋतु–वर्णन

सिद्ध कवि ने सध्या तथा निशागमन के उद्दीपक और आलकारिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसी क्रम मे चाँदनी रात का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि काँस (काँस्य धातु या काँस नामक सफेद घास) और रमणी के हास्य जैसी धवल चाँदनी समस्त भू–तल पर फैल गयी। ससार मानो निर्मल क्षीरोदधि मे नहा उठा। चाँदनी की शुभ्रता इतनी सर्वातिशायिनी है कि कौए और हंस मे अंतर प्रतीत करना कठिन है।[98]

11. रूप–वर्णन

सिद्ध तथा सिंह कवि को अपनी 'पज्जुण्ण कहा' के कथा-पटल मे अनेक स्थलो पर मानव-रूपो को चित्रित करने का अवकाश प्राप्त हुआ है जिनका सुरुचिपूर्वक उपयोग करते हुए कविद्वय ने विभिन्न आयु-वर्ग, आकृति-प्रकृति वाले स्त्री-पुरुषो के अनेक सुन्दर रूपाकन प्रस्तुत किये है। इन मानव-रूपो मे से ये कुछ रूप-चित्र विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं—रुक्मिणी का चित्रपट–लिखित सौंदर्य, नारी के रमणी रूप मे अनेक छवि चित्र, गर्भिणी रूप मे रुक्मिणी का चित्र, शिशु-रूप मे प्रद्युम्न का वर्णन एव प्रद्युम्न का भील वेष तथा क्षुल्लक वेष में वर्णन।

रुक्मिणी के चित्रपट-लिखित सौदर्य का वर्णन करते हुए कवि सिद्ध कहते है कि चद्रमा कलकयुक्त है तथा कमल क्षण मात्र मे विगलित हो जाने वाला और पक

युक्त है, अत. उसके मनोहर मुख की उपमा चंद्रमा या कलक से कैसे दी जा सकती है ? उसका ललाट अर्धचंद्र की भाँति सुन्दर है और दोनों भुजाए मानो उससे प्रस्फुटित वकिम चद्र-किरणें है। उसका स्फीत चिकुर-भार अलिकुल या तमाल की आभा लिये हुए है अथवा मयूरपुच्छ की भाँति सघन श्यामल काति युक्त है।[99] सिंह कवि ने भी इन्ही परम्परित प्रतीकों के साद्दश्य-विधान के आधार पर रुक्मिणी के रूप का रीतिवद्ध, उत्तेजक और मासल वर्णन किया है। आश्चर्य तो यह है कि रुक्मिणी का यह उद्दीपक रमणीरूप कवि ने प्रद्युम्न के द्वारका लौटने पर क्षुल्लक रूप में उससे मिलने के समय वर्णित किया है।[100] स्पष्ट है कि कवि सिंह यहां रूप-चित्रण की झोक मे प्रकृत भाव-भूमि और कथा-धारा से दूर जा गिरे है।

किन्तु सिद्ध कवि कृत रति-रूप-वर्णन मे रगो की कोमलता और उज्ज्वलता अधिक है इसीलिए रेखाओ मे अधिक नूतनता न होते हुए भी चित्रण चित्ताकर्षक बन पड़ा है। आलकारिकता विशेष न होते हुए तथा प्रतीक-योजना जानी-पहचानी होते हुए भी रति सम्बन्धी रूप-बिम्ब रगो की सहिति के कारण आकर्षक प्रभाव लिये हुए है। प्रद्युम्न ने रति को गहन तमाल वृक्ष श्रेणि के नीचे शशि किरणो से समुज्ज्वल स्फटिक शिला पर एकाकी समासीन देखा। रति का सौंदर्य तरुण जनो के मन को प्रखर भाले की भाँति वेधने में समर्थ था। वह पद्मासन लगाये थी। उसके हाथ मे रुद्राक्ष की माला थी और वह कमल पर अधिष्ठित थी। माला के मनके फिराते हुए उसकी करागुलियो की अरुण नखपक्ति विभासित हो उठती थी। वह पीन घन स्तन तथा क्षीण कटि वाली सुलक्षणा कमलवदना सुन्दरी अपने नितम्बभार के कारण नमितमुख ही रहती थी। तमाल की सी नील काति युक्त केश राशि वाली नवल वेशधारी वह नवल लताओ के वन मे प्रतिष्ठित हो अपने चितवन बाणो से नवल शरसधान कर रही थी।[101]

सिद्ध तथा सिंह कवि ने शिशु के रूप का भी अनेकत्र वर्णन किया है। शिला-तल मे पड़ा हुआ नवजात शिशु प्रद्युम्न, कालसवर को ऐसा प्रतीत होता है मानो वन श्री ने रक्तकमल को विकसित किया हो अथवा नयी केलि का नया किसलय हो। अनेक शुभ लक्षणो का सागर वह बालक प्रद्युम्न बाल-दिवाकर की भाँति दृष्टिगत हुआ।[102] अलिकुल को भी पराजित करने वाले सुन्दर केशकलाप युक्त यह बालक द्वितीया के चद्रमा की भाँति दिन-दिन रूप-समृद्धि प्राप्त करने लगा।[102] किन्तु शिशु-रूप का विशेष वर्णन सिंह कवि ने उस अवसर पर किया है जब सोलह लाभ प्राप्ति के अनन्तर द्वारका मे नाना क्रीडा कौतुको के प्रदर्शन के उपरात, प्रद्युम्न माता के अनुरोध पर अपनी माया से पुन कुछ क्षणो के लिए बाल-रूप धारण कर माता को आनन्दित करता है। उसके मधुर शब्द अत्यत सुहावने लगते हैं।[103] सिंह कवि ने इस बालरूप-वर्णन मे वयानुसारी चेष्टाओ के प्रदर्शन से काव्य मे औचित्य का निर्वाह किया है। कवि के इस बाल-रूप-वर्णन पर महासेनाचार्य तथा जिनसेनाचार्य

का प्रभाव स्पष्ट है। कवि द्वारा अभिव्यक्त बालकोचित चेष्टाएं महासेन तथा जिनसेनाचार्य वर्णित बाल-व्यापारो के अनुसरण मे है। कही-कही शब्द-साम्य भी ध्वनित हो रहा है, यथा—महासेन रचित पदांश 'मातु : करालम्ब गतिः प्रधावन' ही सिंह कवि के 'जणणिहि करि अवलवि विधावइ' के रूप मे तथा 'बालोचितैराभरणैः समस्तैर्विभूषितो' एव 'वृद्धिं प्रयान्तीन्दुवदिन्दुवक्त्रो' ही 'वढ्ढइ वीय मयंदुअ जेहउ विविहाहरण विहूसिय देहउ' के रूप मे अनूदित भासित होता है। इसी प्रकार महासेनकृत कल्पना–'क्रीडा प्रकुर्वन विविधान्नपान त्यजन रुषा मातृ मनोज्ञ वाक्य' की ही छाया सिंह कवि की सदृश कल्पना 'आहासइ आहारु समप्पइ' पर प्रतीत होती है।[104] इसी प्रकार जिनसेनाचार्य के 'तत· स तत्क्षणजातस्तदहर्जातदारक, तथा 'विधायाम्बा-कण्ठलग्नोवघात् सुख, कलालापस्मिताहू्लादिवदनो वदने क्षण', की ही गूँज सिंह कवि के 'थिउ दिणिमेक्कमेत्तु विरयवि तणु' तथा 'कठविलग्गवि धाइ उल्हावइ मायहिं मणु' मे सुनाई देनी है।[105] फिर भी दोनो कवियो के वर्णन मे अन्तर भी स्पष्ट है। जिनसेन काव्याचार्यो द्वारा प्रस्तावित 'वयोनुरूप· प्रथमस्तु वेपो· वेषानुरूपश्चगतिप्रचार' के औचित्य की उपेक्षा कर गये हैं। सिंह कवि ने बालक की आयु के क्रमिक वार्धक्य और तदनुरूप चेष्टाओ का स्पष्ट ध्यान रखा है।

सिंह कवि कृत प्रद्युम्न का पुलिंद (भील) रूप-वर्णन अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ और मनोहर बन पडा है। 'भीषण शबर तनु' (भीक्षण सवरगणु) का वर्णन करते हुए कवि सिंह कहते है कि प्रद्युम्न ने हाथ मे जयश्री निवास रूप प्रचड कोदण्ड ग्रहण कर पृथ्वी के सुभटो को नष्ट करने मे सक्षम साक्षात् यमराज की मुखाकृति वाला अति भयावह शबर रूप धारण कर लिया। उसकी नवजलधर के समान श्यामनील कांति थी और उलझे बिखरे पीनवर्ण केश थे। पद्मरागमणि जैसे रक्ताभ नेत्र थे और छिदी हुई नाक और मुँह मे बडे-बडे दात थे। सिर पर उसने बेले लपेट रखी थी और उसका वक्ष-स्थल पहाडी चट्टान की तरह सुदृढ था। उसके हाथ कठोर और कधे स्थूल और उभरे हुए थे। उसका पेट लम्बा और पैर टेढे-मेढे थे। उसने त्रिविध वल्कल वस्त्र धारण कर रखे थे और गले मे गुंजाफल (घुघची) की माला पहने हुए था।[106] स्पष्ट है कि शबर-रूप वर्णन मे कवि ने मौलिक रुचि और क्षमता का प्रदर्शन किया है। इस रूप-वर्णन के पीछे देशीय प्रभाव और कवि का प्रत्यक्ष अनुभव झलका पडता है। किंतु क्षुल्लक रूप का वर्णन करते हुए महासेन का प्राय. छायानुवाद ही सिंह कवि ने कर दिया है। महासेनाचार्य के 'क्षीणोविरूपोऽस्त सुगधभावो', 'उद्दन्तुर·', 'दीर्घा ग्रिहस्त' कुटिलांगुलि' तथा 'भग्नोरु पृष्ठ'[107] ही क्रमश. सिंहकृत 'खीण सरीरु दुअंधु विरूवउ,' 'उदंतुरवयणऊ' 'करचरणोह दीह,' 'वक्कगुलिय' तथा 'भग्गसुपुठ्ठ वसु' मे रूपातरित हो गये है।[108] निष्कर्षत; कहा जा सकता है कि सिद्ध तथा सिंह कृत रूप-वर्णन मे मानवरूपो की विविध छवियो के प्रति समान कवि-रुचि का निदर्शन मिलता है तथा प्रभाव होते हुए तथा पारम्परिक प्रतीक योजना के मुखापेक्षी एवं

आलकारिकता के अभ्यस्त होते हुए भी कही-कही इन कवियो ने अनुभवप्रसूत यथार्थ सजीव रूपाकन के भी स्तुत्य प्रयास किये हैं।'

12. चरित्र-चित्रण

सिद्ध तथा सिंह ने समस्त पात्रो के प्रति एक सी सहानुभूति रखते हुए अपनी कोमल सवेदनशील दृष्टि से सब पात्रो के अन्तर्जगत मे झाकते हुए उनके चरित्र की व्यजना की है। अहिंसा तथा जीव-मैत्री के धार्मिक सस्कारगत प्रभाव का ही सभवत यह सुफल है कि कही भी उन्होने अपने पात्रो को उच्च या निम्न, देव या दानव की कोटि मे नही रखा है। कालसवर तथा वसत आदि पात्रो को भी दानव न मान कर उन्हे विद्याधरो की श्रेणी मे रखते हुए उनके हर्ष-शोक राग-विरागादि भावो का भी मानवोचित सहानुभूतिपूर्वक चित्रण किया गया है। पात्रो की चरित्र-सृष्टि मे जैन कल्पना के अपने विशिष्ट स्वरूप का निर्वाह करते हुए भी उन्हे इस प्रकार चित्रित किया गया है जिससे अन्य धर्मावलम्बी कल्पनाओ को ठेस न लगे। यही कारण है कि कृष्ण के चरित्र के प्रति .न कवियो ने वही श्रद्धा व्यक्त की है जो इस देश की जनता द्वारा उन्हे परम्परा से प्राप्त है। अपनी विशिष्ट विचारणाओ की सीमाओ के कारण कृष्ण को अवतार मानना उनके लिए शक्य नही था किन्तु कवि सिद्ध ने उन्हे 'चाणूरविमद्दणु' देवइणदणु सखचक्क सारगधरु' घोषित करते हुए युद्ध मे कस नामक भयकर असुर का नाश करने वाला कहा है। तीनो लोक कृष्ण के वशवर्ती थे। वे दानवो और मानवो के दर्प का दलन करने मे समर्थ थे। यही नही, लोक-प्रसिद्ध कृष्ण की विष्णु से एकरूपता भी कवि सिद्ध ने कीर्तित की है। इसीलिए मुक्त कठ से वे कृष्ण को कालिंदी-दह मे कालियदमनकर्त्ता, गोपजनप्रिय और गरुडगामी कह कर स्तवित करते है।[109] लोक-प्रसिद्ध पुरुषो के श्रद्धास्पद रूप के प्रति सत्कार भावना की यह स्वस्थ, उदार और स्तुत्य वृत्ति कवि की राष्ट्रीय गौरव और लोक चेतना के प्रति सजगता सूचित करती है। कवि-चेतना की धुरी अपनी सम्प्रेषणीयता के वृत्त मे जहा एक ओर मानव व्यक्तित्व को जातीय नायक के उदात्त रूप मे रेखाकित करती है वही दूसरी ओर वह महान् से महान् व्यक्तित्व के सहज सामान्य मनुष्यत्व की भी उपेक्षा नही-करती। 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्' के ही युगावतार कृष्ण को रसखान जैसा कवि एक इगित पर अहीर की छोहरियो की छछिया भर छाछ पर नाच नचा देता है। इसीलिए कवि सिद्ध यदि कृष्ण को रुक्मिणी-चित्र दर्शन पर विस्मय-मुग्ध और काम-पीडित चित्रित करते हैं तो इसमे कही भी अनौचित्य नही है।[110] फिर हम रुक्मिणी-हरण के अवसर पर कृष्ण को सामान्य कातर प्रणयी के रूप मे अपनी प्रेयसी से कृपाकाक्षा निवेदित करते हुए देखते हैं। शिशुपाल से हुए युद्ध मे हम उन्हे अप्रतिहत वीर योद्धा के रूप मे शिशुपाल के प्रति यह दर्पोक्ति कहते हुए पाते हैं— 'जा, दुर्द्धर हरि-मुख-कुहर मे मत प्रविष्ट हो। अरे शिशुपाल, क्या तू काल का ग्रास बनना चाहता है ?' फिर रुक्मिणी के कहने पर रुक्मी को नागपाश

मे बाव कर बहिन से उसका मिलन कराते समय हम कृष्ण को उदार-प्रेमी और कुटुम्बी के रूप मे देखते हैं।[111] पूर्ववर्ती वैष्णव एव जैन पुराणो तथा कवियो के वर्णन-रूपो की अपेक्षा सिद्ध कवि कृत कृष्ण-रुक्मिणी प्रसग का वर्णन कही अधिक शालीनता, कोमलता, और पात्रो के गौरव की रक्षा का भाव लिये हुए है। सत्यभामा को वनदेवी-रूपी रुक्मिणी के पादावनत कराते तथा रुक्मिणी चर्वित ताम्बूल सेवन के प्रसगो मे सत्यभामा का उपहास करते समय कृष्ण एक चतुर विदग्ध नायक के रूप मे लक्षित होते है। अपनी प्रौढा स्वकीया के मुख से कोप-पूर्ण अवमानना भरे शब्द भी इस अवसर पर उन्हे प्रिय ही लगते हैं। किन्तु पिशुन, खल, क्षुद्र आदि सम्बोधनो मे कवि द्वारा पात्रौचित मर्यादा का हनन हो गया है। इस अतिरेक को छोड कर सिद्ध कवि कृत इस प्रसग का वर्णन अति सुन्दर बन पड़ा है।[212] अपने नवजात शिशु के हरण पर रुक्मिणी के करुण विलाप का हृदयावर्जक चित्र कवि ने अकित किया है किन्तु अन्य अनेक कवियो के विपरीत कृष्ण के छाती पीटने, विलाप करने आदि स्त्रियोचित अनुभावो का चित्रण न कर कवि ने दुख की परिस्थिति मे स्त्री और पुरुष के प्रकृति-भेद के औचित्य की रक्षा की है। अन्त मे रुक्मिणी-हरण के फलस्वरूप हुए पिता-पुत्र युद्ध मे हम कृष्ण को एक साथ ही दर्पयुक्त, वीर और वत्सल पिता के रूप मे देखते है। स्पष्ट है कि कवि ने कृष्ण-चरित्र के प्रमुख पक्षो का मर्यादापूर्ण उद्घाटन करते हुए उनका सुन्दर भावज्ञतापूर्ण चित्रण किया है।

प्रद्युम्न के चरित्र की मुख्यत चार वृत्तिया उभरी है—उसकी सर्वातिशायिनी कौतुकवृत्ति, शौर्य वृत्ति, राग-वृत्ति तथा विराग वृत्ति। मानव-हृदय की इन्ही चार प्रमुख वृत्तियो के चतुष्कोण मे प्रद्युम्न-चरित्र के सभी आयाम समाहित हो गये है। उसकी कौतुक वृत्ति का प्रथम निदर्शन सोलह लाभ-प्राप्ति के प्रसग मे होता है, जहा वह अपनी सहज कौतुकवृत्तिवश अनेक गुफाओ और गिरिवनो मे नाना यक्षराक्षसादि से युद्ध कर विचित्र भेटें प्राप्त करता है।[113] कौतुक वृत्ति प्रद्युम्न के जन्म से ही, बल्कि जन्म-जन्मान्तरो से ही, उसके चरित्र और भाग्य से अविच्छेद्य रूप से सश्लिष्ट है। प्रतीत होता है, सृष्टि का अज्ञात कौतुक तत्त्व स्वय रहस्यमय रूप से प्रद्युम्न-रूप मे प्रकट हो कर नाना कौतूहल-व्यापारो मे विवृत हो रहा है। युद्ध मे नाना प्रकार के मायावी अस्त्रो की रचना, प्रज्ञप्ति विद्या से आसन्न अनागत के ज्ञान की संकेत-प्राप्ति आदि सभी कार्य-कलाप कौतुकपूर्ण है।

कथाकार ने जीवन के सामान्य कार्यवाही प्रसगो मे भी कौतुक के निबन्धन की चेष्टा की है। इसकी उपादेयता स्पष्ट है क्योकि धार्मिक सस्कारों या दार्शनिक मान्यताओ के सस्कारगत पूर्वाग्रहो से मुक्त सामान्य बुद्धि के लोकमुखी पाठक के लिए (जो काव्य का मूलतः प्रामाणिक और उद्दिष्ट पाठक है) जीवन के दैनदिन व्यावहारिक प्रसंगो मे भी कौतुक की अभिव्यक्ति ही उसके विस्मय

बोध की तृप्ति मे समर्थ हो सकती है । ऐसे ही प्रसगो मे से प्रमुख हैं - विमान-रचना सम्बन्धी प्रसग । पौराणिक युग की पृष्ठभूमि मे, कल्पना की अतिरजना का परिहार कर देने पर, विमान-रचना ऐसा ही एक दैनदिन प्रसग है जैसा कि मध्ययुग मे रथ-सज्जा (इसीलिए राजसी या देवकार्य मे प्रयुक्त सुशोभन अलकृत रथो को अभी निकट व्यतीत मे, हमारे स्मृति-काल तक, 'विमान' सज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है तथा रथ-भवनो के 'विमान-मदिर' नाम अब भी प्राचीन राज-प्रासादो मे कही-कही शिलापट्टित देखे जा सकते है) अथवा आधुनिक काल मे अपने किसी कार इत्यादि वाहन की रचना या सज्जा । इसीलिए युगीन परिवेश हटा देने पर विमान-रचना प्रसग मे प्रद्युम्न का नारद से परिहास प्राय वही आनद प्रदान करता है जो फिल्मीपर्दे पर बिगडी हुई कार को ठीक करते समय किसी अनाडी, बूढे, कार-चालक की भूमिका निभाते हुए हास्य-अभिनेता का परिहास-प्रिय तरुण नायक द्वारा किया गया उपहास प्रदान कर सकता है । यही कारण है कि विमान-रचना का यह हास्य-प्रसग शुद्ध परिहास-प्रकरण का उल्लास प्रदान करता है । प्रद्युम्न वृद्ध मुनि के ज्ञान-कौशल का परिहास करते हुए कहता है—"अहो, ऐसा विमान तो भूतल पर शायद ही अन्य कही हो । यह तो बताइए कि यह विमान-रचना-कौशल आपने कहाँ से सीखा है ? विमान-रचना मे दक्ष ऐसा छैल तो मैंने आज तक कही नही देखा" तब बगले झाँकते हुए बेचारे नारद हा-हा खाते हुए प्रत्युत्तर देते है— "अरे पुत्र, तू किस कारण से मुझ असमर्थ वृद्ध का निरर्थक ही उपहास कर रहा है ? तू तो अभी जवान है, विचक्षण विमान-रचना मे दक्ष है, फिर शुभ-लक्षण विमान की रचना क्यो नही कर लेता ?"[114] चिरवियुक्ता माता से मिलनेच्छा भी उसकी कौतुक-वृत्ति को मद नही कर सकती । नारद द्वारा यह दुहाई देने पर ही मुक्ति होती है कि वह तो प्रद्युम्न के पिता का भी परम पूज्य है फिर वह ऐसे तमाशे क्यो करता है ? मार्ग मे भील वेष मे उदधिकुमारी का हरण कर वह द्वारका मे अनेक क्रीडा-कौतुको की झडी लगा देता है, जिनमे वृद्ध अश्व व्यापारी के वेश मे भानु का उपहास, माया-मर्कटो से कृष्ण के उद्यान का ध्वस, माया-रुक्मिणी रच कर सत्यभामा के सेवको और दासियो के नाक-कान काटना, मायावी मेष तथा सिह-वेष धर बलराम को छकाना, रुक्मिणी-हरण इत्यादि अनेक कौतुक व्यापार सम्मिलित है । पितृ-मिलन के पश्चात् भी प्रद्युम्न कौतुक-व्यापारो से उपरत नही होता । कुण्डिनपुर जाकर रुक्मी को युद्ध मे परास्त कर वैदर्भी-हरण के प्रसग मे साम्ब सहित मातगवेष धारण करना[115] प्रद्युम्न कृत क्रीडा-कौतुको की अतिम कडी है ।

कौतुक-व्यापारो मे से बहुलाश के साथ शौर्यवृत्ति भी सश्लिष्ट है । अतः प्रद्युम्न-चरित्र के शौर्य पक्ष का भी चित्रण होता चला गया है । प्रद्युम्न के शौर्य का प्रथम निदर्शन मेघकूटपुर मे ही कालसवर के शत्रु नरेशो को पराजित करने के प्रसग मे होता है । फिर प्रद्युम्न का शौर्य काल-सवर के साथ हुए युद्ध मे तथा अपने

पिता कृष्ण के साथ हुए संग्राम में[116] अभिव्यक्त हुआ है। अपने स्नेह-विह्वल पिता के प्रति व्यंग्योक्तियों में उसका युद्धाभिलाषी अविचल, उत्तप्त शौर्य लक्षित होता है। यही वह स्थल है जहाँ उसके शौर्य का चरम निदर्शन हुआ है।[117] युद्ध उसके लिए कौतुक है। संकटों को वह आमन्त्रित करता है। शौर्य और साहस की परीक्षा में वह अपने भाई, पिता, पितृव्य, और पितामह किसी के साथ कोई रियायत नहीं करता। उसकी शौर्य, साहस और कौतुक वृत्ति स्वयं स्फूर्त है, किसी भौतिक लाभ से उद्दिष्ट या प्रेरित नहीं। प्रतिफल के रूप में उसे यश, उपहार, रमणीरत्न आदि की स्वतः प्राप्ति हो जो जाती है तो वह क्या करे? कालसंवर के साथ घटित युद्ध का कारण वह नहीं बल्कि कनकमाला (तथा उसका पति के प्रति विश्वासघात) है। अतः यह युद्ध आरोपित है। सोलह लाभ-प्राप्ति के प्रसंगभूत अभियान भी अनायास ही संपन्न हुए हैं। हाँ, वैदर्भी के लिए रुक्मी से युद्ध अवश्य रमणी-रत्न-लाभ की कामना से प्रेरित प्रतीत होता है। किंतु इसके मूल में भी माता रुक्मिणी की ही इच्छा कार्यरत है। उदधिमाला का भील-वेष में हरण वह इसलिए करता है कि वह उसकी वाग्दत्ता थी तथा उसके अपहृत हो जाने के कारण लाचारी में उसके भाई भानु को दी जा रही थी। अपनी ही प्राप्य प्रिया का अपहरण नाटक तो हो सकता है किंतु अपराध नहीं। अतः अपने शौर्य पराक्रमों में कहीं भी उस पर अनीति या हीन उद्देश्यता का आरोप सिद्ध नहीं होता।

प्रद्युम्न-चरित्र के कौतुक और शौर्य पक्ष की तुलना में उसके राग-पक्ष का चित्रण उतना ही दुर्बल और असफल रहा है। राग के स्थायी भाव रति का सम्बन्ध तन और मन से समभावेन है, बल्कि वृत्ति के नाते मन ही उसकी वास्तविक पृष्ठभूमि है। इसलिए दैहिक प्रेम (काम) की अपेक्षा आत्मिक प्रेम या दो हृदयों का अटूट प्रगाढ़ सम्बन्ध ही अधिक उदात्त और श्रेयस्कर समझा जाता है। इस दृष्टि से इस कृति का (तथा अन्य प्रद्युम्न-चरित्र विषयक काव्य-कृतियों का भी) अध्ययन किये जाने पर निराशा ही हाथ लगती है। कृष्ण के चरित्र में तो मुग्ध प्रेमी रूप अथवा विदग्ध चतुर प्रणयी-रूप की हलकी सी झलक मिलती है। काव्य के नायक प्रद्युम्न के चरित्र में तो ऐसे क्षीण और अल्प प्रसंग भी अप्राप्य हैं। वस्तुतः नायिका, चाहे वह रति हो, उदधिमाला हो अथवा वैदर्भी, उसे या तो अनायास प्राप्त होती है या अपने माया-कौतुक और शौर्य-प्रदर्शन से। रमणी-रत्न का लाभ उसे भाग्य से होता है अथवा छल-बल के प्रयोग से, अतः स्त्री उसके लिए रति या प्रेम-भावन का आलम्बन ही नहीं बन सकी है। केवल अपने पूर्व भव में मधु नामक नरेश के रूप में वह (प्रद्युम्न) अपनी सामंत-पत्नी कनकाभा की ओर तीव्रता से आकृष्ट होता है। किन्तु यहाँ भी कामबुभुक्षा की बलात् परितृप्ति उसे मुग्ध प्रेमी के रूप में उपस्थित न कर कामार्त रागान्ध के रूप में प्रस्तुत करती है। कनकाभा उसकी प्रेमपात्री न होकर कामतृप्ति का साधन (भोग्या) मात्र है। इसीलिए अपने पूर्वपति

हेमरथ को देख कर कनकाभा का सुषुप्त प्रेम पुन जाग्रत हो उठता है। कथानायक प्रद्युम्न के प्रेमी रूप की प्रतिष्ठा न होने से ही हमे कृति मे नारी के रूप-वर्णन अथवा भोगी रूप मे प्रद्युम्न के सभोग शृगार के चित्र[118] तो मिल जाते है किन्तु प्रणयीजन की आशा-निराशा, आकर्षण, त्याग, अनन्यता, एकनिष्ठता आदि भावनाओ की अभिव्यजना के दर्शन नही होते। किन्तु एकमात्र यह सभोग-वर्णन भी प्रत्यक्षत प्रद्युम्न से सम्बद्ध न होकर उसके पूर्वभव मे मधु रूप से सम्बद्ध है अत कथा-नायक के चरित्र की दृष्टि से इसका परोक्ष महत्व ही है। प्रद्युम्न-वैदर्भी सयोग-वर्णन मे कवि सिह ऋतु-वर्णन की ओर ही प्रवृत्त हो गया है और सयोग-शृगार का चित्र नही दे पाया है।

प्रद्युम्न की निर्वेद वृत्ति का प्रथम दर्शन कनकमाला द्वारा उसके रूप पर आसक्त होने पर होता है। मधु-रूप मे भी वह, जैसा कि हम देख चुके हैं, अपनी विषय-लोलुपता से विरक्त हो राज्य-त्याग कर देता है। जन्मान्तरो के पुण्यफल की उपलब्धि-रूप सयम के प्रभाव से ही वह अत मे दीक्षा ग्रहण कर लेता है। सिह कवि ने प्रारम्भिक दो धत्तो को छोड कर अतिम पद्रहवी सधि का सम्पूर्ण भाग प्रद्युम्न के वैराग्य और तप के वर्णन मे अथवा तीर्थंकरो के स्तवन, श्रेक नेमि-प्रकरण, समवमरण-वर्णन आदि जैन धर्म के तात्त्विक निरूपण मे व्यय किया है क्योकि इस सारी कथा का ही उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि पुण्य जिसका सहचर है उसके लिए इस भुवन-तल मे कुछ भी दुर्लभ नही है।[119]

कृष्ण और प्रद्युम्न के अतिरिक्त सभी पात्रो का चरित्र-चित्रण गौण है क्यो कि उनके चरित्र के विविध पक्षो का सम्यक् प्रशस्त चित्रण न होकर प्रसगगत इने-गिने पक्षो का निदर्शन मात्र है। सत्यभामा एक रूप-गर्विता, मानिनी, स्वत्व के लिए सचेष्ट, सपत्नी-ईर्ष्या से दग्ध और उपहास की पात्री, किन्तु साथ ही वाग्विदग्धा प्रौढा नायिका के रूप मे चित्रित हुई है जब कि रुक्मिणी सर्वप्रथम एक सलज्ज, पूर्वरागानुगता, मुग्धा नायिका के रूप मे आती है। फिर उसे हम भाई रुक्मी के प्राणो की याचना करते हुए एक भ्रातृ-वत्सल भगिनी के रूप मे देखते है। नवजात पुत्र के आकस्मिक वियोग और सोलह वर्ष बाद चिर-प्रतीक्षित पुत्र-मिलन पर उसके वात्सल्य भाव के वियोग और सयोग पक्ष का चित्रण हुआ है। अपनी सपत्नी को लेकर न तो वह उद्विग्न है न गर्विता। प्रति-प्रेम के प्रति प्रगाढ रूप से आश्वस्त होने के कारण वह मौन से ही सब प्रकार की अवाछनीय स्थितियो का निराकरण कर देती है। पति की वह वशवर्तिनी है, उसके नचाये नाचती है, तभी तो उसके इगित मात्र पर अपनी सपत्नी को छकाने लिए वन-देवी का रूप धारण कर लेती है। अपने पुत्र का यश और सुख सदा उसकी चिन्ता का विषय है, इसीलिए अपने भाई रुक्मी से वह प्रद्युम्न के लिए वैदर्भी को वधू रूप मे मागती है। अत मे प्रद्युम्न के वैराग्य धारण करने पर प्रथम तो वह स्तब्ध रह जाती है और रुदन करती है किन्तु अंत मे रुक्मिणी सहित आठो महादेवियाँ राजीमती से दीक्षा ग्रहण कर लेती है।

चरित्राकन के प्रमग मे एक बात का उल्लेख आवश्यक है, वह यह कि सिंह कवि ने एक स्थान पर रुक्मिणी के व्यक्तित्व का अवमूल्यन भी किया है। रति-प्रद्युम्न विवाह के अवसर पर वह गर्व के प्रर्वत पर आरूढ हो कर अपने उदारमना शील स्वभाव को भुला बैठती है। उसके मन मे मात्सर्य बढ जाता है। वह अपनी सौत सत्यभामा के केश रौदने की प्रतिशोध-भावना प्रकट करती है।[120] अ त मे सत्यभामा की वाक् चातुरी तथा वसुदेव बलदेव के समझाने पर दोनो सौतो मे प्रेम स्थापित होता है। रुक्मिणी के चरित्र मे इस हीन भावना का चित्रण सिंह कवि की अपनी मौलिक कल्पना है क्यो कि जिनसेन, गुणभद्र या महासेन मे से किसी ने भी इस प्रकार रुक्मिणी का चरित्र अ कित नही किया है। रुक्मिणी के पूर्णचद्रोपम चारु चरित्र मे इस कलक की विद्यमानता के पक्ष मे यही कहा जा सकता है कि इससे रुक्मिणी का चरित्र अधिक विश्वसनीय हो गया है तथा इस दुर्बलता ने उसके चरित्र की सजीवता और मानवीय सहजता को और भी उभार दिया है।

नारद को कलह-प्रिय (कलह पियारएण) कहा गया है तथा इसी रूप मे वे परम्परा से प्रसिद्ध भी हैं किन्तु सत्यभामा के मार्ग मे सपन्नोरूप कटक बोने के अतिरिक्त कही भी उनकी कलहप्रियता मुखरित नही हुई है। सत्यभामा के प्रति यह प्रतिशोधात्मक आचरण भी केवल वैयक्तिक सकीर्ण हीन भावना से ही प्रेरित नही है, उसका नैतिक पक्ष भी है। शीलरहित, अमर्यादित रूप या प्रेम भारतीय तत्त्व-चिंतन की दृष्टि मे सदा ही निषिद्ध रहा है इसलिए कोई न कोई दुर्वासा या नारद उसे दडित करने ही आये है। नारद का अपमान व्यक्तिगत न हो कर सामाजिक मूल्य का तिरस्कार है। इसलिए उस युग के नैतिक प्रतिमानो के आधार पर नारद के कृत्यो को अनौचित्यपूर्ण कहने का कोई कारण नही होना चाहिए। फिर भी कलहप्रिय वे इसीलिए है कि या तो कौतुकवश अद्भुत की सृष्टि के लिए कलह प्रिय है, यथा कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध अथवा पुण्यात्मा के अभ्युदय के लिए वे उसके युद्धादि कार्यो मे सहायक होते है। फिर भी, सिंह सहित प्राय: सभी जैन प्रद्युम्न-चरित्र-प्रणेता कवियो ने नारद को पुत्र वियोगिनी रुक्मिणी के आँसू पोछते, दूरदराज देशो की खाक छानते, बालक के कुशल-क्षेम का शुभ समाचार माता-पिता को देते, ठीक समय पर उसे अपने पूर्व भवो के बोध से कर्त्तव्य सुझाते हुए मातृ-मिलन के लिए प्रेरित करते और पिता-पुत्र को युद्ध से उपरत करा उनका शुभ मिलन कराते हुए ही चित्रित किया है। वे क्रोधो से कही अधिक मानव-समाज के हितचिंतक और मगल-विधायक है। अहिंसा और जीव-दया की जैन दृष्टि ने नारद के कुपित और शापदायी रूप को उभारने से रोके रखा है। नारद के चरित्र का ही नही, उनकी आकृति-प्रकृति का भी जैन सस्कार हुआ है। वे कमडलु तथा कपिल जटाजूटधारी, सुरकार्य-साधन मे समर्थ है। रुक्मिणी पर उनकी विशेष कृपा है इसलिए वे उसके मनोरथ की पूर्ति करने वाले है।[121]

सिद्ध तथा सिंह कवि की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी एक प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होने प्रतिपक्षी पात्रो के बीच सत्-असत् की धारणा या जाति, वश के आधार पर कही भी उच्चावच का अ तर नही खडा किया है। न ही उन्हे देव-दानव जैसी अतिवादी विषम कोटियो मे ही रखा है। काव्य-नायक के प्रतिपक्षी जनो के गौरव और सम्मान की वैसी ही प्रतिष्ठा की गयी है जैसी कि नायकपक्षीय या तथाकथित श्रेष्ठवशीय पात्रो के गौरव की। वैष्णव परम्परा मे, विशेषत पौराणिक युग मे, पात्रो को एकान्तत सत्-असत् की देव-दानव कोटियो मे रख कर भावनात्मक आग्रह से उन्हे पूर्णत सित या असित रग से चित्रित करने की परम्परा रही है। यद्यपि वैष्णव परम्परा मे भी राक्षसादि कोटि के पात्रो रावण, कस, जरासध इत्यादि के अपार शौर्य और शक्ति का मुक्त-कठ से वर्णन है तथापि नायक के गौरव और महत्त्व-वृद्धि ही इसकी हेतु है न कि कवि की सदाशयता और सहानुभूतिशीलता। अत चरित्र-चित्रण की यह प्रवृत्ति पूर्णत उदारमना नही कही जा सकती। जैन परम्पराओ मे इस प्रवृत्ति का परिष्कार स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही कारण है कि रुक्मिणी-हरण प्रसग मे शिशुपाल को 'रणे दुद्धरु' बताते हुए कहा गया है कि वह कुंडिनपुर मे ऐसे प्रविष्ट हुआ मानो गर्जन करते हुए नये मेघ का आगमन हुआ हो। युद्ध मे भी दोनो के शौर्य का तुल्य वर्णन है।[122] इसी प्रकार प्रद्युम्न युद्ध की समाप्ति पर अपने पोषक पिता विद्याधर नरेश कालसवर के प्रसन्नतापूर्वक चरण छूता है।[123] प्रद्युम्न-विवाह के सुअवसर पर कृष्ण दम्पत्ति न केवल कालसवर दम्पत्ति को आमत्रित ही करते है अपितु समान आधार पर सख्य भाव से समधी का सत्कार करते हुए अपने पुत्र के पालन-पोषण के लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। कृष्ण यदि अन्नासन और वस्त्र-भूषणादि से कालसवर का आतिथ्य करते हैं तो कृष्ण-प्रणयिनी रुक्मिणी कनकमाला से कहती है कि "तुम मेरे लिए चिन्तामणि के सदृश हो। तुम्ही ने मेरी आशालता को मुरझाने से बचाया है तथा पुत्र-वियोग के शोक-सागर मे मुझ डूबती हुई को बचाया है।[123]

कालसवर एक सरल सहज विश्वासी पति के रूप मे आता है। वह प्रद्युम्न के लालन-पालन मे कोई कोर-कसर नही छोडता। वह उदार तथा गुणग्राही भी है इसलिए शत्रु-नरेश पर विजयलाभ के कारण मुग्ध हो प्रद्युम्न को यौवराज्यपट्ट से अलकृत करता है। किन्तु वह नारी-चरित्र का पारखी नही है, न राजोचित नीति-कुशलता और सूझ-बूझ ही उसमे है, इसलिए त्रिया-चरित्र के बहकावे मे आ जाता है। कनकमाला व्यावहारिक सूझ-बूझ की धनी किंतु विषयवासना की चेरी है। त्रिया-चरित्र मे वह इतनी कामाध और कुलटा है कि जिस प्रद्युम्न मे अनुरक्त है उसी के विरुद्ध सौतेले भाइयो को हत्या के लिए उकसाती है और निम्नतम कोटि का कपट-नाटक रचती है। वटपुर नरेश हेमरथ कालसवर से भी अधिक स्थूल बुद्धि का है। उसका भोलापन मूर्खता की सीमा तक जा पहुँचता है कि वह पत्नी द्वारा मधु की

चेष्टाओ मे अपने शील पर सकट का आभास दे देने पर भी मधु के षडयत्र को नही समझ पाता। कालसवर और कनकरथ एक ही बुद्धिहीनता के दो छोर है। अतर यही है कि यदि कालसवर कोयले को भी रत्न समझे बैठा है तो कनकरथ रत्न को भी कोयले से अधिक महत्त्व नही दे पाता। फलत: दोनो ही अभागे हैं। किन्तु कनकरथ की विक्षिप्तावस्था से उसके प्रेमी-रूप मे सशय नही रहता। उसकी विक्षप्तावस्था से कनकाभा से का विचलित हो जाना उसकी मौलिक अच्छाइयो को सिद्ध करता है। कनककाभा के चरित्र मे धैर्य नही है। वह विना विशेष विरोध के शीघ्र ही मधु से समागम के लिए प्रस्तुत हो जाती है और समपर्ण कर देती है। इतनी ही शीघ्रता से वह अपने पूर्व पति की विक्षिप्तावस्था से विचलित हो अपने वर्तमान पति से आकर्षण तोड़ बैठती है। इन समस्त पात्रो के चरित्र-चित्रण से स्पष्ट है कि सिद्ध तथा सिह ने पात्रो का परिस्थिति-सापेक्ष चित्रण किया है तथा अपेक्षित सतुलन का भी निर्वाह किया है। पात्रो के चरित्र के माध्यम से वे मानव-हृदय की गूढ गुत्थियो को खोल सके हैं तथा तीव्र भावावेगपूर्ण क्षणो की सृष्टि अपने कथा-प्रवाह मे करने मे कृतकार्य हुए हैं।

किन्तु कुछ बाते खटकती भी है। उदाहरण के लिए, प्रद्युम्न के कथा-नायकहोते हुए भी कृष्ण के प्रणयी रूप का चित्रण उससे कही अधिक हुआ है जिससे कथा-नायक के नेतृत्व और चरित्र की समग्रता और महत्ता मे रिक्तता और न्यूनता उत्पन्न हुई है। साथ ही प्रद्युम्न द्वारा माता से छल-पूर्वक तीन विद्याए ले लेने का नैनिक औचित्य भी स्पष्ट नही हो सका है। उसके अनेक कार्य कोरी कौतुक-वृत्ति के निदर्शक होने के कारण अद्भुत तो प्रतीत होते हैं किन्तु नैतिक आधार के अभाव मे उदात्तता तो दूर, उनका लौकिक दृष्टि से औचित्य तक सदिग्ध हो जाता है। ऐसे कृत्यो मे रुक्मिणी-हरण सर्वाधिक-आक्षेप-योग्य है। इसी प्रकार पात्रो के भवान्तरो मे सक्रमण और उनके अच्छे-बुरे जन्म-लाभ का कारण नैतिक आधार घोषित होते हुए भी चरित्राकन मे यह आधार स्खलित हो गया है अन्यथा आज्ञाकारी विश्वासी सामत कनकरथ के जीव को असुर-योनि मे धूमकेतु बनने की पीड़ा नही भोगनी पडती और न ही परदार-अपहर्ता मधु को अगले जन्म मे प्रतापी प्रद्युम्न के रूप मे उसी अपहृता प्रणयिनी से (जो अब माता स्थानीय है) छलपूर्वक विद्यालाभ तथा अव्याहत गौरवपूर्ण कृत्यो का यश प्राप्त होता। कहा जा सकता है कि उसने जिनधर्म का पालन किया था इसलिए पाप धुल गये। फिर भी पीडित की तुलना मे पापी के ही पल्ले धर्मलाभ का छप्पर फाड कर बरसने का औचित्य अनुत्तरित ही रह जाता है। एक अभाव यह भी खटकता है कि मानवेतर यक्ष विद्याधरादि पात्रो के प्रति उदारमना होते हुए भी ब्राह्मणवर्ग का चित्रण एक पक्षीय और एकागी ही रह गया है। सिद्ध कवि के पक्ष मे फिर भी यह कहा जा सकता है कि उन्होने द्विजपुत्रो (अग्निभूति तथा मरु-भूति) को जैन मुनियो से अपने धर्म-माहात्म्य की सिद्धि के लिए हीन तथा पराजित दिखाते हुए भी उन्हे 'वभणह कुलागउ अग्गहारु' तथा 'दिय वेय सत्थ विण्णाण गणय' कह कर प्रशसित किया है।[125]

तथा श्रेष्ठ और पतित ब्राह्मणों के अन्तर को स्वीकार करते हुए ऐसे ब्राह्मणों को ही जो 'समयाचरण वेय गुण वज्जिय' होते हुए भी' अप्पउ विप्प भणतिणलज्जिय', तिरस्कार्य मानते हुए पूज्य ब्राह्मणों के लक्षण भी बताये' है—ब्राह्मण णयइ माणगुणजुत्तउ, माहित्तइ सुकवित्तइ पुज्जइ'[123] तथापि खेद है कि परवर्ती कवि ऐसी सम्यक् वृत्ति नहीं रख सके है तथा उनकी अभिव्यक्ति का स्वर और भी बिगडा हुआ दीख पडता है। भारत के तत्कालीन धार्मिक जगत की हवा ही शायद इसके लिए दोषी रही है। चरित्राकन विषयक विश्लेषण के आधार पर समग्रत कहा जा सकता है कि चरित्र-चित्रण-कला मे कुशल तथा समर्थ सिद्ध हुए है।

13. संवाद-योजना

'पज्जुण्ण चरिउ' सवाद-योजना की दृष्टि से भी एक सफल कृति है। जिनसेन, गुणभद्र तथा पुष्पदत द्वारा वर्णित प्रद्युम्न-कथा मे सवादो की विशेष योजना नही है तथा कही-कही स्फुट वाक्यो को सवाद रूप मे निबद्ध करने के अतिरिक्त समस्त इतिवृत्त कवियो द्वारा वर्णनात्मक शैली मे ही लिखा गया है। महासेनाचार्य का ही प्रथम बार रोचक सवादो रचना करने का श्रेय दिया जा सकता है। महासेन ने रुक्मिणी के पान की उगाली तथा वनदेवी रूप के व्याज से कृष्ण द्वारा सत्यभामा का उपहास करते समय कृष्ण और सत्यभामा मे सुन्दर सवाद की योजना की है।[127] विमान-रचना-प्रसग मे भी नारद-प्रद्युम्न के मध्य सुन्दर वार्तालाप होता है। जिस प्रसग को जिनसेनाचार्य ने अपारूढो विमानेन द्वारिकागमन प्रति' कह कर ही चलता किया है उसी का महासेन हास्यरस-पूर्ण सुन्दर सवाद-सृष्टि के लिए उत्खनन करने मे सफल हुए है। महासेन द्वारा रचित अन्य सुन्दर सवाद-स्थल है–शबर (भील) वेषी प्रद्युम्न का उदधिमाला-हरण के प्रसग मे दुर्योधन के सैनिको से वार्तालाप, वृद्ध अश्व-व्यापारी वेष मे भानु से वार्तालाप तथा रुक्मिणी-हरण के फलस्वरूप हुए युद्ध मे प्रद्युम्न-कृष्ण सवाद।[128] सिद्ध तथा सिह कवि का सवाद-कौशल भी इन्ही स्थलो मे विशेष प्रकट हुआ है। यो तो छोटे-से-छोटे प्रसग मे भी इन कवियो ने रोचक और अवसरानुकूल सवादो की सृष्टि की है जो कथा-प्रवाह को गति और सरसता प्रदान करते है और परिस्थिति का नाटकी चित्रण करते हुए कथा के वातावरण को विश्वसनीयता प्रदान करते है। उदाहरण के लिए कृष्ण जब रुक्मिणी के चित्रपट पर विस्मय-विमुग्ध होकर नारद से पूछते हैं कि इस रूपसी का चित्र उन्हे कहाँ से उपलब्ध हुआ, तो प्रत्युत्तर मे नारद तुरत रुक्मिणी का नाम न बताकर उत्सुकता जाग्रत करते हुए कुडिनपुर के सौन्दर्य, भीष्मक नरेश के प्रताप तथा रुक्मी आदि की प्रशसा करते है और तब कही रहस्योद्घाटन करते हैं कि यह उसी भीष्मकनरेश की रुक्मिणी नामक सर्वसुलक्षणा कनिष्ठा कन्या का चित्र है।[129] कवि ने पूरा एक ग्रथ इसमे व्यय किया है। कृष्ण की जिज्ञासा को तीव्र करने और रुक्मिणी मे उन्हे पूर्णत अनुरक्त करने के लिए ऐसा ही सवाद अपेक्षित है। पान

की उगाली के प्रसग मे हुए कृष्ण-सत्यभामा सवाद मे महासेनाचार्य की भगिति-भगिमा की छाया होते हुए भी सिद्ध कृत सवाद-वर्णन कुछ अ तर लिये हुए है। सत्यभामा की वाक्-चातुरी तो दोनो कवियो ने एकसी चित्रित की है किंतु सिद्ध कवि ने सत्य-भामा द्वारा कृष्ण का उपहास भी व्यजित किया है। सत्यभामा कृष्ण से कहती है—आखिर तो तुम ग्वाले ठहरे।' तुम्हारे अन्दर बुद्धि ही कितनी है? तुम्हे हास-परिहास करने का ज्ञान रचमात्र नही है।[130] सिद्ध कवि के सवाद मे देशज वातावरण (लौकल कलर) तथा स्वाभाविकता अधिक है। उसमे सत्यभामा का और भी प्रगल्भ और विदग्ध रूप उभर कर आया है जो उसकी कथागत भूमिका के सदर्भ मे अधिक सगत प्रतीत होता है। किन्तु सिह कवि मौलिकता का ऐसा निर्वाह नही कर पाये हैं। सिह कवि के सवादो पर महासेनाचार्य का प्रभाव स्पष्ट है, बल्कि कही-कहीं तो वे महासेन के छायानुवाद बन कर रह गये है। ऐसी कतिपय उक्तियो का निदर्शन यहाँ किया जाता है—

संवाद–योजना

(विमान–रचना–प्रसंग)

महासेन वर्णित उक्तियाँ	सिह वर्णित उक्तियां
(1) अति शिल्प विशेप कोविदो भवता नास्ति जगत्रये सम	(1) कहि कहि वाय ताय कहि सिक्खिउ पइ जेहउ छहल्लु न णिरिक्खउ
(2) अयि वत्स जराधिकस्य मे निपुणत्व कुत इत्यवोचत कुशलस्तरुणोसि सत्वर कुरुपे किं न विमानमुत्तमम्	(2) हउ सुय थेरु कज्ज असमत्थउ किं कारणु उवहासहि नित्यउ तुहु जुवाणु सुवियड्ढु वियक्खणु रयहि विमाणु किं न सुहलक्खणु
(3) पूजितोस्मि पितृवत्पितुस्तव	(3) तुहु पियरह हउ निरु परम पुज्जु

(कृष्ण–प्रद्युम्न–युद्ध)

(4) ख्याता भोजा यादवा पाण्डवाधा स्तेपा स्वामी शस्त्रविद्याप्रवीणः। धातुर्धैर्य त्वीदृश मे न योधे चाय स्वीयरक्षितु नैवशक्त ।।	(4) तुहु वहुजाय वहिमिसेवय हो। तुहुमि विकियरणसर मडण हो ।। णिय धणु हु ण रखविण उत्तरही। असमत्थु वि तो मायावर ही ।।

इसी प्रकार के अन्य अनेक उद्धरण और जुटाये जा सकते है। फिर भी किसी सीमा तक अनेक उक्ति साम्य होते हुए भी सिध्द तथा सिंह ने सवाद-योजना मे पूर्णतः महासेन पर निर्भर न रह कर मौलिक सूझ-बूझ से भी काम लिया है। उदाहरण के लिए महासेन ने काम-पीडित राजा मधु का अपने मत्री से जो सवाद वर्णित किया है उसमे सामान्य-कथन की शैली और औपचारिकता की गध है। सिद्ध कवि ने इसको कही अधिक सुन्दर ढग मे निबद्ध किया है। मत्री के प्रश्न की भाषा मे अधिक आत्मीयता और व्यग्रता झलकती है तथा राजा का यह कहना भी कि 'मयण भल्लिसहृतिण तिलु कपइ' तथा 'तल्लोवल्लि सरीरहु वट्टइ' उसकी कामपीडा को कही अधिक सजीव रूप से व्यजित करता है।[131] इसी प्रकार कामासक्त कनकमाला के प्रणय-निवेदन पर सिंह कवि ने कनकमाला और प्रद्युम्न के बीच अधिक मनोवैज्ञानिक वार्तालाप की योजना की है। अश्व-व्यापारी वेष के प्रसग मे सिंह कृत प्रद्युम्न-भानु सवाद-वर्णन महासेन कृत इसी प्रसग के सवाद-वर्णन से पर्याप्त भिन्न है और निजी छाप लिये हुए है। प्रद्युम्न इस अवसर पर एक कुशल व्यापारी की भाँति ग्राहक पटाने के सभी मनोवैज्ञानिक नुस्खे काम मे लाता है तथा भानु का उपहास करता है। अन्त मे भानु प्रत्युत्तर देता है—"अरे चाकर, मेरा निरर्थक उपहास मत कर। यह अच्छा नही है। मुनि (विद्वान) पहले ही कह चुके हैं कि जो घोडे पर चढेगा वही गिरेगा और जो युद्ध मे लडेगा उसी को मौत आएगी।[132]

रुक्मिणी—हरण के फलस्वरूप हुए प्रद्युम्न—कृष्ण युद्ध मे हम देख चुके हैं कि किस प्रकार कृष्ण उस अवसर पर दर्पयुक्त शौर्यप्रसूत वचन कहते हैं किन्तु उनके स्नेह—शिथिल हो जाने पर प्रद्युम्न अपनी जिन व्यग्योक्तियो से उन्हे युद्धार्थ उत्तेजित करता है वे भी कम प्रभावशाली नही है।[133] यह पिता—पुत्र सवाद सिंह कवि की कुशल सवाद—योजना का सफल कलात्मक निदर्शन है। प्रद्युम्न की व्यग्योक्तियाँ ही कथानक को अपने उद्दिष्ट लक्ष्य की ओर गतिशील करती हैं। इस प्रकार सिद्ध तथा सिंह कवि कृत सवाद—योजना मे जहाँ हमे कतिपय स्थलो पर ग्राम्यत्व दोष तथा अव्याप्ति दोष मिलते हैं तथा पारम्परिक प्रतीक—योजना और वचन—भगिमा के दर्शन होते है तो दूसरी ओर उनमे कवियो की अपनी सूझ—बूझ, अवसर तथा पात्रोचित उक्ति—कथन, प्रसंगोचित औचित्य—निर्वाह, पात्रो की चरित्र—सृष्टि को उद्घाटित तथा रूपायित करने की क्षमता, मार्मिक भावात्मक प्रसगो की उद्भावना एव कथानक को गतिशील करने की प्रवणता इत्यादि सवादकला के गुणो का भी अभिनिवेश हुआ है।

पिछले पृष्ठो मे सिद्ध तथा सिंह कवि द्वारा वर्णित ऐसे अनेक प्रसंगो को उद्धृत और उल्लिखित किया जा चुका है जिनमे इन कवियो ने मानव-हृदय की राग-विरागमयी सूक्ष्म-जटिल भावनाओ के अनेक सुंदर चित्र प्रस्तुत किये है। जिन मनोभावनाओ का विशेष चित्रण हुआ है, वे है—रति, हास, शोक, उत्साह और निर्वेद। इसीलिए इन स्थायी भावो के अनुकूल ही शृंगार, हास्य, करुण और वीर-रस सम्बन्धी वर्णनो की विशेष योजना हुई है। पात्रो के चरित्र-चित्रण तथा सवाद-योजना की समीक्षा के अन्तर्गत मनोभावाभिव्यजनाओ का दिग्दर्शन कराया जा चुका है। अतः पिष्ट-पेषण दोप के परिहार के लिए यहाँ केवल रस सम्बन्धी कतिपय निदर्शन ही पर्याप्त होगे।

14 भाव-सौंदर्य तथा रस-निरूपण

रुक्मिणी-हरण प्रसग मे सिद्ध कवि ने शृंगार रस का सुन्दर परिपाक किया है। भरत मुनि के रससिद्धान्त के अनुसार 'विभावानुभाव सचारि सयोगाद्रस निष्पत्तिः।' रस के उक्त विभिन्न उपकरणो के आधार पर कृष्ण-रुक्मिणी तथा कृष्ण-जाम्बवती के प्रणय-प्रसगो मे सयोग-शृंगार का सम्यक् परिपाक हुआ है। भरत-मुनि कृत नायिका-भेद के अनुसार रुक्मिणी 'कन्या' या 'कन्यका' (सिद्ध कवि के स्वय के शब्दो मे 'ता वालिय' अर्थात् वाला) नायिका है। जनार्दन हरि (हरि जणद्दणु) धीर ललित प्रौढ नायक रस के आश्रय है; रुक्मिणी आलम्बन है। उसका पैर के अँगूठे से धरती कुरेदना, वकिम दृगपात (समुहु निहालइ, चलणगुठ्ठइं धर पोम्हालइ णयण ससक वक करि जोवइ) इत्यादि चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं; कृष्ण के प्रणय निवदेन सूचक उद्गार (तुह कज्जे गिरिवण लघेप्पिणु……इत्यादि) वाचिक अनुभाव हैं और व्रीडा, शका, चिन्ता इत्यादि सचारी भाव। अतः सयोग-शृंगार का शास्त्रीय विधि से परिपाक स्वतः सिद्ध है। नायिका की स्वेच्छा पर उसका अपहरण क्षत्रिय के लिए शास्त्र-सम्मत है अत रसदोप या रसाभास का प्रश्न ही नही है। इसी प्रकार, कृष्ण-जाम्बवती संयोग-शृंगार का विश्लेषण यो किया जा सकता है—

(क) शृंगार-रस (संभोग शृंगार) (कृष्ण-जाम्बवती समागम वर्णन) 136 (सिहंकविकृत)

आश्रय—कृष्ण (अचुअ णारायणु)

आलम्वन विभाव—जाम्बवती

उद्दीपन विभाव—जाम्बवती की रागोद्दीपक चेष्टाएँ, यथा समागम के लिए सकेत करना (पठम पियई समु सकेउ वि किउ) अपने प्रणय-युद्ध मे रिपुजयी सौंदर्य का प्रदर्शन करना (दरिसाविउ सरूउ णियणाह हो, रिउ पणयणह रणग णिव्वाह हो), जाम्बवती का सजल सरस विकच कमलवत सुन्दर मुख-सौंदर्य (सजल सरिस सररुह वियसियमुँह), जाम्बवती का कण्ठ में रत्नहार, आदि धारण कर शृंगार करना (घित्त स रयणमाल गलि

कद्दलि) तथा युवतियो का गायन (गीय भणति जुअई जण सत्थइ) इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं।

अनुभाव— वाचिक अनुभाव के अंतर्गत कृष्ण का यह कहना कि मैंने ऐसा त्रिभुवन को चकित करने वाला विस्मयपूर्ण प्रपच (लीला वि॰ ास) कही भी नही देखा (एहु कहिमि पवच्चु ण दिट्ठु मइ, तिहुअणु चोज्जुप्पायणु) आंगिक अनुभाव के अंतर्गत जाम्बवती का मुख अपने हाथ से ऊपर उठाना (जवुइणियोत्ति कर पिहिविमुहु) इत्यादि तथा सात्त्विक अनुभाव के अंतर्गत स्वेद और रोमाच (अविरल पुलइनि पुच्छिय देहइ तथा पिय दसणि वड्ढिय रोमचइ) इत्यादि है।

सचारी भाव—श्रम (रति-श्रम यहाँ सूचित है) औत्सुक्य, गर्व इत्यादि सचारी भाव हैं।

विशेष— जाम्बवती स्वकीया, कनिष्ठा, अनुरक्ता, चेष्टाचतुर नायिका है, कृष्ण अनुकूल और धीरललित नायक हैं। 'विलसिनु एहु इक्खु घणघार हो' तथा 'ता अच्चुअदिउ देहठिमतिरि थिउ अवयरिवि णाइ सइदलु सरि' से सयोग की तन्मयता और अद्वयता सूचित होती है। अत. यह सयोग शृंगार का श्रेष्ठ उदाहरण है।

सयोग-शृंगार के ही अन्तर्गत सिंह कविकृत कृष्ण-सत्यभामा सयोग-वर्णन भी आता है। कवि कहता है कि रतिरस की आकाक्षा लिये सत्यभामा का कृष्ण से मिलन यो शोभित हुआ मानो सुरसरि का अपने प्रिय चद्रमा से। दोनो प्रेमी किसलय शैया की ओर ऐसे ही चले जैसे भ्रमर और भ्रमरी पुष्प-गध की लालसा से (सुमन-कुज की ओर) जाते है। दोनो ने परस्पर नेत्रो मे नेत्र उलझा दिये तथा अनुरागपूर्ण चित्त से दोनो का मिलन हुआ।[137] सयोग का सुदर वर्णन होते हुए भी अनुभाव तथा सचारी भावादि की योजना के अभाव मे शास्त्रीय दृष्टि से शृंगार रस का परिपाक यहाँ नही हो सका है। विश्वनाथ ने उद्बुद्ध स्थायी भाव को विभावादि सामग्री की अपूर्णता के फलस्वरूप रस मे परिणति न होने पर 'भाव' माना है— 'उदवुद्धमात्र' स्थायी च भाव इत्यभिधीयते'।[138] किन्तु सचारी भावो को भी प्रकृष्टता प्राप्त होने पर 'भाव' माना गया है। फिर 'भाव' शब्द सामान्यत्व लिये हुए है अत ऐसे वर्णन-स्थलो को, जो मात्र सचारी या अनुभाव आदि को गौण औपचारिक पूर्ति के अभाव मे ही रस घोषित नही किये जा सकते, हमारी सम्मति मे, 'भाव-परिपाक' अथवा 'व्यग्यरस' शब्द से अभिहित किया जाना चाहिए। अत उक्त कृष्ण-सत्यभामा सयोग-वर्णन को हम 'भाव परिपाक' या 'व्यग्यरस' का उदाहरण कहना चाहेंगे। इसी प्रकार मधु-कनकाभा सयोग-वर्णन को, रस के विभिन्न उपकरणो के होते हुए भी, मधु द्वारा छल-बल से अपने सामत की पत्नी को अगीकृत किये जाने के कारण, सामाजिक तथा नैतिक आधार पर, कविराज विश्वनाथ द्वारा विवेचित स्थापनाओं के अनुसार,

'रसाभास' की ही कोटि मे रखा जाना चाहिए ।[139] मधु-कनकाभा सयोग-वर्णन के प्रसग मे कवि ने इतनी रुचि ली है कि जड-चेतन के व्यापारो के परस्परारोप द्वारा उसने इसकी पृष्ठभूमि मे उदयगिरि पर उदित होते हुए सूर्य की दिशा-रूपी गणिका के साथ (रति) क्रीडा करते हुए चित्रित किया है ।[140]

आश्चर्य तो यह है कि कृष्ण के प्रणय-प्रसगो तथा मधु-कनकाभा सयोग के वर्णन मे तो इन कवियो ने इतनी रुचि ली है किन्तु कथा-नायक प्रद्युम्न से सम्बद्ध शृ गार-वर्णन उपेक्षित ही रह गये है। इसका कारण सभवत यही है कि प्रद्युम्न को कथा-नायक के रूप मे अन्त मे निर्वेद प्राप्ति कर जिन-दीक्षा ग्रहण करनी थी अत. अपने श्रेष्ठतम पात्र को, श्रद्धाभाजन होने के कारण, (स्मरण रहे जैन परम्परा मे कृष्ण से अधिक माहात्म्य प्रद्युम्न और नेमिनाथ का है) शृगारिक चेष्टाओ के वशीभूत न दिखाना ही इन कवियो को अभीष्ट रहा हो। इसीलिए गौण पात्रों के भाग्य मे ही शृ गार-सुख लिखा गया।

विप्रलभ शृ गार के भी कुछ सरस सुन्दर स्थल इस कृति मे है। कथा-प्रवाह के अन्तर्गत विप्रलभ-वर्णन का प्रथम अवसर सिद्ध कवि को उपेक्षिता सत्यभामा की वियोगावस्था के प्रसग मे उपलब्ध हुआ है। किन्तु मधु की काम-पीड़ा के प्रसग मे विप्रलभ शृ गार का अधिक सफल निरूपण हुआ है—

(ख) शृंगार रस (विप्रलंभ) (मधु की काम-पीड़ा)

आश्रय—मधु नृप

आलम्बन विभाव—कनकाभा का सौंदर्य

अनुभाव— गायन-वाद्य और असन-वसन मे अरुचि, आभरण और आलेपन का त्याग, तालावेली, विवर्ण मनस्कता, कर आदि।

सचारी— चिन्ता, दैन्य, स्मृति, इत्यादि

विशेष— विवाह के समाजस्वीकृत वृत्त से बाहर होने के कारण इसे चाहे तो नैतिक आधार पर भले ही 'रसाभास' का उदाहरण कह दे। काव्य-दृष्टि से यह वियोग-शृ गार का सफल निदर्शन है। कनकाभा (कचनप्रभा) के वियोग मे उसके पूर्वपति कनकरथ (हेमरथ) की विरह दशा का भी सिद्ध कवि ने यथार्थपरक सजीव वर्णन किया है। इसमे यद्यपि उद्दीपन विभावों तथा सचारियो का वर्णन न होने से शास्त्रीय दृष्टि से रस परिपाक भले ही न स्वीकार किया जा सके तथापि अनुभावो का उत्कृष्ट तथा सजीव चित्रण होने के कारण यह वर्णन बडा ही सरस बन पडा है। विरहोद्भ्रान्ति-जनित अवस्था का यह सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण है जिसमे शरीर दशाओ (अनुभावो) का मन. प्रकृति के अनुकूल वर्णन है ।[143]

शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसो के व्यंजक उत्कृष्ट स्थलो के कतिपय उदाहरण अधोलिखित प्रस्तुत है :—

(ग) वात्सल्यरस (संयोग वात्सल्य) (कृष्ण-प्रद्युम्न-मिलन)[144]

आश्रय—कृष्ण

आलम्बन विभाव—प्रद्युम्न

उद्दीपन विभाव—प्रद्युम्न का रूपवान शरीर ('सुग्र सरीरु ग्रइ रूउ णिवासुवि' तथा 'दिक्कदिवाकरु' रूप)

अनुभाव— सिर चूमना तथा मस्तक ऊपर उठाना आदि आंगिक अनुभाव (सिरि चु विवि उच्चायउ नेहइ) तथा रोमाच सात्त्विक अनुभाव (अविरल पुलयहिं पुलयउ सिरिहरु)

सचारी भाव—हर्ष आवेग (जो 'वा वार अवरुडि विमोहइ' मे सूचित होता है)

(घ) वात्सल्य रस (वियोग वात्सल्य) (प्रद्युम्न-हरण प्रसग)[145]

आश्रय— रुक्मिणी

आलवन विभाव—प्रद्युम्न

उद्दीपन विभाव—शिशु प्रद्युम्न का कुवलयदलाक्ष, अलिनीलवाल, रक्तोत्पल मृणालवत् करतल, कवुकठ, सुनासयुक्त रूप, कर्पूर, शीतल जल सिंचन आदि उपचार।

अनुभाव— छाती पीटना वेणी के मोती तोडना, सिर धुनना, हथेलियो से धरती पीटना आदि आंगिक अनुभाव। हा पुत्र, तुझे कौन ले गया, मेरा हृदय शर्करा की तरह चूर्ण-चूर्ण हो रहा है"—इत्यादि वाचिक अनुभाव तथा अश्रु, प्रलय (मूर्छा) आदि सात्त्विक अनुभाव।

सचारी भाव—स्मृति, गर्व इत्यादि

शिशु प्रद्युम्न के हरण अथवा प्रौढ प्रद्युम्न के दीक्षा-ग्रहण जैसे वियोग-वात्सल्य प्रसगो मे सिंह कवि ने 'इय सोय महारस पसरियउ' कह कर करुण अथवा शोक महारस की स्थिति मानी है। विप्रलभ वात्सल्य और करुण रस मे किसी बिन्दु पर इतनी निकटता है कि अनेक साहित्याचार्यो ने विप्रलभ वात्सल्य को करुण रस के ही अन्तर्भुक्त कर लिया है। उदाहरणार्थ, हिंदी काव्य-शास्त्र के मुख्य उपजीव्य ग्रथ भानुदत्त-रचित 'रसतरंगिणी' मे विप्रलभ वात्सल्य करुणरस मे ही अन्तर्भुक्त है।[146] भरत मुनि ने शोक स्थायी भाव से करुण रस की उत्पत्ति प्रतिपादित करते हुए प्रिय के वियोग, इष्ट-नाश, वैभवनाश आदि को इसका हेतु स्वीकार किया है।[147] पण्डित-राज जगन्नाथ के अनुसार भी पुत्र-वियोग से उत्पन्न चित्त की विकलता 'शोक' स्थायी

भाव कहलाती है ।[148] इष्टनाश तथा अनिष्ट-प्राप्ति को शोक (फलत करुण रस) का हेतु आचार्यों के बहुमत ने स्वीकार किया है । विक्रम की प्रथम शताब्दी मे रचित जैन ग्रंथ 'जैनागम अनुयोग द्वारसूत्र' भी प्रिय के वियोग तथा पुत्रमरण आदि कारणो से करुणरस की उत्पत्ति मानता है ।[149] अत करुण रस के मुख्य प्रेरक हेतु है--इष्ट-नाश, अनिष्ट-प्राप्ति, वैभवनाश, पुत्र-मरण तथा पुत्र-वियोग । इनमे से प्रस्तुत संदर्भ मे सिर्फ पुत्र-वियोग की स्थिति घटित होती है--वह भी संभाव्य वियोग है । पुत्र द्वारा जिन-दीक्षा किसी भी दृष्टि मे विशेषत जैन कवि की दृष्टि मे तो कदापि 'इष्ट-नाश' या 'अनिष्ट प्राप्ति' नही कहा जा सकता । यह तो पुण्योदय है और श्रेयस्कर कार्य है । अत पुत्र-वियोग की ही स्थिति यहाँ है । क्या पुत्र-वियोग की स्थिति मे करुण रस की सत्ता मान ली जाए ? भरत मुनि ने करुण रस को 'निरपेक्ष' भाव तथा विप्रलंभ को 'सापेक्ष' भाव से घटित मान कर दोनो के भेद को स्पष्ट किया है ।[150] तात्पर्य, जहा प्रिय-वियोग मे पुनर्मिलन की आशा नही हो मात्र वही करुण रस माना जाना चाहिए । विप्रलंभ का स्थायी भाव 'रति' है और करुण का स्थायी भाव 'शोक' । 'रति' और 'शोक' दोनो भावो की सम्मिलित स्थिति मे उलझन के कारण ही 'करुण'-वात्सल्य' और करुण शृंगार' नामक रस के दो पृथक् भेदो की भी कल्पना की गयी है । आचार्य शुक्ल ने इस मिश्रित स्थिति को दो रूपो मे विभाजित करते हुए आश्रय की प्रिय-वियोग-जन्य अपनी विरहावस्था विकलता को विप्रलंभ तथा वियुक्त प्रिय (आलम्बन) के सम्बन्ध मे उसकी आशंका, कष्ट-चिंतादि को करुण के अन्तर्गत रखा है ।[151] किन्तु हमारी विनम्र सम्मति मे यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक और युक्ति-युक्त नही है क्योकि दोनो प्रकार की भावनाए संश्लिष्ट रूप से स्थित रहती है तथा ऐसे प्रसंगो मे 'रति' (या स्नेह) तथा 'शोक' का एकान्तत. सम्बन्ध विच्छेद हो भी नही सकता अत. यह वर्गीकरण पुष्ट, तर्कसंगत और व्यवहार्य आधार पर स्थित नही है । डॉ० ब्रजवासी लाल श्रीवास्तव भी इसे स्वीकार करते है कि वियोग जन्य परिस्थितियो मे "इस प्रकार का पृथक् विभाजन संभव नही होता । ऐसे नही कहा जा सकता कि वियोग की स्थिति मे एक आश्रय वियोग से केवल विकल होगा और दूसरा प्रिय के कष्ट की आशंका से केवल कातर होगा ।" किन्तु यहा तक सही होते हुए भी वे आगे अपने तार्कजाल मे उलझ जाते है, जब वियोग मे मा और पत्नी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, सांस्कृतिक संदर्भ को व्यर्थ ही बीच मे घसीटते हुए, ऐसी पत्नी की तो कल्पना करने को विवश होते है जिसे पति के वियोग मे 'रति' के स्थान मे 'शोक' हो किन्तु ऐसी मा की कल्पना भी नही कर सकते (उन्हे इस कष्ट-कल्पना के लिए विवश कर ही कौन रहा है ?) जिसे पुत्र-वियोग मे 'शोक' के स्थान मे 'रति' भाव का अनुभव हो ।" फिर गोपियो और यशोदा की स्थितियो को, यह जानते हुए भी कि "भरत द्वारा प्रतिष्ठित करुण और विप्रलंभ के भेद के आधार पर सुलझा सकते हैं" तथा गोपियो के विरह को विप्रलंभ का उदाहरण स्वीकार करते हुए भी (न कि करुण का) सांस्कृतिक संदर्भ को व्यर्थ आड़े ले कर उन्होने उस के आधार पर मा के मत्थे 'रति'

भी श्रौति पूर्णोपमा का[163] ही सुन्दर प्रयोग किया है । श्रौती पूर्णोपमा के ही अन्य उदाहरण है—प्रद्युम्न-कालसवर युद्ध मे प्रद्युम्न के लिए सिह कवि का यह कहना कि वह युद्ध मे सुभटो के मस्तक ऐसे ही तोड देता है जैसे मत्त हाथी कमलों को तोड डालता है[164] तथा अपने स्वय के लिए यह कहना कि कवि सिह जिनमनी (जिणवई) नामक माता के गर्भ से इसी प्रकार उत्पन्न हुए जिस प्रकार सरोवर से कमल उत्पन्न होता है ।[165] कनकमाला से प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ के प्रद्युम्न के पास चले जाने की बात सुनकर निराश कालसवर की हिमाहत कमलवन से प्रसगोचित सुन्दर सादृश्य-योजना करते हुए कवि ने वाचकलुप्तोपमा[166] का प्रयोग किया है । इन सभी उदाहृत स्थलो मे अलकार-योजना सफल रही है क्योकि उपमान रूप वस्तु तथा व्यापार का विधान प्रसगोचित तथा सम्वद्ध भाव का उत्कर्षकारी रहा है किंतु कही-कही चमत्कार-प्रियता से सादृश्य-विधान का औचित्य खडित या सदिग्ध भी हो गया है । उदाहरणार्थ, सिद्ध कवि ने गर्भिणी रुक्मिणी और सत्यभामा के उत्तुग पुष्ट स्तनो की तुलना कृष्णमुख दुर्जन जनो से की है । यह वाचक लुप्तोपमा का उदाहरण है ।[167] यद्यपि कृष्णमुख होने के कारण रग-साम्य के आधार पर दुर्जन से सगति बैठ जाती है तथा स्तनो का गूढ कपट-वार्ता के लिए मुँह मे मुँह सटा लेना, उनकी दुर्जनता के कारणो, पुत्रजनन मे कष्ट-कठिनाई की सभावना, फलत दुर्जन रूप स्तनो के गर्भ (हृदयस्थ कूट भाव) की शुद्धि के लिए गर्भ-शुद्धि की हेतु-व्यापार-जन्य सगति भी सिद्ध हो जाती है और कल्पना की सूक्ष्मता तथा सुदूरवाही व्यापार-योजना के निर्वाह-की प्रशसा भी करनी पडती है तथापि वृत्ति साम्य स्थापित न होने से रुक्मिणी जैसी सद्वृत्तियो वाली आदरास्पद रमणीरत्न के स्तनो का कृष्णमुख दुर्जन से सादृश्य खटकता ही है । सूक्ष्म व्यापारो की सगति और अर्थमत्ता के उपरात, आधारभूत स्थूल सादृश्य-योजना अनौचित्यपूर्ण होने से प्रस्तुत सादृश्य-विधान का समर्थन नही किया जा सकता । जिन्होने जयदेव कवि की स्तनो के लिए इस कल्पना का आस्वाद किया है—'सद्वृत स्तनमडलस्तव कथ प्राणैर्मम क्रीडति'[168] उन्हे रुक्मिणी के स्तनो को कृष्णमुख होने से ही दुर्जन कहना अनौचित्यपूर्ण ही प्रतीत होगा । किंतु नवपरिणीताओ के मध्य प्रद्युम्न के सौंदर्य-वर्णन मे सिह कवि ने मालोपमा का सुन्दर प्रयोग किया है ।[169]

रूपक अलकार के सुन्दर उदाहरणो मे से एक सिद्ध कवि कृत दुर्जनो पर सर्प का आरोप है जिसके अन्तर्गत कवि ने दुर्जन की चेष्टाओ की सर्प चेष्टाओ से समानता के आधार पर रूपक की सुन्दर सृष्टि की है । यहाँ 'दुज्जीह' (द्विजिह्व तथा दुर्भाषायुक्त) तथा 'परिछिद्र' (बिल या विवर तथा दोप) शब्दो मे श्लेष अलकार के कारण श्लिष्टाश्रित सागरूपक है ।[170] रिपु रूपी शैलशिखरो के लिए कृष्ण को सौदामिनी रूपी घान कह कर सिद्ध ने परम्परित रूपक अलकार की योजना की है ।[171] सिद्ध कवि कही कही रूपक-योजना मे औचित्य की रक्षा करने मे असमर्थ रहे हैं ।

उदाहरणार्थ, कवि द्वारा कृष्ण को जरासध रूपी चद्रमा और कस रूपी सूर्य के लिए राहु रूप कहना[172] चमत्कार के लिए चमत्कार को सिद्ध करता है तथा केशव द्वारा वियोगी राम की उलूक से उपमा देने जैसी अलकार–योजनाओ का स्मरण करा देता है ।[173]

उत्प्रेक्षा अलकार के अन्तर्गत स्वर्ण सिंहासन पर समासीन कृष्ण मे मेरु-पर्वत पर छाये मेघ के अनुमान द्वारा कवि सिद्ध ने उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा[174] की सृष्टि की है । धूमकेतु द्वारा प्रद्युम्न को खदिरावटी मे शिला तले रख देने के वाद शिशु प्रद्युम्न के सुरक्षित रह जाने पर अगली सुवह सूर्योदय की कल्पना करता हुआ सिद्ध कहता है कि सर्वांग अरुणकाय सूर्य पूर्व दिशा के आगन मे ऐसे ही आया मानो कोई सुन्दर वालक आया हो ।[175] उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा की यह कल्पना प्रसगानुकूल, रसावर्जक तथा भावी मगल घटना की सूचना देने के कारण 'नाटकीय व्यग्य' (ड्रैमैटिक आयरनी) की सभावना से युक्त है अत. वडी सुन्दर वन पडी है । यद्यपि अलकारशास्त्रियो ने एक से अधिक उपमान-योजना या रूपक-विधान के आधार पर 'मालोपमा' तथा माला-रूप 'परम्परित रूपक' जैसे उपमा और रूपक अलकारो के भेद स्वीकार किये है । तथापि एक ही उपमेय मे नाना उपमानो के अनुमान की दशा मे 'माला उत्प्रेक्षा' जैसा भेद भी स्वीकार न किये जाने का कोई कारण नही है । हमारी विनम्र सम्मति मे मालोत्प्रेक्षा नामक उत्प्रेक्षा का भेद मानते हुए उसे अलकार सरणि मे पृथक् आसन प्रदान करना चाहिए । सिद्ध कवि ने प्रद्युम्न के विकासमान वाल-रूप मे वाल सूर्य, रक्त-कमल, केलि और किसलयदल के अनुमान द्वारा 'माला वस्तुत्प्रेक्षा[176] की सुन्दर योजना की है तथा युद्ध क्षेत्र मे सव दिशाओ मे व्याप्त वाणो मे शेषनाग की शत-शत जिह्वाओ के अनुमान द्वारा सिंह कवि ने उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है ।[177] साम्व और सुभानु के वालरूप-वर्णन मे श्लिष्ट रूपकाश्रित मालावस्तूत्प्रेक्षा[178] का सुन्दर निदर्शन है ।

कृष्ण के राज्य-प्रासाद मे चामर धारिणियो के रूपमद की गंध के कारण भ्रमरों के मंडराने[179] तथा प्रद्युम्न-हरण पर रुक्मिणी के अश्रुओ से सर-सरितादि के प्रवाहित हो जाने की कल्पना मे सिद्ध कवि ने सम्वन्धातिशयोक्ति[180] का प्रयोग किया है । अनन्वय अलकार का उदाहरण सिंह कवि द्वारा वर्णित प्रद्युम्न की वाल-रूप क्रीडा[181] के प्रसग मे तथा व्यतिरेक का उदाहरण वलदेव के सौदर्य-वर्णन[182] के प्रसग मे मिलता है ।

'पज्जुण्ण चरिउ' मे ऐसे अनेक स्थल है जहा अलकारो का संकर प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है । अलकार-सकरत्व का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन रुक्मिणी के चित्रपट-लिखित सौदर्य के वर्णन में हुआ है जहा एक साथ ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलकारो का सफल प्रयोग सिद्ध कवि ने किया है ।[183] सोरठ देश के वर्णन

मे सिद्ध कवि ने परिसख्या अलकार के प्रयोग-कौशल का परिचय दिया है ।[184] नाटकीय व्यग्य के अतिरिक्त, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, ध्वन्यार्थ चित्रण (ओनोमैटोपिया) का भी सुन्दर विधान इस कृति मे दीख पडता है ।[185]

'पज्जुण्ण चरिउ' की छद-योजना पर विचार करते समय जो बात सबसे पहले अध्येता का ध्यान आकृष्ट करती है वह यह है कि यह कृति अपभ्र श काव्य-परम्परा की सामान्य स्वीकृत शैली के अनुसार सधियो और कडवको मे विभाजित है । सस्कृत के प्रबध काव्यो मे जो स्थान सर्ग का है वही अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यो मे सधि का समझना चाहिए । एक सधि के अन्तर्गत अनेक कडवको की योजना होती है । इस 'कडवक बध' शैली के सम्बन्ध मे जिसे 'पज्झटिका बध' शैली भी कहा जाता है, रचना सम्बन्धी व्यापक नियमो की प्रस्तावना अपभ्र श और प्राकृत के छदलक्षण ग्रथो मे की गयी है । इनके अनुसार 'पज्झटिका' या 'अरिल्ल' छद की किसी निश्चित सख्या के बाद अन्त मे 'घत्ता' या 'ध्रुवक' देना ही कडवक है । प्राय चार पद्धडिया छदो के बाद एक घत्ता देकर 'कडवक' बनाने का नियम है । अनेक कडवको के समुच्चय का नाम ही 'सधि' है। कवि-दर्पण (उ० गा० 37) मे कहा गया है 'पज्झडियाइ चउक्क ताणं गणो सधी' तथा 'कवि-दर्पण' के वृत्तिकार ने 'छन्द कदली' नामक अपनी रचना से दो गाथाएँ उद्धृत की है[186] जिनसे ज्ञात होता है कि अपभ्र श काव्य मे कडवको के समूह से सधि की रचना होती है और प्रत्येक कडवक पद्धडिया आदि चार प्रकार के छन्दो से रचा जाता है । प्रत्येक सधि के प्रारभ मे तथा कडवक के अन्त मे 'ध्रुवा' 'ध्रुवक' या 'घत्ता' छन्द रखना निश्चित (ध्रुव) है । इसीलिए इसे 'ध्रुवक' कहते है । यह ध्रुवा या ध्रुवक तीन प्रकार का होता है—षट्पदी, चतुष्पदी तथा द्विपदी । इनमें से षट्पदी तथा चतुष्पदी को कडवक के अन्त मे रखना चाहिए, विशेषतः 'छड्डणिका' नामक षटपदी को । एक कडवक मे छन्द या पक्ति सख्या की निश्चित सीमा नही है । साधारणत 16 पक्तिया रखने का प्रचलन है । किंतु कडवक और ध्रुवक की छन्द सख्या के सम्बन्ध में कवियो द्वारा पर्याप्त स्वतत्रता बरती गयी हैं । उदाहरणार्थ पुष्पदन्त ने हरिवशपुराण मे कडवक के अन्तर्गत मनचाही संख्या मे छन्द-पक्तिया रखी हैं । पद्धडिया के साथ अन्य छन्दो के मेल के प्रयोग भी हुए है । विमलसूरि कृत 'पउम चरिउ' मे पद्धडिया के साथ अनेक स्थानो पर 'वदनक' छन्द का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार अब्दुर्रहमान कृत 'सदेशरासक' मे भी सन्धि के प्रारम्भ और कड़वक के अन्त मे नाना छन्दो का प्रयोग हुआ है । प्रत्येक कडवक के अन्त मे प्रयुक्त घत्ता, 'घत्त' नामक छद मे ही रचित हो, यह आवश्यक नही है , सन्धि के प्रारभ और कडवक के अन्त मे प्रयुक्त घत्ता किसी भी षट्पदी या द्विपदी छन्द में भी हो सकता है ।[187] इसी प्रकार कडवक के अन्तर्गत छन्द-पक्ति-सख्या भी निश्चित नही है । छ या आठ पक्तियो के कडवक से लगा कर चौबीस पक्तियो या इससे भी अधिक के कडवक अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यो मे पाये जाते है। प्रत्येक सन्धि

के अन्तर्गत कडवकों की सख्या का भी कोई रूढ नियम नही है अत स्पष्ट है कि छन्द सख्या और योजना के विषय मे किसी सीमा तक पर्याप्त स्वतन्त्रता अपभ्र श प्रवन्ध काव्य लेखको द्वारा व्यवहृत हुई है। हमारी विवेच्य कृति 'पज्जुण्ण चरिउ' भी इसका अपवाद नही है। इसकी छन्द-योजना सम्बन्धी विशिष्टताओ को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है :—

सधि संख्या	संधि मे प्रयुक्त कडवक सख्या	संधि का प्रारंभिक छद	संधि मे प्रयुक्त घत्ता का छद
1	2	3	4
1	16	घत्ता	घत्ता
2	20	दुवई	घत्ता+दुवई
3	15	घत्ता	घत्ता+गाहा
4	17	वस्तु	घत्ता+वस्तु
5	16	ध्रुवक	घत्ता
6	23	"	"
7.	18	"	"
8	21	"	"
9	24	"	घत्ता+खडय, घत्ता+दुवई
10	21	"	घत्ता+आरणालं
11	23	घत्ता	घत्ता+गाथा (गाहा)
12	27	ध्रुवक	घत्ता
13	17	"	घत्ता+चउप्पदी
14.	24	"	घत्ता
15	28	"	घत्ता+दुवई

प्रत्येक कडवक के अन्तर्गत कितनी छन्द पक्तियां होनी चाहिए इस विषय मे भी किसी निश्चित नियम या परम्परा का पालन नही हुआ है। 'पज्जुण्ण चरिउ' मे सामान्यत' कडवक के अन्तर्गत आठ से लगा कर प्राय' दस या वाहर छद पंक्तियां प्रयुक्त हुई है किंतु कही-कही यह सख्या चौवीस पक्तियो तक पहुँच गयी है।

ऐसे कुछ स्थल है '—

स्थल					कडवक के अन्तर्गत पंक्ति–सख्या
1					2
सन्धि	1,	घत्ता	3	के पश्चात्	11
,,	13,	,,	13	,,	14
,,	15,	,,	6	,,	24 (चौबीस तीर्थकरो का स्तवन)
,,	15,	,,	22	,,	22 (धर्म-तत्त्व-देशना)
,,	15,	,,	23	,,	24 (धर्म-तत्त्व-देशना)

इससे स्पष्ट है कि कथा की त्वरा मे कवियो को लम्बे कडवक रखने की आवश्यकता नही अनुभव हुई अपितु तीर्थंकर-स्तवन या धर्म-प्रवचन जैसे गहन शुष्क विपयो पर ही लेखनी छन्द-परिवर्तन की स्वतत्रता से वचित रह गयी है ।

'पज्जुण्ण चरिउ' की छन्द शैलीगत एक विशेपता यह भी है कि कही एक-दो स्थलो पर एक ही छन्द-परिवर्तन के द्वारा कवि ने कडवक और घत्ता दोनो का प्रयोजन सिद्ध कर लिया है । सधि 8 में घत्ता 16 तथा 18 के बीच तीन 'अहिट्ठिया' छदो (अर्थात 12 पक्तियो) के द्वारा कडवक (स० 17) और घत्ता दोनो का कार्य सिद्ध कर लेना इसका निदर्शन है । यह 'अहिट्ठिया' छद सस्कृत के वर्णवृत्ति 'वशस्थ' (या 'अभ्रवंशा' या वसतमजरी') का ही अपभ्रंश रूप है । जयकीर्ति कृत छदोऽनुशासनम् (3, 21,) मे 'शखनिधि' या 'सुनदिनी' का लक्षण अवहट्ठिया से मिलता है ।

पज्जुण्ण चरिउ मे निम्नलिखित छदो का प्रयोग किया गया है—
1. घत्ता 2 गाहा 3 दुवई 4 चउप्पदी 5 वस्तु या रड्डा 6 आरणाल 7. खडय 8. ध्रुवक 9. पज्झटिका (पद्धडिया) 10 अडिल्ल 11 मौक्तिकदाम 12 शशी 13 सिहावलोक 14. तिलक 15 समानिका 16. धारी 17 मदर 18 अहिट्ठिया 19 विभावरी 20 सुहारा 21 मदनावतार (मअणावआरए) ।

'पज्जुण्ण चरिउ' की छद-योजना से स्पष्ट है कि उसके रचयिताओ को सस्कृत और प्राकृत के छदशास्त्र का गहरा ज्ञान था तथा भाँति-भाँति के मात्रिक छदो और वर्णवृत्तो की योजना से उनकी छद-वैचित्र्य के प्रति अभिरुचि का परिचय मिलता है । आमेर भडार की जिस हस्तलिखित प्रति (वैष्टन स० 696) के आधर पर यह विवरण प्रस्तुत किया गया है, उसमे प्रथम सधि के अ त मे तथा फिर 9 वी सधि से लगा कर

15 वी सधि तक (जो सिंह कवि का कृतित्व है) प्रत्येक सधि के अ त मे सस्कृत के वर्णवृत्त भी दिये गये है । सधि का अ त सस्कृत छदो से करने के मूल मे कृति के गौरव-मण्डन तथा अपने पाडित्य-परिचय और सस्कृत के प्रति अनुराग की भावना कार्यरत हो सकती है । पद्रहवी सधि को छोड कर उक्त शेष सभी स्थानो पर शार्दूल-विक्रीडित छद ने सधि का समापन किया गया है । पद्रहवी सधि के अ त मे एक वशस्थ तथा एक इ द्रवज्रा सस्कृत मे रचने के बाद अपभ्र श मे तीन स्रग्धरा छद्र निबद्ध किये गये है ।

छद-वैचित्र्य के अतिरिक्त वर्ण्य विषय से सम्बद्ध भावो के अनुकूल छद-योजना मे भी 'पज्जुण्ण चरिउ' के रचयिता निपुण है । इसीलिए कथा को मथर गति से प्रवहमान रखने के लिए पज्झटिका, उसमे कुछ अधिक त्वरा लाने के लिए अडिल्ला, उसे नियामक विराम देने के लिए घत्ता तथा उसको उत्कर्ष प्रदान करने के लिए दुवई का प्रयोग किया गया है जो इन छदो की लय को देखते हुए उचित ही है । भावोत्तेजक अघट घटना को अत्यत त्वरा से कहने के लिए (यथा रुक्मिणी-हरण के पश्चात् शिशुपाल को पराजित कर, रुक्मिणी को रथ मे बैठा कर त्वरित प्रयाण करने की घटना के वर्णन के लिए) मदर जैसे त्वराशील छद का प्रयोग किया गया है,[188] इसी कार्य के लिए सत्यभामा द्वारा वनदेवी-रूप रुक्मिणी से वर-याचना के प्रसग मे 'शशी' जैसा गत्यावेगपूर्ण प्रवाहसकुल छद प्रयुक्त हुआ है ।[189] युद्ध-क्षेत्र के हलचल कोलाहल और उमगपूर्ण वातावरण को सिद्ध कवि ने 'मदनावतार' छद मे अत्यत मुखर रूप से निबद्ध किया है (द्रष्टव्य, सदर्भ टिप्पणी 93) तो युद्ध के आवेगपूर्ण अ त को 'धारी' छद मे (सदर्भ टिप्पणी स० 94) ध्वनित किया गया है ।

निष्कर्पत कहा जा सकता है कि इसमे अपभ्र श की सामान्य परम्परा की भाँति छद-नियमो मे शिथिलता और स्वतत्रता होते हुए भी छद-योजना की दृष्टि से यह एक अत्यन्त सफल कृति है जिसका छद-शास्त्र के अध्येताओ के लिए अत्यन्त महत्व है । न केवल छद-योजना अपितु कथा-सगठन, चरित्र-चित्रण तथा भाव और रसनिरूपण आदि सभी दृष्टियो से इसका प्रद्युम्न-चरित-काव्य परम्परा मे विशिष्ट स्थान है । महासेनाचार्य से प्रभावित होते हुए भी और स्थूल कथा-रूपो एव परम्परागत सभी वर्णन-रूढियो का उपयोग करते हुए भी कृतिकारो ने इस रचना को, अनेक भावाभिव्यजक मार्मिक स्थलो और रोचक इतिवृत्तात्मक एव वस्तु-वर्णनात्मक प्रसगो की उद्भावना तथा छद-सौष्ठव के सफल प्रयोगो से एक महनीय कृति बना दिया है ।

□

संदर्भ : अध्याय ❋ 2

1. महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्', प० माणिकचद दिगम्बर जैन ग्रथमाला, अष्टम पुष्प, सवत् 1973 वि० सस्करण।

2. सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ' हस्तलिखित प्रति वेष्टन सं० 966, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

3. कारजा भंडार से प्राप्त 'प्रद्युम्न चरित' की प्रति मे प्रशस्ति श्री नाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० 4 पर उद्धृत।

4. पंपुण पाइय दैवणु, णवणु भवियण जणयणणयणाणदणु।
वुहयण जणयय पंकय छप्पउ, भणई 'सिद्धु' पणमिय परमप्पउ।।
कइ सिद्ध हो विरयत हो विणासु, सपत्तउ कम्मवसेण तासु।
पर कज्ज पर कव्व विहडत जोहिंह उद्धरिय।। 'पज्जुण्णचरिउ' (सिंह कविकृत) की प्रशस्ति।

5. जात: श्री निज धर्म कर्म निरत शास्त्रार्थ सर्वप्रियो
भाषाभि: प्रवणश्चतुर्भिर भवच्छ्री सिंहनामा कवि।
पुत्रो रल्हण पंडितस्य मतिमान् श्री गुर्जरागोमिह
दृष्टि ज्ञान चरित्र भूषित तनुर्वंशे विशाले वनो।।
—पज्जुण्णचरिउ—सिंह कवि कृत, 13वीं सधि का प्रारंभिक पद्य

6. साहाय्यं सम्वाप्य नात्र सुकवे: प्रद्युम्नकाव्यस्यय.
कर्ताऽभूद् भवभेदनेक चतुर· श्री सिंहनामा शमी। इत्यादि
—पज्जुणचरिउ सिंह कवि कृत, 14वीं सधि का अत तथा 9वीं संधि का प्रारभ।

7. छंदोऽलकृति लक्षणं न पठितं ना श्रावि तर्कागमो
जातं हंत न कर्ण गोचरचरं साहित्यनामा पि च।
तासु सीसु तव तेय दिवायर, वय-तव-णियम-सील-रयणायरु।
अभयचंद नामेण भण्डारउ, सो विहरंतुपंतु वुहसारउ।।
बह्मणवाडउ णामे पट्टणु, अरिणरणाह सेणदलवट्टणु।।
जो भंजइ अरिणिलयकाल हो, रण धोरिय हो सुअ हो वल्लाल हो।
जासु भिच्चु दुज्जणमणसल्लणु, खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु।।
—पज्जुण्ण चरिउ कवि सिंह कृत, प्रशस्ति।

8 यश्चौलुक्य कुमारपाल-नृपतिः प्रत्यर्थितामागतं ।
मस्त्वा सत्वरमेव मालवपति वल्लालमालब्धवान् ।।

9 तस्मान्मही विदितान्यकलत्रपात्र स्पर्शो यशोधवल इत्यवलम्बतेस्म ।
यो गुर्जर क्षितिपति प्रतिपक्षमाजौ, वल्लालमालभत, मालवमेदिनींद्रम ।।

10. एपिग्राफियां इण्डिका, खण्ड 58, पृ० 200

11. नाथूराम प्रेमी: जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 310,

12 वहीं।

13 एक दिण्णि गुरुणाम् भणिउवच्छ । णिसुणहि छप्पय कइराय दच्छु ।।
भोवाल सरासइ गुण समीह । कि अविणोयइ दिण गवहि सीह ।।
चउव्विह पुरिसत्थरें सहिं भरिउ । णिव्वाहहु एँहु पज्जुण्ण चरिउ ।।
कह सिद्ध हों विरयंत हीं विणासु । सम्पत्तेउ कम्म वसेण तासु ।।
महुवयण करहि कि संवगुणेण ।। सतेण कूउ छाया समेण ।।
तथा—

अमियमरद गुरुणं ।
आएसं लहवि झत्ति इय कव्वं ।।
णिय महुणा णिम्मवियं ।
णध्दउ ससिदिनमणि जाम ।।
—अंतिम प्रशस्ति अंश

14 श्री परमानद जैन शास्त्री : प्रशस्ति संग्रह

15 उप्पण्ण सहोयरु तासु अवरु । णामेण सुहंकरु गुणहं पवरु ।
साहारण लहु वउ तासु जाउ । धम्माण रत्तु अइ दिव्व काउ ।।
तहो अण यउ महएउ वि सुसारु । सविणोउ विणोयं सरुकुसुमसारु ।।
जा वत्थह चत्तारिवि सुभाय । पर उवयारिय जण जणियराय ।।
—सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ' की हस्तलिखित प्रति,
15 वीं संधि के अंत में।

16 सरसइ सुसरा, महु होहु वरा
इम वज्जरइ, फुडु सिद्ध कइ
हय चोर भए, णिसि भरिविगए
पहरद्धिठिए. चितंतुहिए × × ×
पणवेप्पिणु णेमि जिणेसर हो । भव्वयण कमल सरेणसर हों ।
भवतरु उम्मूलण धारण हो । कुसुमसर पसर विणिवारण हों ।।
भुवणत्तयसार हो णिज्जियमार हों अवहेरिय घर दंद हो ।
उज्जिल गिरि सिद्ध हो णाण समिद्ध हो णयवेल्लि हेकंद हों

कव्व बुद्धि चिंतंतु लज्जिउ । तक्क छंद लक्खण विवज्जउ ।।
तेणविहिणि चिंतंतु अच्छमि । खुज्जु हो वि तालहलु वछमि ।।
अ धु हो वि णवणट्ट पिच्छिरो । गेय सुणणि वहिरो वि इच्छिरो ।।
—पज्जुण्ण चरिउ सिंह कवि कृत, प्रारम्भिक प्रशस्ति ।

17. ता सिद्ध भणइ महुगरुय संक । दुज्जणहु ण छुड्डइ रविमयंक ।।
दुव्वयण गरल पूरिय सदप्प । दुज्जीह दुट्ठ दुज्जण विसप्प ।।
जे वयणि चतुम्मुह किण्ह चित्त । दसणेण रुद्द अवयरिय मत्त ।।
—वही, घत्ता 3 के बाद :,

18 डॉ० राजनारायण पाण्डेय महाकवि पुष्पदन्त, पृ० 21-22,

19. कवींद्रसीमानमितैर्यदुक्तं गणेश्वरायैरपि विस्तरेण ।
तत् पादपद्मद्वय भक्तिशक्त्या सक्षिप्य तद्वक्तुमय श्रमो न ।।
—महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' (माणिक्य चंद्र दिगम्बर ग्रंथमाला)
प्रथम सर्ग, श्लोक सं० 4;

20. निशम्य विष्णोर्वचनं तपोनिधि—
जगाद वाचं वसुदेवनंदनम्
कृता वहिश्चद्वयनीश लोके
विश्वम्भरोसीति कथं प्रसिद्धः
—वही, सर्ग 2, श्लोक 15; सर्ग 1, श्लोक 41; तथा सर्ग 14,
श्लोक 64-66;

21 'अथ गते तनयोत्सव सम्परा, यदु नृपस्य तदादिन पंचके ।'
—वही, सर्ग 4, श्लोक 25,

22. वही, सर्ग 4, श्लोक 37, 23. वही, 9, 337,

24 दिव्यै. शस्त्रै प्राकृतैरप्युदारै—
र्मायायोधैर्युद्धवन्तो यथा स्वम् ।
—वही, 10, 10,

25. वायव्यास्त्रं महावेग व्यमुंचन्मधुसूदन ।।
तातश्चिक्षेप कामोस्त्रं तामसं मोहकारणम् ।
भृंगा भ्राम्बर नागेन्द्र नीलं लोलमितस्तत ।।
तच्चक्रेखलवृत्तिर्वा समं सर्वभुवस्तलम् ।
व्यामोहोत्पादिका वृत्तिस्तामसानां हि सर्वत ।। इत्यादि
—वही, 10, 35-41,

26 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, 47, 83,

27. गुणभद्र कृत उत्तर पुराण, 72, 132;
28. महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' 9, 4-18,
29. तं प्रपात्य धरणौ धरणीभृत्, स्थैर्यमार्य सहितं गुरुमूर्तिः ।
तस्य वक्षसि निधाय च पादं, वेगतस्तुरग पृष्ठमियाय ।।
—वही, 9, 115;
30 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, 43, 57 31. वही 47, 28;
32 गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, 72, 59; तथा 74;
33 'प्रियतमे युवराज पदं मया, तव समक्षमदायि, सुतायते'; वितरीतुमस्य युवराजपदं नृपतिर्ववञ्छ सचिवानुमत·'
—महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' सर्ग 4, श्लोक 61; 8, 6; 8;
34. वही, सर्ग 7, श्लोक 1-2, 8, 18-20, 25,
35, विधुर्विलुप्तो न च पंगवो गजा·
पिका न मूका न मृगा विचक्षुष· ।
न केकिन, कान्तकलाप वर्जिता:
प्रजासृजेयं सुतनु कथं कृत, ।।48।।
—महासेनाचार्य प्रद्युम्न चरितम्, सर्ग 2, श्लोक 45-48;
36. वही, 4, 54-55; तथा 9, 288-91;
37. वही, 8, 122-123,
38. वही, 8, 60-62 तथा आगे; 39. वही, 9, 45-46;
40. वही, 9, 94-95; 41. वही, 9, 208-210; वही, 220-222,
43 वही, 1, 11-14;
44. महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न-चरितम्, 7, 38-42;
45 वही, 9, 26-29; 46. वही, 9, 333-346;
47 नदीनजाता न चलस्वभावा
न निम्नगा वा न कलंकितापि ।
जलाशया नैव च सत्यभामा
भार्याभवत्यस्य पराजित श्रीः ।।46।। —वही, 1, 46;
48. वही, 3, 50-51; 49. वही, 2, 1-3;
50 वही, 10, 19-28;
51. अथ विमानमचालि मनोभुवा, नभसि वामदृशां नयनोत्सवम् ।
विकसिताननं नारदशोभितं, 'द्रुतविलम्बितया' क्रिययायुतम्।
मुकुल कुसुम पुष्पन्मत्त भृंगालिछन्नं, क्षितिरुहचल पक्षि व्याकुलां 'मालिनींयाम्'

हरित 'हरिणी' वृन्द चेतोमनोरमचेष्टित । चपल ललित क्रीडारण्य मनो नि हरेत्कथम् ।।

उत्फुल्लास्यं व्याप्तपक्ष कृतकेक्र
नृत्यासक्त मथरपाद वनगुंजे ।
गुंजनमत्त भृंगसमम् है कृतगीत.
पश्योत्कण्ठ 'मत्तमयूर' मदनेमम ।।
नादाकंपित शैलरंध्र गहन भीमं मनोहारिण ।
पश्य त्व मकरध्वज क्षणमिद 'शार्दूल विक्रीडितम्' ।।

—वही, 9, 23-28,

52 वही, 1, 8-14 (सुराष्ट्रदेश-वर्णन)

53 मातग सगेपि कृते पवित्रा, वर्वत्र भाजोपि निसर्ग सत्य ।
सेव्या द्विजौघैरति शुद्ध पक्षैस्तथापगम्या सरितो विभान्ति ।।

—वही, सर्ग 1, श्लोक 18,

54. कल्लोल हस्तैस्तरलैर्यदीय, नितम्बमास्फाल्य विकंपमान ।
पलायते दूरतर पयोधि परागनासग भयेन नूनम् ।।

—वही, सर्ग 1, श्लोक 23,

55 वही, सर्ग 1, श्लोक 28, 46,

56. वही, 1, 41, 57 वही, 2, 5,

58. वही, सर्ग 2, श्लोक स० 45-47, 59 वही, 4, 26-32,

60 हसस्वनाः सरोजास्या गंभीरावर्तनाभिय ।
चक्रवाकस्तनाश्चात्र शोभन्ते सरिदंगना ।।
नि कलक सुवृत्तोपि कलावानपि न क्षयी ।
सुधामयोपि निर्दोषो यज्जनो पूर्णचंद्रमा ।।

—वही, 6, 5-9,

61. वही, 3, 57,

62. वही, सर्ग 4, श्लोक 54-55,

63 यत्रेक्षुसरसावाटा वातैराकुपिता, अपि । नयन्ति पामराणा हि, अमी वध भयादित ।।

—सोमकीर्ति रचित 'प्रद्युम्न चरित्र, हस्तलिखित प्रति,
श्री आमेर शास्त्र भण्डार, वेष्टन सं० 685,
पत्रांक 6, सर्ग 2, श्लोक 5,

64 वही, पत्रांक 6, सर्ग 2, श्लोक 11,

65 वही, पत्रांक 47, श्लोक 74-83,

66 महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम्, 1, 47-48, 7, 30-32, 8, 105-106

67 सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न चरित्र, सर्ग 2, श्लोक 50-57; 8, 19-23, 4, 54-61,

68 'यदुक्तं चात्रविदद्भिर्महसेनादि सूरिभि'
सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न चरित्र, हस्तलिखित प्रति, पत्रांक, श्लोक 4; 8,

69 सिद्ध तथा सिंह कवि कृत, 'पज्जुण्ण चरिउ' (अप्रकाशित) की हस्तलिखित प्रति, प्रामेर शास्त्र भंडार, जयपुर, वेष्टन सं० 696, संधि 13, घत्ता 10, तथा घत्ता 11;

70 गेउ ण सुणइ, अण्णु लहु रुच्चइ। अंतिम मइण मिता वुच्चइ॥
देव देव किं तुहुं विवण्णमणु। न वि आहरण अंगे ण विलेविण॥
पर नर नाहि चाप्पिय सीमहु। रण भरि किं आसंकिउ भीमहु॥
त णिसुणिवि महुराउ पयंपइ। मयण भल्लि सहु तिण तिलु कंपइ॥
असु हत्थी कलमलउ ण फिट्टइ। तल्लोवलि सरीरहु वट्टइ॥ इत्यादि ...
—सिद्ध तथा सिंह कृत "पज्जुण्ण चरिउ" संधि 6, घत्ता 12,

71 कंचणरहु जो तुव ओलि कंतु। सो दिट्ठउ मई रच्छिहि भमंतु॥
गलि घल्लिउ जर छियरय खण्डु। सिरि फरुसकेम णिच्चाय तुण्डु॥
मेल मलिण दसणु जसु कय विराउ। विरहग्गि दद्धु धूसरिय काउ॥
ताणिवं छिय कंचण पहाइ। किं जपंइ असुहाव्रण्णउ माइ॥
सो धीरु वीरु कुसुमसरु तुल्लु। तुहु घडइ बकिए रिसउ बोल॥
ता धाइए अंचोवरि दिट्ठियाइ। दक्खालिउ पुण रवि सो वि ताहि॥
दिट्ठउ जाणिउ कंचणपहाइ। वुच्चइ एहु जि सो साइ साइ॥
हा पिय पिय मह विरहाणलेण। एवड्डी अवत्थहु गयउ जेण॥
हउ पाविणि णिवडि सणिच्चामालि। जं वंचिउ पिउ नव पणय कालि॥
सिद्ध तथा सिंहकृत 'पज्जुण्ण चरिउ', संधि 7, घत्ता 2,

72 आचार्य रामचंद्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली, प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चतुर्थ संस्करण, पृ० 67,

73. जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 57, गुणभद्र कृत उत्तर पुराण, पर्व 72, श्लोक 56-59,
महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम्, सर्ग 4, श्लोक 61,
सिद्ध तथा सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ, संधि 4, घत्ता 3,
—पुष्पदन्त कृत महापुराण, संधि 91, घत्ता 8,

74 सिद्ध तथा सिंह कृत पज्जुण्ण चरिउ, संधि 6, घत्ता 4;

75. वही, संधि 6, घत्ता 8,

76. वही, संधि 7, घत्ता 7,

77. पज्जुण्ण चरिउ, संधि 3; संधि 4; संधि 9, घत्ता 2; संधि 1 तथा 3, संधि 9, घत्ता 23, संधि 10, घत्ता 15; तथा संधि 14, घत्ता 9 एवं 10;

78. वही, संधि 3, घत्ता 10, तथा संधि 12, घत्ता 8,

79 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, 43, 61,

80. गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, 72, 60,

81. महासेनाचार्य रचित प्रद्युम्न चरितम्, सर्ग 4, श्लोक 65;

82 छट्ठहिं जायरयणु, जा महमहणु, दोहिमि राउलहिं कुरावइं।
रुविणि सुयस्सर इयं, श्रहि हाण गणणएहिं पज्जुन्नो।
—सिद्ध तथा सिंह कृत "पज्जुण्ण चरिउ" संधि 3, घत्ता 14;

83. पज्जुण्ण चरिउ, संधि 6, घत्ता 21, संधि 7, घत्ता 2 (पूर्ववर्ती संदर्भ सं० 70-71)

84. महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम्, सर्ग 7, श्लोक सं० 60-70,

85. जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, 43, 175, तथा गुणभद्र कृत उत्तर पुराण, 72, 42,

86. सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न चरितम्, हिन्दी अनुवाद, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, हरिसन रोड, कलकत्ता सर्ग 8.वां पत्र सं० 94 तथा 104-108;

87. गयणयल हो णिवडइं कीरपति। जहिं सासकणि स दीसइ चुणंति॥
जहिं पोमराय मरगयहिं मिलिय। हारावलि णं णहसिरिहे गलिय॥
छुक्कारतिहिं गहवइ सुयाहिं। वेल्लहल सरल कोमल भुयाहिं॥
घणयणिहिं सुपिहुल णियम्बिणीहिं जहिं जंपिउ खेत्तकुडुंविणीहिं॥
हले पेक्खुपेक्खु लज्जंत सास। करताल रहिय निवडहिं हयास॥
—पज्जुण्ण चरिउ, संधि 1, घत्ता 6-8;

88 सानयरि नियविणि चित्ति धरइ। तिणि उयहिं रत्तिदिणु सेव करइ॥
सो भुल्लउ पर परतियहि केम। राहव घरिणिहिं दहवयणु जेम॥
पसरिय कल्लोलहिं भुयहिं विसालहिं, ण णियवु अप्फालइ।
खणे सकि वि फट्टइ, पुणु विपयट्टइ, मूढउ अप्पउखालइ॥.......इत्यादि
—पज्जुण्ण चरिउ, संधि 9, 10;

89. "शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कंडूयमानां मृगीम्"
—कालिदासकृत अभिज्ञात शाकुन्तलम् अंक 6, श्लोक 17;

90. महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम्, 1, 14, 23 26;

91. उत्तमा च पृथिव्यां वै यथा स्वर्गेऽमरावती"

—हरिवंशपुराण, महाभारतेखिलभागे, विष्णु पर्व, अ० 58, श्लोक 29; तथा अ० 55, श्लोक 36, 105, 112.

92 पज्जुण्ण चरिउ, संधि 10, घत्ता 19.

93. कहिमि तंटक्क हय ढक्क भेरी सरं। कहिम्मि पडपडह् दडिनद वज्जिय खर ॥
कहिमि कल डुमुडुमिय कोलाहलं। कहिमिखर करड ताडियहि गुरु काहलं ॥
कहिमि हय थट्ठ उट्ठंत जण संकुलं। कहिमि खौलंत भूडधत निरु तक्कडं ॥
—वही, संधि 6, घत्ता 10; संधि 9, घत्ता 18, 19;

94. तऊ हरिस्स नंदणेण। दिव्व अत्थ संदणेण ॥
णिय मणम्मि कुद्धएण। जयसिरीसु लुद्धएण ॥
पेसिया सविज्ज तेंण। णिम्मिय वल पि जेण ॥
तेण तपि साहणं पि। चूरियं स वाहण पि ॥
दिव्व धणुहु करि करेवि। मुक्क वाण हुंकरेवि ॥
—वही, संधि 9, घत्ता 20;

95. तहि यि हुवासणु सक्खि करेवि। विवाहिय हत्थे हत्थु धरेवि ॥
कियउ कलयंठिहि मंगल चारु। भभुणेइ अलीउलु गेउ सुसारु ॥
सिहंडि पणच्चिय नट्टु रसालु। पठंति सु कीर वि कव्वमालु ॥
—वही, संधि 3, घत्ता 1;

96 कहिमि णारंगि नालियर खज्जुरिया जंबु जेवीरी 'विज्जउरिया उववंण ॥
कहिमि सिरि खड सिरि ताड वउल सिरिस या दाडिमी दक्खु आरामय।
कहिमि वक्ख रुणि कणियार कणवीर या कंचणारेहि अहिरामय ॥
कहिमि पिप्पल पलासुंवरि हरडइ ताड माडेहि आयाडिया आडलं।........
इत्यादि।
—वही, संधि 10, घत्ता 6, तथा द्रष्टव्य, संधि 4, घत्ता 1, तथा संधि 3, घत्ता 1;

97 तरु तालीस तमाल ताल हिताल मनोहर।
मंजुल वंजुल लकुच वकुल कुल केर नारियर ॥
एला ललित लवंग सग पु गीपल सोहै।........इत्यादि।
—केशव कृत रामचद्रिका सटीक, टीकाकार लाला भगवानदीन, छठी आवृत्ति, पृ० 33;

98. पज्जुण्ण चरिउ, संधि 6, घत्ता 19 से 21;

99 ससिसकलंकु कमलु खणि वियलइ, अणुवमवयण पंकयं।
अद्ध मियंक भालु भूजुयलुवि, ससहावइ स वकय ॥

वलहद्द सणाह हो, हय अवराह हो, को उवमियइं, जणद्दण हो ।।
जायवकुल नहयल णेसरेण । द्वारावइ पुर परमेसरेण ।।
—वही, संधि 1, घत्ता 12 से 13 तथा संधि 2, घत्ता 10,

110 तुह कज्ज गिरिवण लंघेप्पिणु । ईह आयउ वारवई मुएप्पिणु ।।
करि पसाउ लहु चडु वडु संदणु । एम पयंपइ जाम जणद्दणु ।।
—वही, संधि 2, घत्ता 11 तथा 15,

111 वही घत्ता 18, घत्ता 20,

112 ता कुविवि पयपइ सच्च हाव । रे उट्ठ पिसुण खलखुद्द पाव ।।
गोवाल हो तुह केत्तडिय वुद्धि । उवहास करत हो कवण सुद्धि ।।
रूविणि वि मज्झु हुई सस कणिट्ठ उग्गालु वि तुह किर काइ धिट्ठ ।।
महुमहणु पयंपई पिहुल रमणि । रूविणि कि दिट्ठ पंई हंसगमणि ।।
—वही, संधि 3, घत्ता 7;

113 पज्जुण्ण चरिउ, सधि 8 (संपूर्ण)

114. वही, सधि 10, घत्ता 2;

115 वही, सन्धि 14, घत्ता 12, 15-17, घत्ता 21-24 तथा सधि 15, घत्ता 1,

116 वही, संधि 7, घत्ता 14-15, संधि 9, घता 18-22; संधि 13, घत्ता 1-3,

117 वही, संधि 13, घत्ता 9,

118 वही, सधि 6, घत्ता 22,

119 भणु भुवणयलि तस्स किं दुल्लहु । जस्सय पुन्नु सहयरो ।।
—वही, संधि 15, घत्ता 3,

120. ताम गव्व पव्वय आरूढइ । रुप्पाए मणि मच्छरु वड्ढइ ।।
जपिउ सच्चहाय आयंण्णहि । मइं मिण तुहु तिण समु करि मण्णहि ।।
धिडि पिसुणि सोकहि जो रक्खइ । लहु जीवंति ण एमहि छुट्टइ ।।
× × × ×
तुह खलि भद्दावणु दंसेसमि । णिय चलणहं तुअ चिहुर मलेसमि ।।
—वही, संधि 14, घत्ता 3,

121. वही, सधि 9, घत्ता 23, 122. वही, संधि 2, घत्ता 13, घत्ता 18-19;

123. वही, संधि 9, घत्ता 23,

124. कणयमाल भीसम पहु जायहु । मिलिय ससुअ दंसणि सुच्छाय हो ।।
ताम पयंपइ महमहु पणइणि । मज्झुजि तुहुमि माईचिंतामणि ।।
तुहु मुहु आसावेल्लिहि वत्तिय । तुहु मुहु दालिद्दिणिहोसइं सिय ।।

विहुरण्णवि पवारि णिवडतहिं । तुहुं जि तरंडउ हुव वुड्डन्तहिं ॥
—वही, संधि, 14 घत्ता 1;

125 वही, सधि 4, घत्ता 14; 126. वही संधि 11, घत्ता 17 तथा 19,

127. महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम्, सर्ग 3, श्लोक 47-51;

128 वही, क्रमश. सर्ग 9, 48-54, 94-114; सर्ग 10, 22-28.

129. पज्जुण्ण चरिउ, सधि 2, घत्ता 11-12;

130 द्रष्टव्य, इसी अध्याय की सदर्भ-टिप्पणी सं० 112,

131. द्रष्टव्य, इसी अध्याय की सदर्भ-टिप्पणी सं० 70;

132 जा जाहि नियय मदिर हो वच्छु । हयवरु वाहेव्वइ निरु अदच्छु ॥
हरिनदणु मन्नवि चवहिं फारु । इय जपमाणु पडिवुत्तु मारु ॥
किंकिर निरत्थु उवहसहिं मइं एउ अच्छु न मुणियउ कहिंमि पइ ॥
हय वाहउ हय हुंतउ पडई । सूरो वि मरइ जो रणि भिडइ ॥
—वही, संधि 10, घत्ता 18-19,

133 वही, संधि 13, घत्ता 6, 7; 9,

134. —वही, संधि 2, घत्ता 15;

135. डॉ० सच्चिदानंद चौधरी: हिन्दी काव्यशास्त्र मे रस-सिद्धात, पृ० 147

136 पज्जुण्ण चरिउ, सधि 14, घत्ता 13,

137. वही, घत्ता 14, 138. विश्वनाथ कविराज साहित्यदर्पण, 3, 260-261;

139 विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य डॉ० सच्चिदानन्द चौधरी कृत "हिन्दी काव्य-शास्त्र में रस-सिद्धान्त," पृ० 161

140 पज्जुण्ण चरिउ, सधि 6, घत्ता 22,

141. वही, संधि 3, घत्ता 5,

142. द्रष्टव्य, इसी अध्याय की संदर्भ-टिप्पणी संख्या 70;

143. सो वडउरवइ पिय विरह रत्तु । कंचणपह पवरगहेण भुत्तु ॥
खणि रुवइ हसइ खणि गेउ करइ । खणि पढइ खणिण चिंततु मरइ ॥
खणि णच्चइ खणि उब्भाइ धाई । खणि भ्रिणकवलउब्भुब्भु खाइ ॥
खणि लुट्टइ खणि णिय वेलु मुवइ । पाय पसारइ पुणु रुवइ ॥
इय गाम णयर कव्वड भमंतु । सो कचणपह राणियहिं कंतु ॥
विहि सजोएण कोसल पइट्ठु ।.......इत्यादि ।
—वही, सधि 7, घत्ता 1,

144. वही संधि 13 घत्ता 14;

145 तं निसुणिवि रूविणि पुणु रुवंति । महि मंडलि निवडिय थरहरन्ति ॥
मच्छाविय सा पज्जुण्ण माय । विहलघल रूवाएवि जाय ॥

गोसीरिहृ घणसार हो जलेहिं । सिंचित्र सु सुश्र धिहिं सीयलेहिं ।।
उठ्ठाविय हा हा सुय भणन्ति । विलवंति कणति रुवंति संति ।। इत्यादि
—वही सधि 4 घत्ता 5-6,

146 द्रष्टव्यः डा० सच्चिदानन्द चौधरी कृत हिन्दी काव्यशास्त्र में रससिद्धान्त, पृ० 157,

147. "अथ करुणो नाम शोकस्थायिभाव प्रभव । स च शापक्लेशविनिपतितेष्ट जनविप्रयोग विभवनाश........समुपजायते"—भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र, गायकवाड सीरीज, अ० 6, 63, पृ० 317·

148 पुत्रादि वियोग मरणादिजन्मा
वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्ति विशेष शोक ।
—प० जगन्नाथ कृत "रसगंगाधर" प्र० विद्याभवन बनारस, पृ० 130,

149. "पिउविप्पओग वंधवह... ....मुंहृ जायं ।,"
—जैनागम अनुयोगद्वारसूत्र सूत्रागमे (सुत्तागमे) सं० पुप्फ भिक्खु, प्र० सूत्रागम प्रकाशन समिति, गुडगाँव, 1954 ई० संस्करण पृष्ठ सं० 1118;

150 भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र 6, 51;

151 डॉ० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव. करुणरस (मध्ययुगीन रामकाव्य के परिवेश मे) पृ० 77 पर उद्धृत ।

152 पज्जुण्ण चरिउ, संधि 2, घता 17-18; संधि 9, घत्ता 19, संधि 12, घत्ता 25; तथा सधि 13, घता 2, 3 5;

153. वारवइ कि वण्णहुं तरई कोवि । जा पिच्छिवि मणि विंभिउ न कोवि ।।
उववण सहंति जहिं कोइलाइं । तहि सरसु नयरु पुरु को इलाइं ।।
जहिं जणु रंजइ पंजरि सुएहिं । घरु सहस चवन्तहं सिसु सुएहिं ।।
रासालसमत्ता वारणेहिं । सुविचित्तइं । मत्ता वारणेहिं ।।
तोरणहिं रयण मणिगण विचित्त । सउ हलई जहिं वर विविह चित्त।।
महमहिय पउर जहिं जिणविहार । वच्छयल नमणु यह जिहिं विहार ।।
वसु एव तणउं जगि पुण्णु भाइ । बलहद्द देव स कणिट्ठु भाइं ।।
—वही, संधि 1, घता 12,

154 ताम रुविणी घरे, गीय मंगले वरे, चारु मत्त वारणे वद्ध मत्त वारणे
—वही, सधि 3, घत्ता 15;

155 सुणे विणु तं नहु मोत्तियदामु । पयच्छिउ ककण मोत्तियदामु ।।
—वही संधि 5, घत्ता 12;

156 कत्थइ बिंबिहु जीव साहारहु । रेहइ वणिमजरि साहारहु ।।
कत्थइ रत्तपलक केलिहि । वणि पइसइ णिज्झर ककेलिहि ।।
कत्थइ उण्णइ पत्त पियगइ । मारइ विरहुवि विणु वि पियगइ ।।
कत्थवि निरु कुसुमि पवर पड्डुल । सिरि कीलत दिवहु वर पड्डुल ।।
कत्थवि निर्यावि रिद्धि मोग्गरयहो । सइरिणि सरण करइ मोग्गरयहो ।।
इत्यादि

—वही, सधि 6, घत्ता 17,

157. ता पुरि दिट्ठि दिव्व दारामइ । जा पर णरवर गण दारामइ ।।
जहि वसति णर णिय दारामइ । जहि निय पुरिसोवरि दारामइ ।।

—वही, सधि 10, घत्ता 14,

158. तुहु हरिसुउ हरि वरु लेहि ज जि ।

वही, सधि 2, घत्ता 15,

159. भवतरु उम्मूलण वारण हो । कुसुमसर पसर विणिवारण हो ।
कम्मट्ठ विवरक पहंजण हो । मयघण पवहंत दहजण हो ।।
भुवणत्तय पण्डिय सासण हो । दो भेय जीव आसासण हो ।।
णिरवेरक णिमोह णिरजण हो । सिव सिरि पुरधि मणरजण हो ।।

—वही, सधि 1, घत्ता 1,

160 वर वण्ण पया मणे धरि विसया । पय पान सुहा तोसिय विवुहा ।।
सरसइ सुसरा महु होउ वरा ।

—वही, घत्ता 2;

161 इय एक्केण एक्कु णउ जिज्जइ । एक्कइ एक्कु माणु ण मलिज्जइ ।।
एक्क हो एक्कु ण रणि ऊहट्टइ । पहरि-पहरि अवणीयलि फुट्टइ ।।
पहरि-पहरि विभिउ अमरगणि । पहरि-पहरि सरउ विहरिउ जणि ।।
—वही, संधि 13, घता 12,

162 दलु छिन्नउ तरुवरहं जिम, सिल परिकपइं ताम

—वही, संधि 4, घता 3,

163 सो वालु पज्जुण्णु घरि कालसवरहु ।
वड्ढइ ससिकलह कलु जेम अम्बरहु ।।

—वही, संधि 7, घत्ता 12,

164 पुणरवि भिडिउ समरि मयरद्धउ, पवलु पयडु दुद्धरु ।
तोडइ सुहड सिरइ सरि कमलइ, जिह णिरु मत्त सेंधुरो ।।

—वही, सधि 9, घता 20;

165 कइं लोह तांहि गव्भन्तरम्मि । सभवियउजिम सरुहु सरम्मि ।।
—वही, 15वीं संधि के बाद कवि का आत्म परिचय,

166 तें वयणें आसकिउ राणउ । कमलवणुव हिमहउ विद्दाणउ ।।
—वही, संधि 9, घत्ता 21,

167 अइ तुंग पीण पीवरथणाहु । कसणइं मुहाइं दुज्जण जणाहं ।
सजायइं निवहण भएण जाम । किय गव्भसुद्धि दोहिंपि ताम ।।

168. भ्रूचापे निहितो कटाक्ष विशिखो निमांतु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिल करोतु कबरी भारोऽपि मारोद्यमम् ।
मोह तावदय च तन्वि तनुतान् विम्बाधरो रागवान् ।
सद्वृत स्तनमण्डलस्तव कथ प्राणैर्मम क्रीडति ।।
जयदेव (गीतगोविन्द, तृतीय सर्ग)

169 पउमिणिहिंमि जिह पच्छइयसरु । जिह वर वेल्लिहि वेड्ढयइ तरु ।।
ताराहिमि छरण ससि विम्ब जिह । दिक्करिणिहि गउ परियरिउजिह ।।
—वही, संधि 14, घत्ता 7,

170 कुडिलच्छि कुडिलगइगमण लील । परिछिद्द णिहालणे डसणसील ।।
दुव्वयण-गरल पूरिय सदप्प । दुज्जही दुट्ठ दुज्जण वि सप्प ।।
—वही, संधि 1, घत्ता 5,

171 तहिं अत्थि महुमहणु णामेण वरराउ । रिउ सेलसिहरम्मि सोदामणी घाउ ।।
—वही, संधि 4, घत्ता 12,

172 जरसध कंस चंदक्क राहु । दिट्ठउ कणयासणे पउमनाहु ।।
—वही, संधि 2, घत्ता 10,

173 दीरघ दरीन वसे केशोदास केशरी ज्यो
केशरी को देख बनकरी ज्यो कंपत है ।
वासर की सम्पदा उलूक ज्यो न चितवत
चकवा ज्यो चंद चितै चौगुनो चँपत है ।
—केशवदास कृत रामचंद्रिका, लाला भगवान दीन
संपादित, तेहरवाँ प्रकाश, छंद 88,

174 कंचणमइ सीहासणमुहेण । णं मेरु सिहरि सिय कसणमेह ।।
—वही, सधि 1, घत्ता 14,

175 ता तहिं निसि गलिय, सव्वंगारुण कायउ ।
ण वालहो आवइ, सूरु पुव्वदिसि आयउ ।
—वही, सधि 4, घत्ता 1;

176 द्रष्टव्य, इसी अध्याय की संदर्भ टिप्पणी, सं० 102,

177 वेड्ढिउ चउपासहिं, वाणसहासहिं, रेइवरु रेहइ समरि किह ।
विसहरहं असेसह, सव्व पएसह, णं कालायरु रुक्खु जिह ।।
—वही, सधि 13, घत्ता 9;

178 विहि उप्पण्ण तणय सु मनोहर । एकहि दिणि अणेय लक्खणधर ।।
संव्वु सुभाणु णाम णिम्मलमण । जग जीविय णावइ सावण घण ।
ण जायवकुल णह ससि दिणमर । णं पचक्ख वेवि मयणहु सर ।।
—वही, संधि 14, घत्ता 15,

179 कामिणि कर चालिउ चवल चमरु । मयणाहिं गध विघलत भमरु ।।
—वही, सधि 1, घत्ता 14,

180 द्रष्टव्य, इसी अध्याय की सदर्भ टिप्पणी स 145

181 जो अणगु महियलि जाणिज्जइ । तहो उवमाणउ कवणु किर दिज्जइ ।।
—वही, सधि 12, घत्ता 17,

182 भिच्चु वयणु सुणु कुविउ हलहरो । देहदित्ति जिय सरय जलहरो ।।
—वही, सधि 12, घत्ता 17,

183 द्रष्टव्य इसी अध्याय की सदर्भ-टिप्पणी स० 99,

184. द्रष्टव्य, इसी अध्याय की सदर्भ टिप्पणी स 88,

185 वज्जिय करडउ कइउवर वेहिं । हू हू हुअंत कवुअ सरेहिं ।।
रण कुणुकुणतु णित्तालएहिं । रस कसमसत कसालएहिं ।।
भ भ भ भेरि डमडमिय डक्क । खुखुदिहिं खुखु करि सज्जिअहु डुक्क ।
वीणा सुवस आलाविणीहिं । सरिगम पयरझुणिहि सुहावणीहिं ।।
पज्जुण्ण चरिउ–सधि 13, घत्ता 16,

186 कडवय निवहो सधी पध्दडियाइहिं चउहिं पुण कडव ।
सधिमुहे कडवन्ते धुवा च धुवय च घत्ता वा ।।1।।
ता तिविहा छपई चउपई य दुपई य तासु पुण दुण्णि ।
छ-चउप्पईउ कडघयनिहणे छड्डणिय णामा वि ।।2।।
—(कवि-दर्पण, 2, 32 वृत्ति) डा० हीरालाल जैन
सपादित हरिदेवकृत 'मयंण पराजय चरिउ' की
प्रस्तावना मे, पृ० 67-68 पर उद्धृत ।

187 डा० भोलाशकर व्यास सपादित "प्राकृत पैंगलम्" भाग 2, प्र० प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, पृ० 343,

188 पज्जुण्ण चरिउ, सधि 2, घत्ता 19,

189 गया तत्थ देवी । पमुत्तूणवावी ।। जहिं रूवराणी । सुसोहग्गखाणी ।।
तहो पायजुम्मा । णुयाताएरम्मा ।। सिर नामि ऊणं । पयपेइ णूण ।।
हरी मज्झु भत्तो । मया होउ रत्तो ।। . .इत्यादि ।
—वही, संधि 3, घत्ता 9,

□□

अध्याय : तीसरा

卐

सधारु कृत 'परदवरा चरितु' : एक अध्ययन

(क) वस्तु, पात्र तथा रस

(1) वस्तु

1. कृति तथा कृतिकार का संक्षिप्त परिचय

महासेन से प्रारम्भ कर सधारु तक (11 वी शती से 1411 वि० तक) के कालक्रम मे ऐसी तो अनेक कृतियाँ है जिनमे प्रद्युम्न-कथा आशिक रूप मे निवद्ध की गयी है। आचार्य नेमिचद्र विरचित प्राकृत ग्रथ 'आख्यानकमणि-कोश' (र. का 1073–83) के चतुर्थ अधिकार 'तपोमाहात्म्यवर्णनाधिकार' मे रुक्मिणी-आख्यान के अन्तर्गत रुक्मिणी के पूर्व भवो का, रुक्मिणी-हरण का तथा प्रद्युम्न–चरित विषयक कथानक का वर्णन है। प्रद्युम्न–कथानक मे विमान–रचना, उदधिमति-हरण, वापी–जल–शोषण, मायाश्व–रचना, ब्राह्मण–भोजन आदि द्वारका मे कृत क्रीड़ा-कौतुको के वर्णनो के अतिरिक्त शेष सभी कथा-सूत्र नियोजित किये गये है।[1] देवेन्द्रसूरि रचित प्राकृत ग्रथ 'कण्ह-चरिउ' (रा का. 1322)[2] मे भी प्रद्युम्न कथा दी गई है। किन्तु कालक्रम की दृष्टि से सिद्ध तथा सिह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ' के पश्चात्, पूर्णत प्रद्युम्न–चरित पर आधारित प्रवन्ध–काव्यो की शृखला मे सधारु-रचित 'परदवणु चरितु' (प्रद्युम्न चरित) की ही स्थिति है। डा० कस्तूरचद कासलीवाल की सूचनानुसार सधारु कृत प्रद्युम्न चरित का सर्वप्रथम परिचय स्व० रायवहादुर डा० हीरालाल ने 'सर्च रिपोर्ट' सन् 1923–24 मे दिया है।[3] फिर, दिल्ली से प्रकाशित होने वाले वीर सेवा मदिर के मुख-पत्र 'अनेकान्त' मे प्रकाशित सूचना के आधार पर वावू कामता प्रसाद जैन ने अपने 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास'[4] मे इस कृति का उल्लेख किया है। किन्तु तव तक इस कृति के सम्बन्ध मे समस्त विवरण श्रुति, अनुमान या अपूर्ण जानकारी पर आधारित होने के कारण भ्रान्तिपूर्ण थे। इसीलिए डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने वावू कामताप्रसाद जैन की

उक्त पुस्तक के प्राक्कथन मे, अपूर्ण सूचनाओ के आधार पर इसे गद्य-ग्रथ मान कर तथा बाबू कामताप्रसाद गुप्त द्वारा इसे शाह महाराज के पुत्र रायरच्छ की कृति उल्लिखित करने के आधार पर (जो वस्तुत एरछ नगर के उल्लेख को सूचि–निर्माता द्वारा रायरच्छ पढ लेने के प्रमाद के कारण उत्पन्न भ्राति है) इसे शीघ्र प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। श्री अगरचद नाहटा ने सर्वप्रथम इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति का अवलोकन कर इसके सम्बन्ध मे वास्तविक तथ्य प्रकट करते हुए इसके रचना-काल इत्यादि का परिचय दिया।[5] इसके बाद विभिन्न 5 प्रतियों के आधार पर (स्व०) प० चैनसुखदास तथा डा० कस्तूरचद कासलीवाल ने सधारु कृत इस प्रद्युम्न चरित का सुसम्पादन कर, डा० माताप्रसाद गुप्त के -प्राक्कथन सहित, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, जयपुर के तत्त्वावधान मे प्रकाशित कराया।[6] प्रस्तुत अध्ययन मे सदर्भो के लिए इसी कृति का प्रयोग किया गया है। कवि के सम्बन्ध मे इतना ही ज्ञात हो सका है कि उसका नाम 'सधारु' था। उसने अपने जन्म से अग्रवाल जाति को सुशोभित किया था। ये एरच्छ नगर मे रहते थे। डा० कासलीवाल ने 'सुधणु जणणी गुणवइ उर धरिउ, सा महराज धरह अवतरिउ' का अर्थ करते हुए लिखा है कि इनकी माता का नाम सधन था जो गुणवाली थी। किन्तु निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है क्योंकि 'सुधणु' को सज्ञा (विशेष) और 'गुणवइ' को विशेषण न मानकर सभाव्य विपर्यय के आधार पर माता का नाम 'गुणवती' मानते हुए सुधणु (सुधन्य) को उसका विशेषण मानने के लिए भी उतना ही अवकाश है। विशेषत गुणवती बहु-प्रचलित नाम तथा स्त्रीलिंग वाची होने के कारण इस सभावना को और अधिक बल मिलता है। नाहटा जी के 'वीरवाणी' मे प्रकाशित सदर्भगत लेख मे भी माता का नाम 'गुणवती' ही बताया गया है। स्त्रियो के पुल्लिगवाची नाम रखे जाते है किन्तु अपवाद रूप मे ही न कि सामान्य प्रचलन के रूप मे। अत नाहटा जी से सहमत होना ही अधिक सगत प्रतीत होता है। इसी प्रकार पिता का नाम साह (या शाह) महराज (न कि महाराज) उक्त दोनो विद्वानो द्वारा माना गया है। यदि ऐसा है तो महराज मुख्य नाम तथा साह (शाह) या साहु (या साहू) को जाति, उपाधि, या प्रवर सूचक शब्द मानना होगा। शाह या 'साहु' (या साहू) जैनियो का प्रसिद्ध अधिनाम (सरनेम या वक) है। किन्ही प्रतियों मे 'समहराइ' पाठ के आधार पर समर्थराज' नाम की सभावना पर भी विचार किये जाने की आवश्यकता है। 'अगरवाल की मेरी जात, पुर अगरोए मुहि उतपाति से अगरोह से उत्पन्न अग्रवाल जाति और अगरोहे मे अग्रवाल जातीय कवि की उत्पत्ति–दोनो अर्थ लगाये जा सकते है और यदि बाद वाले अर्थ मे कुछ सार है तो एरच्छ नगर की स्थिति, जिसे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा डा० कासलीवाल ने उत्तरप्रदेश मे और नाहटा जी ने मध्यप्रदेश मे अनुमित किया है अगरोहे से बहुत दूर नहीं होनी चाहिए।[7]

2. कथानक–संगठन

कवि सधारु कृत 'परदवणु चरितु' के कथानक का व्यापक रूप जिनसेनाचार्य और महासेन के अनुसार ही है किन्तु उस पर गुणभद्र का भी कुछ प्रभाव है। कनकमाला की प्रद्युम्न पर आसक्ति के प्रसग मे गुणभद्र का प्रभाव विशेप उभरा है। इस प्रसग मे कनकमाला का प्रद्युम्न पर मिथ्या लाछन और त्रिया-चरित्र तो जिनसेन से सधारु तक सभी कवियो ने निरपवाद रूप से वर्णित किया है किन्तु गुणभद्र ने सामान्य रूप से व्यापक स्त्रीनिंदा मे पहली बार रुचि प्रदर्शित की है।[8] इस स्त्री-निंदा मे नीतिमूलक स्वर प्रमुख है। सधारु ने एक कदम और आगे बढ कर त्रिया–चरित्र सम्बन्धी लोक-प्रवादो का दृष्टान्त रूप से निदर्शन किया है। सधारु वर्णित ये स्त्री–निंदा सम्बन्धी छह दृष्टात निम्नलिखित हैं[9] —

1 (बिम्ब दम्पत्ति) उज्जयिनी नरेश बिम्ब को कपटाचारिणी स्त्री के कारण प्राणो से हाथ धोना पडा।

2 (यशोधर दम्पत्ति) यशोधर राजा की पट्टमहिषी पति के प्राण हर स्वय कुबडे से रमण करने लगी।

3 (हया और तीनि) पाटन के हया सेठ की पत्नी तीनि ने प्रवासी पति की अनुपस्थिति मे एक धूर्त को पति बना लिया।

4 (सुदर्शन और अभया) अभया रानी की नीचता के कारण सुदर्शन पर महायुद्ध का सकट आया और उसे सन्यास लेना पडा।

5. (शूर्पणखा–प्रसग और सीताहरण) शूर्पणखा के कारण सीता–हरण और रावण–वश तथा लका का विनाश हुआ।

6 (द्रौपदी प्रकरण) द्रौपदी के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इन छहो दृष्टान्तो के अवलोकन से स्पष्ट है कि सधारु ने पौराणिक कथाओ और लौकिक प्रवादो से गुणभद्र के नीतिमूलक नारी–निंदा स्वर को पहली बार और भी पुष्ट किया है।

कवि की यह कृति 6 सर्गो मे (निवद्ध 702 छन्दो मे) विभाजित है (1) सर्ग प्रथम, (इष्ट–स्तुति से प्रद्युम्न–हरण तक, छद सख्या 139) (2) सर्ग द्वितीय (रुक्मिणी-विलाप से पुत्रागमन–लक्षणो की सूचना तक, छद सख्या 24) (3) सर्ग तृतीय (प्रद्युम्न–सिहरथ युद्ध मे मायावी सिह रूपी प्रद्युम्न द्वारा बलभद्र-पराजय तक, छन्द सख्या 289) (4) सर्ग चतुर्थ (बाल–रूप लीलाचरण से भानु-विवाह तक, छन्द सख्या 140) (5) सर्ग पचम (साम्ब–जन्म से साम्ब–विवाह तक, छन्द सख्या 66) (6) सर्ग पष्ठ (प्रद्युम्न द्वारा दीक्षा–लाभ से ग्रथ-स्तुति एव कवि-परिचय तक, छद सख्या 44)

स्पष्ट है कि कथानक का व्यापार-प्रमुख अंश पहले, तीसरे, चौथे और पाँचवें सर्गों में ही वर्णित हुआ है। इनमें भी तीसरा सर्ग सबसे अधिक लम्बा है क्योंकि उसमें प्रद्युम्न के मेघकूटपुर तथा द्वारका में सम्पन्न (प्रद्युम्न द्वारा रुक्मिणी-हरण और कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध से पूर्व तक के) समस्त अद्भुत शौर्यकलापों का आकलन हो गया है। कथानक का विभाजन सन्तुलित और सापेक्ष महत्त्व का सूचक है। दूसरा सर्ग केवल मेघकूटपुर और द्वारका के विच्छिन्न कथा-सूत्रों को जोड़ने के लिए एक योजक कड़ी के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसीलिए लघु है। अंतिम छठा सर्ग प्रद्युम्न-जीवन के नाटकीय, कौतूहलपूर्ण, व्यापार-बहुल घटनाचक्र को निर्वहण की ओर ले जाता है। फलागम का सूचक होने से इसका क्षीणकाय होना कथानक संगठन की दृष्टि से आवश्यक था। प्रद्युम्न-चरित रचयिता प्रबंध-काव्यकारों में सधारु ही एकमात्र कवि हैं जिन्होंने कथानक का कलात्मक पर्यवसान कर पाठक को बोरियत से बचा लिया है। उन्होंने पौराणिक धर्माग्रही शैली का परित्याग कर प्रबन्ध-काव्योचित कौशल का परिचय दिया है। सधारु की प्रबन्ध-योजना की कतिपय अन्य प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

(1) कथानक के वर्णन में अत्यन्त त्वरा है। इससे पूर्व कथा-गति में ऐसी त्वरा का प्रद्युम्न-चरित-काव्य-परम्परा में अभाव है। कवि मानो एक ही साँस में सारी कथा कह डालने की तत्परता में है। इसलिए सुन्दर भावाभिव्यंजक या वस्तु-व्यापार व्यंजक प्रसंग उपेक्षित हो गये हैं (क) वनदेवी-प्रसंग के बाद अकस्मात कवि ने मात्र चार चौपाइयों में ही कृष्ण और दोनों रानियों का अपने-अपने यानों पर चढ़ कर अपने आवास को जाना, सुख और वैभव विलास का उपभोग करना, दोनों रानियों के गर्व ठहरना, सत्यभामा द्वारा केश-कर्तन शर्त बदना, बलभद्र का इस शर्त के लिए साक्षी होना, कौरवराज दुर्योधन द्वारा दूत भेजना आदि आधे दर्जन कथासूत्रों का वर्णन कर डाला है।[10] (ख) षोडशलाभ-प्राप्ति के बाद प्रद्युम्न द्वारा पोषक पिता कालसंवर से भेंट के लिए जाना फिर अन्तःपुर में प्रवेश करना, कनकमाला से मिलना-उसका प्रद्युम्न पर कामासक्त होना तथा प्रद्युम्न का उसे छोड़कर चले आना इत्यादि महत्त्वपूर्ण रसपेशल प्रसंग केवल दो चौपाइयों में निबद्ध कर दिये गये हैं।[11] ऐसे ही अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(2) सधारु की एक अन्य विशेषता कथानक को आवश्यक या शिथिल और बोझिल प्रसंगों से उबार लेना है। कालसंवर द्वारा प्रद्युम्न की प्राप्ति पर उसके यौवराज्य सूचक पट्ट बाँधने के पूर्ववर्ती कवियों के पिष्टपेषित प्रसंग को कवि बिल्कुल उड़ा गया है। इसी प्रकार नेमि-राजीमती और धर्मतत्त्वदेशना सम्बन्धी वर्णनों तथा साम्ब द्वारा पिता से वियुक्त कन्या का रूप धर कर सत्यभामा और सुभानु को छलना इत्यादि प्रसंगों को कवि ने छोड़ दिया है। रुक्मिणी के ब्राह्मण-दूत का कृष्ण के पास प्रणय संदेश लेकर आना तथा शिशुपाल के सिपाहियों का देवपूजा निमित्त जाती

हुई रुक्मिणी को मार्ग मे रोकना इत्यादि कथा-सूत्र भी नही है। यही नही, सम्पूर्ण परम्परा मे, पहली बार कवि ने भावान्तरो के शुष्क जटिल वर्णन से अपनी कृति की रक्षा की है। सीमधर स्वामी भी शरणागत नारद को प्रद्युम्नहरण सम्बन्धी वर्तमान की विगत ही बताते है और पूर्वभवो का वर्णन न करते हुए केवल "पूरव जनम वैरु हो भयौ" कह कर इ गित मात्र कर देते है। इसी प्रकार कामासक्त कनकमाला के विपर्यस्त आचरण से दु खित विस्मित प्रद्यु म्न को मुनि द्वारा "पूर्व जन्म को सनमध भयउ" कह कर सकेत मात्र से ही समाश्वस्त कर दिया गया है। कथानक व्यर्थ ही भारारूढ हुए विना सीधा अपने लक्ष्य की ओर धावित हुआ है किन्तु साथ ही कवि मधु-कनकाभा जैसे भावाविल प्रसगो से वचित भी रह गया है।

(3) सधारु ने सूक्ष्म कथा-व्यापारो की विवृति मे कही-कही कुछ अ तर भी प्रदर्शित किया है जो कथानक-सगठन के सौंदर्य को उत्कर्ष प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, कृष्ण द्वारा वज्र-मुद्रिका को चूर्ण करने का वर्णन तो सभी कवियो ने किया है किन्तु वह मुद्रिका अभिज्ञान (सहदानी) के रूप मे नारद ने ही रुक्मिणी को प्रदान की थी ऐसी कथासूत्र की योजना का अवलम्ब सधारु ने ही लिया है। इसी प्रकार प्रद्यु म्न का मेघकूटपुर मे विद्याध्ययन के लिए उपाध्याय के पास जाने का वर्णन कर कवि ने कथाक्रम को स्वाभाविकता प्रदान की है।[12] रुक्मिणी हरण के प्रसग मे भी सधारु ने कथा-सूत्रो की नवीन ढग से योजना की है। जहाँ पूर्ववर्ती कवियो ने प्रद्यु म्न द्वारा रुक्मिणी का हरण कर उसे विमान मे नारद और उदमिमाला के पास पहुँचाकर कृष्ण-वश को ललकारने का वर्णन किया है वहाँ सधारु कृत वर्णन के अनुसार उसकी बाँह पकड कर यादवो की भरी सभा मे ले जाकर उसे छुडाने के लिए ललकारता है तथा यादव-सभा मे उपस्थित प्रत्येक वीर को व्यक्तिगत रूप से सम्बोधन कर युद्ध के लिए उसका आव्हान करता है।[13] इससे कथानक मे स्वभाविकता और नाटकीयता आ गयी है। किन्तु दूसरी ओर शिशुपाल की उपस्थिति मे रुक्मिणी-हरण नही होता। वनपाल तथा महिलाएँ आकर शिशुपाल को रुक्मिणी-हरण की सूचना मात्र देती है जिससे कथा-योजना मे नाटकीयता का ह्रास हो गया है तथा वीररसपूर्ण सवाद-स्थल से भी कवि वचित ही रह गया है।

(4) सधारु के अनेक कथा-व्यापारो मे तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य का प्रभाव अधिक मुखर है। इस सदर्भ मे दृष्टान्त सहित नारी-निंदा के अतिरिक्त सत्यभामा तथा रुक्मिणी मे पुत्रो के बहु-विवाहो की सपत्नीजन्य स्पर्धा तथा भानु-विवाह के लिए रत्नसचय नगर के नरेश रत्नचूल नामक विद्याधर का अपनी पुत्री रविकीर्ति तथा समस्त परिवार को लेकर द्वारका आने आदि का उल्लेख किया जा सकता है।[14]

(5) कथानक-योजना मे कही-कही असतुलन भी आ गया है। उदाहरणार्थ, प्रद्युम्न द्वारा षोडशलाभ-प्राप्ति के प्रसग के लिए ऐसी कथात्मक त्वरा से युक्त कृति

मे इतना विस्तार असन्तुलनकारी ही कहा जाएगा। कवि ने तो बारह 16 विद्याओं की पृथक् सूचि प्रस्तुत की है तथा सूचि को कथित 16 की संख्या तक सीमित भी नही रखा है।[15] दृष्टान्तयुक्त विस्तृत स्त्री-निंदा भी कथा-कलेवर की माँग न हो कर कवि की वैयक्तिक रुचि से ही अधिक प्रेरित है।

(6) कथानक मे असगति दोष भी आ गया है। नारद रुक्मिणी को अपहृत प्रद्युम्न के 12 वर्ष बाद सकुशल लौटने की सूचना देते है। "वरिस बारहे मिलिइ आइ" किन्तु कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध के अंत मे मध्यस्थता करते हुए कृष्ण से उसके पन्द्रह वर्ष पश्चात् (अर्थात 16 वे वर्ष मे) मिलने की बात कहते हैं—'पन्द्रह वरिस मिली तुह आइ'।[16]

(7) प्रत्येक समर्थ कृति की ही भाँति सधारु की इस कृति मे भी अनेक गौण कथान्तर दृष्टिगत होते है जिन्हे सोदाहरण यों प्रस्तुत किया जा सकता है —

कथान्तर

कथा-रूपान्तर का कारण	उदाहरण
(क) इष्ट कार्य के लिए वैकल्पिक उपाय का चिंतन	(क) प्रद्युम्न वृद्ध विप्र वेश मे सत्यभामा की वापी मे प्रवेश के समय ही, वर्जना से उत्पन्न क्रोधवश स्त्रियो के नाक-कान काट लेता है।[17] अन्य काव्यों मे वह स्त्रियों को रूपमती कर वापी मे प्रवेश करता है[18]
(ख) कथा-व्यापार के हेतु की भिन्न कल्पना।	(ख) प्रद्युम्न का वापीजलपूरित कमण्डलु, दासी द्वारा पकडे जाने पर छीना-झपटी के कारण फूटता है। अन्यत्र क्रोधवश स्वयं कमण्डलु फोड देता है।[19]
(ग) कार्य-व्यापार की इतर पात्र या प्रसंग से सम्बद्धता	(ग) सत्यभामा के यहाँ भी प्रद्युम्न नारायण के आहार निमित्त रखे मोदक खा लेता है।[20] अन्यत्र नारायण मोदकों का सम्बन्ध मात्र रुक्मिणी से ही है। सधारु की कृति मे वृद्ध अश्व-व्यापारी-वेषी प्रद्युम्न को अश्व-सचालन के लिए हलधर चुनौती देते है।[21] अन्यत्र यह चुनौती भानु द्वारा ही दी जाती है।

(घ) मुख्य कार्य से सम्बन्धित गौण व्यापारो और चेष्ठाओ मे अन्तर (वृद्धि या ह्रास)	(घ) रुक्मिणी के महल मे प्रद्युम्न के पहुँचने से पूर्व ही रुक्मिणी पुत्रागमन की आशा मे क्षण-क्षण मे प्रासाद शिखर पर चढती और मार्ग देखती है।[22]
(ङ) कथा-व्यापार से सम्बद्ध वस्तु-गत रूपगुणमात्रात्मक अ तर	(ङ) नारायण आधे लड्डू को खा लेने पर 5 दिन तृप्त रहते है। नारायण से मोदको का सम्बन्ध प्रथम वार महासेनाचार्य ने स्थापित करते हुए मोदको की सख्या 10 लिखी है। सिंह कवि ने कृष्ण निमित्त रखे अनेक मोदको का उल्लेख किया है तथा कृष्ण की तृप्ति के लिए एक ही मोदक पर्याप्त वताया है।[23] यमसवर के पास वारह सौ विद्वानो का उल्लेख भी इसी का उदाहरण है।

द्रष्टव्य है कि गौण कथान्तरो के जितने भी रूप और हेतु हो सकते हैं, प्राय: उन सभी के उदाहरण सधारु की कृति मे प्राप्य है। इससे गौण-व्यापारो मे कवि की स्वेच्छया गति सूचित होती है।

प्रद्युम्न-चरित काव्यो की कथानक-योजना पर सामान्यत विचार करते हुए एक जिज्ञासा यह भी होती है कि विष्णु-पुराण मे प्रद्युम्न-हरण का छठा दिन, श्रीमद्भागवत मे 10 वाँ दिन और हरिवश पर्व मे 8 वाँ दिन (सात दिन पूर्ण हो जाने पर) क्यो लिखा गया है ? जैन परम्परा मे जिनसेन, गुणभद्र तथा पुष्पदन्त ने प्रद्युम्न-हरण का निश्चित दिन नही दिया है। प्रथम वार महासेनाचार्य ने छठे दिन (पाच दिन वीत जाने पर) प्रद्युम्न-हरण की सूचना दी है।[24] स्पष्ट ही यह विष्णुपुराण का प्रभाव है। सिद्ध कवि ने भी छठे दिन प्रद्युम्न-हरण (तथा नामकरण का भी) उल्लेख किया।[25]

हिंदू सस्कारो के अनुसार वच्चे के जन्म के 10 वे दिन माता और नवजात शिशु के शुद्धिकरण के वाद सूतिकागृह से सूतिका अग्नि को हटा दिया जाता था तथा सूतिकागृह मे गार्हपत्य अग्नि का प्रवेश करा दिया जाता था। नामकरण सस्कार स्मृतियो मे प्राय जन्म के 10 वे या 12 वे दिन किये जाने का विधान है। सिर्फ गुप्त नाम ही जन्म के दिन रखा जाता था। गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार नामकरण जन्म के 10 वे, 12 वे, 100 वे या अगले वर्ष के प्रथम दिन रखे जाने की व्यवस्था

है । बृहस्पति ने उस व्यवस्था में और भी छूट दे दी है किंतु सबसे निकट का दिन 10 वाँ दिन ही माना है । सूतिकागृह की शुद्धि के दिन, अर्थात् 10 वें दिन जच्चा-बच्चा को स्नान कराया जाता था । फिर स्वच्छ वस्त्र में शिशु को लपेटकर माँ उसे पिता की गोदी में देती थी ।[26] स्पष्ट है कि सूतिका-शुद्धि के दिन पितृ-अंक में आने से पूर्व ही बालक का भागवतकार द्वारा 10 वें दिन हरण दिखाना सार्थक है । किन्तु 6 वें दिन प्रद्युम्न-हरण की सार्थकता लोकाचार क्षेत्र में ही सिद्ध हो सकती है । हो सकता है कि शिशु-जन्म के छठे दिन ही षड्मातृका पूजन होता रहा हो तथा औपचारिक रूप से समारोह-पूर्वक स्तन-पान भी उस दिन कराया जाता हो जिससे 'छठी का दूध याद आना' मुहावरा बना हो । जो भी हो, छठे दिन के अभिप्राय की सार्थकता हमें लोकव्यापिक क्षेत्र के किसी लोकाचार में ही ढूँढनी होगी ।

3. वस्तु-व्यापार-वर्णन

कवि को कथा-गति की त्वरा के कारण वस्तु-व्यापार -वर्णन के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं मिल सका है । फिर भी चलते-चलते कुछ वस्तु-व्यापारों का वर्णन उसने किया है । द्वारका-वर्णन में कवि की दृष्टि द्वारका के सौंदर्य पर आकृष्ट न होकर नारायण, वसुदेव, बलभद्र, सत्यभामा और रुक्मिणी के निजी आवासीय प्रासादों पर विशेषतः केन्द्रित है । वह एक वस्तु छंद में सागर के मध्य में बसी, उज्ज्वल स्फटिक मणि-जटित, कूप-वापी-जिनेंद्र मन्दिर युक्त द्वारका का सामान्य वर्णन कर राज्य कुल के प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यक्ति के प्रासादों का, उनके विशिष्ट ध्वजचिन्हों सहित, वर्णन करने में प्रवृत्त हो हो जाता है ।[27] यहाँ वर्णन में सतुलन, सश्लिष्टता और चित्रोपमता का नितान्त अभाव है । कवि के इन वस्तु-वर्णनों की तुलना जब महासेन, सिद्ध और सिंह कवि के आलंकारिक और चमत्कारपूर्ण वर्णनों से करते है तो निराशा ही हाथ लगती है । फिर भी,, उत्सवादि के वर्णन में कवि पर सामाजिक रीति प्रथाओं का प्रभाव स्पष्ट है । दोनो सपत्नियों को पुत्र-रत्नों की प्राप्ति होने के सुअवसर पर घर-घर बधावा गाया जाने, मगलाचार होने, ब्राह्मणों द्वारा वेद-मत्रों का उच्चारण करने, भेरी एव तुरही बजने, मदृवर एव शख गूँजने, घर-घर केसर-रोली के चिन्ह (कूँकूँ थापे) सजाने तथा कामिनियों द्वारा मगलगीत गाने का उल्लेख हुआ है । प्रद्युम्न के नगर-प्रवेश पर उत्सव का वर्णन करते हुए उक्त मगल सूचक कार्य-कलापों के अतिरिक्त माणिक मोतियों से चौक पूरे जाने, प्रद्युम्न की आरती उतारे जाने, तोरण और मोतियों की घर-घर वन्दनवार बांधे जाने और गुड्डियाँ उछाले जाने तथा नवयुवतियों द्वारा मगल-कलश से प्रद्युम्न का स्वागत किये जाने आदि मागलिक विधानों का भी वर्णन किया गया है । इन्ही मगल-विधानों के वर्णन को कवि ने फिर दोहराया है । दूध, दही तथा अक्षत को मस्तक पर लगाने की बात भी कही गयी है । प्रद्युम्न के विवाह के अवसर पर हरे बाँसों का मण्डप रचने, तोरण-द्वार स्थापित करने, लम्बे चौडे वस्त्र (कनात, शामियाने आदि) तानने, सिंह द्वारों पर कलश रखने, नगाडे,

भेरी, तुरही, वीणा एवं नाल आदि वाद्यो के बजने, कामिनियो द्वारा मगल-गीत गाने और भाँवर देकर हथलेवा करने का वर्णन है। रुक्मिणी-हरण के उपरान्त वन मे ही सम्पन्न विवाह-लग्न के अवसर पर भ्रमर की ध्वनि ही मगलाचार है तथा तोते ही वेदपाठ कर रहे है।[28] इस वर्णन पर सिद्ध कवि का प्रभाव स्पष्ट है। अंतर इतना ही है कि अप्रस्तुत प्रकृति-पक्ष का प्रस्तुत मानवीय व्यापारो पर सिद्ध कविकृत आरोप अधिक सागोपाग और सुन्दर है।[29]

षोडश लाभ-प्राप्ति प्रसग मे भी शौर्य-व्यजक भावनाओ या चेष्टाओ को प्रकाशन नही मिल सका है। प्रद्युम्न को अनायास विजयश्री और भेटे मिलती जाती हैं। विजयगिरि के जिनमदिर पर चढते ही प्रद्युम्न को भयकर नाग फुफकारते हुए मिलता है। भिडते ही प्रद्युम्न पूँछ पकड कर उसका सिर उलट देता है। नाग यक्ष का रूप धारण कर विनीत भाव से प्रद्युम्न को उसके पूर्व भव मे कनकराज होने का स्मरण कराता हुआ उसके द्वारा धरोहर रूप मे रखी हुई 16 विद्याओ को उसे लौटा देता है। प्रथम अभियान मे ही प्रद्युम्न को 16 विद्या-लाभ कवि करा देता है।

षोडशलाभ-प्राप्ति वर्णन मे क्रम-संगति तथा संख्या-सीमा के पालन का अभाव है। कभी भेंटो को (यथा विद्यातारिणी और पादुका को) दो बार गिना दिया गया है तो कभी एक ही भेंट इन्द्रजाल को दो भेंटे बता दिया गया है। सिद्धिप्रदा विद्याओ और उपहार वस्तुओ के बीच की विभाजक रेखा स्पष्ट नही है। न तो साहसिक अभियान ही और न प्राप्त भेंटे ही 16 की संख्या मे निश्चित है। क्रमसख्या 7 मे कवि भेंटे प्रदान कराना ही भूल गया है। कवि के इस वर्णन पर जिनसेनाचार्य, महासेन तथा सिद्ध कवि कृत षोडश लाभ प्राप्ति वर्णन का प्रभाव स्पष्ट है।[30] अन्तर है तो यही कि सधारु कृत वर्णन मे रोचकता और चित्रोपमता का अभाव है।

सैन्य-सज्जा तथा युद्ध-वर्णन जैसे भावावेगपूर्ण और गतिशील व्यापारो मे भी यह वस्तु-परिगणन और रूढिमूलक वर्णन-प्रणाली की प्रवृत्ति कार्यरत है। सैन्य की विशालता के कारण मार्ग न दीखने, घोडो के खुरो से उडी हुई धूल के भादो के मेघ की तरह मडराने, सेना के पवन वेग के समान रणभूमि में पहुँचने तथा धूल के अम्बार से सूर्य चन्द्र के ढँक जाने जैसे चिरपरिचित सादृश्य-विधान का अवलम्ब ग्रहण किया गया है। यही नही, युद्ध का सश्लिष्ट बिम्बाधृत वर्णन न कर पाने के कारण कवि को युद्ध की भयकरता के चित्रण के लिए बाणो की संख्या के गुणन का विवरण देना पडा है जो पचास बाण से प्रारभ होकर द्विगुणित होती हुई बत्तीस सौ तक पहुँच जाती है। युद्ध की भयकरता के लिए बाण-सख्या परिगणन चिरपरिचित पौराणिक वर्णन-रूढि है।[31]

वस्तु-परिगणन की यही प्रवृत्ति प्रकृति-चित्रण मे है। सत्यभामा के उपवन का वर्णन करते हुए कवि ने 35 से भी अधिक लताओ और वृक्षो के नाम गिना कर इतिश्री कर दी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन सार्थक है कि वस्तु-वर्णन कौशल से कवि लोग इतिवृत्तात्मक अंशो को भी सरस बना सकते है। इस बात

मे हम मस्कृत के कवियो को अत्यन्त निपुण पाते है। भाषा के कवियो मे वह निपुणता नही पायी जाती।[32] प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-परम्परा के पर्यवलोकन से स्पष्ट है कि सधारु जैसे प्राचीन हिन्दी के कवियो से भी पूर्व यह प्रवृत्ति अपभ्रंश काल मे ही प्रारभ हो गयी थी। वस्तु-परिगणन की इसी प्रवृति का परिचय सिंह कवि कृत, विमान मे द्वारका को ओर जाते हुए प्रद्युम्न और नारद के मार्ग मे पडने वाले, वन-प्रदेश के वर्णन मे मिलता है। इसके विपरीत महासेन ने इसी वन-प्रदेश के वर्णन मे, मनोरम आलकारिक शैली मे, भयकर किंतु मनोहारी क्रीडारत सिंह तथा जल पीते हुए हाथी का सश्लिष्ट चित्रमय वर्णन किया है।[33] महासेन पर सस्कृत की वस्तु-वर्णन शैली की परम्परा का प्रभाव स्पष्ट है। खेद है कि सधारु मे यह परम्परा पूर्णतः नि शेप हो गयी है। पात्रो के आकृति-चित्रण से भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। कवि ने रुक्मिणी के सौदय का वर्णन उसे हसगामिनी, चन्द्र-वदनी, सुलक्षणा तथा अनन्य रूपवती कह कर समाप्त कर दिया है। सच तो यह है कि अन्य कवि जहा वस्तु-वर्णन के लिए ही प्रसगो की उद्भावना करते है या उद्भवित प्रसगो का सदुपयोग करते है वहाँ सधारु ने वस्तु-वर्णन के लिए द्वार ही बन्द कर दिए है। कवि रुक्मिणी के चित्रपटाकित सौदर्य-वर्णन जैसे परम्परागत स्थल की भी नितान्त उपेक्षा कर गया है।

सधारु ने वर्णन-रूढियो का भी पर्याप्त अवलम्ब लिया है। महासेनाचार्य, सिद्ध तथा सिंह द्वारा प्रयुक्त कतिपय प्रमुख वर्णन-रूढियो का

4 वर्णन—रूढ़ियाँ उल्लेख यथा-स्थान किया जा चुका है। सधारु ने उनमे से आगमन-चिन्ह, सैन्य-नद-वर्णन तथा शूर-कवच-भंजन को छोड कर अन्य सभी वर्णन-रूढियो का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त भी अन्य वर्णन रूढियो का प्रयोग सधारु द्वारा हुआ है। सधारु वर्णित प्रमुख वर्णन-रूढियो का विवरण इस प्रकार है —

	वर्णन-रूढि	विवरण-सकेत	छद-सख्या
1	नारी रूप के प्रति जिज्ञासा[34]	की यह अछरा की वणदेइ .	55
2	वैरशोध हेतु विकल्पचिंतन (सधारु ने इस वर्णन-रूढि का प्रयोग परम्परासे हटकर धूमकेतु द्वारा प्रद्युम्न-हरण प्रसग की अपेक्षा नारद-सत्यभामा प्रसग मे विशेषत किया है।)	काइसइ मान भग या होइ	35-36, (नारद-सत्य-भामा प्रसग) तथा 125 (धूमकेतु प्रसग)

3	पुनागम-लक्षण	उकठे आव फलइ सँहार....	161-63 397-8
4	पाप-चेतना (कुफल-हेतु-सूचक)	की मइ पूरिख विछाही नारि. .	142,
5	पुण्य-कथन (सुफल हेतु-सूचक)	पुन्नहि राजभोगु महि होई . .	132,
6	अपशकुन (1 कृष्ण-सैन्य के प्रस्थान समय) (11 भानु के घोडे पर से गिरते समय)	बाई दिसा करकइ कागु... के ऊ टु तुरग उठे अरराइ.	484-85, 359,
7	शुभ शकुन	फरकिउ लोयण दाहिणउ. .	578-79,
8	राजाओं का विवाह मे आगमन	अ ग वग कलिंगह तणे	578–79,
9	बाण-द्विगुणन	दूणे दूणे करइ सधाण. .	79–81,
10	देवों का स्वर्ग से मानव-व्यापार-दर्शन	सुर देखइ ऊपर भये...	183,

11 युद्ध तथा सैन्य सज्जाविषयक वर्णन रूढियाँ :—

(क)	महिमंडलु थरहरिउ मेरु कम्पिउ	67,506, 540–41
(ख)	पवन वेग रण आइ पहुत	72,253,289,
(ग)	उडी खेह लोपी ससभाण....	73, 173, 472
(घ)	जउ वेसन्दर घृत ढल्यउ .	73, 253,
(ङ)	गयणिहि उछली खेह जाणे भादो के मेह . .	71, 175, 483,
(च)	जाणी धण गाजइ मेघ अकाल.	173, 281,
(छ)	पाइकस्यो पाइक आभिडइ मैगल सिहु मैंगल आभिडइ	180, 261, 490,
(ज)	रहिवर साजे गैंवर गुडे तुरिय पलाणहु गैयर गुडउ ...	68, 69, 70, 173, 259 477,

उक्त निदर्शन से स्पष्ट है कि सधारु को वर्णन-रूढियाँ विशेप प्रिय है। मार्मिक स्थलो की उद्भावना और उनकी मनोरम अभिव्यजना की दृष्टि के अभाव म कवि को कथानक-रूढियो तथा वर्णन-रूढियो पर ही अपने प्रबध काव्य का ढाचा खडा करना पडा है। सधारु अन्य कवियो मे- एक कदम इस रूप मे आगे बढ जाते है कि वे किसी एक सी परिस्थिति, कार्यगति, भाव-दशा या वस्तु-व्यापार-रूप की बारम्बार आवृत्ति होने पर उसके वर्णन के लिए वही एक–सी नपीतुली शब्द-बद्ध

वाक्यावली की वारम्बार पुनरावृत्ति करते है। यहा, प्रसगवश, वर्णन-रूढि शब्द के चयन और प्रयोग की सार्थकता को इंगित कर देना उचित होगा। 'कथानक-रूढि', 'अभिप्राय', 'कवि-समय', इत्यादि शब्दो का प्राय पर्याय रूप मे प्रयोग किया जाता रहा है।' 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' मे चरित्र-काव्यो पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है कि 'हमारे देश के साहित्य मे कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे 'अभिप्राय' दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे है जो बहुत थोडी दूर तक यथार्थ होते हैं और आगे चलकर 'कथानक-रूढि' मे बदल गये है।[35] इस सदर्भ मे द्विवेदी जी ने 'अभिप्राय और कथानक रूढि'—इन दोनो शब्दो का प्रयोग किया है। उनकी इस परिभाषा से ध्वनित है कि 'अभिप्राय' ही परम्परागत प्रयोग से 'कथानक-रूढि' का रूप ग्रहण कर लेता है। अत पर्यायात्मक होते हुए भी इन दोनो शब्दो की ध्वनि मे अन्तर है। 'अभिप्राय' शब्द का प्रयोग हिंदी मे, अंग्रेजी के 'मोटिफ' शब्द के अर्थ मे किया जाना है। 'मोटिफ' की व्याख्या करते हुए शिप्ले का कहना है कि 'मोटिफ' (अर्थात् अभिप्राय) शब्द अथवा साचे मे ढले हुए उस विचार-रूप को कहते हैं जो समान परिस्थितियो के वर्णन और समान मन स्थिति और प्रभावोत्पादन के लिए किसी एक ही कृति अथवा एक ही जाति (कोटि) की विभिन्न कृतियो मे वारम्बार प्रयुक्त होता है।[36] 'अभिप्राय' की यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक है तथा इसमे सगीत, चित्र आदि ललित कलाओ मे प्रयुक्त अभिप्रायो का भी समावेश हो जाता है। किंतु काव्य मे इस व्यापकअर्थीय अभिप्राय के नानार्थव्यजक रूप दृष्टिगत होते है इसीलिए 'कथानकरूढि,' 'अभिप्राय', 'कविसमय' 'वर्णनरूढि', कथाकोटि आदि शब्दो की अर्थ और प्रयोग की दृष्टि मे सार्थकता है। हमारे विचार से, अभिव्यक्ति के किसी रूढ और परिबद्ध रूप को सामान्य विचार-विमर्श या तत्त्व-चिंतन के परिप्रेक्ष्य मे 'अभिप्राय' और विभिन्न कथा-कृतियो मे उसकी कथात्मक आवृत्ति के सदर्भ मे उसे 'कथानक रूढि' कहा जाना चाहिए। इसी प्रकार किसी बहुव्यापार-सूत्रान्वित सुदीर्घ कथा-रूप की आवृत्तियो के सदर्भ मे 'कथाकोटि' (टेल टाइप) शब्द का प्रयोग उचित रहेगा। 'कविसमय' सस्कृत काव्य-शास्त्रियो द्वारा निश्चित अर्थ और सदर्भयुक्त बहुप्रचलित शब्द है जो काव्य मे ऐसे अभिप्रायो के लिए प्रयुक्त होता रहा है जिन्हे कवि-प्रयोग (तथा रसज्ञ अभ्यास) मे तथ्य मान लेने का आग्रह रहा है। सभी ऋतुओ मे तथा सरिताओ मे कमल का खिलना, हस का क्षीर-क्षीर विवेक, चातक का अगार चुगना इत्यादि 'कविसमय' इसी अभिप्रायगत विशेषता को सूचित करते हैं।

'कथानकरूढि' 'और वर्णनरूढि' मे अन्तर इसलिए आवश्यक है कि पूर्ववर्ती शब्द मे जहाँ विषय—वस्तु की कथात्मकता पर बल है वहा परवर्ती शब्द का उसकी वर्णनरूढि या व्यजनाशैली पर विशेष आग्रह है। इसीलिए अंग्रेजी मे भी, 'मोटिफ' के सामान्य प्रयोग के अतिरिक्त 'डिस्क्रिप्टिव मोटिफ' (वर्णनात्मक अभिप्राय) शब्द

का प्रयोग पाया जाता है। 'वर्णनात्मक अभिप्राय' की अपेक्षा 'वर्णनरूढि' शब्द इसीलिए अधिक ग्राह्य है कि प्रत्येक अभिप्राय वर्णनात्मक तो होता ही है अत. सामान्यकथन के कारण यह शब्द अभिव्यजना-रूप की रूढिता का बोध नही करा पाता जो कि इष्ट है। 'वर्णनात्मक अभिप्राय' मे 'वर्णन' विशेषण होने के कारण (तथा परसगबद्ध होने के कारण और भी) गौण हो गया है जब कि 'वर्णनरूढि' शब्द मे यह प्रधानतत्व ग्रहण किये हुए हैं। फिर, वर्णनरूढि शब्द की सगति 'कथानक रूढि' से भी बैठ जाती है। आशा है, यह लघु मन्तव्य 'अभिप्राय' के इन विविध रूपो के बोधक शब्दो के सार्थक प्रयोग मे सहायक होगा।

(2) पात्र

प्रद्युम्न-चरित काव्यकारो ने अपने पात्रो के चरित्र-चित्रण मे प्रमुख सूत्र जैन पुराणकारो से ही ग्रहीत किये हैं। सधारु भी इसके अपवाद नही है। फिर भी, पात्रो के व्यक्तित्व और चरित्र की सूक्ष्म व्यजनाओ मे अन्तर भी स्वाभाविक ही है। प्रद्युम्न-चरित के पात्रो को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है-(1) पुरुष-पात्र (2) स्त्री-पात्र। प्रमुख पुरुष पात्रो मे प्रद्युम्न, कृष्ण, नारद और कालसवर तथा गौण पुरुष पात्रो मे बलभद्र, वसुदेव, धूमकेतु, सिंहरथ, शिशुपाल, भीष्मक, रूपचद (रुक्मी), साम्ब, भानु और सुभानु का नामोल्लेख किया जा सकता है। अनेक अनाम पात्र भी हैं— जो अनाम तथा गौण होते हुए भी कथा-गति के सचालन या व्यापार-वर्णन की दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो अनाम नही हैं तथा कथा-गति पर भी प्रभाव डालते हैं फिर भी उनका चरित्र उभर कर सामने नही आ सका है। ऐसे पुरुष पात्रो मे पूर्व-विदेह क्षेत्र के सीमधर स्वामी और नेमि जिनेश्वर तथा ऐसी स्त्री-पात्रो के अन्तर्गत जाम्बवती, सुरसुन्दरी (रुक्मिणी की बुआ), उदधिमाला, रति इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। स्पष्ट है कि सख्या-बल की दृष्टि से प्रद्युम्न-चरित मे पुरुषपात्रो की प्रधानता है।

5. चरित्र-चित्रण

पुरुष पात्रो मे प्रद्युम्न सबसे प्रमुख है क्योकि वह कथा का नायक है तथा उसी का व्यक्तित्व आद्योपान्त कथा-पटल पर छाया रहता है। वही कैवल्य रूपी फल का भोक्ता भी है। प्रद्युम्न को सधारु ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियो की ही भाँति एक पुण्यवान्, भाग्यशाली और चमत्कारी वीर के रूप मे चित्रित किया है। शत्रु धूमकेतु के हाथ मे पडकर भी सुरक्षित रह जाना, शत्रुओ की सहज पराजय तथा सोलह लाभ और विद्या-प्राप्ति इत्यादि उसकी पुण्यसत्ता और भाग्यशालिता को सूचित करते है। प्रद्युम्न के वीरत्व मे लौकिक और अलौकिक दोनो तत्त्वो का अभिनिवेश है। प्रद्युम्न के युद्ध तथा साहसिक अभियानो से सम्बद्ध बीसियो प्रसग तो उसे शौर्य और वीरत्व प्रदान करते ही है, अन्य पात्र भी उसके अप्रतिहत वीरत्व को स्वीकार करते हैं। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध के अनन्तर कृष्ण मे प्रद्युम्न का परिचय कराते हुए नारद उसे

रण-सग्राम मे धैर्यवान् और साहसी कहते हैं। रुक्मिणी भी गद्गद् भाव से घोषित करती है—'मेरे तो तुम अकेले ही सहस्त्र सतान के तुल्य हो। बहुत सारे पुत्रो से मुझे क्या प्रयोजन ? प्रद्युम्न की वीरता का लौकिक पक्ष कृष्ण से हुए युद्ध म ही सर्वाधिक उभरा है। सधारु ने कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे अर्जुन, भीम आदि पाण्डव बन्धुओ को अवतरित कर इस लौकिक रग को और गहरा किया है। इन वीरो का युद्ध के लिए आह्वान और प्रद्युम्न द्वारा इन्हे सम्बोधित कर कही गयी व्यग्योक्तियो ने प्रद्युम्न को लौकिक युद्ध-वीर के रूप मे चित्रित किया है।[37] सिंहरथ और कालसवर पर विजय, षोडश लाभ प्राप्ति प्रसग मे किये गये पराक्रम तथा द्वारका मे उसके क्रीडा कौतुक प्रद्युम्न के अलौकिक वीरत्व को ही सिद्ध करते हैं।

वीरत्व के ही अतिरिक्त प्रद्युम्न-चरित्र का अन्य तत्त्व 'ऐश्वर्य' भी है। अलौकिक 'ऐश्वर्य' तत्त्व की यह भावना ही प्रद्युम्न की षोडशलाभ और विद्यादिक तथा रमणी रत्नो की सहज प्राप्ति के मूल मे है। स्त्री रत्नो की प्राप्ति तथा कनकमाला की आसक्ति के प्रसग मे प्रद्युम्न का प्रेमी रूप व्यजित नही हो सका है, न ही कामी रूप। वैष्णव पुराणो मे प्रद्युम्न-मायावती प्रसग मे तथा प्रद्युम्न-प्रभावती प्रसग मे भी, प्रद्युम्न के रसिक और प्रेमी रूप का मनोरम और अलकृत चित्रण हुआ है। जैन प्रबन्ध-कवियो ने उस परम्परा से हट कर प्रद्युम्न को सयमी और मर्यादापालक के रूप मे चित्रित किया है। जैन धर्म की प्रणय और भोग के प्रति सैद्धान्तिक वितृष्णा ही इसकी प्रेरक है। कनकमाला को वह अन्त तक मातृ भाव से ही देखता है तथा उसके विपर्यस्त आचरण पर क्षुब्ध और हतप्रभ रह जाता है। माता के साथ छल करने के दोषारोपण से वह इसलिए मुक्त हो जाता है कि मुनि की आज्ञा से ही वह विद्या प्राप्ति के लिए कनकमाला के साथ छल पूर्ण आचरण करता है। इसी प्रकार उदधिमाला का हरण भी वह इसलिए करता है कि वह उसकी पहले से वाग्दत्ता थी तथा नारद भी उसे उदधि-हरण के लिए प्रेरित करते हैं।[38] फलत प्रद्युम्न को हम प्रेमी या कामी नही कह सकते। वह सयमी, मर्यादापालक और मुनियो का आज्ञाकारी है।

कौतुक और हास्य-प्रियता भी प्रद्युम्न-चरित्र का मुख्य तत्त्व है। विमान-रचना, अश्व-संचालन तथा द्वारका मे सम्पन्न क्रीडा कौतुको मे उसकी यह प्रवृत्ति खूब प्रस्फुटित हुई है। वह वाक्-पटु भी है। कनकमाला से, भील वेश मे दुर्योधन सैन्य की महिलाओ से, वृद्ध अश्व व्यापारी वेश मे भानु से तथा युद्धक्षेत्र मे कृष्ण और पाण्डवो के साथ हुए सवादो मे उसकी वाक्पटुता प्रमाणित होती है। जीवन की हर परिस्थिति और भूमिका में उसकी वाग्विदग्धता कार्यसिद्धि मे तथा उसके चरित्र के उत्कर्ष मे सहायक होती है। सत्यभामा के उपवनरक्षको को मुद्रिका का उत्कोच दे कर उपवन मे अश्व-चारण के लिए पटाने मे तथा कनकमाला से यत्नपूर्वक विद्या प्राप्ति मे उसकी कार्यपटुता और लौकिक व्यवहार-विज्ञता सिद्ध होती है। अलौकिक

और विलक्षण कार्यपटुता तो उसके ऐश्वर्य और वीरत्व का सहज सुफल ही है। साम्ब-सुभानु द्यूतक्रीडादि प्रसगो से उसका भ्रातृ-स्नेह व्यक्त होता है। युद्धोपरात वह कृष्ण से क्षमा-याचना करता हुआ उनके पैरो पडता है इससे उसकी नम्रता और पितृभक्ति सूचित होती है ।[39] सधारु ने कालसवर के प्रति युद्धान्त मे प्रद्युम्न का यह नम्रीभूत व्यक्तित्व चित्रित नही किया है। साम्ब सुभानु प्रकरण मे जहाँ महासेन और विशेपत सिंह ने उसके उदाराशय रूप का चित्रण किया है वहाँ सधारु ऐसा नही कर सके है। अन्त मे हम प्रद्युम्न को जिन-दीक्षा धारण करते हुए वीतरागी के रूप मे देखते हैं जो रहट की माला के समान फिरते हुए जीव की दशा पर करुणा प्रकट करते हुए जगत की असारता और पाप-पुण्य महिमा का प्रबोध अपनी माता और अन्य स्वजनो को देते है।

कवि, कृष्ण के वैभव और ऐश्वर्य का, अपने पूर्ववर्ती कवियो की भाँति, सुन्दर चित्रण नही कर सका है। न ही वह रुक्मिणी के चित्रपट को देख कर कृष्ण के मुग्ध होने का सश्लिष्ट और अनुभावयुक्त वर्णन कर पाया है । सच तो यह है कि चरित्राकण के सूत्रो की विवृति कर कवि कथा को आगे दौडा ले जाता है। वह कथा-चक्र पर आरूढ है तथा भागते हुए कथा-चक्र मे चरित्राकण के आरे कभी कभार चमक कर शीघ्र ओझल हो जाते है। इसीलिए पात्रो के चरित्र के प्रमुख सूत्रो की विवृति होते हुए भी परिवेशगत, भावशवल और अनुभावानुमोदित विशद चरित्राकण करने मे कवि असमर्थ रह गया है । फिर भी, कुछ रेखाएँ बडी अर्थव्यजक बन पडी हैं। प्रद्युम्न से युद्ध करते समय जो अपशकुन होते है उनकी अवमानना करते हुए कृष्ण अपने सारथी से कहते है कि "हम कोई विवाह करने थोडे ही जा रहे हैं जो शकुनो को देखे।" प्रद्युम्न द्वारा स्वपक्ष की सेना के सहार पर वे खिन्नचित्त होकर हाहाकार कर उठते है। वीरोचित निस्पृहता और स्वपक्ष की हानि-जनित दुर्बलता के इस चित्रण ने कृष्ण के चरित्र को निस्सदेह कोमल सवेदनशील मानवीयता और सहजता प्रदान की है। प्रद्युम्न से हारते हुए कृष्ण के सवाद से कृष्ण का एक साथ ही वीर किंतु अवसरोचित वाक्चातुर्य मे प्रवीण कूटनीतिज्ञ रूप दीख पड़ता है जो परिस्थितिगत सदर्भ मे अतीव मनोवैज्ञानिक भी प्रतीत होता है। कालसवर के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन मे वे ऐश्वर्यशाली होते हुए भी कृतज्ञरूप मे समक्ष आते है। प्रद्युम्न द्वारा दीक्षा-ग्रहण के अवसर पर उनके व्याकुल पितृ-हृदय का परिचय मिलता है ।[38] कृष्ण-महिमा के स्तवन और वैभव-वर्णन की परम्परा से हट कर कवि ने कुछ स्थलो पर कृष्ण के मानवीय पक्ष का सबल चित्रण किया है।

अन्य पुरुष पात्रो में नारद की चोटी फहराने तथा छत्री और कमण्डलुधारी मुडित-मस्तक आकृति का वर्णन करने के अतिरिक्त रूपगर्विता सत्यभामा द्वारा अपमान के प्रसग मे कवि ने कालरूप नारद की रूप और कला देखने के लिए फिरते

रहने की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। वे इतने विरूप है कि सत्यभामा समझती है कि कोई मार डालने वाला पिशाच निश्चय ही आ कर खडा हो गया है।[39] फिर नारद सत्यभामा से अपमान का वदला लेने के लिए उसे भयभीत करने और शिला-तले दाव देने की वैसी ही कल्पनाएँ करते है जैसी धूमकेतु ने प्रद्युम्न-हरण पर की थी। सधारु ने यहाँ अन्य कवियो से भी नारद को हीनतर चित्रित किया है। इस प्रसग मे उनका आत्माभिमानी, क्रोधी, प्रतिशोधपरायण, दृढनिश्चयी और क्रिया-चतुर रूप प्रकट होता है किन्तु विमान-रचना प्रसग मे वे हास्यास्पद स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। सधि-विग्रह करना उनका चिरन्तन कार्य है। प्रद्युम्न की खोज उनकी रुक्मिणी के प्रति हितचिंता को सूचित करती है। किन्तु सधारु के नारद में धैर्य, शिष्टता साधुजनोचित शील और सभाषण कुशलता का भी अभाव है। वे हर अच्छी परिस्थिति मे भी हडबडी मे आते है। प्रद्युम्न-हरण पर दुखी अभागिनी रुक्मिणी जब 'पेट का दाह' देकर चले जाने वाले पुत्र की खोज करने के लिए कहती है तो नारद एक पल भी उसके आँसू पोंछे बिना तत्काल हँसकर (?) कहते है कि प्रद्युम्न को धि लेने के लिए मैं अभी चला। स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी या आकाश मे जहाँ भी कहीं वह होगा वही से उसे ले आऊँगा। नारद यहाँ दभी और जल्दबाज दीखते हैं। हम देख आये है कि पूर्ववर्ती कवियो ने इस स्थल का कितना सधा हुआ चित्रण किया है। कवि सधारु को मानव-प्रकृति का ज्ञान नही है। वे चरित्र-व्यजक नाजुक परिस्थितियो को सँभाल नही पाते।

नारद के अतिरिक्त जो अन्य पुरुष पात्र है उनका चरित्र और भी कम व्यक्त हुआ है। शिशुपाल क्रोधी, जिद्दी, व्यगपूर्ण, कटुवचनभाषी किन्तु दर्पयुक्त वीर के रूप मे चित्रित हुआ है। कालसवर का चरित्र उपेक्षित रह गया है। न तो प्रद्युम्न की प्राप्ति के समय उसके उल्लास का वर्णन है, न प्रद्युम्न द्वारा सिहरथ-विजय पर उसके हर्ष का चित्रण हुआ है। यौवराज्य पद की सूचना मात्र से कवि ने इस प्रसग की भी इतिश्री कर दी है। कनकमाला के त्रिया-चरित्र पर वह तुरन्त विश्वास कर लेता है। स्त्री-चरित्र के ज्ञान तथा चातुर्य और राजोचित बुद्धिमत्ता का उसमे अभाव है। अन्त में कनकमाला के त्रिया-चरित्र का भेद प्रकट होने पर वह स्त्री मात्र को कोसता हुआ स्त्री के कपट कुटिल चरित्र के दृष्टान्त देता है। यहाँ, वस्तुत कालसवर के मुख से उस युग का सामान्य पुसत्वहीन शोकाकुल पुरुष ही बोल रहा है जिसकी स्त्री-चरित्र के प्रति धारणा शुकरभा सवाद जैसी कथाओ के अध्ययन से निर्मित या सस्कारित हुई थी। किन्तु कालसवर क्षमाशील भी है। पत्नी के विश्वासघात पर भी वह उसे उसका दोष न मान कर पूर्वकर्मो का फल मान सतोष धारण कर लेता है। पराजित सिहरथ को बंधनमुक्त कर उसे सम्मान-पूर्वक दुपट्टे से अलकृत कर गले मिलने मे भी यही क्षमाशीलता कार्यरत होती है।[40] किन्तु वह वाक्पटु और व्यवहार-पटु नहीं है। प्रद्युम्न विवाह के समय

कृष्ण-रुक्मिणी का आतिथ्य-सत्कार और कृतज्ञता पाकर भी वह प्रत्युत्तर म शिष्टाचारवश भी कुछ नही कहता। रूपचद (रुक्मी) को वैष्णपुराणकारो ने एक अधिकार-प्रिय युवराज और भ्राता तथा वशाभिमानी दृढवती वीर के रूप मे चित्रित किया है जो कृष्ण द्वारा पराजय के अपमान से दु खित हो कुण्डनपुर न लौटकर भोजकट नगर बसा लेता है। जैन पुराणो तथा प्रबध काव्यो म उसका चरित्र धूमिल हो गया है। फिर भी महासेन और सिद्ध कवि ने रुक्मिणी द्वारा कृष्ण से उसके प्राणो की याचना का वर्णन किया है जिससे भाई के प्रति बहिन के वात्सल्य की अभिव्यक्ति हुई है। सधारु ने उसे इस सौभाग्य से भी वचित कर दिया है। रूपचद से युद्ध की समाप्ति पर कृष्ण अचानक उससे गले मिल कर अपने नगर को प्रस्थान कर जाते हैं। वैदर्भी प्रसग मे उसका वशरक्ताभिमानी रूप प्रकट हुआ है।[41] प्रद्युम्न से युद्ध मे उसका वीरत्व व्यक्त नही हो सका है। भानजा आसानी से अपने मामा के गले मे पाँव रख कर उसे बाध लेता है और कृष्ण द्वारा उसे बधनमुक्त करने पर उस पर हँसकर उसे गोद मे उठा लेता है। रूपचंद बेचारा नारायण के दर्शन-लाभ के प्रति विवश कृतज्ञता प्रकट कर मौन रह जाता है और बहिन द्वारा सत्कार पाते ही प्रसन्न हो प्रद्युम्न से विवाह के लिए अपनी कन्या दे देता है।[42]

स्त्री-पात्रो मे रुक्मिणी और सत्यभामा के चरित्र सुपरिचित परम्परागत सूत्रो से ही बुने गये है। कृष्ण-शिशुपाल युद्ध मे रुक्मिणी कृष्ण के शौर्य के प्रति शकालु है। प्रद्युम्न-हरण पर रुक्मिणी के विरह-व्याकुल वत्सल हृदय का चित्रण नही हो पाया है। कवि ने इस करुण सवेदनापूर्ण प्रसग के प्रति निष्करुणता बरती है। यहाँ रुक्मिणी पुत्र-वियोगिनी माता की अपेक्षा पाप-पुण्य चेतना वाली श्राविका के रूप मे अधिक चित्रित हुई है। गुणभद्र ने पुत्रवियोगिनी रुक्मिणी के विरह का सुन्दर भावपूर्ण आलकारिक चित्रण करते हुए दावानल से दग्ध कमवल्लरी, नीर-रहित वापी और वज्राहत लता कहा है।[43] महासेन ने तो पुत्र-वियोग विह्वला रुक्मिणी का अत्यत कलात्मक, मनोवैज्ञानिक और करुणारमपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है जो इस श्रृखला की सुन्दरतम कडी है। सिद्ध कवि ने भी वियोगिनी रुक्मिणी के शोक की उत्कृष्ट व्यजना की है जिस पर महासेन का प्रभाव स्पष्ट है। जिनसेनाचार्य ने अवश्य इसे पश्चात्ताप से दग्ध वर्णित किया है कि पूर्वजन्म मे मैने किसी स्त्री को पुत्र से वियुक्त किया होगा अन्यथा यह कुफल नही प्राप्त होता।[44] किन्तु सधारु ने प्रद्युम्न कथा मे पहली बार रुक्मिणी द्वारा पुरुप को स्त्री से वियुक्त करने वन मे आग लगाने, नमक तेल घी चुराने आदि पूर्व पापो का अनुचितन करते हुए व्यक्त किया है। जिनसेन के सूत्र को सधारु ने पुष्ट किया है तथा अनेक परवर्ती कवियो ने रुक्मिणी के पूर्वकृत चितित पापो की सूची तीस से भी अधिक बढा दी है।[45] इस प्रकार एक ओर पुत्रवियोगिनी रुक्मिणी के शोक-वर्णन की महासेनशैली का प्रभाव

सिद्ध तथा सोमकीर्ति सदृश कवियों[16] पर पड़ा है तो दूसरी ओर पापानुतापग्रस्त रुक्मिणी के पश्चात्ताप-वर्णन की सुधारु शैली का प्रभाव भी भट्टारक श्रीभूषण जैसे परवर्ती कवियो पर स्पष्ट है। संस्कृत परम्परा के प्रभाव ने जहाँ भाव-चित्रण को प्रमुखता प्रदान कर काव्यमयता को जीवित रखा वहाँ उसके अभाव ने काव्य पर मतवाद को प्रतिष्ठित कर दिया। काव्य-तत्त्व की दृष्टि से यह अपूरणीय क्षति है सत्यभामा का चरित्र सपत्नी-ईर्ष्या, वाक्-चातुर्य, प्रतिस्पर्धा, अधिकार-भावना, दृढ इच्छा-शक्ति, प्रसगोचित व्यवहार-कुशलता आदि तत्त्वो से परिपूर्ण है।

रुक्मिणी और सत्यभामा का पारस्परिक सपत्नी भाव इन दोनो राजसी महिलाओ के चरित्र का प्रकाशक है। अन्तर यही है कि इस सदर्भ मे रुक्मिणी भाग्यशालिनी, सहिष्णु और पतिप्रेम की अधिकारिणी होते हुए भी विनम्र आदर्श महिला के रूप मे चित्रित हुई है जब कि सत्यभामा सपत्नी ईर्ष्या से दग्ध, फिर भी स्वाधिकार प्राप्ति के प्रयत्नो मे अग्रसर किन्तु वचिता और उपहसिता नारी के रूप मे प्रस्तुत होती है। प्रद्युम्न-कथा के सदर्भ मे इन दोनो कृष्ण-पत्नियो का सपत्नी-दाह वैष्णव पुराणो मे वर्णित नही है। हाँ, अन्यत्र पारिजात-हरण प्रकरण मे सपत्नी-दाह के अकुर वैष्णव परम्परा की भूमिका मे अवश्य है। हरिवशपर्व के अनुसार, कृष्ण द्वारा पारिजात-पुष्प रुक्मिणी को देने पर नारद रुक्मिणी की जान बूझ कर बढा कर प्रशसा करते है जिसे सत्यभामा की दासियाँ सुन कर उसे उकसाती है। अन्य रानियाँ तो रुक्मिणी के ज्येष्ठ पुत्र के मातृत्व और अग्र महिषीत्व को शिरसा स्वीकार कर लेती है किंतु श्रीकृष्ण की नित्यप्रिया तुरन्त ईर्ष्या के वशीभूत हो गयी और कुकुम वसन उतार शुक्ल वसन धारण कर अति इधन मे दीप्त अग्निशिखा सी प्रज्वलित हो उठी। सजल मेघ की ओट मे विलीयमान तडित सी वे एकान्त कोप भवन मे प्रविष्ट हो गयी। उन्होने प्रिय के प्रति रोषसूचक चिन्ह रूप मे ललाट पर श्वेत पट्ट बाँध लिया और गीला रक्त चन्दन भाल-सीमात पर पोत लिया। दीर्घ नि श्वास लेती हुई वे हाथ के लीलाकमल को नोचने लगी।[47] वैष्णव पुराणोक्त इस सपत्नी डाह के अकुर को ही जैन पुराणकारो तथा प्रबन्धकारो ने प्रद्युम्न-कथा-भूमि मे आरोपित कर और अधिक पुष्पित-पल्लवित कर लिया। किन्तु रुक्मिणी का चरित्र एकान्तत उदात्त भी नही है। प्रद्युम्न-रति विवाह के अवसर पर रुक्मिणी के ईर्ष्याभाव का ज्वलत रूप कवि ने प्रस्तुत किया है। वह हठपूर्वक कहती है कि तीनो लोक भी यदि मना करें तो भी मै सत्यभामा के केश उतरवा कर ही रहूँगी तथा पैरो तले मलूँगी। तभी प्रद्युम्न विवाह करने जाएगा।[48] यहाँ सधारु पर सिद्ध कवि का प्रभाव स्पष्ट है। अन्तर यह है कि रुक्मिणी का हठ और भी उग्र है। कनकमाला के चरित्र मे कोई नवीनता नही है। कवि सधारु कनकमाला के रूप और प्रद्युम्न के प्रति उसकी कामविह्वलता का अपने पूर्ववर्ती कवियो के जैसा आकर्षक सुन्दर चित्रण प्रस्तुत नही कर सके है।

कवि ने परम्परा से हट कर स्त्री पात्रो को एक अतिरिक्त भूमिका प्रदान की है। महिलाएँ ही शिशुपाल को रुक्मिणी-हरण की सूचना देती है और उदधि-हरण के अभिलाषी प्रद्युम्न से भी दुर्योधन पक्ष की महिलाएँ ही वार्तालाप करती है। न जाने कौरव सेना के अन्य सैनिक सैन्याध्यक्ष इत्यादि कहाँ चले गये ?[49] दूसरी ओर प्रद्युम्न-काव्य-परम्परा मे पहली वार कवि ने भवान्तर वर्णन के वोझ से कृति को उवार कर चरित्र-सृष्टि के झाड-झंझाड मे बचा लिया है। तथापि इस क्रम मे मधुचद्राभा तथा कनकरथ जैसे सवेदनशील पात्रो के चरित्राकण से भी कवि वचित रह गया है। फिर भी, यह कवि का अभिनव और एकाकी प्रयोग है। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे पाण्डव वीरो की अवतारणा भी उसका ऐसा ही प्रयोग है।

6. सवाद–योजना

सवाद-योजना की दृष्टि से यह एक समर्थ कृति है, यद्यपि इसमे सवाद-स्थल अपेक्षाकृत कम है। भवान्तर-वर्णन के निराकरण के कारण अनेक सुन्दर सवाद-स्थलो का अभाव हो गया है तथापि जो भी गिने-चुने स्थल है उनमे सवाद-योजना स्वाभाविक, प्रसग-पात्रानुकूल और कलात्मक है। कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के वनदेवी रूप से सत्यभामा को छकाने के प्रसग मे आयोजित सवादो पर सिद्ध कवि का प्रभाव स्पष्ट है।[50] अन्तर यही है कि जहाँ सिद्ध कृत सवाद मे अधिक वाचालता, आत्मीयता, और स्वच्छन्दता है वहाँ सधारु ने सक्षेप से काम लिया है। किंतु सिंहरथ-प्रद्युम्न युद्ध प्रसग मे राजा द्वारा प्रद्युम्न को युद्ध के भेदो से अनभिज्ञ वालक कहने पर प्रत्युत्तर मे प्रद्युम्न वीरजनोचित ओज व्यक्त करता है 'वाल–सूर्य आकाश मे होता है। उससे कौन युद्ध कर सकता है ? वालसर्प के दश-विप को दूर करने के लिए मणि-मत्र नही है। सिंहनी वालसिंह को जनती है जो हाथियो के झुण्ड के लिए काल के समान होता है। आग की एक चिनगारी ही रौद्र रूप धारण कर पृथ्वी को भी जला डालती है। वैसे ही, मै वालक होते हुए भी राज-पुत्र हूँ। शत्रुओ के दल का डट कर विनाश करूँगा।' उदधि-हरण प्रसग मे भील-वेशी प्रद्युम्न का दुर्योधन-पक्ष की महिलाओ से वार्तालाप भी रोचक है। कवि ने महिलाओ से वार्तालाप की योजना इसलिए की है कि शायद उसके युग मे कन्या-पक्ष की ओर से महिलाएँ भी सपरिवार कन्या सहित वर-पक्ष के यहा कन्या का विवाह रचाने जाती थी। दुर्योधन तथा उसकी समस्त सेना के व्यवधान के विना भीलवेशी प्रद्युम्न की गति वहाँ कैसे हो गयी, इस अस्वाभाविकता को छोड कर यह सवाद अन्य दृष्टियो से सफल है। इसमे उत्तर-प्रत्युत्तर सटीक, सार्थक और अवसरोचित है। वृद्ध अश्व–व्यापारी–वेषी प्रद्युम्न का भानु से सवाद भी पर्याप्त मनोवैज्ञानिकता लिए हुए है।[51] लज्जा-निमग्न भानु को इस स्थिति से उवारने के लिए हलधर का हस्तक्षेप मनोवैज्ञानिक और परिस्थितिगत सदर्भ की दृष्टि से उचित ही है। ऐसी ही मौलिक सूझ–वूझ का परिचय कवि ने क्षुल्लकवेषी प्रद्युम्न और रुक्मिणी के सवाद मे दिया है। जब रुक्मिणी उससे परिचय जानना चाहती है तो

वह उत्तर देता है— बाह्य गुरु को जानने से क्या होगा ? गोत्र और नाम तो उससे पूछा जाता है जिसका विवाह-मगल होने वाला है । हम परदेशी भिक्षा माँग कर भोजन करते है । तू प्रसन्न होकर हमे क्या दे देगी और रूठ जाने पर हमारा क्या ले लेगी ?[52] यहाँ प्रसग के अनुकूल ही कवि ने कृत्रिम क्रोध, भर्त्सना, व्यग्य और परिहास इत्यादि अनेक सूक्ष्म मनोभावनाओ की अभिव्यक्ति की है । रुक्मिणी-हरण के पश्चात् यादव पक्ष के प्रत्येक वीर को ललकारते हुए प्रद्युम्न जिन शब्दो मे युद्ध के लिए उनका आह्वान करता है वे पात्रो को उत्तेजित कर प्रतिक्रियास्वरूप कथा-व्यापार को गति देने की सामर्थ्य रखते है । प्रद्युम्न कृष्ण तथा अर्जुन के पूर्व पराक्रमो का स्मरण कराते हुए, भीम को उसके भोजनभट्ट होने के उपहास से उत्तेजित करते हुए, सहदेव के ज्योतिष-ज्ञान पर व्यग्य कर वचन दग्ध करते हुए, नारायण तथा हलधर को रुक्मिणी का छलपूर्वक हरण करने के आरोप द्वारा प्रताडित करते हुए तथा अन्यान्य वीरो के भी मर्मस्थलो को छू कर उन्हे क्रुद्ध करते हुए युद्ध के लिए ललकारता है ।[53] प्रद्युम्न काव्य-परम्परा मे प्रथम वार इस संदर्भ मे सशक्त सवाद-योजना का श्रेय उसी को है । कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे पराजय हाथ लगने पर भी कृष्ण प्रद्युम्न को अभयदान देने का चतुर कूटनीतिक प्रस्ताव रखते हुए अपने सम्मान की रक्षा और अपनी स्थिति को दृढ करने का प्रयत्न करते हैं । ऐसी जटिल स्थिति मे इतने विषम और सश्लिष्ट भावो का कवि ने गिने-चुने शब्दो मे सफल चित्रण किया है । किंतु प्रद्युम्न इस शब्द-जाल मे नही आता । वह उपहास और तिरस्कार पूर्वक, कृष्ण के इस कूटनीतिक प्रस्ताव की धज्जिया उडा देता है । कृष्ण को छेडते हुए वह फिर उन्हे उकसाता है— 'आपका गुरु कौन था यह मुझे भी वताइए । क्या इसी पराक्रम से राज्य सुख भोग रहे थे ? आपने जरासध और कन्स को मारा यही विस्मय है ।'[54] किंतु कुछ स्थलो पर सवाद असुन्दर और अस्वाभाविक भी हो गये है । उदाहरण के लिए सधारु ने रुक्मिणी-हरण प्रसग मे कृष्ण को पहचानने के उद्देश्य से अभिज्ञान के रूप मे सप्त-तालभेदन की योजना की है जिससे अन्य कवियो जैसी मनोवैज्ञानिकता का इस सवाद मे अभाव हो गया है । सधारु की एक कमी यह भी है कि उसने मधु-चद्राभा, प्रद्युम्न-कनकमाला जैसे सवादो की योजना का सुअवसर खो दिया है । फिर भी कवि ने कथात्वराशील कृति मे शौर्य, वात्सल्य, करुणा आदि भावो के व्यजक उत्कृष्ट सवाद-स्थलो की योजना कर सवाद-कौशल का परिचय दिया है ।

(3) रस —

7. अलंकार—योजना तथा छंद—विधान

सधारु से पूर्ववर्ती कवियो ने शब्दालकारो के साथ ही अर्थालकारो का भी प्रयोग किया है किन्तु सधारु की रुचि अर्थालकारो की ओर है । अर्थालकारो मे सादृश्यमूलक अलकार कवि को विशेष प्रिय है । सर्वाधिक प्रयोग कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का, विशेषत वस्तूत्प्रेक्षा का, किया है ।[55] प्राय सभी प्रयोग उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा के ही है । फलोत्प्रेक्षा का भी प्रयोग

कुछ स्थलो पर है।[56] उत्प्रेक्षा के बाद दूसरा स्थान अतिशयोक्ति का है। इसके भेदो मे कवि ने असम्बन्धातिशयोक्ति का[57] और सम्बन्धातिशयोक्ति[58] का अधिक प्रयोग किया है। दृष्टान्त अलकार का भी कवि ने जमकर प्रयोग किया है।[59] इनके अतिरिक्त वाचक धर्मलुप्तोपमा,[60] अनन्वय[61] तथा व्यतिरेक[62] अलकार भी कवि द्वारा प्रयुक्त हुए है।

स्पष्ट है कि कवि ने सीमित सख्या मे ही अलकारो का प्रयोग किया है। उसमे मौलिकता नही है। या तो प्रचलित परम्परागत अप्रस्तुत-विधान का ही कवि ने अवलम्ब लिया है या फिर लोकोक्ति का आँचल पकडा है। कवि लक्षण ग्रथो का अभ्यासी और काव्य-शास्त्र-निष्णात प्रतीत नही होता।

छद-विधान की दृष्टि से 'परदवणु चरितु' की अपनी विशेषताएँ है। सधारु की रचना मे पहली बार सर्गबद्धता या सधिबद्धता की परम्परा से हटकर सारी कृति को मुख्यत 'चौपाई' छद मे निबद्ध करते हुए तथा चौपाई के मध्य 'वस्तु' या रड्डा' का पुट देते हुए, बिना सर्ग या सधि मे विभाजन के, एक ही अविच्छिन्न प्रबन्ध-प्रवाहात्मकता मे कथा को गुम्फित किया गया है। हम इसे कडवक शैली मे निबद्ध रचना नही कह सकते। कडवक की छद-सख्या मे स्वतत्रता होते हुए भी एक सीमा का परिपालन कडवक शैली के प्रबध-काव्यो मे सर्वत्र दीख पडता है जबकि प्रस्तुत कृति मे यदि 'वस्तु' को घत्ता स्थानीय छद मान लिया जाए तो 'वस्तु' और वस्तु के बीच न्यूनतम 10 चउपइ छद से लगाकर अधिकतम 115 चउपड छदो का प्रयोग दीख पडता है। अत प्रचलित कडवक पक्ति-सख्या से नौ-दस गुनी पक्ति सख्या का प्रयोग होने के कारण तथा विषय का सधिबद्ध विभाजन न होने के कारण इसे कडवक शैली का काव्य स्वीकार नही किया जा सकता। दूसरी ओर हम इसे दोहा-चौपाई बध पद्धति की रचना भी नही कह सकते क्योकि न तो इसमे चौपाई छद का प्रयोग हुआ है, न दोहे का घत्ता ही दिया गया है। यद्यपि दोहा-चौपाई-बध पद्धति हिन्दी मे अपभ्र श की कडवक शैली के अनुकरण पर ही प्रचलित हुई है। चौपाई का विकास सभवत प्राकृत तथा अपभ्र श के 16 मात्रा वाले छदो के आधार पर हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अरिल्ल छद को चौपाई का पूर्व रूप मानते है। अपभ्र श के 'चउपइ' छद मे ही कालान्तर मे एक मात्रा की वृद्धि होकर सोलह मात्राओ का प्रयोग होने लगा और नाम मे भी एक मात्रा की वृद्धि होकर 'चौपाई' छन्द कहा जाने लगा। घत्ता देकर चौपाई को प्रबध-काव्य का वाहन कब से बनाया गया यह कहना कठिन है। पूर्वी प्रदेश के बौद्ध सिद्धो को दोहा-चौपाई-बंध पद्धति मे काव्य-रचना का श्रेय दिया जाता है।[63] फिर भी, जैन प्रबध-काव्य मे दोहा-चौपाई बन्ध शैली का उत्कर्ष और व्यापक प्रचलन विक्रम की 17वी सदी के प्रारभकालीन तथा 18वी शताब्दी के कवियो मे दीख पडता है।[64] 13वी सदी के प्रारम्भकालीन जैन

कवि विनयचन्द्र सूरि की 'नेमिनाथ चउपइ' मे चौपाई छन्द का प्रयोग न हो कर चउपइ छन्द का ही प्रयोग हुआ है। अत निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि जैन प्रबध-काव्य-परम्परा के सदर्भ मे सधारु कृत 'प्रद्युम्न चरित्र' छन्द-योजना की दृष्टि से कडवक शैली तथा दोहा-चौपाई-बन्ध शैली के बीच की कडी है तथा इस दृष्टि से इसकी छन्द-योजना का महत्त्व असदिग्ध है।

सधारु कृत प्रद्युम्न चरित मे प्रयुक्त विविध छन्दो तथा उनकी सख्या का विवरण इस प्रकार है.—

छन्द का नाम	प्रद्युम्न चरित (सधारु) मे प्रयुक्त क्रमाक	कुल योग	विशेष
(1) वस्तुबध	12, 36, 76, 127, 173, 183, 231, 265, 314, 429, 461, 474, 502, 611, 643, 659,	= 16	
(2) ध्रुवक	175, 267	= 2	
(3) गाथा	278 वी चौपाई के आगे	= 1	डॉ० क० च० कासलीवाल सपादित पुस्तक मे इसे क्रमाकित नही किया गया है। इसे सम्मिलित करने पर छन्द सख्या 701 के स्थान पर 702 हो जाती है।
(4) धवल	560–63	= 4	
(5) गरुवड	565	= 1	
(6) चौपाई	13–35, 37–75, 70–126, 128–172, 174, 176–182, 184–230, 232–264, 266, 268–278 (गाथा 1) 279–313 315-428, 430–	= 678	

460, 462–473, 475–
501 503–559, 561–
562, 564, 566–610,
612,–642, 644–658,
660–701,

इस प्रकार सधारु कृत 'परदमण चरित' (प्रद्युम्न-चरित्र) छह प्रकार के छदो का प्रयोग होते हुए भी मुख्यत चौपाई छन्द मे बद्ध प्रबन्ध-काव्य है जिसमे बीच-बीच मे बिना किसी निश्चित क्रम के, बहुत दूर-दूर पर 'वस्तु' या 'रडडा छन्द का धत्ता दिया गया है। इस कृति मे भी 'वस्तु' छद के रायसेनोक्त 'रड्डा' रूप का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है : किंतु 'वस्तु' छद के चरणो मे 'प्राकृत पैगलम' मे वर्णित मात्रा-क्रम का पूर्ण निर्वाह नही हो पाया है। इसके दो कारण है-एक तो यह कि प्राचीन पाण्डुलिपियो मे वर्तनी की शुद्धता या उच्चारण से उसके साम्य का ध्यान सामान्यत नही रखा गया है। मूल कृतिकार के हस्तलेख की पाण्डुलिपिया प्राय नही पायी जाती। उसके सौ पचास या उससे भी अधीक वर्षो बाद के अन्य लिपिकारो द्वारा लिखित होने से वर्तनी सम्बन्धी भूले और भी बढ गयी है। इसलिए कई छन्द-भग या मात्रा की घट-बढ सम्बन्धी भूले न होते हुए भी, भूले प्रतीत होती है। दूसरा कारण यह भी है कि वर्तनी और उच्चारण की ही भाति छन्द-प्रयोग मे भी नियमो के अनुशासन का अभाव और स्वच्छदता का व्यवहार उस युग की सामान्य प्रवृत्ति रही है। विभिन्न प्रतियो मे पाठ-भेद तथा वर्तना-भेद के कारण भी शब्द-रूप तथा उसकी मात्रा सख्या का विनिश्चयन कठिन हो जाता है। उदारहण के लिए 'परदमण चरित' मे प्रयुक्त प्रथम 'वस्तु' छन्द (स 12) को ही ले। जिस रूप मे यह छन्द लिपित है उसके अनुसार [65] इसके पाँचो चरणो मे मात्रा-क्रम 16,11,14,13,15 होता है जबकि पिंगल के अनुसार यह क्रम 15,12,15,11,15 होना चाहिए। किंतु प्रस्तुत 16,11, 14,13,15 का क्रम निश्चित और विश्वसनीय नही है क्यो कि 'जिणवरू' के स्थान पर उच्चारण की दृष्टि से 'जिणवर' या 'जिणवरु' चाहिए। 'ख' प्रति के पाठ-भेद से भी इसका समर्थन होता है। 'जिणवरु' पाठ से पिंगलोक्त 15 मात्राएँ भी सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार तीसरे चरण मे भी 'नेमिसरु' होना उचित है तथा गुणु के आगे 'गण' स्मृतिलोप से लिपिकारो द्वारा भुला दिये जाने की सभावना से इन्कार नही किया जा सकता। अत: यदि 'नेमिसरु गुण गण विलउ' पाठ हो जो अधिक उचित प्रतित होता है तो पिंगलोक्त 12 मात्राओ की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार यदि तीसरे चरण का पाठ प्रतिभेद के आधार पर 'सामण्णु सिवदेवि नदणु' मान लिया जाए तो पिंगलोक्त 15 मात्राओ का चरण ही बनता है। चौथे चरण मे भी प्रति भेद से 'वावी समुदय सहित' पाठ रखने पर पिंगलोक्त 11 मात्राओ की सगति

बैठ जाती है। इस प्रकार पूरा 'वस्तु' छन्द पिंगलोक्त नियम का निर्वाह करने लगता है। किन्तु पाठ-भेद या उच्चारण-साम्य से वर्तनी की सगति और शुद्धता के आधार पर पाठान्तर के उपरान्त भी मात्राक्रम सम्बन्धी नियमों का निर्वाह सर्वत्र नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ वस्तु छन्द (स 36) के तृतीय चरण में मुद्रित पाठ 'कोवानल पजलइ' (10 मात्रा) के स्थान पर पाठ भेद से 'कोवानल पज्जलइ' मान लेने पर भी 11 मात्राएँ ही चाहिएँ। ऐसे ही अनेक उदाहरण प्रचुर सख्या में दिये जा सकते हैं। अत निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि- (1) वैज्ञानिक विधि से इन प्राचीन कृतियों का पाठ-निर्धारण अत्यन्त आवश्यक है। (2) इस प्रकार के पाठ-निर्धारण से वर्तनी-उच्चारण साम्य तथा छन्द-सम्बन्धी नियमों की सहायता लिये जाने की भी अतीव आवश्यकता है। (3) शुद्ध-पाठ निर्धारण के बाद छन्द-नियम सम्बन्धी अनेक भूलें और भ्रान्तियाँ स्वत निरस्त हो जाएँगी और अधिकाश छन्द नियमबद्ध छन्द या उनके भेद ही सिद्ध होंगे। (4) फिर भी छन्द-सम्बन्धी विरल त्रुटियाँ अवशिष्ट रहेंगी जिन्हें छन्द-क्षेत्र में अपभ्र श-कालीन स्वच्छन्दता की सामान्य प्रवृत्ति के निदर्शन रूप में स्वीकार करना होगा। जो बात 'वस्तु' छन्द पर लागू होती है वही अन्य छन्दों पर भी। अत छन्द-प्रयोग सम्बन्धी शुद्ध निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए किसी भी प्राचीन कृति का वैज्ञानिक पाठ-सम्पादन आवश्यक है। फिर भी कुछ सामान्य निर्विवाद विशेषताओं की ओर इ गित करना अनुचित नहीं होगा। सधारु कृत 'पन्दमण चरित' के 'वस्तु' छन्दों के अन्त में प्रयुक्त अधिकाश दोहे 24 से लगाकर 32 लघुमात्रिक होने के कारण 'वैश्य' सज्ञक दोहे हैं। किंतु 'क्षत्रिय' दोहे का भी (स 265) प्रयोग दीख पड़ता है। पिगलकृत अन्य भेदों का प्राय अभाव है।[66]

(ii) ध्रुवक—सधारु ने 'ध्रुवक' के दो तथा 'गाहा' का एक छद प्रयुक्त किया है। सधारु के 'ध्रुवक' छद पर स्वयभू या हेमचंद का लक्षण घटित नहीं होता। सधारु प्रयुक्त 'ध्रुवक' (स० 175) 8, 8, 11, 8, 8, 12, 10, 8, 11, 10, 8, 11, मात्राक्रम वाला चतुष्पाद छद है जिसमें उपर्युक्त मात्रा विरामों पर अन्तर्वर्ती तुकान्तता का निर्वाह है। उसका सिंह कवि कृत चौदहवी सधि के प्रारम्भिक ध्रुवक से मात्राक्रम के कारण अ शत साम्य है। फिर भी, सधारु कृत 'ध्रुवक' चतुष्पाद हैं जब कि सिंह कृत ध्रुवक द्विपाद है।

(iii) गाथा—सधारु ने जो एक छद गाथा का प्रयुक्त किया है वह 'गाथा' या 'गाहा' के सर्वमान्य लक्षण की पूर्ति करता है क्यों कि उसमें कुल 57 मात्राएँ है, किन्तु यहाँ पूर्वार्द्ध में 30 तथा परार्द्ध में 27 मात्राओं का क्रम न रह कर क्रमश 29, 28; का क्रम है। सिंह कवि ने भी इसी मात्राक्रम की गाथा का प्रयोग किया है। यह मात्रा-क्रमान्तर गाथा के सामान्य लक्षण के अन्तर्गत ही स्वतत्र प्रयोग है न कि नदिताढ्य द्वारा प्रदर्शित कोई अवान्तर गाथा-भेद।

(iv) धवल—आचार्य हेमचद्र ने 'धवल' छद के अष्टपाद, षट्पाद तथा चतुष्पाद रूपो का उल्लेख करते हुए इसके श्रीधवल, यशोधवल भ्रमरधवल आदि कई भेदो का निरूपण किया है ।[67] सधारु कृत 'धवल' छदो का इनसे कोई साम्य नही है । सधारु कृत 'धवल' छद वस्तुत 'कुण्डलिया' छद ही है । कु डलिया, 'दोहा' और 'रोला' के मिश्रण से बना छद है जिसे 'प्राकृत पैंगलम' के शब्दो मे 'द्विभगी' छद कहा जा सकता है ।स्वयभू और हेमचद्र के यहाँ कु डलिया जैसे मिश्रित छद का अभाव है । कविदर्पण-कार ने अवश्य 'दोहा' और 'वस्तुवदनक' के मिश्रित छद का सकेत किया है किन्तु उसका नाम नही दिया है, डा० भोलाशकर व्यास का अनुमान है कि भट्ट कवियो के यहाँ ही यह छद विशेष रूप से प्रचलित रहा है और वे ही इसे 'कु डलिया' कहते थे । [68] कु डलिया छद के लक्षण 'प्राकृत पैंगलम'[69] और रत्नशेखर कृत छद कोश[70] मे वर्णित है । दोनो मे ही उल्लाला मे सयुक्त (उल्लालह सजुत्त) होना आवश्यक है । उल्लाला से अर्थ यहाँ इसी नाम के छद से न हो कर दोहे के प्रथम पद को रोला के अन्त मे तथा दोहे के चतुर्थ चरण की रोला के प्रथम चरण के रूप मे रखे जाने से है । इसी को डिंगल कवियो ने तथा भिखारीदास ने 'सिंहावलोकन' कहा है । सधारु प्रयुक्त 'धवल' छदो मे इस सिंहावलोकन' नियम का, प्रथम को छोड कर, शेष तीनो छदो मे निर्वाह हुआ है । प्रथम छद मे 'मयणु रवरू जब दीठउ' प्रथम चरण का अ तिम चरण 'नयण जउ कद्रप वयठउ' से पर्याप्त साम्य है तथा लिपिकार का स्मृति-लोप या लिपिपाठ भ्रम भी इस अ तर का कारण हो सकता है । अत· सधारु द्वारा प्रयुक्त 'धवल' छन्द वस्तुत 'कु डलिया' छन्द ही सिद्ध होता है । हेमचद्र द्वारा वर्णित 'भ्रमर छन्द' (भ्रमरधवल नामक छन्द) से निकटता के कारण इसे सभवत· धवल छन्द लिख दिया गया हो । फिर भी, कु डलिया के प्राचीन प्रयोग के नाते सधारु कृत इन धवल छन्दो का छन्दशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से निर्विवाद महत्त्व है ।

(v) गरुवड—सधारु ने एक ही 'गरुवड' छन्द (स० 565) का प्रयोग किया है । आचार्य हेमचद्र का 'गरुवड हद' नामक छन्द चतुष्कल की छह बार आवृत्ति के बाद पचकल की स्थिति ($4 \times 6 + 5 = 29$) के कारण 29 मात्राओ वाला समद्विपदी छन्द है ।[71] राजशेखर तथा स्वयभू ने छन्दशेखर मे भी यही परिभाषा दी है ।[72] किन्तु सधारु प्रयुक्त गरुवड छन्द षटपाद छन्द प्रतीत होता है । यद्यपि सम्पादित पुस्तक मे 5 ही चरण है तथापि इसमे चौथे चरण के लोप की सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता । उसके अतिरिक्त इसमे 29 के स्थान पर 28 मात्राएँ ही है और वे भी किंचित भिन्न क्रम अ र्थात् चतुष्कल की तीन बार आवृत्ति के बाद गुरु लघु (यति) फिर चतुष्कल की दो बार आवृत्ति के बाद पचकल ($4 \times 3 + SI + 4 \times 2 + 5 = 28$) की स्थिति है । अत सधारु कृत गरुवड छन्द हेमचद्र, स्वयभू आदि के द्वारा वर्णित 'गरुडपद' छन्द का ही नवीन सस्करण है ।

इसमे अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी के कवियो की छन्द-रचना विषयक स्वच्छन्दता सूचित होती है ।

चउपइ—सधारु ने इसी छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है । सधारु प्रयुक्त चउपइ छन्द सम चतुष्पादमात्रिक छन्द होते हुए भी 'प्राकृत पैंगलम' तथा 'छन्द-कोश' मे वर्णित मात्र चतुष्कल और अ त मे गुरु युक्त 30 मात्राओ वाला, 'चतुष्पदी' छन्द नही है जिसे 'चउपइआ' छन्द भी कहा गया है ।[73] वस्तुत यह अपभ्र श का प्रसिद्ध 15 मात्राओ वाला 'चउपइ' छन्द है जिसे रत्नशेखर सूरि ने 'लघु चतुष्पदी' या लघु चउप्पदी कहते हुए उसके प्रत्येक चरण मे 15 मात्राओ (अन्त मे पचकल) की स्थिति बताई है ।[74] सम्पूर्ण छन्द मे 60 मात्राओ वाला यह लहु चउपइया छन्द ही पन्द्रह मात्रीय 'चउपइ' छन्द के रूप मे प्रसिद्ध हुआ प्रतीत होता है । यो तो मध्यकालीन प्रवन्ध-काव्यो के प्रसिद्ध षोडशमात्रीय 'चौपाई' छन्द का सम्बन्ध अरिल्ल या 'अडिला' मे जोडा जाता है किन्तु वह उससे भी अधिक सरलता मे इस चौपई या 'लहु चउपइया' से सिद्ध हो जाता है । रत्नशेखर सूरि रचित 'छन्दकोश' का समय डा० वेलणकर द्वारा 14 वी शती का अन्त माना जाता है ।[75] अत उसके कुछ ही बाद (स० 1411 मे) रचित सधारु की इस कृति मे 'चौपई' का यह प्रयोग हिन्दी छन्दशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि छन्द-वैविध्य और प्रयोग-कौशल की दृष्टि से सधारु कृत प्रद्युम्न-चरित सिंह कृत 'पज्जुण्ण चरिउ' जैसी समृद्ध और समर्थ रचना नही होते हुए भी छन्द-परम्परा के विकास की कडी के रूप मे उसके छन्द-विधान के अध्ययन का महत्त्व असंदिग्ध है ।

8. भाव तथा रस-निरूपण

घटनाक्रम की त्वरा तथा कथानक की क्षिप्र सकीर्णता के कारण जिस कृति मे वस्तु-व्यापार-वर्णन के लिए पर्याप्त अवकाश नही हो, उसमे भाव-निरूपण और रससृष्टि के लिए स्थान कहाँ होगा ? किन्तु प्रबन्ध-काव्य की एक विधागत विशेषता यह भी है कि सरस और मार्मिक भावव्यजक स्थलो की कलात्मक उद्भावना के अभाव मे, मात्र पात्रो की परिस्थिति भी सहृदय श्रोता के हृदय मे भाव का उद्बोधन करा देती है । आचार्य रामचद्र शुक्ल ने इस प्रसग मे रामायण के स्वर्ण-मृग प्रसग का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह इतिवृत्त मात्र, सहृदयो के हृदय को उस दु खानुभव की ओर प्रवृत्त कर देता है जिसकी व्यञ्जना राम ने अपने विरह-वाक्यो मे की । विश्वनाथ ने भी कहा है कि 'रसवत्पद्यान्तर्गतनीरसपदानामिव पद्यरसेनप्रबन्धरसेनैव तेषा रसवत्ताङ्गीकारात् ।'[76] फिर भी काव्य की प्रबन्धात्मकता पात्र की परिस्थिति द्वारा भाव या रस के उद्बोधन के लिए भूमिका तैयार कर उसकी व्यजना और अनुमिति मे सहायक ही हो सकती है, कवि द्वारा उद्भावित कलात्मक

रस-सृष्टि का स्थान नही ले सकती। इनका अपना महत्त्व अवश्य है, विशेषत स्थायी भावो का, जिनकी स्थिति सचारियो की अपेक्षा रस के अधिक निकट है। जैसा कि डा० नगेन्द्र ने स्पष्ट और विशद विवेचन किया है, स्थायी भाव और सचारियो मे ठीक वैसा ही अन्तर है जैसा कि पाश्चात्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनोवृत्ति (सेण्टिमेण्ट) और मनोविकार (इमोशन) मे। तथापि 'स्थायी भाव' और मनोवृत्ति मे भी अन्तर स्पष्ट है। 'मनोवृत्ति' एक व्याप्त मन स्थिति मात्र है जिसके समग्र रूप का निरपेक्ष अनुभव कभी नही हो सकता। मनोवृत्ति के सचारी का ही आस्वादन हो सकता है, स्वय मनोवृत्ति का नही। उदाहरणार्थ, देश-भक्ति की मनोवृत्ति (सेण्टिमेण्ट) का आस्वादन कभी नही होता, उसके अगीभूत स्थायी या सचारी भाव 'उत्साह' अथवा 'धृति' आदि का ही आस्वादन होता है। परन्तु स्थायी भाव स्वय भी आस्वाद्य है। दूसरे, मनोविकार की सतत आवृत्ति मनोवृत्ति मे परिणत हो जाती है किंतु सचारी भाव की आवृत्ति से स्थायी भाव नही बन सकता। 'हर्ष' सचारी की बारम्बार आवृत्ति भी 'रति' मे परिणत नही हो सकती। तीसरे, मनोवृत्ति सदा अवधारणामूलक रहती है किंतु स्थायी भाव (शम को छोडकर) प्रवृत्तिमूलक होता है। अत मनोवृत्ति (सेण्टिमेण्ट) तथा मनोविकार (इमोशन) से पृथक् होते हुए भी 'स्थायी भाव' का अपना सुदृढ मनोवैज्ञानिक आधार है, जिसका अनुमोदन भले ही पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको द्वारा नही हुआ हो।

स्थायी भाव अन्य सभी प्रकार के मनोवेगो, मनोविकार, मनोवृत्ति, सचारी भाव, सवेग इत्यादि की अपेक्षा रस के सर्वाधिक निकट है इसमे सशय नही, क्योकि अन्य मनोविकारो की अपेक्षा अधिक स्थिर और पुष्ट होने के कारण रस मे परिणत होने की योग्यता इसी मे है। यह रस की आधारवस्तु है। काव्य-प्रक्रिया की दृष्टि से स्थायी-सचारी-भावादि एव रस मे वही अन्तर है जो कच्चे माल (रॉ मेटेरियल) और उत्पादित वस्तु (फिनिश्ड प्रोडक्ट) मे है। इसीलिए रस के निकट होते हुए भी 'स्थायी भाव' जनित आस्वाद और रस में उपलब्ध आनन्द के स्वरूप मे अन्तर है। शृगार रस के आस्वाद का अर्थ 'रति' का अनुभव नही है। और करुण रस का आस्वाद और शोक का अनुभव-ये दोनो एक ही वस्तु नही है।[77] यही कारण है कि विभावानुभावसचारिसयोग से अपुष्ट, रस की स्थिति तक न पहुँचे-'स्थायी भाव' के वर्णन को आचार्यो ने 'भाव' की सज्ञा दी है। सच तो यह है कि विभावानुभावादि यदि वर्णित न भी हो तो रसज्ञ सहृदय अपनी कल्पना से उन्हे अनुमित कर लेता है। अन्तर वाच्यता और व्यंग्यता का ही रह जाता है। इसलिए शास्त्रीय विधि मे रस-सिद्धि की कोटि तक न पहुँचे हुए स्थायी भावो के सूक्ष्म सश्लिष्ट मनोवैज्ञानिक वर्णन-स्थलो को भी कलात्मक और सरस ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

स्थायी भावो की उत्कृष्ट व्यंजना के कई स्थल इस कृति मे है। कालसंवर प्रद्युम्न को बालक जान कर सिंहरथ-विजय का गुरुतर कार्य सौंपने मे हिचक अनुभव करता है। इस अवसर पर प्रद्युम्न के मुख से निसृत उद्गारो मे कवि ने वीर रस के स्थायी भाव 'उत्साह' की रोचक अभिव्यक्ति की है। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध के समय प्रद्युम्न द्वारा वसुदेव, हलधर, कृष्ण तथा पाडवो को लक्ष्य कर कहे गये वचनो मे 'उत्साह' स्थायी भाव के अतिरिक्त 'ग्लानि', 'शका', 'मद', 'आवेग', 'गर्व', 'औत्सुक्य', 'स्मृति', 'धृति' इत्यादि सचारी भावो की सुचारु व्यजना हुई है।[78] यह विवेचनीय है कि इन वीर दर्पोक्तियो मे प्रमुख स्वर 'व्यग्य' का है। यही स्वर हास्यास्पद स्थलो मे, यथा वनदेवी प्रसग मे, कृष्ण-सत्यभामा सवाद मे, उदधि-हरण प्रसग मे, प्रद्युम्न महिलावर्ग सवाद मे, अश्व-व्यापारी प्रसग मे, प्रद्युम्न-भानु तथा प्रद्युम्न-हलधर सवाद मे, अति भोजन-प्रसग मे, विप्रवेशी प्रद्युम्न-सत्यभामा सवाद मे, क्षुल्लकवेशी प्रद्युम्न-रुक्मिणी सवाद मे भी व्यक्त हुआ है। वीर, हास्य और अद्भुत तीनो प्रकार के रसात्मक वर्णनो मे 'व्यग्य' का प्रयोग हुआ है। अत. 'व्यग्य' को सचारी भावो मे परिगणित किया जाना चाहिए ऐसा हमारा विनम्र सुझाव है। 'व्यग्य' मे भी अन्य सचारी भावो जैसी सचरणशीलता विलीयमानता और स्थायीभावपोषकता है। यह अभिव्यक्ति की एक शैली होने के अतिरिक्त मन की एक स्थिति भी है। अत इसके सचारी भाव होने मे कोई बाधा नही होनी चाहिए।

वीर रस और हास्य रस के अतिरिक्त अद्भुत रस के स्थायी भाव 'विस्मय' के व्यजक स्थल तो आद्योपान्त भरे पडे है। षोडशलाभप्राप्ति प्रसग मे तथा द्वारका मे किये गये समस्त अद्भुत कृत्य 'विस्मय' को जाग्रत करने वाले है। युद्धादि शौर्य प्रसग तथा प्रद्युम्न-हरण जैसे प्रसग भी अतिप्राकृत तत्त्वो के सन्निवेश और आकस्मिकता के कारण विस्मय-वर्द्धक है। अत 'विस्मय' स्थायी भाव तो रसज्ञ पाठक के हृदय मे इस कृति का आस्वादन करते हुए सदा उद्बुद्ध रहता है।

वीभत्स रस के स्थायी भाव जुगुप्सा को जाग्रत करने वाले स्थल भी युद्ध मे नष्ट सैन्य वाहनादि के वर्णन सम्बन्धी प्रसगो मे उपलब्ध हैं। डॉ० कासलीवाल ने वीभत्स, वीर, अद्भुत, वात्सल्य तथा करुण रसो की सिद्धि स्वीकार करते हुए अपने मतव्य के समर्थन मे उदाहरण प्रस्तुत किये है।[79] किंतु उनमे से अधिकाश मे शास्त्रीय कसौटी के आधार पर रस का पूर्ण परिपाक नही हो सका है। वे विश्वनाथ इत्यादि आचार्यो द्वारा प्रतिपादित 'भाव' ही है। जिसे वे 'करुणरस' का उदाहरण स्वीकार करते हैं वह वस्तुत 'विप्रलभ वात्सल्य' का ही उदाहरण है। 'करुण' और विप्रलभ वात्सल्य' मे अ तर का विवेचन पिछले अध्याय मे किया जा चुका है। डॉ० कासलीवाल द्वारा प्रस्तुत उदाहरणो मे, दो को छोडकर, शेष सभी उदाहरण 'रस' के न होकर 'भाव' के हैं। 'रस' के दो उदाहरणो मे से एक तो 'सयोग वात्सल्य' का और दूसरा, जिसे वे करुण रस का उदाहरण मानते हैं तथा

स्वय कवि भी 'रुक्मिणी कारणु (कारुण्य) करइ' कह कर करुण घोषित करता है, वस्तुत 'विप्रलभ वात्सल्य' का ही उदाहरण है। इन्हे यो निर्दिशित किया जा सकता है :—

(1) सयोग वात्सल्य रस[80] :—

आश्रय	रुक्मिणी
आलम्बन	प्रद्युम्न
उद्दीपन विभाव	प्रद्युम्न की बाल रूप मे चेष्टाएँ (खण लोटइ खण आलि कराइ, खण खण अ चल लागइ धाइ खण खण जेम्वणु मागइ सोइ ·· इत्यादि)
अनुभाव	सिर चूमना, कठ लगाना, गोदी मे लेना, (सिर चुम्मइ, आकउ लियउ, कठ लायउ) इत्यादि कायिक या आगिक अनुभाव, (दस मासइ जइउ परिउ, सहिए दु ख महत, वाला तुणह न दिठ,) आदि वाचक अनुभाव ।
सचारी भाव	हर्ष, स्मृति, दैन्य इत्यादि ।
स्थायी भाव	स्नेह (वहुवु मोह उपजावइ सोइ' से सूचित)

(2) विप्रलभ वात्सल्य रस[81] —

आश्रय	रुक्मिणी
आलम्बन	प्रद्युम्न
उद्दीपन	हरि और हलधर द्वारा सान्त्वना के वचन
अनुभाव	अश्रु आदि सात्विक अनुभाव (आसु वहुतन थाके नयण) तथा 'पूव्व जन्म मे कहिउ, की मइ पुरिष विछोही नारि' आदि वाचक अनुभाव ।
सचारी भाव	चिंता, वितर्क, स्मृति, इत्यादि ।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि 'रस' के शास्त्रीय दृष्टिसम्मत उदाहरण तो नगण्य हैं किंतु विभिन्न रसो के स्थायी तथा सचारी भावो के वर्णन प्रचुर हैं जो रस के सन्निकट, प्रकृष्ट या पुष्ट 'भाव' की स्थिति तक पहुँचे हुए हैं। ऐसे स्थलो की योजना कवि द्वारा इतिवृत्त-वर्णन की अपेक्षा सवाद-नियोजन मे और भी सुंदर हुई है। किंतु दो अभाव खटकते हैं—एक तो रसराज शृ गार सम्बन्धी चित्रण का प्रायः वहिष्कार है और दूसरा यह कि पूर्ववर्ती कवियो द्वारा वर्णित अनेक सुंदर सरस भावपूर्ण स्थल कवि द्वारा उपेक्षित हो गये हैं।

लगे हाथ यह भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा कि 'प्रद्युम्न चरित' का मुख्य रस कौन सा है ? डॉ० कासलीवाल का कहना है कि "प्रद्युम्न चरित वीरसात्मक काव्य है ।" अपनी स्थापना की पुष्टि मे वे तर्क देते है कि "काव्य का प्रथम सर्ग युद्ध वर्णन से प्रारंभ हो कर अन्तिम सर्ग भी युद्ध-वर्णन से ही समाप्त होता है। पाठक को प्राय- काव्य के प्रत्येक सर्ग मे युद्ध के दृश्य नजर आते हैं। किंतु आगे

विद्याओ और मायाओ का उल्लेख करते हुए उनका कहना है कि "विद्याओ के कारण यह काव्य अद्भुत रस से ओत-प्रोत है। इसलिए इसका मुख्य रस वीर होने पर भी वह अद्भुत मिश्रित है।" हम यही कहना चाहेगे कि प्रधान रस का निर्णय दो ही आधारो पर हो सकता है— (1) या तो काव्यगत उद्देश्य, फलागम और काव्य के पर्यवसान के स्वरूप के आधार पर अथवा (2) काव्य-कलेवर मे सर्वातिशयता या सर्वाधिक व्याप्ति के आधार पर। प्रथम को हम 'उद्दिष्टरस' और द्वितीय को 'अतिशायीरस' की सज्ञा से अभिहित कर सकते है। इन दोनो मे से भी अतिशायी रस को ही प्राथमिक प्रमुखता प्रदान की जानी चाहिए। तर्क के लिए कुछ भी कह लिया जाए किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जीवन का महत्त्व मृत्यु से अधिक है। व्याप्ति ही अधिकारत्व की द्योतक है, पर्यवसान तो उसके अन्त की ही सूचना देता है। काव्य मुख्यत सृजनात्मक विधा है अत इसमे सहार या उपसहार की अपेक्षा व्यापार (व्यापृति या व्याप्ति) को प्रमुखता दिया जाना ही सङ्गत और सगत है। इस कसौटी के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रद्युम्न-चरित का मुख्य रस 'अद्भुत' ही है। वीर रस तो विविध किन्तु विशिष्ट स्थलो पर ही है जब कि अद्भुत रस प्रद्युम्न-हरण से प्रद्युम्न-निर्वाण तक प्रत्येक कार्य व्यापार मे आद्योपान्त व्याप्त है। प्रद्युम्न के शौर्य-कलाप भी अधिकतर अलौकिक और अद्भुत है और उसके लौकिक शौर्य व्यापारो मे भी अलौकिकता का अभिनिवेश है। अत डॉ० कासलीवाल से असहमत होते हुए हम यही कहना चाहेगे कि 'प्रद्युम्न-चरित' शात रस की ओर उद्दिष्ट अद्भुतरसात्मक काव्य है जिसमे वीर रस, अद्भुत का निकटतम सहचारी है। सिद्ध कवि द्वारा अपने काव्य की प्रस्तावना मे उसे 'प्राणविहकोऊहलहिं भरिउ'[83] कहने से तथा पुष्पदन्त द्वारा प्रद्युम्न-कथा को 'विब्भमरस विसट्टु'[83] कहने मे भी हमारे ही मन्तव्य की पुष्टि होती है।

(ख) प्रद्युम्न-कथा . स्वरूप-विवेचन तथा महत्त्व .—

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि प्रद्युम्नचरित काव्यो को किस काव्य-विधा के अन्तर्गत रखा जाए ? इस विषय मे सबसे पहले कथा-रूप पर विचार करना उचित होगा। कथा-रूपो पर दो दृष्टियो से विचार किया गया है (1) स्वरूप और सगठन की दृष्टि से, तथा (2) वर्ण्य-विषय की दृष्टि से। प्राचीन भाषाओ के कथा-साहित्य पर विचार करते हुए आचार्यो ने कथानक के स्वरूप और सगठन के आधार पर कथा, आख्यायिका, आख्यान आदि शब्दो का प्रयोग किया है। भामह द्वारा वर्णित लक्षणो के अनुसार 'आख्यायिका' (1) गद्य के उच्छ्वासो मे विभक्त होती है (2) उसमें नायक द्वारा स्वचेष्टित का वर्णन होता है तथा (3) उसका वृत्तान्त भावी समृद्धि का सूचक होता है। इसके विपरीत कथा की विशेषताएं है— (1) विकल्पित कथानक (2) सस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रश भाषा (3) उच्छ्वासो मे विभाजन नही (4) नायक द्वारा अपना वर्णन स्वय न करना।[84]

9 आख्यायिका तथा कथा

भामह ने कथा के माध्यम का उल्लेख नही किया है। जब कि विश्वनाथ ने कथा के लिए भी गद्य पर जोर दिया है—कथाया सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।' किन्तु हेमचन्द्र ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि कथा गद्य और पद्य दोनो मे हो सकती है तथा आख्यायिका का नायक धीरोद्धत और कथा का धीरप्रशात होता है—

नायक-ख्यात-स्ववृत्ताभाव्यर्थशंसिवक्त्रादि सोच्छ्वासा सस्कृता गद्ययुक्ता-ख्यायिका। धीरशात नायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषाकथा[85]

आचार्य दण्डी ने उपलब्ध कथा-साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए अनुभव किया कि कथा-कृतियो मे उपर्युक्त विशेषताओ का पूरा निर्वाह सर्वत्र नही हो पाया है। इतना ही नही, दण्डी ने सूक्ष्म विश्लेषण से मौलिक प्रश्न उठाते हुए कहा—यदि वक्ता नायक हो अथवा और—तो भी इसके अन्तर क्या आ जाता है ? स्पष्ट ही यह मात्र स्थूल कथन-भेद है, शैली भेद नही। इसीलिए दण्डी को विवशतः कहना ही पड़ा कि 'कथा' और 'आख्यायिका' मात्र दो सज्ञाए है किन्तु इनकी जाति एक ही है।[86]

किन्तु फिर भी 'कथा' और 'आख्यायिका' को कथा-साहित्य की दो स्वतत्र विधाओ—के रूप मे स्वीकार करने का आग्रह बना ही रहा। अमरकोषकार ने 'आख्यायिकोपलब्धार्था' तथा 'प्रबन्ध-कल्पनाकथा' कहकर 'आख्यायिका' को वास्तविक कथा-वस्तु वाली रचना और 'कथा' को कल्पित कथा-वस्तुवाली रचना स्वीकार किया है। बाणरचित 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' क्रमश आख्यायिका और कथा के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण स्वीकार किए जाते है। वर्गीकरण की यह रुचि वर्द्धित ही होती गई। आचार्य हेमचन्द्र ने अन्य आख्यानजातियो यथा आख्यान, निदर्शन, प्रवाह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, उपकथा, तथा सकलकथा आदि का भेद-निरूपण करते हुए सकल-कथा का चिरतकथा के रूप मे उल्लेख किया है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का सुझाव है कि पुराने साहित्य मे 'कथा' शब्द का व्यवहार स्पष्ट रूप से दो अर्थो मे हुआ है। एक तो साधारण कहानी के अर्थ मे और दूसरा अलकृत काव्य-रूप के अर्थ मे। साधारण कहानी के अर्थ मे सुबहु (सुबधु) की वासवदत्ता, बाण की कादम्बरी, गुणाढ्य की बृहत्कथा आदि भी कथा हैं पचतत्र की कथाए भी कथा हैं, महाभारत और पुराण के आख्यान भी कथा है। परन्तु विशिष्ट अर्थ मे यह शब्द अलकृत गद्य-काव्य के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।[87] इस विषय मे एक अनुमान यह भी है कि 'आख्यायिका' नाम अत्यन्त कलापूर्ण होने के कारण बहुत आगे तक न चल सका; क्वचित् इसके स्थान पर 'चरित' शब्द का भी प्रयोग हुआ।' 'चरित' को आख्यायिका' के अनुरूप समझने का आग्रह करते हुए डॉ० कैलाशप्रकाश का कहना है कि 'पश्चिमी अपभ्रश जिन प्रबन्धकाव्यो से भरा है उनके

तीन भेद 'चरित', 'कथा' और 'पुराण' हैं। अपभ्रंश के पुराण, शैली में, संस्कृत पुराणों के समान ही हैं, और 'चरित' एवं 'कथा' को संस्कृत की 'आख्यायिका' एवं 'कथा' के समान समझना चाहिए।' किन्तु यह कथन साक्ष्य से प्रमाणित नहीं होता। विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि अपभ्रंश में लिखित जैन-पुराण संस्कृत शैली के पुराणों से भिन्न हैं और सभी चरित-काव्यों में 'आख्यायिका' के उल्लिखित सभी लक्षणों का नियमित पालन नहीं है। उदाहरण के तौर पर अधिकांश चरित-काव्यों में नायक द्वारा स्वचरित का वर्णन नहीं किया गया है जो कि आख्यायिका का एक मुख्य लक्षण स्वीकार किया गया है, आख्यायिका का माध्यम गद्य होता है जब कि 'चरित' अधिकतर पद्य में लिखे गए हैं। दूसरी ओर, चरित-काव्यों में कई लक्षण 'कथा' जाति के ग्रन्थों के भी मिलते हैं यथा कवि-कल्पित कथानक या उनका न्यूनाधिक समावेश, नायक द्वारा उल्लिखित न होना, संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश में से किसी भी भाषा में कृति का होना इत्यादि। इतना ही नहीं बहुत से छोटे-छोटे चरितसंज्ञक काव्यों में उच्छ्वासों में विभाजन न होने का लक्षण भी दीख पडता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि कहीं 'चरित' संज्ञक काव्यों में आख्यायिका के लक्षण दीख पड़ते हैं तो कहीं 'कथा' के, कहीं दोनों के सम्मिलित रूप से, कहीं दोनों विधाओं के लक्षण भी उन्हें बाँध नहीं पाते। सारांश. नियमों अथवा लक्षणों का कोई भी ऐसा सर्वमान्य विधान नहीं है जो चरित-काव्यों पर सर्वत्र एकरस लागू होता हो। अत चरितसंज्ञक काव्य किसी भी एक सुनिश्चित काव्य-विधा में असंदिग्धरूपेण परिगणित नहीं किए जा सकते।

इसीलिए उक्त लेखिका को आगे चलकर स्वीकार करना पड़ा है कि 'चरित' और 'कथा' का पारस्परिक अन्तर बहुत स्पष्ट नहीं है। कदाचित् व्यक्तियों के आश्रय से जो कथा लिखी जाती थी उसे 'चरित' (चरिउ) कहते थे जैसे 'पउमचरिउ', 'करकण्डुचरिउ' आदि। इसके विपरीत, दृष्टांत रूप में लिखी गई कथा 'कथा' (कहा) कहलाती थी जैसे 'भविसयत्त कहा' जो ज्ञानपचमी के व्रत का दृष्टांत बनाकर लिखी गई है।"

किन्तु यह कसौटी भी खरी नहीं है क्योंकि हम देखते हैं कि ऐसे चरित-संज्ञक काव्य भी लिखे गये जो व्यक्ति-आश्रित नहीं है जैसे 'कलिचरित' इत्यादि, और 'भविसयत्त कहा' में भी व्यक्ति का आश्रयत्व स्वीकार करना ही पड़ेगा। इसी दुविधा में लेखिका यह लिखने के लिए विवश है कि चरित, कथा, कहानी, उपन्यास, मगल आदि साहित्यरूपों के इतने शिथिल प्रयोग के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालना कठिन है। फिर भी लेखिका का आग्रह है कि 'चरित' काव्य-रूप संस्कृत की 'आख्यायिका' और अपभ्रंश के 'चरिउ' का ही रूप है। मध्ययुग में इसके कथानक के रूप में इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति या कल्पना-प्रसूत महापुरुष का जीवन ही आ सकता था।[88]

आनन्दवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेद किये है—(1) परिकथा—जिसमे इतिवृत्त मात्र हो, रसपरिपाक के लिए जिसमे विशेष स्थान नही हो। अभिनवगुप्त ने परिकथा मे वर्णनवैचित्र्ययुक्त अनेक वृत्तान्तो का समावेश किया है (2) सकलकथा—इसमे बीज से फलपर्यन्त तक की पूरी कथा रहती है। हेमचद्र ने सकलकथा को 'चरित' नाम दिया है और उदाहरण के रूप मे 'समरादित्यकथा' का उल्लेख किया है। (3) खण्डकथा—यह एकदेश प्रधान होती है। हेमचद्र को 'उपकथा' शब्द ग्राह्य है और वे उपकथा मे 'चरित' के अन्तर्गत किसी प्रसिद्ध कथान्तर के वर्णन की विद्यमानता आवश्यक मानते है।

10 कथा के भेद

यह कहा जा चुका है कि चरितकाव्यो पर कथा या आख्यायिका आदि विधाओ के लक्षण निरपवाद एव पूर्ण रूप से घटित नही होते। फिर भी यदि प्राचीन कथा-रूपो मे चरितकाव्यो की स्थिति कहाँ है यह स्पष्ट करना ही है तो उपर्युक्त लक्षणो के आधार पर सामान्यत प्रद्युम्न-चरित सज्ञक प्रबन्ध-काव्यो को 'सकल कथा' कहना ही अधिक उचित होगा। हेमचद्र ने भी 'चरित' को 'सकलकथा' के ही अन्तर्भुक्त किया है। डॉ० सत्येन्द्र की भी सम्मति है कि 'श्रीपालचरित' या 'प्रद्युम्न-चरित' इसी (सकलकथा) कोटि मे आ सकते है।[89] किंतु इसे नही भुला देना होगा कि सधारु-रचित 'प्रद्युम्नचरित' जैसी कृतियो मे परिकथा के मात्र इतिवृत्तात्मकता तथा रसपरिपाक का अभाव जैसे लक्षण भी घटित होते है।

यह तो हुई कथानक के स्वरूप और उसके सगठन की दृष्टि से कथा-रूप की बात। अब वर्ण्यविषय और उद्देश्यपरकता या प्रभावशीलता की दृष्टि से प्रद्युम्न-चरित काव्यो के कथा-रूप पर विमर्श कर लेना भी उचित होगा।

हरिभद्राचार्य ने, वर्ण्यविषय और अनुगूज (उद्देश्यपरकता या प्रभविष्णुता) की दृष्टि से, वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए, सामान्य कथा-साहित्य को चार रूपो मे विभाजित किया है—(1)अर्थकथा (2)धर्मकथा (3) कामकथा, और (4) संकीर्ण-कथा। हरिभद्राचार्य की दृष्टि मे सकीर्णकथा 'लोकद्वय 'सापेक्ष' और 'सत्त्वगुणयुक्त' होती है।[151] हरिभद्राचार्य की काम-कथा मे ही प्रेमकथा का अन्तर्भाव समझ लेना चाहिए क्योकि यह बात कुछ विचित्र रूप मे हमारे सामने आती है कि 'प्रेम' शब्द का ऐसा बहिष्कार भारतीयशास्त्र ने भी क्यो किया है? कथाओ के वर्गीकरण मे भी चतुर्वर्ग या त्रिवर्ग के आधार पर धर्मकथा, कामकथा और मोक्षकथाए तो मिलती है परन्तु प्रेमकथा का उल्लेख नही मिलता। इस विषय मे डॉ० सत्येन्द्र की धारणा है कि भारतीय दृष्टिकोण मे 'प्रेम' और 'काम' अभिन्न प्रतीत होते है। प्रेम की कल्पना काम के विना असभव है ऐसा समझा गया है।[91]

वस्तुत 'काम तथा 'प्रेम' मे विभेद करना अत्यत कठिन है क्यो कि दोनो ही शब्दो का विभिन्न अर्थान्तरो पर प्रयोग होता रहा है और इन दोनो के ही अर्थविस्तार की सीमा, व्याप्ति के दोनो ध्रुवो-सकोच और प्रसार की आत्यन्तिकताओ को छूती हुई है। 'कामस्तदग्रेसमवर्तताधि मनसोरेत प्रथम यदासीत्' मे 'काम' की विराट् सर्वातिशयी कल्पना की अभिव्यक्ति हम देख चुके है।

11. कथा मे काम तथा प्रेम तत्त्व

फ्रायड ने भी उसी विराट् और मौलिक काम को अपने विवेचन का आधार बना कर उसे वैज्ञानिक विश्लेषण का रूप दिया था। फ्रायड के अनुसार मनुष्य की समस्त इच्छाए काममूलक होती है।[92] यह मूल कामवासना ही दमित होकर भव्यता तथा सास्कारिक प्रक्रिया के कारण यौनत्वरहित 'प्रेम' मे परिणत हो जाती है। इस प्रकार वे यौनत्वरहित प्रेम का सभ्यताकारक 'कारण' के रूप मे महत्त्व स्वीकार करते हैं जिसका कार्य व्यक्ति को अहनिष्ठता (ईगोइज्म) से सर्वनिष्ठता (आल्ट्रुइज्म) की ओर लेजाना है।[93] किन्तु फ्रायड के आलोचक सुट्टी महोदय प्रेम का उद्भव कामवृत्ति की जीवशरीरी पृष्ठभूमि मे न मान कर मनुष्य की सामाजिकता मे मानते हैं क्यो कि उनकी दृष्टि से 'प्रेम' का उदय आत्मसरक्षक प्रेरणाओ से होता है, लैगिक बुभुक्षा से नही।[94] प्रेम के सम्बन्ध मे तीसरा अनिवादी दृष्टिकोण प्लेटो का है जो उसे यौन-आकर्षण से बिल्कुल पृथक् दो विपमलिगी व्यक्तियो का पारस्परिक सख्य मात्र मानते है।[95] इमरसन की दृष्टि मे प्रेम आत्मा का धर्म है जो व्यक्तिगत आरम्भ से चल कर विराटता की आत्मोपलब्धि मे अपनी परिणति पा लेता है। प्रेम की महत् स्थितियो मे शरीर आत्मामय और आत्मा पूर्णत शरीरमय हो जाती है।[96]

इन परिभाषाओ के विवेचन से दो ही निष्कर्ष निष्पन्न होते हैं-काम और प्रेम अविच्छेद्य रूप मे सम्बद्ध है और दोनो के अन्तर को तात्त्विक की अपेक्षा व्यावहारिक स्तर पर ही अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

12. काम-कथा तथा प्रेम-कथा

यही कारण है कि कामकथाओ और प्रेमकथाओ के अन्तर को स्पष्ट करना सरल नही है। कामकथाओ मे प्रेम की अनन्यता देखने को मिलती है और प्रेमकथाओ मे काम के प्रकृष्ट रूप का चित्रण दृष्टिगत होता है। नायक-नायिकाओ के सयोग ही क्या, सभोग तक के चित्रण दोनो प्रकार की कृतियो मे पाये जाने के पीछे भी यही तथ्य है। कामकथाओ की मूलप्रवृत्ति से प्रेमकथाएँ भिन्न नही है और कामकथाएँ प्रेम की उदात्तता का स्पर्श करने लगती हैं। वस्तुतः 'काम' को सर्वातिशायी तत्त्व मान लेने पर धर्म, अर्थ आदि चतुपुरुषार्थ इसके अन्तर्भुक्त कर लिये गये। इसीलिए एक ओर काममूलक व्यापारो और पुरुपार्थो को भी वीरत्व

मानते हुए कामकथाओं को वीर-कथा कहा गया और कामकथाओं की फलश्रुतिया भी मंगलकारी घोषित की गयी[97] तो दूसरी ओर चतुर्भुजदास ने मधुमालती जैसे प्रेमाख्यान को भी कामकथा ही नही, नीतिकथा और राजनीतिकथा तक बताया है।[98] इसी प्रकार धर्म कथाओं मे प्रेमकथात्मक तत्त्व पाये जाते है। प्राकृत काव्य 'वसुदेव हिण्डी' के लेखक ने आग्रह किया है कि धर्मगाथाओं को लिखने के लिए प्रेमकहानियो का उपयोग किया जाना चाहिए। 'कुवलयमाला' के लेखक उद्योतनसूरि ने भी यह विधान किया है कि कथा नवविवाहिता वधू के समान होनी चाहिए-आभूषणो (अलकारो) से शोभित, शुभ कल (सुन्दर तथा मात्रा) गति से चलने वाली, भावाभिभूत, कोमलकण्ठी तथा सतत अनुरजनकारिणी।[99] यो तो प्रेमकथा की धार्मिक उद्देश्यपरकता का आभास उर्वशी और पुरूरवा के वैदिक प्रेमाख्यान के शतपथ-ब्राह्मणीय रूप मे भी देखा जा सकता है जिसमे अग्नि पुरूरवा की इष्टसिद्धि मे सहायक होते है। किंतु प्रेमकथाओ की धर्म-परकता का अभ्युदय-काल पुराण-युग को ही मानना चाहिए। उसके बाद बौद्ध तथा जैन धर्मप्रचारको ने तो अपने प्रेमाख्यानो की रचना इस प्रकार की है कि उनके मत या सिद्धान्त को ही प्रधानता मिल जाती है और प्रेमकथा गौण हो जाती है जिसके कारण उन्हे विशुद्ध प्रेमाख्यान कहे जाने मे भी सन्देह होने लगता है। श्री परशुराम चतुर्वेदी को इसका कारण कदाचित यही प्रतीत होता है कि बौद्धो एव जैनियो के यहा प्रेमतत्व को उतना महत्त्व नही दिया जाता जितना यह सूफियो अथवा भक्तो के यहा उपलब्ध है।[100] हमने कामकथा की जैन विशेषताओ का विशद निरूपण करते समय ही स्पष्ट कर दिया है कि जैन मत मे काम से विरति और उस पर विजय का स्वर ही प्रमुख है द्रष्टव्य, लेखक का 'प्रद्युम्न. देवत्व एव व्यक्तित्व'। सूफी तथा जैन-बौद्ध शैलियो मे धर्म और काम तत्त्वो की योजना की दृष्टि मे पर्याप्त अन्तर है। सूफियो ने इश्कमजाजी को इश्कहकीकी की आधारशिला मानते हुए प्रेम के रम्य चित्रण के माध्यम से धार्मिक उद्देश्य को अधिक कलात्मक विधि से प्रतिफलित किया है जबकि बौद्ध-जैन शैली मे प्रचारात्मकता और उपदेशवृत्ति का स्वर विशेष मुखर है। फिर भी बौद्धजैन कवियो मे इस बात की समानता थी कि वे कथा का प्रयोग अपने धार्मिक सिद्धान्तो के प्रचार के लिए किया करते थे और वे प्राय इसे उपमिति कथा का रूप भी दिया करते थे।[101]

स्पष्ट है कि कथात्मक काव्यकृतियो मे काम, प्रेम, धर्म और मोक्ष आदि मानवीय श्रेय-प्रेय के स्वर घुले-मिले हुए है। जीवन की सर्वातिशायी वृत्ति होने के कारण प्रेम-व्यापारो को ही कथात्मक कृतियो के ढाँचे के रूप मे प्रयुक्त किया गया है। मोक्ष-लाभ और धर्म-विजय तो कथा-फल के रूप मे कथानक के अन्त मे सिद्ध होते दिखाये गये हैं अत विचारणीय प्रश्न यही रह जाता है कि विवेच्य प्रद्युम्न-चरित प्रेम कथा है अथवा वीर-कथा। प्रेम-कथा विवेचन मे प्रेम के व्यापकत्व और काम के अन्तर्भाव के कारण काम-कथा रूप तो स्वत विवेच्य हो जाता है।

पहले प्रेम-कथा को ही ले। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने प्रेमाख्यानो की जो विशेषताएँ गिनायी है उनमे से अनेक प्रद्युम्न-चरित पर घटित नही होती।[102] उदाहरणार्थ, न तो प्रद्युम्न-चरित का मुख्य इतिवृत्त प्रणय-कथा है, न प्रेमी-प्रेमिका मे परस्पर अटूट उत्कट आकर्षण और मिलन मे बाधाओ और प्रेम-पात्रो के त्याग और पीडा आदि का ही चित्रण हुआ है।

13. क्या 'प्रद्युम्नचरित' प्रेम-कथा है ?

प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे निबद्ध 'आनुषगिक' कथाओ यथा उषा-अनिरुद्ध प्रसग मे तो स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन के हेतु प्रयुक्त हुए है और नायिका की सखी ही प्रेम-घटक का कार्य सम्पन्न करती है तथा कृष्ण-रुक्मिणी प्रसग मे नारद रुक्मिणी का चित्रपट अकित कर कृष्ण के पास ले जाते है और ब्राह्मण या अन्य किसी दूत द्वारा सदेश प्रेषण का कार्य सम्पन्न होता है। नारद वहाँ प्रेम के घटक का कार्य करते है। किंतु मुख्य-कथा के नायक प्रद्युम्न का वैष्णव-पुराण परम्परा मे अपनी प्रणयिनी मायावती से मिलन, सयोग और पूर्वजन्म-सम्बन्ध के आधार पर ही होता है। प्रद्युम्न-कथा के जैन-रूपाकन मे तो मायावती-स्थानीय कनकमाला की भूमिका और चरित्र सृष्टि बिल्कुल परिवर्तित है। वहा पूर्वजन्म मे काम-रति के पुर्नजन्म की कल्पना अवश्य है किन्तु फिर भी मातृस्थानीय होने से प्रद्युम्न काममोहिता कनकमाला के प्रेम-प्रस्ताव को स्वीकृत नही कर पाता। अत प्रेम की भूमिका निर्मित ही नही हुई है क्योकि 'दोनो तरफ है आग बराबर लगी हुई' यहा दिखाई नही देती। कनकमाला काममोहिता कामासक्त नारी है। उसकी कामपूर्ति मे भी उदात्त मर्यादा की भावना बाधक हो जाती है। उच्छृखल काम-सम्बन्ध पर यहा मर्यादित परिवारव्यवस्था की विजय प्रदर्शित की गयी है। पूर्वजन्म की रूढि से प्रद्युम्न-मायावती मिलन प्रद्युम्न कथा के वैष्णव रूपाकन मे हुआ है। किन्तु उसमे भी प्रेम का परिपाक नही हो सका है। प्रेम-कथा के लिए आवश्यक त्याग, कष्ट-सहिष्णुता और उदात्त भूमिका का इस सदर्भ मे नितान्त अभाव है। प्रद्युम्न शम्बर-वध कर मायावती का अपहरण करते है। अत यह शुद्ध अर्थों मे प्रेम न हो कर 'राक्षस-विवाह' की परिभाषा मे ही आता है। प्रद्युम्न-चरित्र-काव्यो मे प्रद्युम्न के अन्य विवाह'रति' दुर्योधन-सुता 'उदधिमाला' और रुक्मी-पुत्री 'वैदर्भी' से सम्पन्न होते है। 'रति' की प्राप्ति प्रद्युम्न को अनायास ही साहसपूर्ण अभियानो के क्रम मे वसत विद्याधर द्वारा होती है। षोडशलाभो की भाति ही 'रति' भी एक पदार्थ-लाभ मात्र है। प्रेम-पात्री की भूमिका का गौरव उस बेचारी को प्राप्त नही हो पाया है। उदधिमाला प्रद्युम्न के लिए वाग्दत्ता थी किंतु प्रद्युम्न के अपहृत और लापता हो जाने के कारण उसके सौतेले भाई भानु के साथ विवाह-सम्बन्ध के लिए ले जायी जा रही थी। मार्ग मे प्रद्युम्न भील वेष मे उसका अपहरण कर लेता है। चकितभीत उदधिमाला नारद के समक्ष अपने दुर्भाग्य को कोसती है। तभी नारद की आज्ञा पर प्रद्युम्न अपने असली रूप और परिचय से उसे हर्ष-विभोर

और विस्मयमुग्ध करता है। अतः यहाँ भी अपहरण और आकस्मिकता के ही तत्त्व है। कृष्ण-रुक्मिणी, अर्जुन-सुभद्रा, उषा-अनिरुद्ध आदि प्रसगो मे अपहरण के लिए पूर्व-प्रणय की रजक पृष्ठभूमि अथवा कन्या की इच्छा के विरुद्ध विवाह से उसके त्राण की दृढ नैतिक पृष्ठभूमि मौजूद है। उषा–अनिरुद्ध कथा मे स्वनप्दर्शन ही नही स्वप्नरमण और फिर चित्रदर्शन द्वारा प्रेमभाव का परिपोषण है तो कृष्ण-रुक्मिणी कथा मे नारद यह कार्य करते है और अर्जुन-सुभद्रा के प्रसग मे कन्या की इच्छा ही प्रमुख है। इसीलिए कृष्ण वहा अपहरण कर्म के प्रोत्साहक प्रचारक की भूमिका मे भी आते है।

किंतु प्रद्युम्न के प्रणय–प्रसगो मे ऐसी किसी रोचक रजक भावनात्मकता की अथवा विवेकाश्रित नैतिकता की पृष्ठभूमि का अभाव है। जब कृष्ण-रुक्मिणी के सुदृढ नैतिक प्रणय को ही पुराणकार मनीषी 'राक्षस-विवाह' की सज्ञा देते है[102] तो फिर प्रद्युम्न के इस आचरण को 'धीरोदात्त' नायक के अनुकूल कैसे ठहराया जा सकता है ? प्रतीत होता है कि महाभारत-काल मे नीति-अनीति के सघर्ष मे अनीति का पलडा भारी होते हुए भी नीति का आग्रह बना हुआ था और उसका स्वर मुखरित था, इसीलिए महाभारतकार ने नीतिपक्ष की विजय प्रदर्शित की है किंतु परवर्ती-काल मे सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियो के प्रभाववश नीति तत्त्व उपेक्षित हो गया और शौर्यतत्त्व ही सर्वातिशायी हो गया जिसके फलस्वरूप नीति-निरपेक्ष शौर्य भी गुणानुवाद का विषय हो चला। प्रद्युम्न-चरित्र मे न तो अपने पिता (कृष्ण) के प्रेम-प्रसगो की सी नैतिकता ही दीख पडती है न अपने पुत्र (अनिरुद्ध) के प्रेम–व्यापार जैसी भावशबल कोमल रजकता ही। अनुरक्ति, आकर्षण, बाधाओ, राग की विभिन्न स्थितियो, प्रणय- भावनाओ की भगिमाओ और भूमिकाओ का भी यहा अभाव है। अत उदधिहरण भी प्रेम-प्रसग के रूप मे विकसित नही हो पाया है। प्रद्युम्न और वैदर्भी के मिलन मे भी प्रद्युम्न नट या डोम (चाण्डाल) वश मे साम्ब के साथ जाकर अपनी गायनकला से मुग्ध कर युद्ध मे पराक्रम प्रदर्शित कर वैदर्भी को जय-लाभ के रूप मे प्राप्त करते है। इस प्रसग मे भी प्रेम की रागात्मक पीठिका का निर्माण नही हो पाया है। वस्तुत प्रद्युम्न-चरित-काव्यो मे प्रद्युम्न के सारे वैवाहिक प्रसगो मे प्रणय-भावना न हो कर साहस या कौतुक की वृत्ति ही कार्यशील दीख पडती है। इसी की चरम परिणति तब होती है जब प्रद्युम्न (अथवा कही-कही साम्ब) भानु-विवाह के लिए आयी हुई कन्याओ को (जिनकी सख्या कही 100 तक जा पहुची है) एक ही रात्रि मे शौर्य-प्रदर्शन या मायावी कौशल से व्याह लेता है। अत प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे निबद्ध विवाह और अपहरण के प्रसगो मे नारी की पदार्थ (या भोग्या) के रूप मे प्राप्ति ही है। नायक के साहसिक अभियानो की एक उपलब्धि वह भी है जिसकी प्राप्ति मे पूर्वजन्म के सुकृत को भी श्रेय दिया गया है। स्पष्ट है कि शृगार के स्थायी भाव

'रति' की चेष्टाओं और तज्जन्य वृत्तियों के सचरण का अभाव होने से और शौर्य-धर्मी 'उत्साह' या कौतुक (विस्मय) की वृत्तियों के प्राधान्य के कारण ये वैवाहिक सम्बन्ध भी शृंगार रस की सृष्टि के उपलक्ष न बनकर 'वीर' या अद्भुत रस के परिपाक मे ही सहायक हुए है।

प्रद्युम्न-चरित काव्य-लेखकों के समक्ष पर्याप्त अवकाश और भूमि का अभाव नही था। यदि वे चाहते तो प्रद्युम्न-कथा के अनेक प्रसगो मे शृंगार रस का सचार कर सकते थे। उनके समक्ष 'पूर्वजन्म' और 'सयोग' पर आधारित सफल प्रेमकथाओं के निदर्शन भी प्रस्तुत थे। इस विषय मे प्राकृत मे लिखित प्रेम-कथाओं मे सर्वाधिक प्राचीन पादलिप्तसूरि कृत 'तरगवई' कथा का बरबस स्मरण हो आता है जिसका रचना-काल 5 वी सदी माना गया है[103] किंतु इसका मूलरूप आज उपलब्ध नही है। एक सक्षिप्त रूप 1000 वर्ष बाद का मिलता है। किंतु उस युग मे यह कथा-रूप लोकप्रचलित और सुलभ अवश्य रहा होगा। इसमें तरगवती नामक सौंदर्य के लिए प्रख्यात सेठ-कन्या एक दिन पुष्करिणी मे एक हस-मिथुन को देखकर मूर्च्छित हो जाती है। उसे स्मरण हो आता है कि पूर्वजन्म मे वह हसिनी थी। एक व्याध ने उसके हस को मार डाला था। अपने हस के साथ ही वह अग्नि मे जल मरी थी। अनेक कठिनाइयो को पार करने के बाद वह चित्र के सहारे से अपने पूर्व प्रियतम को प्राप्त करती है। बडी कठिनाई से डाकुओ द्वारा देवी के समक्ष बलि दिये जाने से वे बचते है। अ त मे पूर्वजन्म का व्याध, जो मुनि हो जाता है, उन्हे जैन धर्म की दीक्षा देता है। तरगवती-कथा मे सयोग, पूर्वजन्म सभी तत्त्व हैं। यह सही है कि जैन धर्म के प्रभाव से यहाँ भी प्रेम अ त मे वैराग्य मे परिणत हो जाता है। कवि का मुख्य लक्ष्य प्रेम की प्रतिष्ठा न होकर वैराग्य का उपदेश है किंतु काव्य के कथा-प्रवाह मे प्रेम की विविध परिस्थितियो के साथ-साथ प्रेम-पात्रों के बाह्य सघर्ष और आतरिक द्वन्द्व का, प्रेम की पीडा का चित्रण है और पूर्वजन्म की प्रीति नये जन्म मे भी फलीभूत होती है। अत प्रेम की अमरता भी इससे प्रतिपादित होती है। यह एक प्रकार से वैराग्योन्मुख प्रेम-कथा कही जा सकती है। किंतु प्रद्युम्न-चरित्र के सम्बन्ध मे यह बात लागू नही होती।

14 प्रेमाख्यानो के विविध वर्ग तथा प्रद्युम्न–चरित

डा० श्याममनोहर पाण्डेय ने प्रेमाख्यानो का, प्रवृत्तियो के आधार पर वर्गीकरण करते हुए (1) दाम्पत्य परक (2) काम परक (3) सतपरक तथा (4) अध्यात्म-परक–ये चार प्रकार के प्रेमाख्यानो के वर्ग स्वीकार किये है।[104]

दाम्पत्य-परक प्रेमाख्यानो 'ढोलामारू', 'बीसलदेवरास', 'लखमसेन पद्मावती कथा' आदि मे नायक प्रेमी और सवेदनशील है। एक से अधिक नायिकाओं से

विवाह उनके प्रेमी रूप को खण्डित नही करता । प्रेम का त्रिकोण अपने आकर्षण, वियोग और सयोग के त्रिविध पार्श्वों से अनेक भाव-रगो की व्यजना करता हुआ अ त मे मर्यादित पारिवारिकता के समकोणो मे व्यवस्थित हो जाता है । 'बीसलदेव रास' मे नायक के प्रेम का समुचित विकास न होने पर भी नायिका के एकनिष्ठ प्रेम की अमद लौ दाम्पत्यप्रेम की ज्योति विकीर्ण करती रहती है । किंतु प्रद्युम्न के दाम्पत्य-सम्बन्धो का, त्रिकोणात्मक द्वन्द्व और उसके समाहार का चित्रण ही नही हुआ है । इसी प्रकार कामपरक प्रेमाख्यानो—माधवानल कामकदला, मधुमालती, रसरतन, सारगीसदावृत्त आदि मे प्रेम का चित्रण है, एक से अधिक प्रणयिनिया है, प्रेमतत्त्व के अभिन्न अ ग के रूप मे 'काम' के महत्त्व की स्वीकृति है । 'छिताईवार्ता जैसे प्रेमाख्यानो मे तो नायक की पत्नियो की सख्या हजारो तक पहुचती है किंतु इन सबमे प्रेम की अनन्यता, तीव्रता, विरह की अनिर्वचनीय पीडा अदि के कारण काम तत्त्व की प्रेम मे परिणति या 'काम' पर प्रेम की विजय प्रदर्शित की गयी है जब कि प्रद्युम्न के काम-सम्बन्धो के चित्रण मे प्रेम के स्फुरण का नितान्त अभाव है ।

भारतीय विचारधारा मे 'काम' को मनस्तत्त्व और नैसर्गिक प्रवृत्ति मानते हुए उसे कला रूप मे अभिनंदित किया गया है । श्रीहर्ष के नैषध-चरित मे 'प्रेम' और 'काम' के सापेक्ष महत्त्व और अविच्छेद्य साहचर्य को मुक्तकंठ से स्वीकार किया गया है । श्रीहर्ष लिखते है कि 'महाराजा नल के विवेक, धैर्य आदि सद्गुण भी उनके मन से काम की चचलता का निवारण नही कर सके क्यो कि सृष्टि का यही धर्म है कि जहा पर प्रेम होता है वहा कामदेव इस प्रकार की चचलता उत्पन्न कर ही देता है ।[105] प्रेम मे 'काम' के सुखद अन्तर्भाव और साहचर्य की इसी भावना ने यहा काम के उन्मुक्त सम्भोग चित्रणो के लिए अवकाश प्रस्तुत किया । कुमारसभव' के आठवें सर्ग, 'नैषधचरित' के अठारहवें सर्ग तथा जयदेव के 'गीतगोविंद' ने सस्कृत मे कामशास्त्र के अनुसरण मे काम-सभोग चित्रणो की भूमि प्रस्तुत कर दी थी । भारतीय प्रेमाख्यानक काव्यो मे भी यही परम्परा अधिगृहीत हुई । 'छिताई वार्ता' 'माधवानल कामकदला' आदि प्रेमाख्यानो मे सभोग के गुह्यतम प्रसगो का चित्रण है फिर भी ये सभी प्रेम-काव्य है क्योकि इनमे प्रेम का तीव्र आकर्षण, बाधाए, कष्ट-सहिष्णुता, त्याग, निष्ठा और अनन्यता (कम से कम किसी एक पक्ष द्वारा) विरह की असह्य पीडा आदि का चित्रण है जो 'काम' को 'प्रेम' मे परिणत कर देते है । प्रेम मे सयोग (काम) और वियोग दोनो की तीव्रता अनिवार्य है । जायसी ने कहा है कि प्रेम मे विरह और रस दोनो हैं, जैसे मोम के छत्ते मे शहद और वर्र एकसाथ रहते है ।[106] प्रद्युम्न के प्रणय प्रसगो को लेकर आकर्षण और संयोग की तीव्र अनुभूतियो के रम्य मादक चित्र प्रस्तुत नही किये जा सके है । सयोग से भी अधिक प्रेम मे विरह का महत्त्व है । विरह की आच ही प्रेम के रग को प्रगाढ और अमिट करती है ।

जायसी ने व्यक्त किया है कि संसार में खड्ग की धार से भी तेज विरह की धार है।[107] सधन भी सृष्टि के मूल में विरह की सत्ता स्वीकार करते हुए कहते हैं कि विरह भी बिना पूर्व-पुण्य के उत्पन्न नहीं होता। जिसके घट में विरह है, वही अमर है।[108] हमारे चरित-नायक प्रद्युम्न के भाग्य में पूर्व-जन्म के दाम्पत्य सम्बन्ध लिखे हैं, नगर नारियों का प्रद्युम्न के रूप के प्रति आकर्षण भी लिखा है (जो लोकप्रिय रूपवान तो उसे बनाता है किन्तु किसी एक का अनन्य प्रेम पात्र नहीं) युद्ध प्रसंगों में 'खरग की धार' भी लिखी है किन्तु 'बिरह की धार' से वह वंचित ही रह जाता है, शायद पूर्व-पुण्य की कमी के कारण (जैसा कि सधन का सिद्धान्त है)। वस्तुस्थिति यह है कि प्रद्युम्न-चरित्र-लेखक कवियों की दृष्टि प्रद्युम्न द्वारा 'कन्यारत्नों' के अपहरण तक सीमित रह गयी। इसी अपराध के कारण प्रद्युम्न से उसका भाग्य रूठ गया और कवियों से उनकी सरस्वती कि कवियों की 'रसज्ञ वृत्ति' का अपहरण होने के कारण प्रद्युम्न के प्रेमी रूप का भी अपहरण हो गया। इसमें जैन धर्म का प्रभाव भी कारण रहा है किन्तु वह दुर्निवार बाधा नहीं है। सौन्दरानन्द' में प्रणय और वैराग्य दोनों का एकत्र सफल अंकन हुआ है जहां कि बौद्ध धर्म का प्रभाव है किंतु वह नायक के प्रणयी रूप में बाधक नहीं बना है।

प्रेम-काव्यों में नायक को योगी रूप में अलौकिक या आध्यात्मिक सिद्धि भी प्रेम के ही हेतु से प्राप्त होती है। जायसी के पद्मावत में महादेव शकर नायक रतनसेन को विरह-अश्रुओं से ही पापमुक्त और सिद्ध घोषित करते हैं।[109] किन्तु 'प्रद्युम्न-चरित' में प्रद्युम्न द्वारकानाथ की घोषणा पर संसार की नश्वरता के अनुभव और नेमि तीर्थंकर के सदुपदेश के कारण विरक्त होते हैं और तप द्वारा कैवल्य प्राप्त करते हैं।

15. जैन-प्रेमाख्यान परम्परा की विशेषता

प्राकृत तथा अपभ्रंश में रचित जैन प्रेमाख्यानों की यह सामान्य विशेषता है कि उनमें कवियों का उद्देश्य मुख्यतः जैन धर्म की महत्ता का उद्घोष ही रहा है। इसलिए इन प्रेमकथाओं यथा-'तरंगवई', 'लीलावई' (कौऊहलकृत, रचना-काल 8वीं शताब्दी)[110], 'मलयसुंदरी कथा' (अज्ञात कविकृत), 'भविसयत्त कहा' (धनपालरचित, रचना-काल 10वीं सदी[112]), 'णायकुमारचरिउ' (पुष्पदन्तकृत, रचनाकाल 966-968 ई० के मध्य)[112] 'सुदंसणचरिउ' (नयनदीकृत रचना-काल 1043 ई)[113] 'करकण्डु चरिउ' (मुनि कनकामरकृत, रचना-काल लगभग 1065 ई०)[114] में प्रेम का पर्यवसान प्राय सदा वैराग्य में ही होता है और नायक-नायिका जिन-मुनि की शरण में जाकर दीक्षा प्राप्त करते हैं। इन्हें शुद्ध प्रेमाख्यान नहीं कहा जा सकता। इनका लक्ष्य प्रेम को महत्त्व देना है ही नहीं। डा० पाण्डेय की धारणा उचित सिद्ध नहीं होती कि जैन प्रेम-कथाओं और चरित-काव्यों में "पूर्वजन्म की कथाएं प्रेम को जन्म-जन्म तक अमर

बताने की दृष्टि से लिखी गई है ।"[115] इन काव्यो का वास्तविक लक्ष्य पूर्वजन्म के प्रभाव, कर्मफल आदि का महत्त्व निरूपित कर वैराग्य की ओर उन्मुख करना ही है । प्रेमकथाओ को तो जैन-कवियो ने उनकी सरसता और लोकप्रियता के कारण धार्मिक कथ्य के माध्यम के रूप मे प्रयुक्त किया है । उन्होने अपने इस उद्देश्य को छिपाया भी नही है । पुष्पदन्त 'जसहरचरिउ' मे स्पष्ट कहते है कि मै धन और नारी की कथा कहने की अपेक्षा धर्म-निबद्ध कथा कहना उचित समझता हू"[116]

16. निष्कर्ष

स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे आये प्रद्युम्न के प्रणय-प्रसग प्रेम-कथात्मक नही है । प्रेम-वृत्ति के स्फुरण और चित्रण के नितान्त अभाव के कारग हम उन्हे दाम्पत्यपरक, कामपरक, सतपरक या अध्यात्मपरक-किसी भी वर्ग के प्रेमाख्यानो मे सम्मिलित नही कर सकते ।

प्रद्युम्न के कामदेवत्व का जैन प्रद्युम्नचरित काव्यो मे यत्र-तत्र स्फुट उल्लेख या प्रतीक-व्यजना होते हुए भी उसकी चरित्र-कथा मे कामदेव के अवतारत्व की चरितार्थता नही है । यही सामान्य जैन दृष्टिकोण है । कवि कुशललाभ ने भी 'माधवानलकामकदला' प्रबध मे ऐसा ही रूपान्तर किया है । कवि धनपाल ने स० 1454 मे रचित अपने 'बाहुबलिचरित' को 'कामचरिउ' कहा भी है, फिर भी इसमे 'काम' का न होकर वैराग्य का ही निरूपण रहा है । किन्तु इस सम्बन्ध मे एक बात यह भी द्रष्टव्य है कि प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे चरित-नायक प्रद्युम्न के प्रणय या विवाह प्रसगो मे प्रेम-तत्त्व का अभाव होते हुए भी कृष्ण-रुक्मिणी और उषा-अनिरुद्ध के दो गौण कथा-प्रसगो मे प्रेम का यत्किंचित रूप दीख पडता है । कृष्ण-रुक्मिणी प्रसग को आध्यात्मिक प्रेम-कथा की कोटि मे सिर्फ इसलिए नही रखा जा सकता कि इसके नायक कृष्ण भगवत् कोटि तक पहुचे हुए है । जैन परम्परा मे तो उन्हे भगवान न मान कर त्रेसठ-शलाकापुरुषो मे से एक तथा नवम नारायण माना गया है । प्रद्युम्न तो चरमशरीरी होने से उसी जन्म मे मोक्ष प्राप्त कर लेते है किंतु कृष्ण के भाग्य मे तो मृत्यु के बाद पहले नरक मे दु ख भोगना लिखा है।[117] अत भावना भी बाधक नही है ।) वस्तुत प्रेम के स्वरूप की परीक्षा के लिए किसी के पद प्रभाव या धार्मिक आरोप कल्पना की परवाह न करते हुए पात्र के प्रणय-व्यापारो और प्रणय-भावनाओ पर ही दृष्टि रखने से कृष्ण-रुक्मिणी का प्रेम दाम्पत्य-परक प्रेम ही सिद्ध होता है जिसमे नायक के बहुपत्नीवादी होते हुए भी प्रमुखत कृष्ण-रुक्मिणी-सत्यभामा का प्रेम-त्रिकोण ही प्रकृष्टता से उभरता है । इसमे रुक्मिणी धार्मिक, शालीन, पुण्यात्मा, महिमाशाली और भाग्यवती नारी के रूप मे चित्रित की गयी है जब कि सत्यभामा मानिनी, अधिकारप्रिय, सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु और अपने अधिकार के प्रति सचेष्ट होते हुए भी नायक मे अनुरक्त है और अपने अपमान और उपहास की उल्टी धृष्टताओ को भी अनुरागवश क्षमा करती है । वह व्यवहार-चतुर भी है और अपने ज्येष्ठा

होने के अधिकार को नहीं खोते हुए भी पति तथा सपत्नी से निर्वाह कर लेती है और पति को हाथ से नहीं जाने देती। उसकी प्रणय-स्पृहा व्यवहार-कौशल और औदार्य लिये हुए है। अत. यह प्रेम-प्रसग दाम्पत्यपरक ही कहा जाना चाहिए, आध्यात्मिक नही। इसमे आध्यात्मिक प्रेम-कथाओ, दुखहरनदासकृत 'पुहुपावती' या धरणीदासकृत 'प्रेमप्रगास' की भाँति आत्मा और ब्रह्म की मिलनसूचक आध्यात्मिक प्रतीक-योजना का अभाव है। उपा-अनिरुद्ध प्रसग का विशेप वर्णन प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे नही हुआ है। चित्र-दर्शन के माध्यम से प्रणयी-जन का मिलन ही वर्णित हुआ है। पात्रो के चरित्र और प्रणय-व्यापार की पूर्णत अभिव्यजना न होते हुए भी इस पर काम-परक प्रेम-कथाओ के रग की हलकी सी छाप स्वीकार की जा सकती है। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण कृति के रूप मे प्रद्युम्न-चरित-काव्य किसी भी कोटि की प्रेमकथा या काम-कथा नहीं है। हाँ, कृष्ण-रुक्मिणी तथा उपा-अनिरुद्ध प्रसग रूप मे दो गौण प्रेम-प्रसग अवश्य इसमें अतर्मुक्त हैं जिनमे से प्रथम को दाम्पत्यपरक तथा द्वितीय को कामपरक प्रेम-प्रसग कहा जा सकता है।

17. कथा 'प्रद्युम्न-चरित' वीर-कथा है ?

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या प्रद्युम्न-चरित 'वीर-कथा' है ? साम्प्रदायिक दृष्टि से 'वीर' शब्द का वैष्णव तथा शैव तत्र-साहित्य मे विशिष्ट अर्थ है। वैष्णव-सहिता-साहित्य म 'वीर' शब्द का निर्वचन और अर्थ षाड्गुण्यविग्रह और प्रद्युम्न के वीरत्व प्रकरण मे स्पष्ट किया जा चुका है (द्रष्टव्य, 'प्रद्युम्नः देवत्व एव व्यक्तित्व के अन्तगत अध्याय तृतीय) उसे दोहराने की आवश्यकता नही। यह भी स्पष्ट है कि भगवान के 'वीर्य' और 'ऐश्वर्य' गुणो के अधिष्ठाता विग्रह प्रद्युम्न के व्यक्तित्व मे इन गुणो की छाप है। बिना प्रयास प्रत्येक अभियान मे सहज सफलता तथा रमणीरत्न एव विद्यादि लाभो की अतुल प्राप्ति के मूल मे 'वीर्य' और 'ऐश्वर्य' गुणो का ही प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव है।

शैव तत्र-साहित्य के अनुसार 'वीर' शब्द का अर्थ कुछ भिन्न है। तत्रो मे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के आधार पर मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये है — पशु (तम-प्रकृति) तथा वीर (रज-प्रकृति)। सामान्यत मनुष्य पशु है। 'पशु' से वीर स्थिति प्राप्त करने के लिए ग्राह्य चार साधनाओ-वैदिक क्रियामार्ग, वैष्णव भक्तिमार्ग, शैव क्षत्रिय मार्ग और शाक्त दक्षिण मार्ग मे से अतिम दक्षिण मार्ग मे देवी के ध्यान द्वारा रात्रि मे विशेष अनुष्ठानो की क्रिया से विलक्षण सिद्धियाँ प्राप्त कर मनुष्य 'वीर' बन जाता है। डॉ० सत्येन्द्र की सम्मति मे दामो कवि कृत 'लखमसेन पदमावती' इसी साम्प्रदायिक अर्थ मे 'वीर काव्य' है। इसमे भी कर्पूरमजरी की भाँति भैरवानन्द का सुमिरन किया गया है— समरु वीर भइरवाणन्द। कवि ने स्वय इसे वीरकथा कहा भी है।[118] कवि के अनुसार वीर्यवान काल क्षण 'सरसविलासकामरसभाव' है।

'कामरसविलास भाव' और विलक्षण सिद्धियो की सगति तत्रशास्त्रीय 'वीर' से भी है तथा काम-कथा के नायको की चरित्र-सृष्टि से भी ।[119] युद्ध, स्त्री-हरण, मायाकृत्य आदि प्रद्युम्न-चरित्र के व्यापारो मे इसी 'वीर्य' और ऐश्वर्य' गुणो का प्रतिफलन है। श्री परशुराम चतुर्वेदी 'लखमसेन पद्मावती' को अब तक उपलब्ध सबसे प्राचीन गैर-सूफी प्रेमाख्यान मानते है। इसमे कथा-नायक राजकुमार द्वारा युद्ध-विजय और डूबते हुए राजकुमार का उद्धार प्रदर्शित है। इसके अ त मे 'इति श्री वीरकथा लखमसेन पद्मावती सपूर्ण समाप्त' लिखित मिलता है ।[120] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रद्युम्न-चरित का हम सामान्य और व्यापक अथ मे ही 'वीर-कथा' कह सकते है, साम्प्रदायिक अर्थ मे नही। हाँ, वैष्णव-परम्परा की साम्प्रदायिक 'वीर' कल्पना का उस पर निकट और प्रत्यक्ष प्रभाव है, तथा शैव परम्परा के वीर' (जो प्रक्रिया-भेद होते हुए भी तत्त्वतः वैष्णव-कल्पना के साम्य रखना है) के परोक्ष प्रभाव की सभावना को भी अस्वीकार नही किया जा सकता। डा० सत्येंद्र ने एक अन्य दृष्टिकोण से भी 'वीरकथा' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होने कथाओ के सूत्रो पर विचार करते हुए उन्हे चार वर्गो मे विभाजित किया है—(1) योगी-कथा, (2) सिद्ध-कथा (3) वीर-कथा तथा (4) वणिक-कथा। वीरकथा के प्रमुख कथासूत्र हैं—वीर का वीर कार्यार्थ गृह-त्याग, युद्धो मे प्रवृत्ति और विजयोपरात सु दरी और रत्नादि के उपहार सहित लौटना ।[121] स्पष्ट है कि मानव-प्रकृति की प्रकृष्ट वृत्ति के आधार पर सूत्र-सकलन की दृष्टि से 'प्रद्यु म्न-कथा' को भी 'वार-कथा' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

18. प्रद्यु म्न-कथा और चरितकाव्यत्व

काव्य-विधा की ही दृष्टि से एक अन्य प्रश्न आलोच्य प्रद्यु म्न-चरित काव्यो के चरितकाव्यत्व के सम्बन्ध मे उपस्थित होता है जिसका उत्तर चरित-काव्यो के स्वरूप और विकास की सक्षिप्त उद्धरणी के सदर्भ मे ही दिया जा सकता है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि ईसा की सातवी शताब्दी के अनन्तर ऐतिहासिक व्यक्तियो को आधार मान कर चरित-काव्य लिखने की परम्परा इस देश मे प्रचलित हुई जिसके मूल मे ईरानी तथा बाहर से आने वाली जातियो का प्रभाव बताया जाता है ।[122]

यह सर्वविदित है कि सस्कृत का सर्वप्रथम चरित-काव्य अश्वघोषकृत 'बुद्धचरित' (र० का० 100 ई० के आस-पास)[123] है। इस क्रम मे सबसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कृति बाणभट्टरचित 'हर्षचरित' (र० का० 620-647 के बीच)[124] है जिसे अलकारशास्त्रियो ने 'आख्यायिका' कहा है। [125] भवभूति का 'उत्तर रामचरित' चरित-सज्ञक होते हुए भी नाटक है। फिर भी इससे यह तो सूचित होता ही है कि आठवी शताब्दी मे चरित-काव्य विधा इतनी लोकप्रिय हो चुकी थी कि नाटक तक

के लिए अभिधान रूप मे प्रयुक्त होने लगी थी। प्राकृत मे चरित-काव्य परम्परा का प्रारम्भ विमलसूरि के 'पउमचरिउ' (र० का० वि० स० 60) से होता है। 11वीं सदी के बाद तो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश मे चरित-काव्यो की बाढ-सी आ गयी जिसमे जैन कवियो का विशिष्ट योगदान रहा।

चरित-काव्य प्रबंध-काव्य का एक विशेष प्रकार है। इसका मूल पुराणो मे ढूँढा जा सकता है। प्रारंभ मे पौराणिक उपाख्यान ही अधिकांशत चरित-काव्यो के उपजीव्य कथानक रहे है। कालिदास के समय से ही कवियो का झुकाव पौराणिक कथानको की ओर दिखाई पडता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाव्य-परम्परा से ही चरित-काव्यो की उपशाखा प्रस्फुटित हुई और अपने युग के अन्य काव्यरूपो की विशेषताओ को ग्रहण करती गयी। इन काव्य-रूपो मे संस्कृत-साहित्य के प्रबन्धकाव्य, कथा-काव्य एव इतिवृत्तात्मक कथा, पुराणकथा—इन तीनो के लक्षणो का समन्वय हुआ है। इसलिए इसे कभी 'चरित', कभी 'कथा' (या 'कहा') तो कभी 'पुराण' कहा गया। चरित-काव्य को 'कथा' कहने की प्रणाली अपभ्रंश मे तुलसीदास के समय तक प्रचलित रही है। गोस्वामीजी ने अनेक स्थलो पर अपने रामचरितमानस को 'कथा' कहा है— 'राम कथा यह कलिमल हरनी' इत्यादि। बल्कि तुलसी के बाद भी जैन-कवियो मे 'चरित' और 'कथा' का अभेदरूप मे प्रयोग सुलभ है।

'कथा' 'चरित' और 'पुराण' संज्ञक सभी ग्रंथ चरित-काव्य नही है। इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के अनेक काव्य, यथा बुद्धचरित, श्रीकण्ठचरित नैषधीयचरित आदि चरितसंज्ञक होते हुए भी स्वरूप की दृष्टि से शास्त्रीय शैली से महाकाव्य ही स्वीकार किए जाएगे।

अपभ्रंश के चरित-काव्य मुख्यत पौराणिक और रोमांटिक—इन दो शैलियो मे लिखे गये। इसीलिए उनमे कुछ चरित-काव्यो की संज्ञा 'पुराण' भी मिलती है। डा० हरिवल्लभ भायाणी ने 'पउमसिरि चरिउ' की भूमिका मे लिखा है— 'स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के पौराणिक काव्यो और चरितकाव्यो मे बहुत अन्तर नही है। पौराणिक काव्यो मे विषय का विस्तार बहुत अधिक होने से संधि संख्या 50 से 125 तक हो सकती है किन्तु चरित-काव्यो मे विषय-विस्तार मर्यादित होता है इसलिए संधि-संख्या अधिक नही होती। किन्तु सभी चरित-काव्य कडवक-बद्ध हो, यह बात भी नही।[126] भायाणीजी कृत यह भेद आकारगत ही है, स्वरूपगत नही। डा० पी. एल वैद्य ने पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' की भूमिका मे उसी ग्रंथ से उद्धृत कर, एक पुरुष के जीवन पर आश्रित कथा को 'चरित' तथा त्रेसठशलाका-पुरुषो के जीवन पर आश्रित कथा को 'पुराण' कहा है।[127] यह परिभाषा भी विषय की एकदेशीयता से सम्बन्धित है। साहित्य के मान्य प्रचलित प्रतिमानो के अनुसार पुराण मे कथा-नायको तथा उनके जीवन-वृत्तो की बहुसंख्या तथा महाकाव्य मे एक ही चरित-नायक के जीवन-वृत्त की अनिवार्यता की धारणा को अनेक वंशवीरो के गौरवशाली-कृत्यो के आकर-ग्रन्थ

कालिदासकृत 'रघुवंश' ने पहले ही ध्वस्त कर दिया है। 'रघुवंश के महाकाव्यत्व को सभी स्वीकार करते है। जैन कवि शुभचद्र द्वारा संस्कृत मे तथा बुलाकीदास द्वारा हिन्दी मे लिखित 'पाण्डवपुराण' भी इसी तथ्य की पुष्टि करते है कि पुराणो के सारे लक्षण पौराणिक काव्यो पर घटित नही होते। प्राचीन इतिवृत्त या जातीय ऐतिह्य के सुरक्षित विवरणात्मक आलेख से कालान्तर मे परिवृहण होते-होते पुराणो ने एक प्रकार से जातीय विश्वकोष का रूप धारण कर लिया। जैन आदिपुराणकार जिनसेनाचार्य लिखते है कि पुराणो मे लोक, देश, नगर, राज्य, तीर्थ, दान, तप, गति और फल इन आठ तत्त्वो का वर्णन होना चाहिए।[128] स्पष्ट है कि उक्त समस्त लक्षण पौराणिक चरितकाव्यो पर घटित नही होते। जैन-पुराणनामान्त चरित-काव्यो मे भी प्रबंधकत्व का गठन महाकाव्य शैली मे हुआ है। महाकाव्यो के अनुसार ही उनमे सर्ग-विभाजन और सर्गान्त मे छंद-परिवर्तन, कवि-वंश-परिचय, गुरु-परम्परा, मंगलाचरण, स्वस्तिपाठ आदि रहता है। पौराणिक महाकाव्यो का रचयिता विषयवस्तु मे पौराणिक आधार ग्रहण करते हुए भी अपने काव्य मे कल्पना, अलंकरण और रससृष्टि की ओर सचेष्ट रहता है। यह अवश्य है कि इतर महाकाव्यो की अपेक्षा पौराणिक काव्यो मे कथाक्रमो की बहुलता तथा धार्मिक चेतना के आरोप के कारण वस्तु-व्यापार-वर्णन मे अपेक्षित रमणीयता, कथा-संगठन मे लक्षणामूलक सौष्ठव और मार्मिक सरस प्रसगो की उद्भावना के लिए पर्याप्त अवकाश नही रह पाता। इस प्रकार, पौराणिक चरित-काव्य पुराण और शास्त्रीय शैली के महाकाव्यो की मध्यवर्ती कडी है। जैसा कि डा० शंभुनाथसिंह ने निर्दिष्ट किया है, पुराण, पौराणिक सामग्री वाले काव्य और पौराणिक शैली के काव्य-इन तीनो मे अन्तर है। वस्तुत प्रबन्ध-काव्य पौराणिक नही होता अपितु उसकी शैली पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमांटिक या शास्त्रीय होती है। पौराणिक शैली के चरित-काव्यो के उदाहरण पद्मचरित, पार्श्वनाथ चरित, पउमचरिउ, महापुराण, पार्श्वपुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित आदि, ऐतिहासिक शैली के चरितकाव्यो के उदाहरण-पृथ्वीराजविजय, विक्रमाकदेवचरित, राजतरंगिणी कुमारपालचरित, हम्मीर महाकाव्य, गउडवहो आदि तथा रोमांटिक शैली के चरित-काव्यो के उदाहरण—नवसाहसांक चरित, चंद्रप्रभचरित, शांतिनाथ चरित, मलयसुंदरी कहा, अंजणासुन्दरी चरित, भविसयत्तकहा, करकण्डुचरिउ, जसहरचरिउ इत्यादि है।[129]

चरित-काव्यो की ही एक संकीर्ण धारा वह भी है जिसमे सुदामा-चरित, उषा-चरित नाम से उपलब्ध लघु रचनाएँ आती है। इनमे किसी पात्र के जीवन के किसी एक प्रमुख पक्ष को प्रकाशित करने वाली प्रमुख घटना का मनोरम और संवेदनशील चित्रण पाया जाता है। हमारा सुझाव है कि इन्हे 'खण्ड चरित-काव्य' कहा जा सकता है। स्पष्टतः प्रद्युम्नचरित काव्य इसके अन्तर्गत नही आते।

चरित-काव्य के साथ ही कथा-काव्य रूप पर विचार कर लेना उचित होगा। रुद्रट ने प्रबंध के स्पष्ट दो भेद कर दिये हैं—काव्य और कथा-आख्यायिका आदि—'सन्तिद्विधा प्रबन्धकाव्य-

19. चरित-काव्य तथा कथा-काव्य

कथाख्यायिकादय' और कहा है कि कन्या लाभ फल वाली तथा सकल शृंगार से युक्त कथाएँ संस्कृत मे गद्य मे तथा अन्य प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओ मे पद्य मे लिखी जानी चाहिए। हेमचंद्राचार्य के अनुसार धीरशात नायक से युक्त कोई भी प्रबंध चाहे वह गद्य मे हो या पद्य मे, 'कथा' (या 'कहा') कहा जाएगा।[130] अभिनवगुप्त ने गद्य-प्रबंध को कथा और आख्यायिका—इन दो रूपो मे विभाजित करते हुए दोनो के रसात्मक और इतिवृत्तात्मक—ये दो-दो अवान्तर भेद किये है[131] यदि कथा-आख्यायिका को ही कथा-काव्य माना जाए तो रुद्रट के अनुसार कथा-काव्य वह काव्य-रूप है जो संस्कृत मे गद्य मे और अन्य भाषाओ-प्राकृत, अपभ्रंश आदि मे—पद्य मे भी लिखा जाता है और जिसमे कन्या-हरण, संग्राम, विप्रलम्भ शृंगार, नायक के अभ्युदय आदि से समन्वित सरस कथानक होता है तथा आदि मे मंगलाचरण, गुरु-वंदना, कवि-वंश परिचय तथा कथान्तर आदि की योजना होती है। इस प्रकार कथा-काव्य वह श्रव्य प्रबंध है जो महत् उद्देश्य और महच्चरित्र के अभाव मे प्रबंध-काव्यो से भिन्न होगया है दूसरी ओर अलंकृति और रसात्मकता के कारण इतिवृत्तात्मक कथाओ (गद्य या पद्य मे लिखी परिकथा, खण्डकथा, सकल-कथा, धर्मकथा इत्यादि) मे भी अपनी अलग सत्ता रखता है। डॉ० शम्भूनाथसिंह ने कथा-काव्यो की एक विशेषता यह भी बतायी है कि कथा-काव्यो के नायकों का वीर रूप उनके प्रेमीरूप से भी दबा रहता है।[132] स्पष्टत इस विशेषता के आधार पर प्रद्युम्नचरित काव्यो को कथा-काव्यो की श्रेणी मे नही रखा जा सकता। फिर भी कथा-काव्य शैली का प्रभाव तो उन पर असंदिग्ध है। आचार्य हेमचंद्र का धीरप्रशात चरितनायक संयुत गद्य-पद्य की कैसी भी प्रबंध रचना को 'कथा' कहना और 'सकल-कथेतिचरितम्' कहकर चरित को सकलकथा के अन्तर्मुक्त करना तथा चरितसंज्ञक काव्यो को (जिनमे प्रद्युम्नचरित भी अपवाद नही है) 'कथा' (या 'कहा') भी कहा जाना—ये सभी तथ्य चरितकाव्यो पर कथा-काव्य शैली के प्रभाव की ही पुष्टि करते है। हरिदेव ने अपनी कृति 'मयणपराजयचरिउ' को एक साथ 'जयवृत्त', 'कव्वु' (काव्य), 'कहा' तथा 'चरिउ' कहा है।[133]

वस्तुत. चरितकाव्यो का विकास और विस्तार इतना हुआ कि पुराण, रास, रसायण, रासो, कथा, कौमुदी, कीर्ति, चर्चरी, फाग, वेली, विजय, प्रबंध इत्यादि संज्ञक काव्यो को भी इस विधा ने अपने वृत्त मे समेट लिया। कारण यह है कि मानवजाति मे व्यक्ति-पूजा या वीरपूजा बद्धमूल है और समस्त धर्म, दर्शन और आचार व्यक्ति और उसके कर्म के आश्रयत्व से ही सार्थकता प्राप्त करते हैं। अत किसी भी कथ्य को किसी भी काव्यरूप मे यदि व्यक्ति और उसके चरित्र

के व्यासग से कहा गया तो क्या आश्चर्य ? अभिनिवेश का स्वरूप और अनुपात कुछ भी हो, कोई भी प्रवन्धात्मक काव्य चरित-काव्यीय तत्त्वो से सर्वथा असम्पृक्त नही रह सकता। यही कारण है कि विभिन्न अभिधानो से चरित-काव्यो का प्रणयन होता रहा है तथा चरित-काव्य विविध काव्य-विधाओ और काव्य-रूपो के परिधान धारण करते रहे हैं। फिर भी, चरित-काव्यो, विशेपत जैन चरित-काव्यो का अपना विशिष्ट स्वरूप इससे धु धला नही पडता।

जैन-चरित-काव्यो की प्रमुख सामान्य विशेपताएं निम्नलिखित है—

20 जैन–चरित–काव्यों की विशेषताएं

(1) चरित काव्व की शैली जीवन-चरित की शैली होती है। उसमे या तो ऐतिहासिक ढग से नायक का वशपरिचय या पौराणिक ढग से उसके पूर्वभवो का वृत्तान्त रहता है अथवा कथा काव्यो की तरह, देश-नगर और माता-पिता का परिचय रहता है।

(2) पुरुषो को चरितनायक वनाकर ही नही, स्त्री चरित-नेत्रियो को प्रतिष्ठित करते हुए भी चरित-काव्य लिखे गये हैं (अञ्जनासुन्दरीचरिउ, चदनवाला-चरिउ' पउमसिरिचरिउ, इत्यादि)। अन्तर यही है कि पुरुप चरित-नायक शौर्य और शृ गार के कर्मक्षेत्र मे भोग के राजमार्गो पर साहस के अश्व दौडाता हुआ नायकत्व को सार्थक करता है जब कि चरित-नेत्रियाँ सामाजिक अन्याय अथवा भाग्य के आघात सहती हुई या ससारविरक्त पति का सहधर्मिणीवत् अनुगमन करती हुई या शील-भग के प्रयत्नो का प्रतिकार करती हुई, तात्पर्य यह कि धर्म-पथ पर अडिग आदर्श श्राविका की भाति अध्यात्म के आगन को अकम्प दीपशिखावत आलोकित करती हुई चरित्र-नेत्री होने का गौरव अर्जित करती है।

(3) जैन चरित-काव्यो के नायक तीर्थङ्कर या सम्राट ही नही रहे, वणिक पुत्रो को भी यह श्रेय मिला है, उदाहरणार्थ 'भविसयतकहा' (धनपालकृत, र० का० 15 वी सदी)[134] जो कथासज्ञक होते हुए भी चरित-काव्यो से अभिन्न है।

(4) वह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। उसमे शास्त्रीय प्रवध काव्यो की तरह महत्त्वपूर्ण घटनाओ के कलात्मक चुनाव तथा पचसधियो से युक्त कार्यान्विति वाले कथानक का अभाव रहता है। उसका कथानक कथा-काव्यो की तरह स्फीत, गुम्फित और जटिल होता है।

(5) कथारभ के लिए या भवान्तर रहस्योद्घाटन के लिए वक्ता-श्रोता की योजना अवश्य रहती है। यह अनेक रूपो मे मिलती है।[135] प्रद्युम्न चरित-काव्यो मे नारद श्रोता और सीमधर स्वामी वक्ता है। या गौतम गणधर श्रेणिक की जिज्ञासा पर प्रद्युम्न-कथा कहते है। अन्तर्वर्ती गौण प्रसगो के वक्ता-श्रोता इनके अतिरिक्त हैं।

(6) अलौकिक, अतिमानुषी, अतिप्राकृत शक्तियों और कार्यों का बाहुल्य जो पुराणकथा लोककथा या निजधरी कथाओं की देन है।

(7) कथानक-रूढ़ियों की भरमार जो लोककथा और कथा-आख्यायिका में बहुत अधिक मिलती है।

(8) उसकी शैली कथा-काव्यों से अधिक उद्देश्यपरक, अर्थपूर्ण और उदात्त किंतु शास्त्रीय शैली के प्रबंधकाव्यों से कम सरस और कम अलंकृत होती है।

(9) धार्मिक चेतना का आरोप कर्मफलश्रुति, भवान्तर-वर्णन और कैवल्यप्राप्त मुनि आदि द्वारा प्रत्यक्ष कथन के रूप में पाया जाता है। प्रद्युम्न चरित में धार्मिकता का आग्रह इन तीनों रूपों में दीख पड़ता है। उद्देश्य भी धर्ममूलक होता है। नायक या नायिका तथा अन्य पुण्यात्मा जन अन्त में जिन-दीक्षा ग्रहण कर लेते है।

(10) एक ही कथानक को लेकर लिखे गये अनेक चरित-काव्यों में अद्भुत कथा-साम्य और स्वरूप-साम्य की परम्परा दीख पड़ती है।

उक्त सभी विशेषताएँ प्रद्युम्न-चरित-काव्यों मे पायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त डा० शम्भुनाथसिंह ने दो विशेषताएं और बतायी हैं—कोई न कोई प्रेम-कथा अवश्य होती है और उसका स्थान गौण नहीं महत्त्वपूर्ण होता है, पौराणिक कथानक मे भी प्रेमाख्यानक रंग भरने का प्रयत्न रहता है। अनेक विघ्नों या युद्धों के बाद नायक-नायिका-मिलन सम्पन्न होता है। किन्तु ये विशेषताएँ प्रेमाख्यानात्मक चरित-काव्यों की है, अतः प्रद्युम्न चरित-काव्यों मे इनका अभाव है। प्रद्युम्न-चरित काव्यों मे प्रेम और काम की भूमिका पिछले पृष्ठों में स्पष्ट की जा चुकी है।

21. चरित–काव्यों के भेद

उद्देश्य और विषय-वस्तु की दृष्टि से चरित-काव्य छः प्रकार के हो सकते हैं— (1) धार्मिक या पौराणिक (यथा पउमचरिउ, रामचरितमानस) (2) प्रतीकात्मक (यथा पद्मावत, मृगावती, मधुमालती) (3) वीर गाथात्मक (यथा हम्मीररासो) (4) प्रेमाख्यानक (यथा छिताई वार्ता, नलदमन, बीसलदेवरास) (5) प्रशस्तिमूलक (वीरसिंहदेवचरित, छत्रप्रकाश आदि) तथा (6) लोकगाथात्मक (ढोलामारूरा दूहा, सदयवत्स सावलिंगा आदि)।[136]

जैन चरित-परम्परा मे धार्मिक या पौराणिक शैली के चरितकाव्यों के भी दो वर्ग दीख पड़ते है—(1) मौलिक परम्परा प्रधान-जिनमे कथा-नायक या नेत्री तथा कथा-व्यापार जैन धर्म से अपना 'मौलिक' सम्बन्ध रखने के कारण जैन-परम्परा की देन है यथा भविसयत्त-चरिउ, श्रीपाल-चरिउ इत्यादि तथा (2) आयातित परम्परा-प्रधान–जिनमे प्रमुख पात्र तथा घटनाएं मूलतः जैन-भूमि से उद्भूत न हो कर जैनेतर,

विशेषतः वैष्णव परम्परा से आयातित और धर्मानुकूल सस्कारित है–यथा, कण्हचरिउ, णेमिणाहचरिउ, पउमचरिउ इत्यादि ।

22. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-चरित-काव्यो को हम मुख्यत आयातित परम्परा-प्रधान पौराणिक चरित-काव्य कह सकते है जिन पर कथा-काव्य शैली के तत्वो की छाप है । हमारे विवेच्य प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे से महासेन का 'प्रद्युम्नचरितम्' संस्कृत की शास्त्रीय महाकाव्य-शैली के सर्वाधिक निकट है । इसे तथा सिद्ध एव सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण कहा' को भी रोमांटिक शैली का महाकाव्य कहा जा सकता है ।[137]

23. प्रद्युम्न-चरित-'एकार्थ-काव्य' या 'सकल काव्य' ?

डॉ० सियाराम तिवारी का कहना है कि अपभ्रश तथा हिन्दी मे 'चरित' 'रास' आदि नामो से जो काव्य लिखे गये है, उनमे एकार्थ काव्यो की सख्या प्रचुर है । इनमे से जैन कवियो द्वारा लिखे गये काव्यो मे से तो नब्बे प्रतिशत से अधिक काव्य एकार्थ काव्य ही है । ऐसे काव्यो मे व्यक्ति के जन्म से लेकर उसकी कैवल्य प्राप्ति तक की कथा कही जाती है । सारी कथा नायक के जीवन के इसी एक अर्थ मे सिमटी रहती है और इस अर्थ के सिद्ध हो जाने पर कथा एकाएक समाप्त हो जाती है । पुष्पदन्त के 'नागकुमारचरित' और यशोधरचरित' ऐसे ही एकार्थ काव्य' है ।[138] इससे अप्रत्यक्ष रूप से प्रद्युम्न-चरित काव्यो को भी एकार्थकाव्य की कोटि मे रखने की सभावना ध्वनित होती है । कविराज विश्वनाथ[139] तथा रुद्रट[140] की परिभाषाओ के आधार पर 'एकार्थ काव्य' को हिन्दी मे प्रथम बार आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रयुक्त और प्रचारित किया ।[141] इसके लक्षणो मे अन्य लक्षण तो औपचारिक और शिल्पगत विकल्पनीय गौण लक्षण है किन्तु मुख्य लक्षण एकार्थ प्रवणता है अर्थात् चतुर्वर्ग मे से कोई एक पुरुषार्थ ही इसका उद्देश्य होता है । अनेक रसो की असमग्रता अथवा एक रस की समग्रता इसका दूसरा प्रधान लक्षण है । इस विषय मे हमे यही कहना है कि काव्य मे चतुर्वर्गो मे से धर्म और मोक्ष की एकत्र स्थिति होनी है । प्राय धर्म की व्याप्ति मोक्ष मे ही परिणत होती दीखती है । जैन धार्मिक प्रबधकाव्यो मे यह प्रवृत्ति विशेषतया व्यक्त हुई है । रहे अर्थ और काम–इनमे से 'अर्थ' काव्य का प्रकृत विषय न हो कर अर्थशास्त्र जैसे सामाजिक शास्त्र का विषय है । फलत धर्म और काम–इन दो पुरुषार्थो की सिद्धि ही प्रबन्धकाव्यो मे होती है । प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे भी दोनो की ही सिद्धि है । अतर इतना ही है कि कवि-विशेष की रुचि के अनुसार कही काम की अभिव्यक्ति स्फुट है तो कही अस्फुट । महासेन कृत 'प्रद्युम्न–चरितम्' तथा सिद्ध सिंह कृत 'पज्जुण्ण चरिउ' मे तो काम की मुखर अभिव्यक्ति है । साथ ही इनमे 'अनेक रसो की असमग्रता अथवा एकरस की समग्रता' न होकर 'एकरस की

समग्रता तथा अनेक रसो की असमग्रता' दृष्टिगत होती है । फिर दण्डीकृत महाकाव्यीय लक्षण भी इन पर घटित होते हैं ।[142] अत 'प्रद्युम्नचरितम्' (महासेनाचार्य-कृत) तथा 'पज्जुण्णचरिउ' (सिद्ध तथा सिंहकृत) एकार्थ काव्य की अपेक्षा 'महाकाव्य' के ही अधिक निकट हैं ।

किन्तु सधारुकृत 'परदवणुचरितु' की स्थिति इनसे भिन्न है । यह विषयवस्तु की दृष्टि से पौराणिक शैली का चरितकाव्य होते हुए भी महाकाव्यत्व के उपादानो से रहित है तथा इसमे इतिवृत्तात्मक कथात्वरा की अतिशार्यप्रवृति तथा हेमचन्द्र द्वारा निर्दिष्ट पूर्वोक्त अन्य लक्षणो की घटिति है । यह नीरस इतिवृत्तात्मक कथा की कोटि का काव्य है । निष्कर्षत सधारु कृत प्रद्युम्न-चरित को हम 'कथा काव्यो से प्रभावान्वित सकलकथात्मक पौराणिक चरितकाव्य कहना चाहेंगे ।

24. क्या सधारुकृत 'प्रद्युम्न-चरित' सतसई–काव्य है ?

प्रद्युम्न-चरित के काव्य-रूप पर विचार करते समय एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या सधारु की इस कृति को सतसई' कहा जा सकता है ? यह प्रश्न इसलिए अधिक ध्यानाकर्षक हो गया है कि डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि 'आकार मे यह रचना चउपई छदो की एक सतसई है ।"[143] 'सतसई' शब्द जैसा कि सर्वविदित है, सस्कृत भाषा के शब्द 'सप्तशती का तद्भव रूप है । प्राकृत मे हाल सातवाहन की गाथा सप्तशती' और सस्कृत मे गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती' के अतिरिक्त 'दुर्गासप्तशती' भी सुविख्यात रचना है । सस्कृत, प्राकृत की इसी परम्परा मे हिन्दी मे सतसई लिखा जाना प्रारम्भ हुआ । हिन्दी मे तुलसी की सतसई से लेकर (जिसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है) रहीम, विहारी, रसनिधि, मतिराम, वृन्द, विक्रम, रामसहाय और वियोगीहरि तक सतसई की परम्परा दृष्टिगत होती है । डा० श्यामसुन्दरदास सम्पादित 'सतसई सप्तक' मे इनमे से अधिकाश सकलित है ।[144] किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि सतसई की परम्परा मे प्रारम्भ से अद्यतन मुक्तक तथा प्रबन्ध-निरपेक्ष छन्दो के समुच्चय की ही प्रवृत्ति निर्बाध रूप से रही है । सुप्रसिद्ध अग्रेजी विश्वकोष 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार 'वर्णनात्मक तथा अन्य सरलतर काव्यशैलियो से पृथक् सतसई सभवत सर्वाधिक यशस्वी काव्य-विधा है । इसमे प्रत्येक छन्द स्वतत्र और स्वय मे पूर्ण होता है तथा भाषा, वर्णन-सौन्दर्य और काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से यह कला का उत्कृष्टतम निदर्शन है ।[145]

अत निष्कर्षरूप मे कहा जा सकता है कि सख्या–मोह के कारण गणितीय सूत्र के आधार पर भले ही 702 छन्द पाये जाने से इसे सतसई कह दिया जाय किन्तु

परम्परा और स्वरूप की दृष्टि से इसे सतसई कहने का प्रश्न ही नही उपस्थित होता ।

25. सधारु–रचित प्रद्युम्न–चरित का हिन्दी–साहित्य में स्थान

यदि सस्कृत, प्राकृत और परिनिष्ठित अपभ्र श के ग्रथो को छोडकर पुरानी हिन्दी के ग्रथो पर ही विचार किया जाय–जहाँ से वस्तुत हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ माना जाने का आग्रह एक विद्वद्वर्ग का है और जिसमे तर्कसम्मनता भी है, तो सधारुकृत 'परदवणु चरितु' का (जिसे सुविधा के लिए ही 'प्रद्युम्न-चरित' सभी लेखको द्वारा लिखा गया है) महत्त्व और भी वढ जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा जिन 12 काव्य-कृतियो के आधार पर 'वीरगाथाकाल' का नामकरण किया गया है उनकी रचना परवर्ती और अप्रामाणिक सिद्ध हो जाने के कारण हिन्दी के आविर्भाव काल के उपस्थापन के लिए जैन कवियो की रचनाओ का ही अवलम्ब लेना होगा । राहुलजी ने स्वयभू के महाकाव्य 'पउमचरिउ' (8वी सदी) को हिन्दी का आदि महाकाव्य घोषित किया है किन्तु अपभ्र श को हिन्दी के अन्तर्भुक्त करने पर ही इस दृष्टिकोण की सार्थकता है । डा० रामकुमार वर्मा[146], डा० कासलीवाल[147] तथा डा० मोतीलाल मेनारिया[148] ने 8वी से 14वी सदी के इस प्रारम्भिक काल के जिन प्रमुख कवियो की सूची दी है, उनमे अधिकाश कवियो की रचनाए 'पुरानी हिन्दी' की न हो कर अपभ्र श की ही रचनाएँ है । डा० कासलीवाल का यह कहना सही है कि सधारु के समकालीन (स० 1400–1425) जिन सात-आठ कवियो के नाम गिनाये गये हैं उनकी स्फुट रचनाओ के अतिरिक्त कोई वडी प्रबन्धात्मक रचना नही मिलती, दूसरे, जो कुछ उन्होने लिखा है वह अपभ्र श से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित है । केवल रल्ह कवि कृत "जिणदत्त चउपई" (सं० 1354) ही एक ऐसी उल्लेखनीय काव्यकृति है जिसमे "अपभ्र श शब्दो का पर्याप्त प्रयोग किया गया है किन्तु उनका जिस सुन्दरता से प्रयोग किया गया है उससे वे पूर्णतः हिन्दी भाषा के शब्द मालूम पडते है ।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि सधारु अपने समय के अकेले हिन्दी कवि है जिन्हे इस प्रकार का प्रवन्ध-काव्य लिखने का श्रेय है ।

जिस प्रकार हिन्दी के प्रारम्भिक कवियो मे सधारु का स्थान अप्रतिम है उसी प्रकार कथा-साहित्य की दृष्टि से भी वे गौरव के पात्र है । लोकवार्ता-तत्त्व की दृष्टि से समस्त कथा-साहित्य को 7 विविध वर्गो मे विभाजित करते हुए उनमे से एक वर्ग 'पुराणकथा' के अन्तर्गत परिगणित प्रमुख कृतियो में डा० सत्येन्द्र ने सधारु-रचित प्रद्युम्न-चरित को भी स्थान दिया है । उन्होने ऐसी धार्मिक कथाओ मे, जिनमे धर्माचरण करने वाले महापुरुषो के अद्भुत पराक्रमो का उल्लेख है तथा जिन्हे पौराणिक कोटि के ग्रथ कहा जा सकता है, प्रद्युम्न-चरित की प्रमुख रूप से गणना

की है । लोकतात्त्विक दृष्टि से हिन्दी के कथा-साहित्य पर कालक्रमानुसार दृष्टि डालते हुए उन्होने सधारु से पूर्ववर्ती तीन प्रमुख कथा कृतियो' ढोलामारू रा दूहा' (स० 1000), 'बीसलदेवरास' (नरपतिनाल्हकृत, र० का० स० 1212) तथा 'चन्दायन' (मुल्लादाऊदकृत, र० का० स० 1370) का उल्लेख करते हुए सधारुकृत प्रद्युम्न-चरित को चौथे स्थान पर रखा है । दो अन्य कृतियो-समयसुन्दरकृत 'साम्ब-प्रद्युम्न चतुष्पदिका' (चउपई) (स० 1659) तथा देवेन्द्रकीर्तिरचित 'प्रद्युम्न-चरित' (सं० 1722) को गिनाते हुए तीन कृतियो के आधार पर ही प्रद्युम्न-चरित को लोकप्रिय कथा-रूप स्वीकार किया है ।[149] अब तक इस शोधप्रबन्ध के लेखक द्वारा ज्ञात 45 कृतियो के आधार पर तो इसका महत्व और भी असदिग्ध हो जाता है ।

26. पूर्ववर्ती तथा समसामयिक प्रेमकथाओ और चरित–काव्यो से तुलना

अपने पूर्ववर्ती तथा समसामयिक प्रेम-कथाओ और चरित-काव्यो से प्रद्युम्न-कथा मे अनेक समानताओ के साथ कतिपय विशिष्टताएँ भी दीख पड़ती हैं । अलौकिक तत्त्वो की प्रचुरता सभी मे समान रूप से है । कोऊहल कृत 'लीलावई कहा' का सम्पूर्ण सगठन अलौकिक तत्त्वो से हुआ है । नायक म धवानल का सर्पो से घिर जाना, चमत्कारी अ गूठी से- उसकी रक्षा होना-सभी संयोगाधृत घटनाएँ है । 'मलयसुन्दरी कथा' मे भी जादू और चमत्कारो का बाहुल्य है । इन सभी काव्यो मे अन्य समानता यह भी है कि पूर्वजन्म के सत्-असत् कर्मो का फल घटनाओ और चरित्र का हेतु बनता है । 10वीं सदी मे रचित धनपाल की भविसयत्त कहा' मे एक देव भविष्यदत्त की सहायता करता है जिससे वह अपार धनराशि के साथ सकुशल घर पहुचने मे कृतकार्य होता है । मुनि द्वारा अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन कर भविष्यदत्त अपने पुत्र को राज्य सौंप कर वैराग्य ले लेता है ।

पुष्पदन्त कृत 'णायकुमार चरिउ' का नायक नागकुमार भी युवावस्था मे प्रवेश करता है तो अनेक विद्याए सीखता है । उसका सौन्दर्य भी कामदेव को लज्जित करने वाला है । वह भी अनेक विवाह करता है और अ त मे मुनि से पूर्वजन्म का वृत्तान्त ज्ञात कर वैराग्य ले लेता है । नयनदिकृत 'सुदसणचरिउ' (र. का. 1043ई) मे अभयारानी सुदर्शन पर मुग्ध होती है । रानी की धाय कामपूर्ति के लिए सुदर्शन को अभया के पास ले जाती है किन्तु सुदर्शन विचलित नही होता । तब वह चिल्लाने और त्रिया-चरित्र करने लगती है । अ त मे पुण्य के प्रभाव से एक देव आकर सुदर्शन की रक्षा करता है । मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' (र० का० 1065 ई० के लगभग)[219] मे नायक करक डु का जन्म विचित्र परिस्थितियो मे होता है और बचपन

मे ही माता-पिता से उसका वियोग हो जाता । वह अनेक पराक्रम कर नाना राज्य-लाभ और पत्नी-लाभ प्राप्त करता है। अंत मे अपने पिता से ही उसे युद्ध करना पडता है। युद्धभूमि मे ही पिता पुत्र को पहचानता है।

इस प्रकार हम देखते है कि पूर्ववर्ती तथा समकालीन प्रेम-कथाओ के अनेक तत्त्व यथा पात्रो का शाप-पीडित होना, जादुई अंगूठी, घटना-चक्रो मे दैत्य-विद्याधरादि अतिमानुषी पात्रो का योग, पूर्वजन्म के कर्मविपाक, आकस्मिकता और सयोग, प्रेम-कथा के तत्त्वो की सगति, पिता-पुत्र का पारस्परिक युद्ध, नायक का विचित्र परिस्थितियो मे जन्म और शैशवावस्था मे ही माता-पिता से वियोग, नायक पर किसी नारी की निर्मर्याद कामासक्ति और तज्जन्य त्रिया-चरित्र, नायक के जीवन और भाग्य-निर्माण में जलतत्त्व (समुद्र आदि) और जलचर (मत्स्यादि) का महत्त्व तथा अंत मे नायक का वैराग्य-धारण इत्यादि तत्त्व प्रद्युम्न-चरित्र आदि काव्यो मे भी मिलते हैं। किन्तु इन समानताओ के अतिरिक्त प्रद्युम्न-कथा की अन्य जैन प्रेम-कथाओं से अनेक बातो मे असमानता भी है। उदाहरण के लिए 'भविसयत्त कहा' मे भविष्यदत्त पराक्रम-सम्पन्न कर ज्यो ही घर के लिए प्रत्यावर्तित होने के लिए जिनमंदिर मे प्रणाम करने पहुचता है, उसका सौतेला भाई बधुदत्त भ्रातृ-घात द्वारा उसकी पत्नी तथा समस्त धन का अपहरण कर लेता है। इसके विपरीत प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे सर्वत्र पारिवारिक मर्यादा का निर्वाह हुआ है। प्रद्युम्न कचनमाला को मातृस्थानीय होने से ही 'मातृवत परदारेषु' भाव से ही देखता है और विनीत पुत्रवत आचरण करता है। वह विदा होते समय कचनमाला और कालसवर से क्षमा-याचना भी करता है। अपनी माता रुक्मिणी का हरण, पिता कृष्ण से युद्ध तथा सत्यभामा का मान-भग आदि वह कौतुक-क्रीडावश और माया-प्रदर्शन या शौर्याभिव्यक्ति की दृष्टि से ही करता है। कुटिलवृत्तियो काम, लोभ आदि से प्रेरित हो कर पारिवारिक सम्बन्धो और मर्यादा का उल्लघन प्रद्युम्न-कथा मे कही नही हुआ है। इसी प्रकार कथा-योजना मे अन्तर भी दीख पडता है। पुष्पदन्तकृत 'णायकुमारचरिउ' मे राजा जयधर की नवविवाहिता पत्नी अपनी सौत से ईर्ष्या करती है जब कि प्रद्युम्न-कथा मे कृष्ण की पूर्वपत्नी सत्यभामा को नवपरिणीता रुक्मिणी से ईर्ष्या करते हुए प्रदर्शित किया गया है। प्रद्युम्न-कथा मे अन्य जैन प्रेम-कथाओ से एक अंतर यह भी है कि इसमे नायक प्रद्युम्न को कामावतार मानते हुए भी उसके कामदेव-रूप की महिमा या कामावतार की कथा कही नही है, न ही कामजनित शृंगार रस की सम्यक् प्रतिष्ठा ही है। नायक को सुन्दर सिद्ध करने के लिए 'काम-रूपता' का परोक्ष सकेत मात्र है। किन्तु प्रेम के सयोग पक्ष और वियोग पक्ष की वैसी मनोहारी मार्मिक व्यजना इसमे नही है जैसी अन्य प्रेम-कथाओ मे दीख पड़ती है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती तथा समसामयिक प्रेम-कथाओ तथा चरित-काव्यों से प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे अनेक रूपों मे समानता है तो कुछ रूपो मे विशिष्टता की झलक भी मिलती है।

(ग) प्रद्यु म्न-चरित्र में कथानक-रूढ़ियां .—

विभिन्न कथा-रूपो की ही भांति प्रद्यु म्न-कथा का भी अपना एक निश्चित रूप है तथा अन्यान्य कथा रूपो के संदर्भ मे उसका अध्ययन

27. प्रद्यु म्न-कथा-चक्र

अतीव रोचक है। हिन्दी मे उपलब्ध कथा-साहित्य मे पाए ाने वाले अभिप्रायो पर विचार करते हुए डा० सत्येन्द्र इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि कितनी ही कहानियाँ अपने मूल रूप मे एक दूसरी से बहुत साम्य रखती हैं। यदि इन कहानियो मे से साक्षी-कथाएँ, अभिप्राय-आवृत्तियाँ हेतु-कथाएँ, भूमिका-कथाएँ, या संयोजकसूत्र-कथाएँ निकाल दी जाएँ तो जो कथा-रूप होगा (डा० सत्येन्द्र ने इस अविशिष्ट कथा-रूप का कोई नाम नही दिया है, किंतु उसे 'मेरुदण्डीय कथा-रूप' जैसा कोई नाम देना उपयुक्त होगा) वह ऐसी कितनी ही कहानियो से साम्य रखता प्रतीत होगा। ऐसी साम्य रखने वाली कहानियाँ एक चक्र के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। इस प्रकार हिन्दी का समस्त (मध्ययुगीन) कथा-साहित्य भी कुछ चक्रो में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रसग मे डा० सत्येन्द्र ने कुल 27 ऐसे कथा-चक्रो का उल्लेख करते हुए उनके चक्रो की कहानियो के आधार-भूत कथा-सूत्रो का निरूपण किया है। इन्ही महत्त्वपूर्ण 27 कथा-चक्रो मे से चतुर्थ स्थान उन्होने 'प्रद्यु म्नकथा-चक्र' को भी दिया है जो इस प्रकार है —

	सूत्र	चक्र मे आने वाली कहानियाँ
(चौथा) प्रद्युम्न कथा-चक्र	1 सौतिया डाह, एक का पुत्र लुप्त (दैत्य, दानव या देव द्वारा)	1 प्रद्युम्न-चरित्र 2 सीता चरित्र
	2, लुप्त पुत्र का अन्य या अन्यो द्वारा पालन	
	3 उसके द्वारा अनेको जीवट के कार्य सम्पन्न तथा अनेको मृत्यु-प्रपचो से बचना।	
	4 उसने आ कर अपनी विमाता को छकाया और अपनी माँ को सुखी किया।	

प्रद्यु म्न-कथा-चक्र का सीता-चरित्र के अतिरिक्त भविसयत्तचरिउ (भविष्य-दत्तचरित), सनत्कुमारचरित, नागकुमारचरित, करकण्डुचरित इत्यादि से भी निकट सम्बन्ध है क्यो कि इनके समस्त कथा-सूत्र प्रद्यु म्न-कथा-चक्र के पूर्णत यथानुसारी न होते हुए भी पर्याप्त साम्य रखते हैं।

28 प्रमुख कथानक-रूढ़ियाँ

कथा-चक्र की दृष्टि से प्रद्युम्न-कथा के अध्ययन का जितना महत्त्व है, कथानक-रूढ़ि-साम्य की दृष्टि से उसके अध्ययन का उससे कम महत्त्व नही है। डा० सत्येन्द्र ने अपने शोधप्रबध 'मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य का लोक-तात्त्विक अध्ययन' मे प्रद्युम्न-कथा को 50 सूत्रो मे विभाजित कर, उसमे प्रयुक्त कथानक-रूढियो का उल्लेख किया है।[221] कुछ रूढियो मे मान्य प्रचलित रूपो की दृष्टि से सशोधन तथा कुछ महत्त्वपूर्ण रूढ़ियो के छूट जाने के कारण इस रूढि-संख्या मे वर्द्धन और सशोधन की आवश्यकता है। डा० सत्येन्द्र द्वारा प्रस्तुत संपूर्ण सूची को दुहराना अनावश्यक समझ कर नीचे तुलनीय एव सशोधनीय रूढ़ियो का विवरण प्रस्तुत है। सुविधा के लिए डा० सत्येन्द्र द्वारा प्रदत्त रूढि का क्रमाक ही रहने दिया गया है।

तुलनीय		
सीताचरित मे भी सीता से नारद रुष्ट	1 सत्यभामा से नारद रुष्ट	1 नारद सत्यभामा के कक्ष मे गये तो वह शृगार मे मग्न
	चित्र का अभिप्राय बहुत प्रचलित	2 रुक्मिणी का चित्र भेज कर नारद ने कृष्ण को मोहित किया।
		3 रुक्मिणी के भाई ने शिशुपाल को रुक्मिणी की लग्न भेजी। वह आया। नारद ने उसे नगर में प्रवेश करने से रोका (नारद द्वारा शिशुपाल को नगर से बाहर रोकना, प्रचलित कथानक रूढि नही है—लेखक)
	तु० सीताहरण सुभद्रा-हरण सयोगिता-हरण	4 कृष्ण हलधर सहित कुण्डनपुर गये और रुक्मिणी की बुआ की सहायता से प्रमोदवन मे पूजा को गयी रुक्मिणी का हरण।
	तु० प्रथम पुत्र की चोरी। सीता के भाई भामण्डल की चोरी।	5. रुक्मिणी-पुत्र को एक दैत्य चुरा ले गया जो राजा हेमराम जो पूर्वजन्म का (हेमरथ होना चाहिए—ले०) था जिसकी स्त्री को पूर्वजन्म मे रुक्मिणीपुत्र नमु (मधु होना चाहिए—ले०) राजा के रूप में हर ले गया था।

		रुक्मिणी के समक्ष प्रकट हो गया-ले०) । उसकी वधू से परिचय ।
तु० लवकुश राम-लक्ष्मण अर्जुन और उसके पुत्र का युद्ध । सोहराब और रुस्तम का युद्ध ।	16	प्रद्युम्न और कृष्ण की सेना मे युद्ध, कृष्ण सेना की पराजय ।
	17	रुक्मिणी ने क्रुद्ध होकर सत्यभामा के केश मुडवाकर उससे पैर मलवाए । सत्यभामा का मनोमालिन्य । (रुक्मिणी केश मुडवाने की इच्छा मात्र प्रकट करती है किंतु अत मे समझाने पर इस विचार का त्याग देती है, अथवा प्रद्युम्न मायामयी रुक्मिणी भेज कर अपनी माता के गौरव की रक्षा करता है, यही प्रचलित कथा-रूप है —लेखक) ।
	18	कृष्ण ने हार सत्यभामा को पहनाया, पर, सत्यभामा के उस गर्भ को प्रद्युम्न ने जामवती के उदर मे स्थानातरित कर दिया (प्रद्युम्न काम-मुद्रिका पहनाकर जाम्बवती को सत्यभामा का रूप प्रदान करता है जिससे वह कैटभ को धारण कर गर्भवती होती है—ले०) ।
	19	प्रद्युम्न ने दोनो कुमारो (साम्ब और भानु) को डोमो का रूप धर कर कुण्डनपुर भेजा (प्रद्युम्न और साम्ब दोनो कुडनपुर गये—यही प्रचलित रूप है—ले०) ।
	21.	कृष्ण आदि की मृत्यु के समाचार पर प्रद्युम्न ने तपस्या की और निर्वाण को प्राप्त किया (कृष्ण-मृत्यु से पूर्व ही प्रद्युम्न दीक्षा ग्रहण कर लेता है । कृष्ण उसे मना करते है किन्तु दृढ निश्चय देख दु.खी होते है—यही प्रचलित रूप है—ले०) ।

उक्त संशोधनो के अतिरिक्त प्रद्युम्न-चरित की कथानक-रूढियो के सम्बन्ध मे हमे यह भी कहना है कि प्राय सभी रूढियाँ तुलनीय है क्यो कि नामरूपात्मक गौण अन्तरो सहित उन सभी की आवृत्तियाँ मध्य-युगीन कथा-काव्यो में प्रचुरता से पायी जाती है । इस तुलनात्मक अध्ययन के लिए पृथक प्रयास की आवश्यकता है । यहाँ तो उपर्युक्त रूढियो के अतिरिक्त, प्रद्युम्न-चरित की कुछ अवशिष्ट प्रमुख कथानक रूढियो की सूची मात्र प्रस्तुत की जा रही है—

21. वैर-शोध-हेतु विकल्प-चिन्तन ।

22 वज्रमुद्रिका को अ गूठे तले पीस कर चूर्ण कर देना तथा सप्तताल भेदन द्वारा शौर्य प्रदर्शन से कन्या (रुक्मिणी) को आश्वत करना ।

23 चरण-शीर्ष प्रकरण—अर्थात् चरणो मे बैठ कर सूचना देने मे रुक्मिणी के दूतो पर प्रसन्न हो प्रद्युम्न को ज्येष्ठ पुत्र घोषित करना जबकि सत्यभामा के दूतो द्वारा पहले आने पर भी कृष्ण के सिराहने खडे हो जाने से इस सौभाग्य से वचित रह जाना ।

तुलनीय . महाभारत युद्ध में सहायता की प्रार्थना ले जाना दुर्योधन एव अर्जुन का क्रमश. कृष्ण के सिराहने और पैताने बैठाना और वरीयता का विवाह आदि ।

24 कृष्ण-रुक्मिणी का वन मे लता-मडप मे ही भ्रमर शुक आदि के साक्ष्य मे विवाह ।

25. बालक प्रद्युम्न के श्वास लेने से शिला का कपन ।

26 कान के स्वर्णपट्ट से यौवराज्य प्रदान ।

27 शत्रु (सिंहरथ)-पराजय के लिए प्रद्युम्न का चुनौती रूप मे पान का बीडा उठाना ।

28 विमान-रचना के अवसर पर प्रद्युम्न द्वारा वृद्ध नारद से परिहास ।

29 मायावी मच्छर आदि प्रकट कर भानु-पक्ष को क्षुब्ध करना ।

30 प्रद्युम्न द्वारा कमण्डलु मे वापी-जल शोषण और फिर कमण्डलु को उलट कर नगर मे जल-प्लावन ।

31. बाजार की वस्तुओ का स्वरूप विपर्यय-तेल को घी, घी को तेल इत्यादि कर देना ।

32 सत्यभामा की कुरूप दासी को रूप प्रदान ।

33 प्रद्युम्न का मायावी मेष रचना । मेष का वसुदेव से टक्कर मारना ।

34. प्रद्युम्न का माता रुक्मिणी के अनुरोध पर बाल रूप धारण कर बाल-लीलाए प्रदर्शित करना ।

35 प्रद्युम्न द्वारा मायामय रुक्मिणी की रचना ।

36 साम्ब और सुभानु मे कुक्कुट-युद्ध, गंध-परीक्षा, द्यूत-क्रीडा आदि प्रतिस्पर्द्धाओ मे प्रद्युम्न द्वारा साम्ब की सहायता से सुभानु-पराजय ।

37 कृष्ण का प्रसन्न होकर साम्ब को एक माह का राज्य प्रदान करना किन्तु पुत्र के दुष्कृत्यो के कारण उसे राज्य से निर्वासित करना ।

38. प्रद्युम्न का साम्ब को कन्या-रूप प्रदान कर सत्यभामा तथा भानु को छलना ।

39. कथा के विभिन्न पात्रो का जन्म धारण करना ।

40. नदिवधन मुनि द्वारा शास्त्रार्थ मे ब्राह्मण-पुत्रो को पराजित करना ।

41. पराजित द्विजपुत्रो द्वारा मुनि के वध की चेष्टा ।

42. यक्ष द्वारा द्विजपुत्रो को कील देना ।

43 ब्राह्मण-दम्पत्ति की प्रार्थना पर मुनि-कृपा से क्षेत्रपाल द्वारा कीलित द्विजपुत्रो का उद्धार ।

44. प्रद्युम्न के समक्ष नाग का यक्ष रूप मे वदल जाना ।

45 सैन्य-प्रयाण के समय शकुन या अपशकुन होना ।

46 पूर्वजन्म की स्मृति आते ही राजकुमारी का बीच स्वयवर से उठ कर दीक्षा ग्रहण कर लेना ।

47 विलीयमान मेघखण्ड या कमलकोष्ठवद्ध भ्रमर को देख कर राजा द्वारा राज्य और भोग से वैराग्य लेना ।

48 इन्द्र की आज्ञा पर कुबेर द्वारा समवसरण की रचना करना ।

इत्यादि पचीसो कथानक-रूढ़ियो की वृद्धि और की जा सकती है । ध्यान रहे कि इनम भवान्तरो तथा प्रद्युम्न के साहसिक अभियानो से सम्वन्धित फुटकर रूढियो का उल्लेख नही है । ऐसा होने से यह सख्या सौ से भी ऊपर चली जाएगी । यदि यह कहा जाए कि प्रद्युम्न-चरित का (वल्कि अन्याय चरित-काव्यो का भी) सारा ढाचा ही कथानक-रूढियो के ताने-वाने से वुना गया है तो भी अत्युक्ति नही होगी । प्रद्युम्न-चरित की अनेक कथानक-रूढियाँ विश्व के लोक-वार्ता साहित्य मे पायी जाती है और उनका प्रसार देश-देशान्तरो मे मिलता है । अमेरिका की इण्डियाना यूनिवर्सिटी के विश्वविश्रुत लोकतत्त्ववेत्ता स्टिथ टाम्पसन की प्रसिद्ध कृति 'मोटिफ इण्डेक्स ऑफ फाक लिटरेचर' के आधार पर, जिसे कथा-अभिप्रायो का विश्वकोष कहा जाता है, प्रद्युम्न-चरित मे पायी जाने वाली

29 विश्व-लोकवार्ता की कथानक-रूढ़ियो से साम्य

उन कथानक-रूढियो का सक्षिप्त निदर्शन नीचे प्रस्तुत किया जाता है, जिनसे साम्य रखने वाली रूढियाँ विश्व के लोक-साहित्य मे पायी जाती हैं—

1 प्रद्युम्न-चरित मे, कई पर्वत, गुहा या वापी के अधिवासी देवो का उल्लेख है बौद्ध जातक कथाओ तथा चीन और कोरिया की कथाओ मे भी इसी प्रकार के वन-वापी-गुहा-पर्वतवासी देवो तथा नायक से उनकी मैत्री और युद्ध का उल्लेख पाया जाता है।[153] यहूदियो की लोककथाओ मे भी पर्वत के अधिष्ठाता देवताओ का उल्लेख मिलता है।[154] हवाई द्वीप की लोककथा मे भी विशेष वन के अधिष्ठाता देवो का उल्लेख है।[155]

2. विजयार्द्ध पर्वतवासी नागराज युद्ध मे पराजित होने पर प्रद्युम्न के समक्ष यक्ष का रूप धारण कर खडा हो जाता है। दैवी या आसुरी शक्तियो द्वारा इस प्रकार रूप-परिवर्तन के दृष्टान्त चीनी लोककथाओ मे उपलब्ध है।[156]

3 प्रद्युम्न बंधन मे डाले गये वसत विद्याधर को मुक्त करता है। विद्याधर वसत प्रसन्न होकर उसे अपनी कन्या प्रदान कर देता है। इसी प्रकार प्राण-रक्षा के कारण कृतज्ञ नागो, देवो, यक्षो आदि से उसे अनेक विद्याओ तथा दुर्लभ भेंटो की प्राप्ति होती है। आयरिश तथा अन्य भारतीय लोक-कथाओ मे सरोवर आदि जलाशयों के रक्षक देवो का[157], ऐसे देवो या दैत्यो द्वारा धरोहर या खजाने की रक्षा करने का[158] तथा कृतज्ञतावश कथा-नायक की महायता करने का[159] उल्लेख पाया जाता है।

4 प्रद्युम्न को अपने साहसपूर्ण अभियानो मे अनेक मानवेतर दैवी-आसुरी या पाशविक प्राणियो (यक्ष, विद्याधर, वानर, नाग, हाथी, वराह, राक्षस, दैत्य आदि) से युद्ध करना पडता है। कथा नायको द्वारा ऐसे दैवी-आसुरी पात्रो से युद्ध और विजय-पराक्रम के सदर्भो से विश्व-लोक-कथा-साहित्य पटा पडा है।[160]

5 प्रद्युम्न द्वारा निर्मित मायावी वानर और अश्व सत्यभामा का उपवन उजाड देते है। विश्व-लोक-वार्ता मे ऐसे सर्वभक्षी और विनाशी पशु-प्राणियो के प्रचुर उल्लेख हैं।[161]

6 प्रद्युम्न काममुद्रिका देकर जाम्बवती को सत्यभामा का रूप प्रदान करता है। स्वय भीलवेष, वृद्ध-व्यापारी-वेष, क्षुल्लक-वेष या बालक रूप धारण करता है। कभी साम्ब को सुन्दर कन्या का रूप प्रदान करता है। मनुष्य के अन्य मनुष्य मे रूपान्तर का अभिप्राय लोक-वार्ता साहित्य मे एक व्यापक तथ्य है।[162]

7 प्रद्युम्न रुक्मिणी के द्वार पर सिंह रूप धारण कर हलधर के सेवको को भय से आतंकित कर देता है। मानव से पशु[163] तथा पशु से मानवरूप धारण करने की अनेक घटनाएं लोक-कथाओ मे पायी जाती हैं।

8 कृष्ण-रुक्मिणी तथा प्रद्युम्न-वैदर्भी जैसे छल-कपट पूर्ण अपहरणो तथा विवाहो की घटनाओ से लोक-कथा-साहित्य अच्छी तरह परिचित है ।[164]

9 नारद कृष्ण से रुक्मिणी के विवाह की भविष्यवाणी पहले ही रुक्मिणी की बुआ के समक्ष कर देते है । बुआ भी अतिमुक्तक मुनि द्वारा ऐसी ही भविष्य वाणी की सूचना देती है । ऐसी भविष्यवाणियो के अनेक सदर्भ लोक-कथाओ मे पाये जाते है ।[165]

10 द्वैपायन मुनि के शापवश द्वारका-विनाश होता है । ऐसे ही अभिशापो की अनक कथाएँ लोक-साहित्य मे प्राप्य हैं । सत का अपमान करने पर किसी नगर या राज्य का अथवा जाति का विनाश आयरलैण्ड की लोक-कथाओ मे भी आया है ।[166]

11 साम्ब-सुभानु द्यूत-क्रीडा मे प्रद्युम्न साम्ब का सहायक है । ऐसी ही द्यूत-क्रीडाओ की प्रतिस्पर्धा के उल्लेख लोक-कथाओ मे अनेक मिलते है ।[167]

12 प्रद्युम्न छलपूर्वक अपनी माता से प्रज्ञप्ति आदि तीन विद्याएँ प्राप्त करता है । छलपूर्वक रहस्य ज्ञात करने के सदर्भ लोक-कथाओ मे प्राय: आये हैं ।[168]

13. सत्यभामा अपने रूप पर गर्व करती है । इसीलिए उसे पद-पद पर नीचा देखना पडता है । 'घमडी का सिर नीचा' यह लोकोक्ति लोक-कथाओ मे पद-पद पर चरितार्थ होती है ।[169]

14. प्रद्युम्न-कथा के वैष्णव रूप मे मछली का पेट फाड़ने पर उससे बालक प्रद्युम्न निकलता है । मत्स्योदर से बालक के जन्म लेने या प्रकट होने की अनेक कथाएँ लोक-प्रचलित है ।[170]

15. ब्राह्मणपुत्र अग्निभूति तथा वायुभूति शास्त्रार्थ मे सात्यक मुनि से पराजय के दु:ख से मुनि का वध करने को तत्पर होने पर यक्ष द्वारा कील दिये जाते है । अन्यत्र भी लोक-कथाओं मे पात्र मुनि या सत के शापवश कीलित दिखाये गये हैं ।[171]

16 क्षुल्लकवेषी प्रद्युम्न को देखकर रुक्मिणी के स्तनो से दूध झरने लगता है जिससे वह पुत्र के आगमन को पहचान लेती है । स्तन-निर्झरण के प्रतीक से पुत्र की पहचान लोक-कथाओ का परिचित अभिप्राय है ।[172]

17 प्रद्युम्न-रुक्मिणी के केश लेने के लिए आयी हुई स्त्रियो के नाक-कान काट कर उन्हे उपहास का पात्र बनाता है । विप्रवेषी प्रद्युम्न द्वारा सत्यभामा को सौदर्य प्रदान करने का प्रलोभन देकर उसे कुरूप कर उसकी जग-हसाई करने का उल्लेख भी कई प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे है । रूप-विकृति द्वारा हास्य अथवा अपहास्य की सृष्टि लोक-कथाओ की प्रिय रूढि है ।[173]

प्रद्युम्न-कथा में पायी जाने वाली इन सार्वदेशीय कथानक-रूढ़ियों में से कुछ का संबंध तो आदिम लोक-मानस से है। उदाहरण के लिए प्रद्युम्न का छठे दिन सूतिकागृह से हरण मत्स्य के उदर से भी जीवित निकल कर आना (वैष्णव-परम्परा) अथवा शिलातले दाब दिये जाने पर भी जीवित रह जाना (जैन-परम्परा) यह विश्वप्रसिद्ध 'अनाथ बालक या बाल-देव' के कथा-अभिप्राय का ही रूप है। ईश्वर या देवता की बालरूप में अवतारणा सभी प्राचीन संस्कृतियों के साहित्य में मिलती है। भारत में कृष्ण जब भक्ति और काव्य के अलम्बन बने तो उन्हें तीन कथा-रूपों में ढाला गया।[174]—

30 'अनाथ बालक' या 'बालदेव'

(1) बाल-कथा : बालकृष्ण (2) काम-कथा : गोपीकृष्ण (3) वीर-कथा : भगवानकृष्ण

प्रद्युम्न के जीवन को भी वैष्णव पुराणों ने इन्हीं तीनों रूपों में ढाला गया है जब कि जैन-पुराण में प्रद्युम्न का काम-कथा वाला रूप उपेक्षित ही हो गया है जिस पर जैन धर्म की देशना का प्रभाव स्पष्ट है। इसी प्रकार वीर-कथा ने प्रद्युम्न का रूप वैष्णव-परम्परा में चतुर्व्यूह के अन्तर्गत व्यूह-अवतार की स्थिति तक पहुँच कर देवत्व को ही नहीं भगवत् रूप को छू गया है जब कि जैन-परम्परा ने वह 'चरम शरीरी' (उसी जन्म में मोक्ष पाने वाले) और निर्वाणप्राप्त की स्थिति तक पहुँचा है। इस पर भी जैन धर्म की ईश्वर सम्बन्धी कल्पना का ही प्रभाव है। व्यक्ति के रूप में ईश्वर का अवतार जैन धर्म को स्वीकार्य नहीं है। फिर भी, प्रद्युम्न के 'अनाथ किंतु अद्भुत दैवीशक्ति सम्पन्न बालक रूप' की अभिव्यक्ति दोनों ही परम्पराओं में रही है। प्रश्न उपस्थित होता है कि ईश्वरत्व (या देवत्व) से सम्पन्न दैवी पुरुषों के बाल-रूप की यह कल्पना इतनी रुचिकर और लोकप्रिय क्यों है और इसकी उद्भावना का रहस्य क्या है ? बालदेव के सभी विवरणों में कुछ सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं— यथा—बालक असहाय अथवा परित्यक्त अवस्था में मिलता है।

ग्रीक धर्मगाथा (माइथालोजी) में 'इडीपस' (Oedipus) की कथा भी बाल्य-काल में पर्वत पर अनाश्रित छोड़े जाने की कथा है। प्रद्युम्न-कथा-चक्र से इसका अद्भुत साम्य है। पर्वत पर बालक का अनाथ रूप से छोड़ा जाना, दूसरे देश के नरेश-दम्पति द्वारा पालन-पोषण तथा बालक द्वारा अद्भुत कृत्य सम्पन्न कर अपने राज्य को लौटना—ये सभी सूत्र समान हैं। अन्तर यही है कि इडीपस के हाथों अपने पिता की पराजय ही नहीं होती, वध भी होता है तथा काम-प्रस्ताव को अस्वीकार करने के स्थान पर मातृ-समागम भी होता है।[175] पितृ पराजय के स्थान पर पितृ-वध और मातृ-कामासक्ति के प्रतिकार के स्थान पर मातृ-समागम की घटना को छोड़ कर शेष सभी सूत्र समान हैं। मर्यादाबद्धता और अतिवादिता का यह अन्तर भूमियों

ग्रौर उनकी सस्कृतियो का ग्रन्तर है। ग्रीक-साहित्य मे ही, 'ग्रपोलो' ग्रौर 'हर्मीज' को भी बाल-रूप दिया गया है।

मिश्रदेश की पुराण-कथा मे 'होरम' की भी ऐमी ही ग्रवस्था है। होरस का पिता 'ग्रासिरिस' ग्रपने भाई सेन द्वारा एक कफन (सन्दूक) मे जिंदा वद कर समुद्र मे बहा दिया जाता है। सेत राजा बन जाता है ग्रौर ग्रोसिरिस की स्त्री 'ग्राइसिस' मारी-मारी फिरती है। उसी ग्रवस्था मे होरस का जन्म होता है। सेत द्वारा माता ग्रौर पुत्र वदी वना दिये जाते है। 'थोथ' से सूचना पाकर माता-पुत्र दोनो वदीगृह से निकल कर भाग जाते है ग्रौर इस ग्रवस्था मे होरस का पालन-पोपण एक सर्पिणी देवी 'उग्राजीत' (Uazit) करती है।

यूनान मे जिग्रस का पिता क्रोनस तो स्वय पुत्र का शत्रु है क्योकि भविष्यवक्ता ने बताया है कि उसका पुत्र ही उसे मारेगा। ग्रत जीग्रस का जन्म ग्रौर लालन-पालन गुप्त रूप से एक गुफा मे डिक्टीग्रन देवियो ग्रौर क्यूरेटी ने किया।

डायोनीसियस को गर्भ-काल के छह महीने की ग्रायु मे माता सेमेले की मृत्यु पर भस्म से उठाया जा कर पिता की जाघ मे तीन माह रहना पडा है ग्रौर कई देव-देवियो द्वारा उसका पालन हुग्रा है।

ग्रपोलो की मा लीटा को भी एक गुप्त स्थान पर ग्रपोलो को जन्म देना पडा है ग्रौर पुत्र के साथ मारे मारे फिरना पडा है।

भारत मे तो वालदेव के वर्णन वैदिक काल से ही मिल जाते है। इद्र को पैदा होते ही मा से पृथक् होना पडा है। इद्र की मा वृत्र ग्रथवा दानवो की वदिनी है। वह वहा से छिप कर किसी चमत्कार से इन्द्र को जन्म देने बाहर ग्रायी है।

कुमार (कार्तिकेय) जो मूलत वालदेव ही है, उनकी स्थिति भी कुछ विचित्र है। उनमे मूल रूप मे पिता-माता-हीनता का तत्व विद्यमान है। उन्हे क्रमश ग्रग्नि, ग्र गिरा, गगाजी ग्रौर सरपत ने गर्भ-रूप मे धारण किया। जब मा ही नही तो पिता कहाँ? यदि पितृत्व स्वीकार किया भी जाय तो मातृहीन तो मानना ही पडेगा। षड्मातृकाग्रो ने उनका पालन किया।

गणेश की स्थिति कुमार से विपरीत है। कुमार के माता नही थी, गणेश के पिता नही हैं। वन मे एकात गुहा मे वह त्यक्त माता के साथ रहता है।

जैन वृत्तान्तो मे हनुमान-जन्म भी मा की ग्रसहायावस्था मे हुग्रा है। उनकी मा ग्र जनी को सास-ससुर ने चरित्र-दोप से निकाल दिया। ऐसी ग्रसहायावस्था मे ही हनुमानजी का जन्म हुग्रा।

माधवानलकामकदला के एक सस्करण मे राजपुरोहित को शिवरेतस के सरपत ग्राधान से उत्पन्न माधव नदी के किनारे प्राप्त हुग्रा।

प्रह्लाद का पिता ही उसका शत्रु है। उसे पहाड से नदी मे गिराया गया, आग मे जलाया गया, अनेक प्राणघातक सकटो से भी वह बच गया।

उदयनकथा मे मृगावती को गरुड उडा ले गया। साधुओ के आश्रम मे पालन हुआ।

शकुतला को अप्सर उडा ले गयी। पति से वियुक्तावस्था मे ही भरत का जन्म हुआ।

राजा नल के जन्म के समय उसकी मा मझा को राजा प्रथम ने महल से निकाल कर चाडालो को सौप दिया। हीस के लता गुल्म मे ही नल का जन्म हुआ।

फिनलैण्ड की पुरानी 'कुल्लेर्वो' नामक वीर की गाथा मे इस वीर के पिता के समस्त वश को भाई द्वारा नष्ट कर दिया गया है। केवल वीर की माता बच रहती है। कुल्लेर्वो तीसरे ही दिन पालने से उतर पडता है और केवल तीन माह की आयु मे ही पिता का वैर चुकाने की सोचता है। उसे पहले एक बोतल मे बद कर लहरो मे फेक दिया जाता है। दो रातें बीतने पर वह बोतल से बाहर निकल लहरो पर बैठा ताम्रदण्ड लिए मछली का शिकार करता दीख पडता है। प्रह्लाद की भाति उसे भी आग मे से गुजरना पडता है।[176]

धर्मगाथा तथा लोक-कथा के बालवीर की कल्पना मे अद्भुत साम्य क्यो है?

31 धर्मगाथा का 'बालदेव' तथा लोककथा का 'बालवीर'

धर्मगाथा के 'बालदेव' तथा लोक-कथा के 'बालवीर' के सम्बन्ध मे गम्भीर विचार करते हुए सी० केरेन्यी ने जो लिखा है वह सक्षेप मे यो है—

'धर्मगाथा मे बालक ने भी स्थान पाया है। धर्मगाथा मे वह दैवी अवतार है। जीवन की सम्पन्नता और अर्थ इस चमत्कारी बालक मे प्रौढ दाढी वाले देवताओ से कम नही, उल्टे यह अधिक सम्पन्न और मर्मस्पर्शी है। बालदेव के आने पर वह चाहे होमर के हर्म विषयक गीत हो, जियस या डायोनीसियस की धर्मगाथा हो, या वर्जिल का फोर्थ एक्लोग हो, हमे लगता है कि हम उस धर्मगाथात्मक वातावरण से घिरे हुए है, जिसे आधुनिक मनुष्य 'परीकहानी' जैसा कहते हैं।'

वस्तुत प्रश्न यह है कि पृथक्-पृथक् देशो और सस्कृतियो मे बालदेव का धर्मगाथा रूप मूल मे एक-सा ही क्यो है?

बालदेवो के प्राचीन धर्मगाथिक सूत्र (mythologems) परी-कथा के वैलक्षण्य से परिवेष्टित है और वैलक्षण्य को प्रेरित करते है। बाल देव सामान्यत परित्यक्त पाया जाता है। असाधारण सकटो का उस पर आक्रमण होता है।. . . यूरोपियन तथा एशियाई लोकवार्ता मे अनाथ बालक के दोनो प्रकार के उदाहरण

मिल जाते हैं जिनमे या तो बालक माता-पिता रहित, अकेला, सकटापन्न है या जिसमे वह मा या धाय के साथ है। क्या यह अनाथ बालक जो हमे परी-कथा (लोक-वार्ता) मे मिलता है, बालदेव का पूर्वज नही? और क्या उसी क्षेत्र से धर्मगाथा मे नही लिया गया है?

लेखक देवकथाओ और लोक-कथाओ मे सर्वत्र असहाय अनाथ बालक को देख कर और शीघ्र ही उसी बालक में देवत्व या दानवत्व के दर्शन कर इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि असहायावस्था के लोक-चित्रो मे देवत्व-आरोप नही, यह देवत्व का ही कोई तत्त्व होना चाहिए। असहायावस्था = सबसे विलगता = निर्जनता = एकातता मान कर वह ऐसे एक बालक को ढूंढता है जो बालक है, निर्जन मे एकात मे है, और जिसमे देवत्व की विलक्षणता है। तब उसके सामने प्रलयकालीन पत्रशायित बालक-रूप नारायण का चित्र उभर आता है। वे इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि धर्मगाथाओ और लोककथाओ के ये बाल-वर्णन सृष्टि के आदि सर्जन के समय के दृश्य के अवचेतन के द्वारा पुन स्मरण या पुनरावलोकन है। महान मनोविज्ञान-वेत्ता जु ग की दृष्टि मे यह 'बाल अभिप्राय' सामूहिक मनोमूल के चेतना-पूर्वी बाल-पक्ष को प्रस्तुत करता है। बालक का धर्मगाथात्मक भाव किसी पूर्वगामी यथार्थ बालक की प्रतिकृति नही, किन्तु एक प्रतीक मात्र है। अर्धनारीश्वर की कल्पना मे, कुछ देवताओ मे बाल-रूप मे ही अनन्त यौवन फूट पडने की कल्पना मे तथा यूनानी सस्कृति मे अप्सरारूप बालक की आदर्श सौन्दर्य के प्रतीकत्व की कल्पना मे—सर्वत्र केरेन्यी द्वारा निर्दिष्ट 'आदिमूलक सत्ता की द्वियौनवर्ती हेमोफ्रोडिटिक विशेपता' ही प्रतिफलित दीख पडती है। जु ग के कथनानुसार दैवीतत्व अनाथ मानवीय बालक मे जोडा नही गया है बल्कि अनाथ अद्भुत बालक दैवीतत्त्व का ही व्यक्त एक अन्य रूप है। हिन्दुओ की आदि-सृष्टि मूलक बाल-कल्पना से उन्होने इसकी और भी पुष्टि की है। मार्कण्डेय ने समुद्र मे तैरते हुए बाल-रूप नारायण को देखा और उनके उदर मे प्रवेश करने पर उन्हे त्रैलोक्य देखने को मिला। जुंग ने इसी की पुष्टि मे भारतीय दर्शन की उस अनुभूति का उल्लेख किया है जिसे 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' जैसी शब्दावली मे प्रकट किया गया है। बालकउच्छिन्न, परित्यक्त, दीन, असहाय, अणु से भी अणु, क्षुद्र से भी क्षुद्र, फिर भी, अद्भुत पराक्रमकारी, मायावी कृत्यो का कर्ता महतोमहीयान्। किन्तु डा० सत्येन्द्र का आग्रह है कि इस समस्त (धर्मगाथिक) भाव-रूप के मूर्तांश को ग्रहण किया जाय तो यह 'विशुद्ध आदिमानवीय प्रथम भावोपलब्धि के सिवाय और कुछ भी नही है। समस्त दैवितत्त्व ही लोकमानस की अनुभूति है और लोकमानस के प्रथम दृश्य-ग्रहण और भावोद्रेक का ही परिणाम है। इसे लोकमानस के मनोविज्ञान से ही समझा जा सकता है, केवल मनोविश्लेपण से नही।'[177] सचाई तो यह है कि धर्मगाथा, सृष्टिप्रक्रियागत पार्थिव ऐतिह्य तथा लोकमानसविज्ञान तीनो दृष्टिकोणो के त्रिपार्श्व (प्रिज़्म) अध्ययन से ही ऐसे 'कथा-अभिप्रायो' का वास्तविक अर्थ सम्यकतया आलोकित हो सकता है।

ध्यान से देखा जाए तो धर्मगाथाओ के मूल मे भी लोक-मानस ही है क्योकि साहित्यिक मेधा लोक-क्षेत्र से ही कहानिया लेती है। यही कारण है कि लोकवार्ता, लोकतत्त्व अथवा लोकाभिव्यक्ति की भूमि पर ही समस्त पुराण-साहित्य, तथा रामायण महाभारत जैसे महान जातीय (राष्ट्रीय) काव्यो का ढाचा खडा है। अत

32. महाभारत तथा पुराणों में प्रद्युम्न-कथा-रूढियों का मूल

महाभारत तथा पुराणो मे भी इन कथानक-रूढियो का मूल पाया जाना स्वाभाविक ही है। प्रद्युम्न-कथा के विषय मे यह और भी सत्य है क्योकि उसके कथा-रूप का आदान ही मुख्यत महाभारत तथा पुराण-साहित्य से हुआ है। महाभारत स्वय कहता है कि जैसे भोजन के बिना शरीर धारण करना सम्भव नही वैसे ही इस इतिहास का आश्रय लिए बिना कोई कथा लिखना सम्भव नही।

महाभारत मे हमे मायामयरथ- निर्माण, मायामयी कन्याओ का निर्माण तथा माया से कन्याओ का अपहरण, मायामयी गुफा से प्रद्युम्न के युद्ध-शौर्य-प्रसगो का सम्बन्ध, अलौकिक विद्याओ की प्राप्ति (तामसी विद्या की प्राप्ति चित्रलेखा को नारद से होती है जो सबको मोह मे डालने वाली है) प्रद्युम्न-यक्ष वैर,[178] द्यूत-विद्या की प्रतिस्पर्द्धा का प्रचलन, अश्व-सचालन द्वारा व्यक्ति के कौशल की परीक्षा, दिव्यास्त्रो की प्राप्ति, यक्षो और राक्षसो से मानव वीरो का युद्ध, यक्ष-मानव वार्तालाप, दैत्यो और दानवो द्वारा मायारूप धर मायावी अस्त्रशस्त्रो से युद्ध[179] इत्यादि कथानक-रूढिया मिलती है, जिनका रूप प्रद्युम्न-कथा मे भी है। किसी जीव के नाना योनियो मे जन्म धारण कर पापपुण्य का कुफल-सुफल भोगने की कथानकरूढि भी महाभारत मे अनेक स्थलो पर प्रयुक्त हुई है उदाहरणार्थ एक कीट का व्यासजी के दर्शन कर क्षत्रिय और ब्राह्मण योनि धारण कर ब्रह्मत्व प्राप्ति[180] महाभारत मे वर्णित है। 'अद्भुत' नामक अग्नि की उत्पत्ति सम्बन्धी कथानक से प्रद्युम्न-कथा के अनेक सूत्रो की सगति सिद्ध होती है।[181] विलुप्त या वियुक्त पुत्र की दीर्घकाल पश्चात् आकस्मिक प्राप्ति के भी अनेक सदर्भ है। एक ऐसा ही उल्लेख वीरद्युम्न नामक राजा के अपने एकमात्र विलुप्त पुत्र भूरिद्युम्न की खोज में महर्षि तनु की शरण मे जाने तथा महर्षि द्वारा अपने तप के प्रभाव से तुरत पुत्र को वहाँ प्रकट कर देने का है।[182] सपत्नियो मे परस्पर ईर्ष्याभाव होने की कथानकरूढि के पारिजात-हरण प्रकरण मे पाये जाने का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

33. प्राकृत-अपभ्रंश काव्यो मे प्रद्युम्न-कथा-रूढ़ियाँ

प्राकृत और अपभ्र श के काव्यो मे भी प्रद्युम्न-चरित मे प्राप्य कथानक रूढियो के दर्शन होते हैं। कवि 'कोऊहल' कृत महाराष्ट्री प्राकृत के सरस प्रेम-काव्य 'लीलावई कहा' (र० का० 8 वी सदी)[183] मे 'शाप-रूढि' का प्रयोग हुआ है। एक दिन शारदाश्री (तीन नायिकाओ मे से एक नायिका महानुमति की मौसी) गणेश की नृत्यमुद्रा का उपहास

करती है जिससे गणेश क्रुद्ध होकर उसे पशु होने का शाप देते है। वह पशु होकर वन मे रहने लगती है। इसी कथा मे 'जादुई अ गूठी' का अभिप्राय भी प्रयुक्त हुआ है। प्रद्युम्न-चरित मे जादुई अ'गूठी (काम-मुद्रिका) रूप-परिवर्तन के कार्य मे प्रयुक्त हुई है जबकि 'लीलावई कहा' मे केरलनरेश माधवानिल द्वारा नायिका महानुमति को दी गयी जादुई अ'गूठी मे सर्पो से रक्षा करने का अद्‌भुत गुण है। प्राकृत भाषा के काव्य 'वसुदेवहिण्डी' मे भी अनेक कथानकरूढियाँ समान है।

पुष्पदन्त कृत 'णायकुमारचरिउ'[187] (र० का० सन् 966-68 ई०) मे नायक का माताओ के सपत्नीद्वेष के कारण राजधानी से निर्गमन, वन-पर्वतो मे असहाय भ्रमण, शत्रु के आक्रमण से स्वजन (मामा) की रक्षा, भाइयो के ईर्ष्या-द्वेष, सगीत-नृत्यादि कलाओ द्वारा नारी-सम्मोहन, भवान्तर वर्णन, अलौकिक विद्याओ की प्राप्ति, चित्र-दर्शन से नारीरूप पर आसक्ति और विवाहेच्छा, नायक का सौन्दर्य देखकर पुर-नारियो की व्याकुलता, नाग इत्यादि मानवेतर प्राणियो से नायक की मैत्री या युद्ध तथा शौर्य-पराक्रम द्वारा नायक को नाना कन्यारत्नो की प्राप्ति-इत्यादि अनेक सदृश कथा-रूढियाँ मिलती हैं। इसी कवि के 'जसहरचरिउ' (र० का० लगभग972 ई०)[188] मे भवान्तर वर्णन, अवैध काम-सम्वन्ध से अद्‌भुत वैराग्य (रानी अमृतमती का दरिद्र कुबडे से प्रेमालाप देख राजा यशोधर वैराग्य लेना चाहते है), आकाश-गामिनी आदि अलौकिक विद्याओ की सिद्धि तथा अ त मे नायक और परिजनो द्वारा वैराग्य और दीक्षा-ग्रहण इत्यादि रूढियाँ प्रयुक्त हुई है। इसी प्रकार, वालक का गर्भावस्था अथवा अल्पायु मे हरण तथा इतर व्यक्तियो द्वारा लालन-पालन, पिता-पुत्र युद्ध तथा नायक के रूप को देख पुर-नारियो का काममोहित होना इत्यादि कथानक रूढिया मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' (र० का० लगभग 1050 ई०) मे भी मिलती हैं। एक दुष्ट हाथी गर्भावस्थायुक्त रानी को भगा ले जाता है जहाँ करकण्डु का जन्म दन्तीपुर के पास शमशान मे होता है। दतीपुर का शासक वनने पर करकण्डु का अपने पिता चम्पानगरी के नरेश धाडीवाहन से युद्ध होता है।[189]

कविवर साधारण सिद्धसेन सूरि रचित 'विलासवई कहा' (र० का० वि० स० 1123) मे, जो प्राकृत ग्रथ 'समराइच्चाकहा' से प्रेरित होकर लिखी गयी है, सनत्कुमार और विलासवती की प्रेम-कथा वर्णित है जिसमे कथा-नायक सनत्कुमार को समुद्र-प्रवास मे नौकाभग के कष्ट झेलने पड़ते है। अलौकिक विद्याओ की सिद्धि और विद्याधरियो के सयोग द्वारा उसे अनग-रति की प्राप्ति होती है।[190] हरिभद्रकृत 'सणयकुमारचरिउ' (र० का० वि० स० 1236) मे भी नायक के दैववशात् अज्ञात स्थान मे पहुच कर शौर्य प्रदर्शित करने और साहसिक अभियानो मे सफल हो कर विजय प्राप्त करने की कथा-रूढि है, अ तर यही है कि प्रद्यु म्न-चरित मे नायक प्रद्युम्न का हरण पूर्वभव–वैरवशात् एक राक्षस के हाथो होता है जवकि सनत्कुमार को उसका अश्व ही अज्ञात स्थानो मे पहुँचा देता है।[191] श्रीधर कवि (विक्रम की 12 वी-13 वी

सदी) कृत 'पासणाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ', ''वड्ढमाणचरिउ', 'भविसयत्तचरिउ' का भी परवर्ती कवियो पर कथानक-रूढि की दृष्टि से पर्याप्त प्रभाव है।

34 'जोसेफ एण्ड पोटिफर्सवाइफ' तथा अन्य कथानक-रूढ़ियां

विश्वप्रसिद्ध कथानक रूढियो मे से एक अन्य रूढि 'प्रेम-निवेदन मे असफल नारी का प्रेम-पात्र से प्रतिशोध' भी प्रद्युम्न-चरित की प्रमुख कथानक-रूढि है जो उसके घटना-चक्र मे प्रमुख मोड प्रस्तुत करती है। ब्लूमफील्ड ने इस रूढि का नाम 'जॉसेफ एण्ड पौटिफर्स वाइफ' रखते हुए 'कथासरित्सागर', पार्श्वनाथ-चरित', 'समरादित्यचरित', राल्स्टन द्वारा अनूदित 'टिबेटन टेल्स' तथा अनेक लोक-कथा-संग्रहो मे इसकी विद्यमानता सूचित की है।[192] प्रद्युम्न-चरित मे कनकमाला की प्रद्युम्न पर आसक्ति, प्रतिशोध के लिए त्रियाचरित्र और पति-पुत्रो को प्रोत्साहित करने की कथा इसी रूढि को व्यंजित करती है। ब्लूमफील्ड द्वारा विवेचित अन्य रूढियो मे प्रस्तर मूर्तियो का जीवित हो जाना (कीलित द्विजपुत्रो-अग्निभूति, वायुभूति को मुनिकृपा से क्षेत्रपाल द्वारा पुनरुज्जीवित कर देना) यज्ञ, तप, फल आदि प्रतीक से सतानोत्पत्ति (कैटभ के जीव द्वारा प्रदत्त हार को धारण करने से जाम्बवती के साम्ब-जन्म होता है), शुभ अथवा अशुभ शकुन (युद्ध मे सैन्य प्रयाण के समय कालसवर और कृष्ण को अशुभ शकुन होते हैं), एक जन्म के वैरी (मधु-हेमरथ) का अन्य जन्मो मे भी वैरी (प्रद्युम्न-धूमकेतु) होना, नायक द्वारा छल से जादुई वस्तु प्राप्त करना (प्रद्युम्न द्वारा छल से विद्या-प्राप्ति), कृतज्ञ जन्तु (वमन विद्याधर) द्वारा नायक (प्रद्युम्न) को विलक्षण, वस्तु वरदान या विद्या (कन्यारत्न भी) भेट मे देना इत्यादि रूढिया प्रद्युम्न-चरित-काव्यो मे पायी जाती है। कथा-सरित्सागर मे कर्पूरिका शिव द्वारा प्रदत्त पूर्वजन्म की स्मरणशक्ति के आधार पर पति की निष्ठुरता का स्मरण कर विवाह से इन्कार कर देती है।[193] टानी द्वारा अनूदित जैनकथाकोश मे देवपाल की रानी लकडी का गट्ठर लिये कापालिक को देख कर मूर्च्छित हो जाती है क्यो कि पूर्व जन्म मे वह उसका पति था। इसी प्रकार हेमचन्द्र द्वारा रचित परिशिष्टपर्वन मे एक वन्दर अपनी प्रिया को रानी रूप मे देखकर रोने लगता है और रानी को भी पूर्वजन्म की स्मृति हो आती है। सिंहकृत 'पज्जुण्ण चरिउ' मे स्वयवर के लिए जाती हुई राजकन्या पूर्वजन्म की स्मृति आने पर बीच स्वयवर से उठकर दीक्षा ग्रहण कर लेती है। अज्ञान मे अपराध और ऋषिमुनि का शाप-यह कथानकरूढि 'कथासरित्सागर' और कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' मे प्रयुक्त हुई है। प्रद्युम्न-चरित मे पायी जाने वाली अनेक कथा-रूढियां 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है, यथा-अज्ञान मे अपराध और शाप, यक्ष, नाग आदि द्वारा गडे धन की रक्षा, फल या प्रतीक द्वारा सन्तानोत्पत्ति, अतिप्राकृतजन्म, मृत व्यक्ति या समूह (सेना आदि) का जीवित हो उठना, चित्र-दर्शन और गुण-श्रवणजन्य आकर्षण,

मदिर मे पूजा के लिए आयी कन्या का हरण, दैव द्वारा पूर्वनिश्चित विवाह-सम्बन्ध इत्यादि ।[194] मध्ययुगीन काव्य और साहित्य मे प्रद्युम्न-चरित्र मे पायी जाने वाली अनेक कथानक रूढियो की भरमार है ।

इस विवेचन के उपरान्त कहा जा सकता है कि प्रद्युम्न चरित मे जिन कथानक-रूढियो का प्रयोग हुआ है उनमे सभावना या कल्पना पर आधारित, अलौकिक और अप्राकृत शक्तियो से सम्बन्धित, अतिमानवीय-कृत्यो से सम्बन्धित, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक सयोग और भाग्य मे सम्बन्धित, शरीर वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित तथा सामाजिक रीति-रिवाजो से सम्बन्धित, तात्पर्य यह कि सभी प्रकार की रूढियाँ है जिनकी आवृत्ति महाभारत और पुराण युग मे प्रारम्भ कर प्राकृत, अपभ्रंश-काल से होती हुई मध्यकाल तक की काव्यसर्जना मे दीख पडती है तथा जिनमे से अनेक कथानक-रूढियाँ सार्वदेशीयता और आदिमानव की चेतना को प्रतिबम्बित करती है ।

35 निष्कर्ष

(घ) प्रद्युम्न-चरित्र में अद्भुत तत्त्वों की योजना:

प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे 'अद्भुत' का शास्त्रीय दृष्टि से परिपाक न होने पर भी काव्य मे आद्योपान्त 'अद्भुत' तत्त्व की योजना हुई है । यह अद्भुत तत्त्व इस काव्य धारा का सर्वातिशायी तत्त्व है इसे अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है । प्रद्युम्न साम्ब के जन्म, प्रद्युम्न के अपहरण, प्रद्युम्न के शौर्य-प्रसग और क्रीडा-कौतुक सव अद्भुत तत्त्व से ओतप्रोत है । नारद के साथ परिहास के समय अद्भुत विमान रचना, भानु का उपहास करने समय मायावी अश्व का निर्माण तथा वृद्ध अश्व-व्यापारी का रूप धारण करना; सत्यभामा-पक्ष के उपहास के लिए स्त्रियो के नाक-कान काट कर फिर उन्हे जोड देना, अद्भुत भोजन-विलक्षणता तथा मायावी मच्छर आदि उत्पन्न कर देना इत्यादि व्यापार हास्यरस प्रसगो मे अद्भुत तत्त्व के अभिनिवेश के सूचक है । प्रद्युम्न का बालक रूप धारण कर बाल-लीला प्रदर्शित करना वात्सल्य के प्रसग मे अद्भुत तत्त्व की योजना को प्रकट करता है । वन मे अकस्मात् रति या यक्ष-कन्या जैसी सुन्दरी की प्राप्ति शृगारिक प्रसग मे अद्भुत के निरूपण को इ गित करती है । मायासैन्य की रचना, मृत सैन्य को पुनरुज्जीवित कर देना, वारुणास्त्र, पवनास्त्र आदि शस्त्रो का प्रयोग शौर्य प्रसगो मे अद्भुत की स्थिति का सूचक है । मृत लाशो के भक्षण के लिए लोमडियो का पिशाच-प्रेतादि को निमन्त्रित करना इत्यादि वीभत्स परिस्थिति मे अद्भुत के सहचारीत्व का द्योतक है । इन्द्र की आज्ञा पर कुवेर का प्रद्युम्न मुनि

36 अद्भुत तत्त्व की सर्वातिशायिता

के लिए अलौकिक समवसरण की रचना करना निर्वेदपूर्ण या शांति प्रसग मे अद्भुत के नियोजन का उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि हास्य, वात्सल्य, शृगार, वीभत्स, शान्त किसी भी रस से सम्बन्धित परिस्थिति या प्रसग हो—सर्वत्र अद्भुत की ही विद्यमानता है।

प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे अद्भुत तत्त्व की योजना निम्नलिखित रूपो मे हुई है —

37. अद्भुत की योजना के विविध रूप

अद्भुत पात्रो के रूप मे (यथा यक्ष, विद्याधर आदि)

(आ) अद्भुत पदार्थो के रूप मे (यथा प्रज्ञप्ति आदि विद्याए, आकाशगामी पादुका, काममुद्रिका, अग्निशामक वस्त्र इत्यादि)

(इ) अद्भुत कार्य-व्यापारो के रूप मे (यथा प्रद्युम्न द्वारा नाना रूप धारण करना, बालक प्रद्युम्न के श्वास से शिला का कापना, स्त्रियो के नाक-कान काट पुन जोड देना, मायासैन्य रचना, मृतसैन्य को पुन जीवित करना इत्यादि)

(ई) अलकारो की मूलवर्ती अद्भुत कल्पना के रूप मे (यथा युद्ध-वर्णन प्रसग मे कबधो का नाचना, योद्धाओ के कवच टूट जाना इत्यादि)।

अद्भुत तत्त्व की सर्वातिशायिता विस्मयजनक नही है क्यो कि भवभूति ने जहाँ करुण रस को प्रधान मानकर अन्य रसो को उसका निमित्तमूलक भेद माना था, वही, आचार्य विश्वनाथ ने अपने प्रपितामह नारायण का अनुगमन करते हुए अद्भुतरस को ही प्रधान रस मानते हुए अन्य रसो का समावेश उसके अन्तर्गत किया है।[195] चित्तविद्रुति रस का सार है और चमत्कार चित्तविद्रुति का सर्वाधिक प्रेरक। अलकारो से भी अद्भुततत्त्व का मौलिक सम्बन्ध है क्योकि अलकार-विधान के जितने भी प्रेरक और साधक तत्त्व औपम्य, वक्रता या अतिशयता है, अद्भुत का अभिनिवेश उन सभी मे है। अद्भुत तत्त्व के विराट फलक पर स्थित होने के कारण ही अलकारो के काव्यप्राणत्व की सिद्धि करते हुए रस को भी 'रसवत्' अलकार के रूप मे अन्तर्भुक्त किया जा सका। अत अलकारो के रूप मे अद्भुत की विवेचना अनावश्यक है क्योकि अलकारो का सारा ढाचा ही अद्भुत तत्त्व पर खडा है। अद्भुत तत्त्व के

शेप तीनो रूपो का सक्षिप्त निदर्शन यहा प्रस्तुत है—
प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे जिन अद्भुत पात्रो की अवतारणा है उनमे यक्ष, असुर, नाग इत्यादि प्रमुख हैं। 'यक्ष' जाति की कल्पना वेदोत्तरकालीन प्रतीत होती है।

38 अद्भुत पात्र—यक्ष, विद्याधर, गधर्व, राक्षस, नाग, असुर, दैत्य, दानव आदि

यद्यपि ऋग्वेद मे 'यक्षन्' शब्द (नपुसक लिग मे) आया है किन्तु कीथ तथा मैकडोनल महाशय की सम्मति मे उसका अर्थ 'जादुईशक्ति' है।[196] व्युत्पत्ति की दृष्टि से यक्ष शब्द का अर्थ जादुईशक्ति का अधिष्ठाता होता है। अत यक्ष सम्बन्धी मूल कल्पना विद्याधर से मिलती-जुलती है क्योकि 'विद्याधर' का अर्थ भी अलौकिक विद्याओ को जानने वाला है। एक अन्य व्युत्पत्तिगत अर्थ (यक्षयते पूज्यते यक्ष+घञ) पूजा तथा यज्ञ से भी इनका सम्बन्ध जोडता है। (द्रष्टव्य. चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा सपादित सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ) यक्षो की भाति गुह्यक भी हैं। ये भी कुबेर के अनुचर है तथा पर्वतगुहावासी और गड़े धन के रक्षक के रूप मे चित्रित किये गये हैं। प्राचीन पालि-साहित्य मे यक्षो का महत्त्व लोककथाओ मे अधिक था किन्तु 'बृहत्कथा' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि लोकप्रियता की दृष्टि से यक्षो का स्थान परवर्ती लौकिक-साहित्य में विद्याधरो ने ग्रहण कर लिया। सम्पर्क, साहचर्य और वैवाहिक सम्बन्धो की दृष्टि से अलौकिक शक्तिमान प्राणियो मे 'विद्याधर' ही मनुष्य के निकटतम प्रतीत होते हैं। इन्हे हवा मे उडने और मनचाहे रूप धारण करने आदि की अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त थी। विमलसूरि द्वारा प्राकृत मे रचित 'पउमचरिउ' मे, रामायण मे वर्णित राक्षस, वानर, यक्ष आदि जातियो को विद्याधरो के ही विभिन्न वश या जातियाँ कहा गया है। इससे ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों मे रचित कथा-साहित्य मे विद्याधरो का महत्त्व असदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाता है। यद्यपि सामान्यतया यक्ष इतने मानव-विरोधी नही है जितने राक्षस तथापि मानव-प्रेमी 'राक्षसो और मानवघाती यक्षो के भी दृष्टान्त उपलब्ध होते है। अथर्ववेद में कुबेर के प्रजाजनो को 'पुण्यजन' कहा गया है। इससे मानव की उनके प्रति मैत्री सूचित होती है।[197] प्रारम्भ मे 'यक्षो' और 'राक्षसो' का महत्त्व समान था किन्तु कालान्तर मे राक्षस सम्बन्धी कल्पनाएँ अधिक प्रमुख होती गईं इसका कारण महाकाव्यो (रामायण तथा महाभारत) का प्रभाव प्रतीत होता है। रामायण मे राम के शत्रु के रूप मे रावण की कल्पना तथा महाभारत मे भीम द्वारा हिडिम्बा राक्षसी से विवाह और घटोत्कच-जन्म आदि कल्पनाओ के कारण लोक-कल्पना मे राक्षस अधिक प्रमुख हो चले।

देवकोटि की विभिन्न जातियो मे 'गधर्व' सबसे प्राचीन प्रतीत होते है। ऋग्वेद मे 'गधर्व' शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु वहाँ एक ही गंधर्व का आशय प्रतीत होता है, समूची जाति का नही। बाद मे वे ऐसी अतिमानवीय जाति के प्राणी के रूप मे

वर्णित किये गये जो स्त्रियो के प्रेमी और उनके सम्मोहन और वशीकरण की कला मे पारगत थे। महाभारत मे गधर्वो के राजा अगारपर्ण या चित्ररथ को यक्षाधिपति कुबेर का मित्र कहा गया है। कुबेर के उद्यान का नाम भी चैत्ररथ है। वे इन्द्र के स्वर्ग मे रहने वाले अलौकिक गायक हैं। उन्ही से गान्धर्व (गान-विद्या) शब्द का प्रचलन हुआ। स्वर्ग की परियाँ-अप्सराएँ ही गंधर्व-पत्निया है। वे इन्द्र द्वारा ऋषि-तप-भग के लिए प्रयुक्त की जाती रही हैं। मेनका अप्सरा के सयोग से विश्वामित्र ने शकुन्तला को जन्म दिया और कालिदास की नाट्यकृति 'विक्रमोर्वशीयम्' मे विक्रम नृप का उर्वशी नामक अप्सरा से प्रणय प्रसग वर्णित है। महाभारत के हरिवश पर्व मे लिखा है कि कश्यप से खशा मे यक्ष और राक्षस तथा कश्यप से ही अरिष्टा मे गधर्व उत्पन्न हुए। उसी मे यह भी लिखा है कि यक्षो ने कच्चे पात्र मे अन्तर्धान होने की अक्षय विद्या को दुहा था। इस अन्तर्धान विद्या से ही यक्ष अपनी जीविका चलाते है।[198] एक कल्पना यह भी है कि ब्रह्माजी ने नासिका के अग्रभाग से विचित्र वेषधारी सहस्रो गधर्वो की उत्पत्ति की जो नृत्य, वाद्य, सामगान मे निपुण थे।[199] 'विष्णु-पुराण' के अनुसार ब्रह्माजी के शरीर से गान करते हुए उत्पन्न होने के कारण ही वे 'गधर्व' कहलाये। अन्यत्र उल्लेख है कि ब्रह्मा ने समस्त गधर्वो के लिए गधर्वशास्त्र और ब्राह्मणो के लिए साम-गान के विधान की रचना की।[200] यक्षो का सम्बन्ध भक्षणप्रवणता से भी है। विष्णुपुराण मे लिखा है कि ब्रह्माजी ने क्षुधाग्रस्त सृष्टि की रचना की तो कुरूप और दाढी मूँछ वाले उत्पन्न होकर ब्रह्माजी को ही खाने दौडे। जिन्होने कहा—'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करो' 'वे राक्षस कहलाये, जिन्होने कहा, 'खाएँगे', वे भक्षणेच्छा वाले 'यक्ष' हुए।[201] ऐश्वर्यशाली कामदेव का गधर्व और अप्सराओ के ऊपर अभिषेक कर दिया।[202] इस प्रकार कामदेव गधर्वो-अप्सराओ के स्वामी है और प्रद्युम्न कामदेव के अवतार। इसलिए प्रद्युम्न-चरित्र मे यदि गधर्वो, अप्सराओ और यक्षो की भूमिका है तो स्वाभाविक ही है।

प्रद्युम्न-चरित्र के वैष्णवपुराण रूप मे भी गधर्वो का उल्लेख आया है। हरिवश-पर्व मे प्रद्युम्न के गाधर्व-विद्या, विशेषत छालिक्यगान मे पटु होने के वर्णन का उल्लेख किया जा चुका है। प्रद्युम्न-चरित्र के जैन रूपान्तर मे भी प्रद्युम्न गायनविद्या सम्बन्धी कौशल का प्रदर्शन वैदर्भी-हरण प्रसग मे करते है किन्तु वे ऐसा डोम या मातग वेश मे ही करते हुए चित्रित किये गये है। फिर भी गधर्व-प्रभु कामदेव के अवतार प्रद्युम्न के चरित्र में गानपटुता का इससे परोक्ष प्रभाव तो ध्वनित होता ही है। प्रद्युम्न-चरित्र काव्यो मे अप्सराओ की विशेष कर्तृत्वपूर्ण भूमिका नही है। केवल नारी रूप के प्रति जिज्ञासा विषयक वर्णन—रूढि मे ही रुक्मिणी, रति, यक्ष-कन्या वसत-सुता आदि के सौन्दर्य के प्रति विस्मय प्रकट करते हुए कहा गया है—'की यह आछरि की वणदेइ' इत्यादि।

प्रद्युम्न-चरित के जैन सस्करण मे 'यक्ष' की अपेक्षाकृत अधिक भूमिका है। द्विजपुत्र अग्निभूति-वायुभूति शास्त्रार्थ मे सात्यकि मुनिराज से पराजित हो उन्हे रात्रि के समय तलवार से मारना चाहते है कि उन्हे यक्ष द्वारा खड्गहस्त मुद्रा मे ज्यो का त्यो कील दिया जाता है। मुनि की कृपा से फिर वे मुक्त होते है। इस प्रसग में 'यक्ष' को सात्यकि मुनि द्वारा 'क्षेत्रपाल' कह कर सम्बोधित किया जाता है। 'यक्ष' से भी अधिक 'विद्याधर' शब्द का प्रयोग और गौरव जैन प्रद्युम्न-चरित परम्परा मे दृष्टिगत होता है। प्रद्युम्न को मनोवेग नामक विद्याधर से हार और इद्रजाल तथा वसत नामक विद्याधर से एक कन्या तथा नरेन्द्रजाल की प्राप्ति होती है। विद्याधर 'वायु' तथा उसकी पत्नी 'सरस्वती' से उत्पन्न 'रति' भी उसे भेट मे मिलती है।[203] यही नही कालसवर तथा सिहरथ को भी 'विद्याधरो का राजा' तथा 1200 विद्याओ का स्वामी कहा गया है[204] तथा सत्यभामा भी 'सुकेतु' नामक विद्याधर नरेश की ही पुत्री है।[205] उसके दोनो पुत्रो भानु और सुभानु के विवाह विद्याधर-कन्याओ से होते है।[206] वैष्णव परम्परा मे 'शबर' को 'असुर' या 'दानव' कहा गया है।[207] जबकि जैन-परम्परा मे प्रद्युम्न-हर्ता धूमकेतु को भी 'यक्ष' कहा गया है।[208] जैन-परम्परा मे वैष्णवप्रभाववश प्रद्युम्नहर्ता (धूमकेतु) को असुर या दानव भी कह दिया गया है।[209]

इस प्रकार स्पष्ट है कि विमलसूरि के 'पउमचरिउ' से ही दैत्य, दानव, असुर आदि निदित पात्रो को यक्ष और विद्याधर के रूप मे गौरव और मानवमैत्री-भाव से मडित करने की जो परम्परा चली थी वह प्रद्युम्न-चरित-काव्यो मे उत्तरोत्तर बढती ही गयी है। यक्ष मानव के हितसाधक और विघ्ननिवारक है यह विचार वैष्णव परम्परा मे भी है। कामनाओ के अनुसार विभिन्न देवताओ की पूजा का प्रस्ताव करते हुए भागवतकार का कहना है कि बाधाओ से रक्षार्थ यक्षो की आराधना करनी चाहिए। यहाँ उन्हे 'पुण्यजन' भी कहा गया है।[210] यक्षो के क्षेत्रपालत्व का वर्णन वैष्णव परम्परा मे भी है। मत्स्यपुराण मे उल्लेख है कि अपनी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान शिव, पूर्णभद्र नामक यक्षराज के पुत्र हरिकेश यक्ष को काशी का 'क्षेत्रपाल' होने का वर देते है।[211] क्षेत्रपाल किसी क्षेत्र या स्थान का अधिष्ठाता देवता होता है। प्रकृति के हर पदार्थ-वृक्ष, पर्वत, नदी, तडाग आदि का अपना निश्चित देवता होता है, इस लोक-विश्वास मे ही क्षेत्रपाल देवता की कल्पना का मूल है। ऐसे क्षेत्रपालो के उल्लेख जैन-साहित्य मे प्रचुरता से उपलब्ध है।[212] श्वेताम्बरग्रथ 'निर्वाणकालिका' तथा 'आचार दिनकर' मे क्षेत्रपालो के रूप और आकृति का वर्णन है।[213] जैन आगम के प्राचीनतम ग्रथो मे भी यक्ष के सम्बन्ध मे बहुत कुछ कहा गया है। 'वियाहा-पण्णत्ति' (व्याख्याप्रज्ञप्ति) मे यक्ष एक शक्तिशाली देवता के रूप मे कल्पित है। 'नायधम्मकहाओ' (ज्ञातृधर्मकथा) मे यक्ष और नाग की पूजा किये जाने का उल्लेख है। 'अतगडदसाओ' (अतकृद्दशा) नामक प्राकृत ग्रथ के पहले वर्ग मे द्वारका के

उत्तर पूर्व मे रैवतक पर्वत पर सुरप्रिय यक्षायतन होने का उल्लेख है। इसी के छठे वर्ग मे पत्नी के शीलभग के निवारण मे अक्षम मोग्गरपाणि यक्ष का क्रुद्ध अर्जुनमाली द्वारा उपहास किये जाने और क्षोभ के अतिरेक से स्वय यक्षाविष्ट हो जाने तथा भगवान महावीर के चरणो मे शातिलाभ करने की कथा है। 'निसीह' (निशीथ) नामक छेदसूत्र मे सूचित होता है कि नागोत्सव तथा यक्षोत्सव राजसी तौर पर मनाये जाते थे। 'निशीथ विशेषचूर्णि' मे कहा गया है कि कैलाश पर्वत पर रहने वाले देव यक्ष श्वान रूप मे इस मर्त्यलोक मे रहते है।[214] जैनधर्म मे प्रत्येक तीर्थंकर का सम्बन्ध किसी यक्ष से है।[215] यक्ष के रूप और उसकी मूर्ति तथा ध्यान के सम्बन्ध मे भी विवरण पाये जाते है[216] इसलिए प्रद्युम्न-कथा मे यक्ष का समाहार स्वाभाविक ही है। गायन विद्या मे प्रवीणता, अद्‌भुत विद्या-निधानता, अन्तर्धान-कला, रूप-परिवर्तन-क्षमता, भक्षणप्रवणता आदि तत्त्वो के रूप मे प्रद्युम्न-चरित्र पर यक्ष-तत्त्व का प्रभाव स्पष्ट है। यक्ष के पशु (श्वान) रूप मे रूपान्तरित होने का उल्लेख हो चुका हैं। पशु, कीट आदि अन्य प्राणियो का यक्ष मे रूपातरित होना भी पाया जाता है। विजयार्धपर्वतवासी सर्प प्रद्युम्न द्वारा पूँछ पकड कर उलट दिये जाने पर भयभीत होकर अकस्मात् ही यक्ष रूप धारण कर खडा हो जाता है और प्रद्युम्न के समक्ष प्रणत हो उसकी धरोहर उसे सौप देता है। गुह्यक या व्यतर देव कभी वानर, कभी वराह और कभी विषधर का रूप धारण करते प्रदर्शित किये गये हैं।[217]

इसी प्रकार प्रद्युम्न-चरित मे यक्ष का नाग से सम्बन्ध स्पष्ट है। देवताओ की सहायक देवोपम कोटि की जातियो मे से ही एक 'नाग' (सर्प या उरग) भी है। महाभारत मे सर्पो को कद्रू की सन्तान तथा वासुकी को उनका राजा बताया गया है। नागो ने तक्षक को बछडा बनाकर अलाबु (तूम्बी) के पात्र मे विष रूपी दूध को पृथ्वी से दुहा था।[218] इससे स्पष्ट है कि नागो का विष-विद्या पर अधिकार था और वह उनकी आजीविका का साधन थी। नागपूजा पौराणिककाल से चली आयी है। भारत मे असख्य स्थलो पर नागमूर्तियाँ पायी गयी है। लोक कथाओ मे नागो और नाग-कन्याओ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वे छिपे हुए खजानो के रक्षक के रूप मे ही जन-विश्वास मे अधिक लोकप्रिय हुए। महाकाव्यो तथा पुराणो मे उन्हे आश्चर्य-मयी पातालपुरी का वासी बताते हुए उनकी राजधानी का नाम भोगवती कहा गया है। महाभारत के प्रारम्भ मे ही जनमेजय के नागयज्ञ का प्रसग आर्य-नाग सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है। विष्णु को शेषशायी और बलदेव को शेषावतार कहा गया है।[219] इस दृष्टि से भी कृष्ण-परिवार से सम्बद्ध प्रद्युम्न-कथा मे नाग-सम्पर्क स्वाभाविक है। महाभारत मे नैमिषारण्य में गोमती तीर पर नागपुर में पद्मनाभ नामक धर्मात्मा अक्रोधी नाग एक ब्राह्मण को सर्पोपासना और उञ्छवृत्ति का महत्त्व समझाता है।[220] प्रद्युम्न-चरित्र मे प्रद्युम्न को अपने साहसिक अभियानक्रम में अनेक बार नागो से युद्ध करना पडा है किंतु अन्त में नाग पराजित होकर उसे भेंट में

16 विद्याएँ तथा चन्द्रसिंहासन, नाग-शय्या, नागपाश, सैन्यनिर्मात्री, गेहकारिणी विद्याए, काममुद्रिका, छुरी इत्यादि वस्तुए देकर प्रसन्न करते है। इन भेटो मे नाग-शैया और नागपाश का नागो से विशेष सम्बन्ध प्रतीत होता है।[221]

असुर, दैत्य, दानव इत्यादि अद्भुत पात्रों का भी प्रद्युम्न-कथा मे उल्लेख है। पी० टॉमस का कहना है कि प्राचीन साहित्य मे देवताओ के शत्रुरूप मे सर्वाधिक प्रयुक्त नाम 'असुर' है। एक प्राचीन पुराकथा के अनुसार समुद्रमथन से उत्पन्न सुरा का सेवन करने वाले 'सुर' और दूर खड़े देखते रहने वाले 'असुर' कहलाये।[222] ऋग्वेद मे वरुण तथा अन्य देवताओ के लिए असुर शब्द का प्रयोग हुआ है तथा इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम प्रसिद्ध है। 'सुर' तथा 'असुर' शब्दो मे से मूल शब्द कौनसा है तथा उपसर्ग जुडने से या घिसने से कौनसा शब्द परवर्ती है, यह कहना कठिन है। जहाँ असुर देवताओ के शत्रु न होकर मात्र प्रतिद्वन्द्वी है वहा उनका इतना विकृत चित्रण नहीं हुआ है। इसीलिए भृगुपुत्र शुक्राचार्य असुरो के गुरु हैं। वे देव-गुरु बृहस्पति के प्रतिस्पर्द्धी है। कथा-सरित्सागर की एक कहानी मे वे नायक की सहायता करते हुए दिखाये गये है। पौराणिक कथाओ मे असुर, दैत्य, दानव आदि पर्याय रूप से प्रयुक्त हुए है किंतु मूलत दैत्य और दानव दिति और दनु से उत्पन्न असुरो की उपशाखाए है।[223] असुरो का सम्बन्ध मायावी (छलप्रपचपूर्ण) युद्धो से तथा लौहअस्त्रो के प्रयोग से विशेष प्रतीत होता है। हरिवंश मे लिखा है कि असुरों ने लौह-पात्र मे शत्रुओ को नष्ट करने वाली माया को दुहा था।[224] एक ओर कुछ विद्वान यक्ष, नाग आदि की ही भाति 'असुर' को भी जाति मानकर असीरियाई से उसका सम्बन्ध जोडते हुए जिज्ञासा प्रकट करते है कि पारसी 'अहुर' भारतीय आर्यो के निकट कब घृणास्पद हो गया और भारतीय देव ईरान मे कब और कैसे 'देव' बन गया।[225] तथा ईसा के 1830 वर्ष पूर्व सुमेरी आर्यो के बेबलोन पर राज्यत्वकाल के समय असुरो के भारत आगमन की बात कहते है[226] तो दूसरी ओर ऐसे राक्षस, पिशाच, असुर आदि समस्त अलौकिक पात्रो को आदि मानव की प्राकृतिक तथ्यो को प्रतीकवद्ध करने मे प्रवण कल्पना की सृष्टि मात्र मानने का भी सतर्क आग्रह है।[227] जो भी हो, ऐसे पात्रो की लोक-कल्पना-मूलकता तथा लोक-कथाओ मे उनका प्रवेश स्वाभाविक है।

प्रद्युम्न-कथा के वैष्णवरूप मे शवर को सर्वत्र 'असुर' ही कहा गया है। हरिवंश पर्व मे सृष्टि वर्णन प्रसग मे दनु के सौ प्रतापी पुत्रो मे सैंकडो प्रकार की माया जानने वाले 'शंवर' का भी नाम आया है—'शतमायाश्चशवर' तथा 'वज्रनाभ' को भी दनु-पुत्र कहा गया है।[228] इस प्रकार वैष्णव परम्परा मे 'शवर' तथा 'वज्रनाभ' को दानव मानते हुए भी शवरासुर और दैत्य वज्रनाभ कहा गया है। प्रद्युम्न-कथा के जैन रूपातर मे वज्रनाभ सम्बन्धी प्रसग का अभाव है तथा शंवर स्थानीय 'काल-शवर' असुर, दैत्य या दानव न होकर विद्याधर है। किन्तु प्रद्युम्न के साहसिक अभि-

यानो के क्रम मे 'कालासुर' दैत्य से उसके युद्ध का वर्णन है।[229] इसके अतिरिक्त 'वराह', वानर तथा अग्निकुण्ड और सरोवर के रक्षक आदि 'देवो' का भी उल्लेख है। यहा स्पष्टत 'देव' शब्द का प्रयोग देवता जैसे आदरसूचक रूप मे न होकर व्यग्यार्थ लिए हुए अकबर-बीरबल के नाम से सम्बद्ध प्रसिद्ध लोककथा 'जगल मे का देव, आले मे का सेव' मे प्रयुक्त देव के निकट है। अत लोक-कल्पना मे देव, शक्ति के भयकर प्रबल मूर्तरूप का सूचक है।

39. नारद और मधु-कैटभ

इन पात्रो के अतिरिक्त 'नारद' को भी अद्भुत पात्र कहा जा सकता है। यो तो वे एक क्रोधी ऋषि मुनि के रूप मे चित्रित हुए है जो उनके लौकिक मनुष्यत्व को ही सूचित करता है किन्तु उनकी सर्वत्र सब लोको मे गति, आकाशचारी होने की क्षमता आदि से वे अद्भुत तत्त्व से मण्डित हो गये है। ऋग्वेद के मण्डल 8 और 9 के कुछ मत्रो के कर्ता का नाम 'नारद' मिलता है जो कही कण्व और कही कश्यपवशीय लिखे गये है। पुराणो मे नारद देवर्षि कहे गये हैं जो इस लोक का सवाद उस लोक मे पहुँचाया करते है। विष्णुपुराण मे लिखा है कि ब्रह्मा ने प्रजासृष्टि मे प्रवृत्त होने से अस्वीकार कर देने पर नारद को सब लोको मे सदा घूमते रहने का शाप दिया। भागवत तथा हरिवंशपुराण मे नारद को ब्रह्मा का मानस-पुत्र कहा गया है।[230] महाभारत मे लिखा है कि नारद ने ब्रह्मा से सगीत की शिक्षा ग्रहण की। भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणो मे नारद सम्बन्धी लम्बी-चौडी कथाए मिलती है। ब्रह्मवैवर्त मे ब्रह्मा के शाप से नारद का गंधमादन पर्वत पर गंधर्व के रूप मे जन्म लेना वर्णित है। फिर गधर्व देह त्याग कर नारद द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती के गर्भ से मनुष्य रूप मे उत्पन्न हुए। पुराणो मे वे कलहप्रिय, वीणावादनरत, श्रेष्ठ-हरिभक्त और लोकलोकान्तरगामी के रूप मे चित्रित है। नारद की लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि 24 बुद्धो मे से एक 'नारद' बुद्ध हैं।[231] भागवत मे नारद व्यासजी से अपने दासी-पुत्र होने और वेदवादी ब्राह्मणो की जूठन खाकर ज्ञान प्राप्त करने, सर्पदश से मा की मृत्यु और वैराग्य होने इत्यादि की कथा स्वय कहते है। दक्ष द्वारा नारद को भटकते रहने का शाप भी भागवत मे वर्णित है।[232] पुराणो मे ही ऐसी कथा भी मिलती है कि नारद ने शिव से अपने कामजयी होने का गर्व प्रकट किया। तब नारद के गर्व को नष्ट करने के लिए भगवान ने एक स्वयवर की रचना कर उन्हे सुन्दर रूप माँगने पर वानर रूप दे कर उनका स्वयवर मे उपहास कराया।[233] यही नारद की उपहास्यता का मूत्र है। जैन परम्परा मे नारद की श्रेष्ठ हरिभक्ति, ज्ञाननिधानता, उपदेशवृत्ति आदि चारित्र्यिक तत्त्वो का अभाव है। प्रद्युम्न-चरित्र मे उनके अन्य चारित्र्यिक तत्त्वोय था आकाशचारिता, लोक-लोकान्तरगामिता, कलहप्रियता, सवादवहनपटुता, क्रोधप्रवणता, उपहास्यता को ग्रहण कर लिया गया है। जैन परम्परा मे 'देवर्पिमथ त दिव्य नारद लोकपूजित'[234]

रूप उपेक्षित हो गया और 'अद्‌भुत' तथा 'हास्य' तत्त्वो को उनके चरित्र मे अधिक उभारा गया। दिगम्बर परम्परा मे नारद को नरकगामी माना गया। फिर भी वैष्णव-प्रभाववश जिनसेनाचार्य ने उसे चरमशरीरी (सशरीर मोक्षगामी) कह कर उसके श्रद्धास्पद रूप की रक्षा की है। उसे अनेक विद्याओ का ज्ञाता, उञ्छवृत्तिधारी तापस-पुत्र, कातिमान, जिनागम का ज्ञाता, शास्त्रनिपुण, आकाशचारी, निर्लोभ, निष्कषाय, इत्यादि कहा गया।[235] यहाँ वह वैष्णव व्यक्तित्व का जैन-प्रतिरूप ही प्रतीत होता है किन्तु प्रद्युम्न चरित काव्यो मे कौतूहलप्रियता, कलहकारिता, उपहास्यास्पदता आदि चारित्रिक तत्त्व ही उभर कर आये हैं और वीणावादक हरिगुणगायक नारद के स्थान पर 'छत्री हाथ कमण्डल धरहि, मूडे मूड चुटी फरहरइ' तथा 'इक स्याली अरु वीछी खाइ, इक नारदु अरु चलीउ रिसाइ' वाला रूप ही दीख पडता है।

'मधु' और 'कैटभ' भी ऐसे ही पात्र है। पुराणो मे इनके ब्रह्मा के स्वेद से उत्पन्न होने की कल्पना करते हुए इन्हे 'दैत्य' कहा गया है और विष्णु द्वारा इनके वध तथा पृथ्वी के उद्धार की कथा अनेक स्थलो पर आती है। साथ ही विष्णु के युद्ध-कौशल पर प्रसन्न होकर वे युद्ध मे विष्णु द्वारा मारे जाने के अनन्तर विष्णुपुत्र रूप मे उत्पन्न होने का वर माग लेते है।[236] इस प्रकार वैष्णव परम्परा मे मधु-कैटभ की सृष्टि के आदि मे कीच-कर्दम रूप मे भौतिक तत्त्वो के रूप मे प्रतिष्ठा है अथवा वे आध्यात्मिक तत्त्वो मद-लोभ आदि के प्रतीक हैं।[237] चरित या कथा रूप मे वे दैत्य है और कृष्ण के पुत्र रूप मे उत्पन्न होने की कल्पना से युक्त है। किन्तु जैन-परम्परा मे मधु-कैटभ की आधिभौतिक या आध्यात्मिक रूपक-कल्पना नही है। इसके स्थान पर प्रद्युम्न और साम्ब के रूप मे उनके कृष्ण-तनय होने की कल्पना ही विकसित और परिपुष्ट हो गयी है।

40. पदार्थों और व्यापारों के रूप मे अद्‌भुत तत्त्व की योजना

इन अद्‌भुत पात्रो के अतिरिक्त अद्‌भुत पदार्थो और व्यापारो के रूप मे भी अद्‌भुत तत्त्व की प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे योजना हुई है। इनमे अद्‌भुत विमान रचना, मायावी अश्व सचालन कला, प्रद्युम्न द्वारा अद्‌भुत भेटें, अलौकिक विद्याएँ तथा सिद्धियाँ प्राप्त करना, पुनर्जन्म सम्बन्धी अद्‌भुत कल्पनाएँ इत्यादि प्रमुख हैं। पुनर्जन्म (आत्मा के ससरण) अथवा भवान्तर कल्पना का मूल इन्द्र के रूपान्तर सूचक प्रसगो मे ऋग्वेद मे ढूँढा जा सकता है। वे कभी वृषणश्व की मैना नामक कन्या का रूप धारण करते है तो कभी शृगवृष के पुत्र का। किन्तु यह सब वे 'माया' से ही करते हैं—'इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते'[238] उपनिषदो तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी पुनर्जन्म की कल्पना मिलती है।[239] गीता मे आत्मा के जीर्ण शरीर-वस्त्र त्याग कर नवीन शरीर-वस्त्र धारण करने की पुष्टि है।[240] महाभारत

मे शिव, इन्द्र आदि देवता स्थूल सूक्ष्मदेह-रूप ही नही, मक्खी-मच्छर, पिशाच, किरात, मानव, नाग, राक्षस, किरान, शवर आदि दैवी शक्तियो के अतिरिक्त व्याघ्र, सिंह, मृग, उलूक श्वान, हस, काक, मयूर आदि पशु-पक्षियो के भी मनचाहे रूप धारण करने की क्षमता रखते हैं। मायावी रूपो के अतिरिक्त महाभारत मे पुनजन्म की कथाओ के सदर्भ भी भरे पडे है। द्रौपदी अपने पूर्व जन्म मे किसी ऋषि की कन्या थी। एक कीट का शुभकर्मो के कारण क्षत्रिय योनि मे उत्पन्न होकर व्यासजी के दर्शन कर ब्राह्मण होने का वरदान पाकर ब्रह्मलोक मे जाना भी महाभारत मे ही वर्णित है।[241] श्रीमद्भागवत मे भरतजी का मृग के मोह मे फस कर मृग-योनि मे जन्म लेने तथा पुनः ब्राह्मण रूप मे उत्पन्न होने का वर्णन है।[242] पुराण तथा सहिता-साहित्य भी जन्मान्तरो की कल्पना से भरा पडा है।[243] सनत्कुमार सहिता मे वसुदेव तथा वृपभानु आदि के पूर्वभवो का वर्णन है। वृहद्ब्रह्मसहिता मे सोमशर्मा नामक ब्राह्मण के प्रेतयोनि मे जन्म लेने का उल्लेख है।[244] इस प्रकार वैष्णव पुराण-सहिता-साहित्य मे मानवो के ही नही, देवताओ के भी भवान्तरो का उल्लेख है। यही नही योनि विपर्यय और जड का चेतन मे और चेतन का जड पदार्थो मे भवान्तर भी देखा जाता है। इस प्रकार जन्मान्तरवाद भारतीय मेघा की विशेष कल्पना है। जैन धर्म पर भी इसका अत्यधिक प्रभाव पडा है। जैन आगम ग्रथो की कथाओ मे बारम्बार पुनर्जन्म के उल्लेख किये गये है।[245] तथ्य तो यह है कि एक ही कृति मे भवान्तरो की तीन-तीन चार-चार चक्र-कथाएँ चलती गयी है। प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे सधारु को छोड कर शेप सभी ने रुक्मिणी, प्रद्युम्न और साम्व के एकाधिक भवान्तरो की सश्लिष्ट चक्र-कथाएँ नियोजित की हैं।

चरित-नायक को अद्भुत भेंटे प्राप्त होने के प्रसग भी महाभारत-पुराण साहित्य मे प्रचुरता से उपलब्ध है। कुमार कार्तिकेय के जन्म के अवसर पर महाभारत मे चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, इन्द्र आदि देवताओ द्वारा कुमार को मेढा, अश्व, रथ, हाथी, सिंह, अज आदि भेटे देने का वर्णन है।[246] बलरामजी ने अपने हल की नोक से जब यमुना का कर्षण किया तो लक्ष्मीजी सशरीर प्रकट हुई और उन्हे एक सुन्दर कर्णफूल, एक कुण्डल, एक वरुणप्रदत्त चिर अम्लान कमलकुसुममाला और दो सुन्दर समुद्राभ नील वस्त्र दिये।[247] कल्किपुराण मे कल्कि द्वारा विल्वोदकेश्वर शिव की स्तुति से शिव को प्रसन्न कर उनसे वरदान मे एक शुक, एक अश्व तथा एक खड्ग प्राप्त करने का उल्लेख है।[248] धर्मगाथाओ मे प्राय: देवानुग्रह से अलौकिक वस्तुओ की प्राप्ति होती है तो लोककथाओ मे चरित-नायक अपने शौर्य से नाग-यक्ष-राक्षस प्रेत आदि को परास्त कर उनसे उपहार रूप मे भेंटे प्राप्त करते हुए कल्पित किये गये हैं। प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे लोककथा वाला रूप ही दीख पडता है। प्रद्युम्न शौर्य से ही ये भेंटें प्राप्त करता है यद्यपि इसे भी पुण्य-फल कहा गया है।

मायावी अश्वरचना कर अश्वसचालन कौशल से प्रद्युम्न द्वारा भानु को छकाने की कल्पना के प्रेरक तत्त्व भी अतीत के साहित्य मे है। आर्य सभ्यता से लेकर मुगल-राजपूत सामतकाल तक युद्ध तथा सवादवहन आदि की दृष्टि से अश्व का महत्त्व सर्वविदित है। अश्वमेध की कल्पना मे अश्व, विजय और गौरव का प्रतीक है। अश्व-शास्त्र एक अति प्राचीन विद्या है। महाभारत मे अश्वसूत्र तथा हस्तिसूत्र का उल्लेख है।[249] अश्वो की चिकित्सा के लिए 'शालिहोत्र' नामक स्वतत्र आयुर्वेद विभाग था। अग्निपुराण मे अश्व की जातियो, श्रेष्ठ अश्व के लक्षणो, अश्वरोग-निदानो तथा अश्व-चालन विधियो के विस्तृत विवरण है।[250] प्रद्युम्न-चरित-काव्यो मे भी जैसा कि यथास्थान उल्लेख किया जा चुका है, अश्व की जातियो और उनकी चालो का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार विमान-रचना सम्बन्धी अनेक प्रसग भी प्राचीन साहित्य मे उपलब्ध होते है। जैन आगम ग्रथ 'भगवतीसूत्र' मे विभिन्न कृष्ण-रात्रियो के आठ अवकाशान्तरो मे लोकान्तिक देवताओ के आठ लोकान्तिक विमान कहे गये है। इन विमानो के नाम अर्चि, अर्चिमाली, रिष्टाभ, वैरोचन, प्रभकर, सूर्याभ, शुक्राभ और सुप्रतिष्ठाभ है। इन्ही मे सारस्वत, आदित्य आदि देवता रहते हैं।[251] एक अन्य जैन आगम-ग्रथ स्थानागसूत्र मे लिखा है कि तीर्थंकर विमानो से आकर पृथ्वी पर जन्म लेते है। इन विमानो के अनेक भेदोपभेद है।[252] इस प्रकार जैन परम्परा मे प्रत्येक तीर्थकर का विमान से सम्बन्ध है। वैष्णव परम्परा मे देवताओ का विमानो से सबध है और रामायण का 'पुष्पक' विमान लोकप्रसिद्ध है।

प्रद्युम्न को कनकमाला से छलपूर्वक प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ का तथा यक्षादि से सैन्यनिर्मात्री आदि अनेक विद्याओ और सिद्धियो का लाभ होता है जिन्हे यथास्थान गिनाया जा चुका है। इस प्रकार की विद्याओ और सिद्धियो के उल्लेख प्राचीन साहित्य मे प्रचुरता से उपलब्ध है। श्रीमद्भागवत पुराण मे योगियो के लिए अणिमागरिमादि अष्ट सिद्धियो के अतिरिक्त प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता, कामावसायिता, दूरदर्शन, दूरश्रवण परकायप्रवेश, त्रिकालज्ञता, अग्नि-जल-स्तभन आदि अनेक सिद्धियाँ सुलभ होने का वर्णन है।[253] विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे राजा वसु उपरिचर पाताल-लोक मे बृहस्पति द्वारा प्रदत्त 'अपराजिता विद्या' से अपनी प्राण-रक्षा करता है।[254] वज्रयानी सिद्धो और गोरखपथी योगियो के सिद्धि सम्बन्धी चमत्कारो की अनेक कथाएँ लोक मे व्याप्त थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-चरित्र मे उपन्यस्त अद्भुत कृत्यो के दो रूप दृष्टिगत होते है —

41. अद्भुत तत्त्व के विविध रूप

(1) असभव कल्पनाओ से पूर्ण अलौकिक, अप्राकृत, अद्भुत कार्यव्यापार-यथा नारद का आकाश मे विचरण, मायावी सैन्य अथवा किरातदल की रचना,

ही प्रद्युम्न-चरित्र के कतिपय मूल तत्त्वो के प्रेरक है। प्रद्युम्न भी गोप्ता है। वह माया से अपना रूप छुपाना जानता है। वह अमिताशन भी है, भानुकुमार के विवाह के लिए निर्मित समस्त भोज्यसामग्री का भक्षरण कर जाता है। वह स्वापन है क्योंकि सबको मत्र बल से अचेत या मूच्छित कर देता है। वह स्वय अदृश्य रह कर शत्रु की गतिविधि को देख लेता है अत सर्वदृक् भी है। वह अनेक आश्चर्य-कौतुक-कर्ता होने से अद्भुत् भी है। इस प्रकार, वस्तुत कृष्ण के ईश्वरत्व की सिद्धि के लिए जिन अलौकिक दार्शनिक गुणो की उद्भावना की गई है, उन्ही गुणो के व्यजक लौकिक कर्मो की कल्पना कर उन्हे सूक्ष्म तत्त्वचितन की भूमि से उतार कर यथार्थ लोकभूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया है। वस्तुत प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि स्वय कृष्ण (विष्णु रूप भगवान) के ऐश्वर्य व्यजक अलौकिक गुणो के ही मानवीकृत रूप हैं। इसीलिए स्वय कृष्ण को ही प्रद्युम्न और अनिरुद्ध (प्रकृष्ट रूप से द्युमन्त होने से प्रद्युम्न और इन्द्रियो से ज्ञेय या निवद्ध न हो सकने से अनिरुद्ध) कहा गया है—"अनिरुद्धो प्रतिरथ प्रद्युम्नोऽमितविक्रम "[258] इसके अतिरिक्त प्रद्युम्न लक्ष्मीरूपा रुक्मिणी का पुत्र है। लक्ष्मीजी ही सब विद्याओ की अधिष्ठात्री 'महाविद्या' और 'गुह्यविद्या' है।[259] इसलिए उनके पुत्र को नाना अलौकिक विद्यालाभ होना स्वाभाविक ही है। प्रद्युम्न की अलौकिक शक्तियो के मूल मे कार्यशील दार्शनिक कल्पना को वैष्णव सहिता-साहित्य के सदर्भ मे 'प्रद्युम्न देवत्व एव व्यक्तित्व' ग्रथखण्ड के तृतीय अध्याय मे विवेचित किया जा चुका है।

जब प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सकर्षण आदि स्वय ईश्वरीय गुणो के अमूर्त मानसी या चेतन तत्त्वो के मानवीकृत रूप है तो उनके लौकिक चरित्रो का व्यापक ताना-बाना भी अमूर्त तत्त्वो के सूत्रो से बुना जाना युक्तिसगत और स्वाभाविक ही है। इस प्रकार, अपने मूल रूप मे प्रद्युम्न-चरित्र अलौकिक तत्त्वो के लौकिक प्रतिफलन का सुन्दर निदर्शन भी सिद्ध होता है।

अधिक विस्तार मे न जा कर हम यही कहना चाहेगे कि प्रद्युम्न-चरित मे अभिव्यक्त अद्भुत पात्रो, पदार्थो और व्यापारो का मूल एक ओर धर्मगाथाओ मे विन्यस्त दार्शनिक कल्पनाओ मे है तो दूसरी ओर आदि मानव की सृष्टि-व्यापारो से लुब्ध कौतूहलमयी जिज्ञासापूर्ण कल्पनाओ मे। फलत प्रद्युम्न-चरित्र के अद्भुत् तत्त्वो का स्रोत धर्मगाथा और लोकवार्ता—दोनो क्षेत्रो मे ढूँढना होगा। केश-कर्तन स्पृहा जैसे अद्भुत कृत्यो का उत्स सामाजिक सदर्भो मे भी खोजना होगा। इन अद्भुत् तत्त्वो मे से कुछ का स्वरूप पूर्णत अलौकिक, अप्राकृतिक और असभव कल्पनाओ से युक्त है तो कुछ का अतिलौकिक, अतिरजित, किन्तु सभाव्य कल्पनाओ से पूर्ण है।

संदर्भ : अध्याय ❀ 3

1 आख्यानकमणिकोश, आचार्य नेमिचंद्र सूरि कृत, प्र० प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी वाराणसी, सं० मुनि पुण्यविजय, इण्ट्रोडक्शन उमाकान्त पी० शाह, पृ० 1 तथा 71–80;

2 भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान—डा० हीरालाल जैन, पृ० 142,

3. रायबहादुर स्व० डा० हीरालाल का सर्च रिपोर्ट 1923–24 में प्रकाशित विवरण, पृ० सं० 17,

4 वा० कामताप्रसाद जैन हिन्दी जैन . साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्र भारतीय ज्ञानपीठ, काशी पृ० 135,

5. श्री अगरचन्द नाहटा का भाषण, 'व्रज भारती' वर्ष 14, अंक 1, पृ० 21 पर प्रकाशित तथा 'वीरवाणी' जयपुर से प्रकाशित वर्ष 1 अंक 10-11, सन् 1947 से प्रकाशित लेख। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी अनुशीलन', वर्ष 9 अंक 1–4 में प्रकाशित उनका लेख।

6 पं० चैनसुखदास तथा डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल सम्पादित सधारु कृत प्रद्युम्न चरित, प्र० दि० जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर सन् 1960 ई०,

7. वही, पृ० सं 23,

8 गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 88–100,

9. सधारु कृत प्रद्युम्न चरित, छंद संख्या 267–77,

10 वही, छंद-संख्या 111–114,

11 वही, छंद 238–239,

12 वही, छंद 52, 137–139,

13 वही, छंद 457–473,

14. वही, सर्ग 4 तथा 5,

15 वही, 187–238,

16 वही, 157, 160 तथा 548,

17 वही, 363

18 महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्', सर्ग 9, श्लोक 161–164,

19 वही सर्ग 9 श्लोक 170,

20 सधारु कृत प्रद्युम्न चरित, छंद सं० 390;

21 वही, 334,

22 वही, 396,

23 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण, 47, 111, महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम् 9, 236, तथा सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ', संधि 12, घत्ता 3,

24. महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्नचरितम्' सर्ग 4, श्लोक 25,

25 सिद्ध तथा सिंह कृत 'पज्जुण्णचरिउ', सधि 3, घत्ता 14,

26 डा० राजबली पाण्डे, हिन्दू संस्काराज (अंग्रेजी), प्र० विक्रम पब्लिकेशन्स बनारस, 1949 ई० संस्करण, पृ० 121, 142–143,

27 सधारु कृत प्रद्युम्न चरित, छंद संख्या 314–20,

28. वही, 120–121, 561–63, 567–70, 570–85 तथा छंद सं० 87;

29. सिद्ध तथा सिंह कृत 'पज्जुण्णचरिउ', संधि 3 घत्ता 1, द्रष्टव्यः दूसरे अध्याय की संदर्भ टिप्पणी सं० 181 ?

30. जिनसेनाचार्य कृत हरिवशपुराणम् 47, 31–43, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, 72, 102, 121, महासेनाचर्य कृत 'प्रद्युम्नचरितम्' 8, 11–97 तथा सिद्ध एवं सिंह कवि कृत 'पज्जुण्ण चरिउ', संधि 7, घत्ता 17 तथा संधि 8, घत्ता 1–17, तथा सधारुकृत प्रद्युम्न-चरित, छद सं० 189–227; सधारुकृत प्रद्युम्न-चरित, छंद सं० 68–73—वही, छंद सं० 79–80।

31 द्रष्टव्य, महाभारत, भीष्मवध पर्व, अ० 64 मे वर्णित भीमसेन–दुर्योधन युद्ध। तुलनीय सधारुकृत प्रद्युम्न-चरित, छंद सं 345–348,

32 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, चतुर्थ सस्करण, पृ० 76;

33. महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' सर्ग 9, श्लोक 26–29, वही, छंद सं० 25, 146,

34 नारी-रूप के प्रति जिज्ञासा की वर्णन-रूढि जैन परम्परा मे अत्यन्त प्रिय रही है। नयनंदि के सुदर्शन चरित (सुदसण चरिउ) (4,4) मे भी यह है—
कि तार तिलोत्तिम इ दपिया। कि णयवहू इहावह थिया॥
कि देव वरगण किंच विही। कि किति अमी सौहाग हिही॥
—डा० रामजी उपाध्याय प्राकृत महाकाव्याज् प्र० सस्कृत परिषद् सागर, पृ० 294,

35 डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ०74;

36. "मौटिफ-ए वर्ड ऑर ए पैटर्न ऑफ थॉट व्हिच रिकर्स इन ए सिमिलर सिचुएशन ऑर टु इवोक ए सिमिलर मूड विदइन एक वर्क ऑर इन वेरियस वर्क्स ऑफ ए जैनर'—शिपले . डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर।

37. सधारु कृत प्रद्युम्न चरित, छंद स० 549, 605, 465–73,

38 वही, छंद सं० 298,

39 वही, 551;

40 वही, 486, 501, 510–11, 573, 676–78,

41. वही, 31–32,

42. वही, 277; 184;

43. वही, 627; 29;

44 वही, 649–654;

45 गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, 72, 62–65,

46 महासेनाचार्य, प्रद्युम्न चरितम् सर्ग 5, श्लोक 1–16, तथा जिनसेनाचार्य, हरिवंशपुराण 43, 62–64,

47 द्रष्टव्य, सधारु रचित प्रद्युम्नचरित, छद सं० 142, तथा भट्टारक श्रीभूषण विरचित 'प्रद्युम्नकुमार रास, प्र० दिग० जैन गुजराती साहित्योद्धारक फण्ड, सूरत, प्रथमावृत्ति, पृ० 37;

48 आचार्य सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्नचरित्र, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, हरिसन रोड, कलकत्ता, सर्ग छठा।

49 महाभारत, हरिवंश पर्व खण्ड 2, 65, 48–55,

50. सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद स० 583–84,

51 वही, 301–6,

52 सतिभामा बोलइ तिहि ठाइ। कहा भयो जइ लाइ पाइ॥
कूडी वूधी करइ तू घणी। यह मौ वहिणी होइ रुकिमिणी॥
राति दिवस तू करिहि कुतालु। वंस सहाउ न जाई गुवालु॥
फुणि रूपिणी सहु करह सभाइ। चालइ वहिण अवासइ जाइ॥
—सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छद सं० 108–10;

53. वही, छंद स० 167–71, 590, 300–6; 326–34;

54 वही, 409–10;—वही, 409–20;

55 तू ही अर्जुन खण्डव डहणु। तो पवरिण जाणै सब कवणु॥
तै वयराड छिडाई गाइ। अव तू रूपिणि लेई मिलाइ॥

भीम गजा सोहहि कर तोहि । पवरिष आज दिखावइ मोहि ॥
तवही बात आणी तुम्ही तणी । चोरी हरि आंणी रुकिमिणी ॥ इत्यादि
—वही, 465–73,

56 तव हसि जपइ खत्री मयणु—
जिहि तू रण मा जिणिउ विगोईं । तिहि स्यौं अवहि साथि को होइ ॥
लाज न उठइ तुमइ हरिदेउ । वहुडि भामिनी मांगइ केम्बु ॥
छोडि आस तइ परिगह तणी । अब तइ छोडि सोई रुकिमणी ॥ इत्यादि
—वही, 511, 13, 16 तथा 522–24,

57 वस्तूत्प्रेक्षा :
(1) फूटि चून भइ मुंदडी । जनकु कणिक गरहट तल पडी ॥
(छंद सं० 63)
(2) वरसइ वाण सघण जाणै नीर । (78)
(3) महुवर भुणि जणु मंगलचार । सूवा पढ़इ वेद भुणकार (87) इत्यादि

58 फलोत्प्रेक्षा ·
(1) सायर माझ द्वारिकापुरी । जणु सो इन्द्रलोक तै पड़ी ॥ (153)

59 असम्बन्धातिशयोक्ति :
(1) सेसपालु अरु भीषमु राउ । दुहदल सूझन न सूझइ ठाउ ॥ (71)

60. सम्बन्धातिशयोक्ति :
(1) आवत दलु दीठइ अपवालु । उड़ी खेह लोपी ससिभाणु ॥ (73)
(2) हुई सनधु चलिउ मयणु, गयणि न सूझइ भाणु । (173)
(3) हालइ महियलु सलकिउ सेस (506)

61 दृष्टांत :
(1) वालउ सूर आगासह होई । तिनको जूझ सकइ घर कोइ ॥
वाल वभगु डसइ सउ आइ । ताके विसमणि संतुन आहि ॥
इत्यादि (168–171)
(2) इकस्याली अरु वीछी खाइ । इक नारदु अरु चलीउ रिसाइ ॥ (34)

62. वाचक धर्मलुप्तोपमा :
छाये चउवारे वहुभति । सुद्ध फटिक दीसह ससि कति ॥ (17)

63. अनन्वय : हसगमणि मनु सोहइ सोइ । तिहि समु तिरिय न पूजइ कोइ ॥ (42)

64. व्यतिरेक . विद्यावल तहरच्योउविमाणु । जहि उदोत लोपी ससिभाणु ॥
(293)

65. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी · हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० 96,

66. डा० गदाधरसिंह का अप्रकाशित शोधप्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य', प्रथम अध्याय,

67 समयमुहं पंचजणाणु केवल णाण पयासु ।।
—पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ तथा डा० कस्तूरचंद कासलीवाल संपादित सधारुकृत 'प्रद्युम्न चरित' पृ० सं० 3,

68 द्रष्टव्य, प्राकृत पैंगलम् 1 78,

69 आचार्य हेमचन्द्र छंदोऽनुशासनम्, 5, 32-40,

70 डा० भोलाशकर व्यास सम्पादित प्राकृत पैंगलम्, खड 2, पं० 556.

71. प्राकृत पैंगलम्, 1, 146, 147

72 रत्नशेखर कृत छदकोश, 'कवि दर्पण' के साथ परिशिष्ट 2 के रूप मे प्रकाशित प्र० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, छंद सं० 31, आचार्य हेमचद्र

73 आचार्य हेमचंद्रकृत छंदोऽनुशासनम् 7, 7,

74 राजशेखर कृत छंदशेखर, 5, 179; तथा स्वयभूकृत छदोऽनुशासनम् 6, 135,

75. प्राकृत पैंगलम्, पूर्वभाग 1, 97, तथा छंदकोश 37,

76 पनरह मत्तह पयह पमाणि लहुचउपइया छंदु वियाणि ।
—छंदकोश 40,

77. डॉ० भोलाशंकर व्यास सम्पादित प्राकृत पैंगलम् खण्ड 2, पृ० 388 ।

78 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली, चतुर्थ संस्करण, भूमिका भाग, पृ० 67,

79 विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य डा० नगेन्द्र रीति-काव्य की भूमिका, पूर्वार्द्ध, प्र० गोतम बुक डिपो, दिल्ली, 1949 ई० संस्करण, पृ०59-71,

80 वही, 461, 465, 473, 512-16, तथा 522-24,

81. डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल सम्पादित सधारुकृत, 'प्रद्युम्न चरित', प्रस्तावना भाग, पृ० 35-37,

82 वही 429-31, 83. वही, 140-43

84 णाणाविह कोऊ हलहिं भरिउ । तहु तुरिउ करहि पज्जुण चरिउ ।।
—सिद्ध तथा सिंह कृत 'पज्जुण्ण चरिउ', संधि 1, घत्ता 5,

85 जणु सयलु विब्भमरस विसट्टु । गउ मयणु महुरमग्गे पयट्टु ।।
—पुष्पदन्त महापुराण, खण्ड, सधि 91, घत्ता 20, गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिकामता ।।25।। वृत्तमुख्यायते

86 गद्येनयुक्तोदात्तार्था, सोच्छ्वासाख्यायिकामता ।।
वृत्तमाख्यायते तस्यां, नायकेन स्वचेष्टितम् ।
वक्त्र च परवक्त्रं काले भाव्यर्थ शंसिच ।।
न वक्त्रा परवक्त्राभ्यां, युक्ता नोस्छ्वासवत्यपि ।।
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा, कथापभ्र शभाक्तथा ।। 28 ।। अन्ये.
अन्यै स्वचरित तस्यो, नायकेन तुनोच्यते ।।
—काव्यालंकार, प्रथम प०

87 हेमचद्राचार्य काव्यानुशासन, अध्याय 8,

88. देखिए काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद ।

89. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 52,

90. डा० कैलाशप्रकाश: प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृ० 53; 49; 54; 55,

91 डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 358

92 ये लोकद्वय सापेक्षा किश्चित्सत्वयुताना. । कथातिच्छन्ति संकीर्णा ज्ञेयास्ते वरमध्यमा. ।।
—हरिभद्राचार्य

93 डा० सत्येन्द्र: प्रेमगाथा तथा काम-कथा शीर्षित निबन्ध-भारतीय, साहित्य वर्ष 6, अ क 4, पृ० 23,

94. फ्रायड इण्ट्रोडक्टरी लैक्चर्स, पृ० 290

95. वही . ग्रुप साइकॉलोजी, पृ० 57,

96 सुट्टी, ऑरिजिन ऑफ लव एण्ड हेट, पृ० 28,

97 जेम्स ड्रेवर . ए डिक्शनरी ऑफ साइकॉलोजी, में देखिए—"प्लेटोनिक अफेक्शन"

98. रेल्फ वाल्डो इमरसन. लव, पृ० 108–9,

99. वीर कथासंभलइ जे रली । तिहि वियोगर्नहिएका घड़ी ।। लखमसेन पदमावती (दामोकवि) तथा एह कथा जे संभलइ, वंचइ बली विशेष । पातक परियावट तणां, तिहां रहइ नहि लेष ।।
—माधवानलकामकंदला प्रबन्ध (गणपति कवि)

100. डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ० 358,

101. एम० आर० मजुमदार : प्रीफेस टु दि माधवानलकामकन्दलाप्रबन्ध, प्र० ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा ।

102. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० 151;

103. वही, पृ० 99–100,

104 वही, पृ० 2 तथा 3,

105. विष्णुपुराण, अ० 26, 8 तथा हरिवंश पुराण अ० 59–60,

106. विंटरनिज ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग, 2 पृ० 15१,

107 डा० श्याममनोहर पाण्डेयः मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, मित्र प्रकाशन इलाहाबाद पृ० 140,

108 स्वर स रत्यामनिरुद्धमेव । यत्जन्यय सर्गनिसर्ग ईहा ।।—नैषध चरितम् महाकाव्यम्, चौखभा सीरिज बनारस, प्रथम सर्ग, श्लोक 54,

109 प्रेमहिं माह विरह औ रसा ।
मैन के घर मधु अंजित बसा ।।

110 'जगमह कठिन खरग के धारा । तेहिं ते अधिक विरह के मारा ।।
— जायसीकृत पद्मावत, छंद 166 तथा 153 ।

111. सिरिट मूल विरहा जग आया । पै बिनु पूर्व पुन्य केहि पागा ।।
बिरहजीउ जाके घट होई । सदा अमर पुनि मरे न कोई ।। मझन कृत मधुमालती, डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 11 ।

112 अब तू सिद्ध भया सिधि पाइ । दरपन कया छूटिगा काई ।।
—पद्मावत, छंद 214

113. लीलावई कहा, प्र० भारतीय विद्या भवन, बम्बई, भूमिका भाग पृ० 75 ।

114 धनपाल रचित भविसयत्त कहा, सं० दलाल तथा गुणे, प्र० आरिएण्टल सीरीज, बड़ौदा, पृ० 3,

115 डा० राजनारायण पाण्डेय महाकवि पुष्पदन्त, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृ० 99,

116 डा० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० 157,

117 डा० हीरालाल जैन सम्पादित करकण्डु चरिउ, कारजा जैन सीरीज, बरार, पृ० 4,

118. डा० श्याममनोहर पाण्डेय मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० 107,

119 पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ, स० डा० पी० एल० वैद्य, प्र० कारंजा जैन सीरीज, बरार, 1,1, 5–6,

120 गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, पर्व 72, श्लोक 280–81

121 सप्त तारिका नखत दृढ जाणि ।' वीर कथा रस करू बखाणि ।।
सरस विलास कामरस भाव ।'जाहु दुरिय मनि हुअउ उछाह ।।—दामो कवि कृत 'लखमसेन पद्मावती'

122. डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 360,
123 श्री परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० 117–19,
124 डा० सत्येन्द्र . मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ० 359,
125 डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी · हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 72,
126 ए० बी० कीथ ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, प्र० आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ० 55,
127. वही, पृ० 315,
128 द्रष्टव्य · रुद्रट का काव्यलंकार अ 16 तथा आनन्दवर्धनाचार्यकृत 'ध्वन्यालोक' 3, 7; ज्ञानमण्डल वाराणसी संस्करण, पृ० 185
129 डा० हरिवल्लभ भायाणी · पउमसिरिचरिउ, भूमिका, पृ० 15,
130. डा० पी० एल० वैद्य सम्पादित पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' भाग 1, पृ० 32
131 जिनसेनाचार्य आदिपुराण, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पर्व 4 श्लोक 3,
132. हिन्दी साहित्य कोश प्र० सम्पादक डा० धीरेन्द्र के अन्तर्गत डा० शंभुनाथसिंह की टिप्पणी, पृ० 315–16,
133. आचार्य हेमचंद्र, काव्यानुशासन, 8 वां अध्याय ।
134 अभिनव गुप्त ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धनाचार्य) की टीका, उद्योत 3 कारिका 7
135. डा० शम्भूनाथसिंह की टिप्पणी—डा० धीरेन्द्र वर्मादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' के अन्तर्गत, पृ० 202,
136 डा० हीरालाल जैन सम्पादित हरिदेव कृत मयणपराजय चरिउ, 1, 1, 1, 3, 1, 4; तथा 2, 81,
137 धनपाल कृत भविसयत्त कहा, सम्पादक सी०डी० दलाल तथा पी० डी० गुणे, बड़ौदा सैण्ट्रल लायब्रेरी सीरीज, 1923 ई० ।
138. देखिए, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 315–16,
139 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ० 315–16,
140 द्रष्टव्य डा० शंभुनाथसिंह : हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप-विकास ।
141 डा० सियाराम तिवारी की टिप्पणी, 'हिन्दी साहित्य कोश' प्रथम भाग, पृ० 191,
142. भाषा-विभाषा नियमात काव्य सर्ग समुत्थितम् । एकार्थं, प्रवणै पत्रै संधि सामग्र्य वर्जितम् ।। —कविराज विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण, 6, 328;

143 रुद्रट कृत 'काव्यालकार', 16, 6 (लघुकाव्य)

144. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय विमर्श, प्रथम संस्करण, पृ० 14,

145 सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोऽवापि तन्मुखम ।।
इतिहास कथोद्भूतमितरद्वासदाश्रयम्,
चतुर्वर्ग फलोपेत चतुरोदात्त नायकम् ।।
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदय वर्णनै ।
उद्यान सलिल क्रीडा मधुपानरतोत्सवै ।
विप्रलंभैर्विवाहैश्च कुमारोदय वर्णनै ।
मंत्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि ।।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः ।।
सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजकम् ।
काव्य कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति ।।

—दण्डी काव्यादर्श, 1, 14-19,

146 डा० माताप्रसाद गुप्त · सधारु रचित तथा डा० कस्तूरचद कासलीवाल सम्पादित 'प्रद्युम्न चरित' का प्राक्कथन, पृ० 5,

147. डा० श्यामसुन्दरदास सम्पादित 'सतसई सप्तक' हिन्दुस्तानी अकादमी से सन् 1931 ई० मे प्रकाशित ।

148 The Satsai is perhaps the most celebrated work of poetic art as distinguished from narrative and simple styles Each couplet is independent and complete n itself and is a triumph of skill in comparison of language, felicity of description and rhetorical artifice"

—Encyclopaedia Britannica

49 डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० 100 तथा आगे ।

150. डा० कस्तूरचंद कासलीवाल सम्पादित 'सधारुकृत प्रद्युम्नचरित' पृ० 27–32

151 डा० मोतीलाल मैनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृतीय संस्करण 104.

52 डा० सत्येन्द्र · मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ०189; 209, 226, 229–30; 237;

153. डा०हरवंश कोछड़ : अपभ्रंश साहित्य, पृ० 168,
154 डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 325–327
155 मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 248–251,
156. Steith Thompsons' Motif Index of Folklisterature, Ref. A418 & A495

157.	”	”	A418.1
158.	”	”	A419.1
159.	”	”	B11 5 1
160	”	”	B11 7.2
161.	”	”	B11 6.2
162.	”	”	B11 6.1
163.	”	”	A531 & B11 11
164	”	”	B16
165.	”	”	D10–D 99
166	”	”	D300–399 & 100–199
167	”	”	K1300–1399 & 1800–1899
168.	”	”	M300–399
169.	”	”	M400–499 & M411 8 3 & M462
170.	”	”	No–99
171	”	”	N440–499
172	”	”	L400–499
173.	”	”	T549 3 & T549 3.1
174	”	”	M458
175.	”	”	T592 & H495
176.	”	”	Xo–X99

177 डा० सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 384,

178. ए० आर० होप (मोनक्रिएफ) क्लासिक मिथ एण्ड लिजेण्ड पृ० 200–20

179 डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० 381, 386 तथा 388;

180 वही, पृ० 393–95,

181. महाभारत, पर्वसंग्रह पर्व, 2, 37, तथा महाभारत हरिवंश पर्व 2.75,55, 2, 83, 20–22, 2, 84, 54, 62; 2, 119, 19, तथा 2, 122, 53,

182 महाभारत वनपर्व, अ० 59, 61 (नल राजा की हार) अ० 72, 77, 78, 79, 91, 160, 171,174, 313;

183. महाभारत अनुशासन पर्व, अ० 117–19 तथा हरिवंश पर्व 3 अ० 24,

184. महाभारत वन पर्व अ० 222–26,

185. महाभारत शांति पर्व, अ० 127,

186 लीलावई कहा प्र० भारतीय विद्या भवन, बम्बई, भूमिका भाग, पृ० 75,

187. पुष्पदन्त रचित 'णायकुमार चरिउ' स० डा० हीरालाल जैन, कारंजा सीरिज, बरार, 1933 इ० ।

188 राजनारायण पाण्डेय का शोध प्रबध 'महाकवि पुष्पदन्त', चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृ० 99, 101;

189. मुनिकनकामर कृत 'करकण्डु चरिउ'–सं० डा० हीरालाल जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ० 12,

190. साधारण सिद्धसेनसूरि रचित, 'विलासवई कहा' की दो हस्तलिखित ताड़-पत्रीय प्रतियो के जैसलमेर भण्डार में प्राप्त होने की सूचना के आधार पर प्रो० गदाधरसिंह के अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध "मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य" टंकित प्रति, पृ० 61 मे दिये विवरण के साक्ष्य पर ।

191 हरिभद्र कृत 'सणयकुमार चरिउ' डा० हरमन जैकोबी द्वारा रोमनलिपि में सम्पादित हो कर जर्मनी से सन् 1921 मे प्रकाशित हुआ है ।

192 ब्लूमफील्ड · ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि अमेरिकन फिलासफिकल एसोसियेशन, जिल्द 44, पृ० 414–476, श्री व्रजविलास श्रीवास्तव लिखित पृथ्वीराज-रासो मे कथानक रूढियां' में उद्धृत पृ० 26,

193 कथासरित्सागर 1, 3, 46–52, तथा वही, आदि तरंग, 47,

194. श्री व्रजविलास श्रीवास्तव पृथ्वीराजरासो मे कथानक रूढिया, पृ० 92–93 तथा पृ० 95–130,

195 कविराज विश्वनाथ साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद ।

196 मैक्डोनल एण्ड कीथ वैदिक स्टडीज, जिल्द 3, पृ० 126, पद-टिप्पणी ।

197 एन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स जिल्द 2, पृ. 809, 810.

198 महाभारत, हरिवंश पर्व, 3, 118, 119, 6,33–34

199. वही, भविष्यपर्व, 20, 3–4,

200. हरिवंशपुराण, भविष्य पर्व 20, 9,

201 विष्णुपुराण, 1, 5, 43, 46;

202 हरिवंश पर्व 4, 15,

203 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 137–42 तथा सर्ग 47, श्लोक 40–43,

204 सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद सं 571, 129 तथा जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण 47, 20–26,

205 जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, सर्ग 36, श्लोक 56–58, महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्नचरितम् 2, 23,

206 सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद स. 588–89, 620–21,

207 विष्णु पुराण, 5, 27, 3,

208 सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद सं 123,

209, जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण, सर्ग 43, श्लोक 39 तथा महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरितम् 435,

210 श्रीमद्भागवत पुराण 2, 3, 8

211 मत्स्यपुराण–ए स्टडी–डा वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 280–281 तथा मत्स्यपुराण अ 180,

212 उमाकांत प्रेमानन्द शाह; क्षेत्रपाल इन जैन इकोनोग्रॉफी, श्री महावीर स्मृति ग्रंथ भाग 1, प्र महावीर जैन सोसाइटी, आगरा–पृ. 222,

213 निर्वाण कलिका, पृ 38 तथा आचार दिनकर, खण्ड 2, पृ. 181,

214 डा जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ 68, 81, 90, 140 तथा 246;

215. डा. जनार्दन मिश्र : भारतीय प्रतीक विद्या, पृ. 248, 252,

216 डा बी सी. भट्टाचार्य जैन इकोनोग्राफी, पृ. 94, 96,

217. सधारुचरित प्रद्युम्न चरित, छंद सं. 189–92, 209, 215, 218;

218. हरिवंश पर्व 3, 110 तथा 4, 10, 6, 27;
219. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड एथिक्स, जिल्द 2, पृ 809,
220 महाभारत शांति पर्व, अ 3 ६6,
221 सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद सं 188–204,
222. पी. टॉमस, एपिक्स, मिथ्स एण्ड लीजेण्ड्स आफ इण्डिया, पृ. 81–82,
223. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड एथिक्स, जिल्द 2, पृ 809,
224. हरिवंश पर्व, 6, 30,
225 डोनाल्ड ए मैकेन्जी इण्डियन मिथ एण्ड लिजेण्ड, पृ 63
226. काशीनाथ वामन राजवाडे राजवाडे लेख संग्रह, पृ 85,
227 डोनाल्ड ए. मैकेन्जी इण्डियन मिथ एण्ड लिजेण्ड, पृ 68–71,
228. हरिवंश पर्व, 3, 88, 100,
229 सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, छंद सं 198
230 श्रीमद्भागवत 1, 5, 5 तथा हरिवंश 3, 10–14
231 हिन्दी शब्द सागर, प्र ना प्र सभा काशी, खण्ड 4, पृ 1807
232 श्रीमद्भागवत स्कंध 1, अ 5 तथा 6, स्कंध 6, अ. 5,
233. हिन्दी साहित्य कोश–सं डॉ. धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति द्वितीय खण्ड, पृ 282
234. हरिवंश 2, 119, 5
235. हरिवंश पुराण, जिनसेनाचार्य कृत, पन्नालाल जैन सम्पादित, प्रस्तावना. पृ. 9 तथा सर्ग 42, श्लोक 12, 13, 22; सर्ग 65 श्लोक 24; सर्ग 42, श्लोक 20–23,
236. हरिवंश, भविष्य पर्व, अ. 14, श्लोक 27–28 तथा 1, 52, 22–40 मार्कण्डेयपुराण, अ. 81 विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अ 15, जयाख्य–संहिता पृ 22–24 तथा मत्स्यपुराण, अ. 170,
237. डा जनार्दन मिश्र : भारतीय प्रतीक विद्या, पृ 248–49, 321
238. ऋग्वेद 6, 47, 18, 3, 53, 8, 8, 17, 13;
239 ऐतरेय ब्राह्मण 2, 4;
240. श्रीमद्भगवत्गीता 2, 2;
241 महाभारत, अनुशासन पर्व, अ. 14, श्लोक 140–47 तथा अ, 40, श्लोक 27–37; आदि पर्व, अ. 169, 5–16, अ. 117–119,
242. श्रीमद्भागवत, स्कंध 5, अ 8–9,
243. पद्मपुराण, 1, 20, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अ. 116–117, बृहन्नारद पुराण, अ. 9,

244 सनत्कुमार सहिता, पटल 35 तथा बृहद्ब्रह्मसंहिता अ. 5, श्लोक 49–75;

245. एम विण्टरनिज इण्डियन लिटरेचर, भाग 2, पृ 453,

246 महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० 86, श्लोक 20–26

247 विष्णु पुराण, 5, 25, 15–16;

248. डा. आर सी हाजरा : स्टडीज इन द उप-पुराणाज, पृ 305

249 महाभारत, सभापर्व, 5, 109,

250 अग्निपुराण, अ 288,

251, भगवतीसूत्र, चतुर्थ भाग, शतक 6, उपदेशक 5, सूत्र 3, प्र, जैन श्वेता. स्थानकवासी शास्त्रोद्धारक फण्ड राजकोट 1963 ई, संस्करण, पृ, 1105,

252 स्थानागसूत्र द्वितीय भाग, प्रकाशक वही, पृ 349–51,

253 श्रीमद्भागवत, स्कंध 11 अ. 15,

254 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अ 343–48,

255. महासेनाचार्य कृत 'प्रद्युम्न चरितम्' सर्ग 9, श्लोक 172–76, इसी कल्पना के विस्तार के लिए द्रष्टव्य–आचार्य सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न चरितम् सर्ग 10

256. पुष्पदन्त कृत महापुराण (सधि 51) मे भी त्रिपृष्ठ द्वारा कोटि–शिला संचालन जैसे अद्भुत पराक्रम वर्णित हैं।

257 हरिवश पर्व, 48, श्लोक 8,

258. महाभारत अनुशासन पर्व, अ. 149, 81;

259. विष्णु पुराण, 1, 9, 120

अध्याय : चार

卐

सधारु-परवर्ती प्रद्युम्न-चरित-काव्य

महासेनाचार्य (11 वी सदी वि० के मध्य) से प्रारम्भ कर आधुनिक युग मे गुणभद्र अगास, सूर्यमुनि और आरानिवासी स्व० जैनेन्द्रकिशोर (वि० स० 2000 के आस-पास) तक के प्राय एक सहस्राब्धि के विस्तीर्ण काल-खण्ड मे प्रद्युम्न-चरित-काव्य-धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती दृष्टिगत होती है। ध्यान रहे, प्रद्युम्न के

1. पीठिका : सधारु परवर्ती काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

लौकिक और दैविक व्यक्तित्व का विकास तो महाभारत-पुराणयुग तथा वैष्णव सहिता-काल की देन है और 'प्रद्युम्न' अभिधान और उसके पूर्ववर्ती स्थानापन्न कामदेवता के विकास की रूपरेखा तो सुदूर वैदिक युग तक जाती है। 11 वी सदी से 20 वी सदी की यह कालावधि तो स्वतत्र रूप से रचे गये प्रद्युम्न-चरित विषयक प्रबध काव्यो की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस काल-क्रम मे सधारु (स० 1411) तक प्रद्युम्न-चरित के काव्य-रूप का न केवल परिपूर्ण विकास हो चुका था अपितु एक ढाँचे के रूप मे वह रूढ भी हो चुका था तथा समस्त वस्तु-व्यापार व्यजनाओ को प्रणालीबद्ध स्वरूप भी प्राप्त हो गया था। यही कारण है कि सधारु तक लिखे गये प्रद्युम्न चरित काव्यो मे हमे वे समस्त कथा-सूत्र, कथानक के मोड और काय व्यापार मिल जाते है जो परवर्ती काव्यो मे भी गृहीत हुए है। क्या कथानक की योजना क्या मार्मिक स्थलो की उद्भावना क्या वस्तु-व्यापार वर्णन और क्या भाव-व्यजना, सभी दृष्टियों से परवर्ती कवियो ने महासेन-सिद्ध-सिह-सधारु के इस कविचतुष्क का ही अनुसरण किया है। अन्तर है तो यही कि परवर्ती कृतियो मे कही वस्तु-व्यापार-विवृति का संकोच है तो कही विस्तार। सरसता की न्यूनता और शुष्क इतिवृत्त कथन की प्रवृत्ति सधारु से प्रारभ हो कर उत्तरोत्तर बढती ही गयी है। सपूर्ण काव्य को नये अर्थ, सदर्भ और नयी प्राणवत्ता दे सकने मे समर्थ प्रतिभा का धनी कोई दिशान्तरकारी कवि नही हुआ। ये चारो कवि ऐसे सुदृढ स्तम्भ है जिन्होने प्रद्युम्न चरित के कथा-शिल्प को उसकी समस्त भव्यता और कलात्मकता सहित धारण कर

रखा है। फिर भी गौण प्रसंगो के निरूपण तथा वस्तु-व्यापारो के सूक्ष्म वर्णन मे कवियो द्वारा अपनी विशिष्ट कला-क्षमता का परिचय दिया जाना स्वाभाविक है। साथ ही युगीन परिवेश की दृष्टि से भी सभी कृतिकारो का अपना विशिष्ट महत्त्व है। अत भावी अध्येता की सुविधाओ हेतु सधारु परवर्ती प्रमुख प्रद्युम्न-चरित काव्यकारो का सक्षिप्त विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया जाना अभीष्ट होगा।

2. कृति-सूचियाँ तथा उनका विश्लेषण भाषा, काव्य-विधा तथा रचना काल की दृष्टि से

महासेन से सधारु तक पायी जाने वाली प्रद्युम्न-चरित सम्बन्धी कृतियो का परिचय देते हुए अब तक डा० कस्तूरचद कासलीवाल ने सबसे बडी सूची प्रस्तुत की है। उनके द्वारा प्रस्तुत इस सूची मे कुल 25 कृतियो का उल्लेख है।[1] इनमे से भी कृति स० 20 के लिए केवल 'प्रद्युम्न चरित्र-भाषा हिन्दी गद्य लिख कर छोड दिया गया है। डा० कासलीवाल को यह श्रेय है कि उन्होने पहली बार हिन्दी जगत को दो दर्जन प्रद्युम्न-चरित काव्यो की एकत्र सूचना दी। फिर भी एतद्विषयक ज्ञातव्य के सम्बन्ध मे वे निश्चित, विस्तृत और प्रामाणिक विवरण नही जुटा पाये है तथा न ही अपने विवरणो के साक्ष्य का उल्लेख कर पाये है। समय और साधनो की दुर्लंघ्य सीमाओ के होते हुए भी इस शोध-प्रबन्ध मे इस दिशा मे आगे बढने का उपक्रम किया गया है और कुल 52 प्रद्युम्न-चरित्र विषयक कृतियो का पता लगाते हुए तथा उनकी उपलब्धि के स्रोतो का प्रामाणिक उल्लेख करते हुए लेखक-परिचय और रचना-काल के सम्बन्ध मे अधिक निश्चित विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है— (द्रष्टव्य परिशिष्ट 1)। साथ ही प्रत्येक कृति की हस्तलिखित या मुद्रित प्रतियो के सम्बन्ध मे भी विश्वस्त सूचनाए जुटायी गयी है—(द्रष्टव्य परिशिष्ट 2)। वैज्ञानिक और प्रामाणिक अध्ययन की दृष्टि से ऐसा करना अपरिहार्य स्वीकार किया जाना चाहिए।

उक्त परिशिष्टो के अवलोकन से स्पष्ट है कि भाषा, विधा तथा रचना-काल की दृष्टि से प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी कृतियो की स्थिति इस प्रकार है —

(क) भाषा की दृष्टि से :	सधारु तक प्राप्य (कृति संख्या)	सधारु-परवर्ती (कृति सख्या)	योग
(1) सस्कृत	1	13	14
(2) प्राकृत	—	3	3
(3) अपभ्र श	1	1	2
(4) दाक्षिणात्य भाषाएँ— तेलुगु—1) मलयालम—1)	—	2	2

(5) हिन्दी (पुरानी हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, व्रज मिश्रित और खडी बोली)	1	30	31
	3	कुल योग 49	52

विधाओ की दृष्टि से स्थिति यह है—

[ब] काव्य-विधा की दृष्टि से	कृति-सख्या
(1) नाटक-सस्कृत—2 हिन्दी (व्रज) 2 तथा खडी बोली 1 = 3	5
(2) गद्य-प्राकृत—1) हिन्दी—1)	2
(3) पद्य (प्रबध काव्य)	45

रचना-काल के क्रम की दृष्टि से स्थिति को यो व्यक्त किया जा सकता है:—

[ग] काल-क्रम की दृष्टि से :			कृति—सख्या
(1) विक्रम की	11 वी	शताब्दी	1
(2) "	13 वी	"	2
(3) "	15 वी	"	4
(4) "	16 वी	"	3
(5) "	17 वी	"	12
(6) "	18 वी	"	5
(7) "	19 वी	"	4
(8) "	20 वी	"	11
(9) अज्ञात या अनिर्णीत काल की रचनाए			10
		योग	52

इस विवरण-तालिका से स्पष्ट है कि 17वी तथा 20 वी शताब्दी का प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य ग्रथो की रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इन्ही मे सर्वाधिक कृतियो की रचना हुई। इन्हे प्रद्युम्न-चरित्र काव्य-सृजन का उत्कर्ष-काल कहा जा

सकता है। अभी तक प्राप्त साक्ष्य के अनुसार 12 वी तथा 14 वी शताब्दियो मे किसी कृति की रचना नही हुई। हो सकता है कि नवीन तथ्यो और विवरणो तथा अज्ञात काल की कृतियो से रचनाकाल के विषय मे नवीन सूचनाओ के प्राप्त होने पर इस धारणा मे सशोधन करना पडे किन्तु फिर भी सामान्य और व्यापक निष्कर्षो मे बहुत अ तर पडने की संभावना नही है।

सधारु-परवर्ती प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे सस्कृत की 10 कृतिया मिलती हैं जिनमे 2 नाट्यकृतियो को छोड देने पर प्रबध काव्यो की सख्या 8 रह जाती है। इन सभी परवर्ती सस्कृत कवियो ने अधिकाशत. महासेनाचार्य 'के प्रद्युम्न-चरितम्' से ही कथा-विनियोजन वस्तु व्यापार-वर्णन और भावाभिव्यजन मे प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण की है। महासेन के पश्चात् सस्कृत के प्रमुख कवि सकलकीर्ति (विक्रम की 15 वी शताब्दी मे) हुए। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे तथा अन्यान्य जैन कवियो को भाति बहुभाषज्ञ थे। इन्होने स्वय को भट्टारक पद्मनदि का शिष्य लिखा है। अपने प्रभाव से इन्होने एक नयी भट्टारक परम्परा स्थापित की जिसमे आगे चल कर ज्ञानभूषण, ब्रह्मजिनदास, शुभचन्द्र इत्यादि अनेक साहित्यकार हुए। इनके द्वारा आदिपुराण, पुराण-सार-सग्रह, यशोधर चरित, वर्द्धमान पुराण आदि रचनाए सस्कृत मे तथा आराधनासार हिन्दी मे रचित है।[2] इनके अतिरिक्त सस्कृत मे ही कवि सकलकीर्ति ने 'प्रद्युम्न चरितम्' की रचना भी की जिसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर मे तेरापथी बडे मदिर के भडार मे है।

3. विक्रम की 15 वी तथा 16 वी सदी के कवि सकलकीर्ति, रइधू, सोम-कीर्ति, मल्लिभूषण प्रभृति।

कालक्रम की दृष्टि स सकलकीर्ति के पश्चात् रइधू का स्थान आता है। ग्वालियर के तोमरव शी राजाओ के राज्यकाल मे जैन धर्म और साहित्य के निर्माण मे अच्छा प्रोत्साहन मिला। राजा डूगरसिंह और कीर्तिसिंह (पितापुत्र) के शासन काल (सम्वत् 1481–1536) मे कवि रइधू ने लगभग 25 अपभ्र श ग्रथो की रचना की थी। अपभ्र श भाषा मे पुष्कल रचनाए लिखने वालो मे प० रइधू का नाम है। ये ग्वालियर निवासी थे तथा इनके गुरु का नाम गुणकीर्ति था। इनकी धन्यकुमार चरित्र, पार्श्वनाथ पुराण, सुकौशल चरित्र, सन्मति जिन चरित्र नेमिनाथ चरित्र, यशोधरचरित्र, जीवधरचरित्र, आदि 25 से अधिक रचनाए हैं।[3]

भट्टारक रामसेन की शिष्य-परम्परा मे भट्टारक भीमसेन के शिष्य सोमकीर्ति हुए। उन्होने स० 1530 मे अपना 'प्रद्युम्नचरितम्' समाप्त किया था। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है। इनके अतिरिक्त इसका हिन्दी अनुवाद जिनवाणी

प्रचारक कार्यालय, हरिसन रोड, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। जैन ग्रथरत्नाकर कार्यालय बम्बई से भी इसका प्रकाशन हुआ है।[4]

सोमकीर्ति का काव्य-सौष्ठव सुगठित होते हुए और चरित्र-चित्रण तथा भावो के वर्णन मे मनोवैज्ञानिकता का पुट होते हुए भी कथानक–सगठन शिथिल और व्यर्थ विस्तार से बोझिल है। उसमे पौराणिक शैली की छाप है और महाकाव्योचित सगठन का अभाव है। कथानक म द अलस गति से आगे बढता है और पुनरुक्ति दोष से ग्रस्त है। उदाहरणार्थ, नारद रुक्मिणी का चित्र दिखाते समय उसके रूप और कुल, शील तथा शिशुपाल स वाग्दान का समस्त वृत्तान्त कह देते हैं और इसके तुरन्त बाद रुक्मिणी का दूत जब कृष्ण के पास आता है तो पुन वे ही सब बाते दोहराता है।[5] इसी प्रकार प्रद्युम्न और धूमकेतु के पूर्वभवो का वर्णन पहले तो नारद करते है फिर सीमन्धर स्वामी उसी को दोहराते है। यक्ष द्वारा द्विजपुत्रो को कील दिये जाने की घटना के विवरण की भी तीन बार आवृत्ति हुई है।

कथानक तथा शैली मे पौराणिकता की छाप लिये हुए काव्यो मे कथा-वृत्तो की पुनरुक्ति एक सामान्य परम्पराविहित दोष है। उसका एक मुख्य कारण यह है कि कार्य-कारण परम्परा की शृ खला जो भवान्तरो से विच्छिन्न हो जाती है उसके सूत्र विशृ खलित ही न रह जाए। जिस प्रकार किसी छूटे हुए सहयात्री को साथ लेने के लिए द्रुतगामी वाहन को पीछे लौटना पडता है उसी प्रकार भवान्तर कल्पना-रूढ़ कथा-शैली मे भी कथानक को पद-पद पर पीछे छूट गये कथा-सूत्रो को फिर से साथ लेने के लिए परावर्तित होना पडता है।

आचार्य सोमकीर्ति ने नारद द्वारा चित्रपट दिखाने के अतिरिक्त रुक्मिणी द्वारा कृष्ण की सेवा मे दूत-प्रेषण की योजना भी की है जो सामान्यतया जैन परम्परा में गृहीत नहीं हुई है। इस वैष्णव प्रभाव से कवि की बहुज्ञता और कथा-सूत्र-चयन मे निर्मल सारग्राहिता सूचित होती है।

आचार्य सोमकीर्ति की रचना कल्पना की सानुरंजकता और अलकृति की दृष्टि से समृद्ध है। कवि ने रात्रि–वर्णन मे मनोहारी कल्पना और अलकार-योजना का परिचय दिया है। एक ही दृश्य को लेकर दो विरोधी उपमानो की रोचक सृष्टि करने मे वह सफल हुआ है। रात्रि को उत्तमा तथा दिशा को अधमा नायिका के रूप मे वर्णित करते हुए कवि ने जो चित्रण किया है उसमे श्लेष पर आधारित सादृश्य-विधान तथा प्रकृति पर मानवीय व्यापारो का आरोपण दर्शनीय है।[6]

सौराष्ट्र देश का वर्णन करते हुए कवि सोमकीर्ति कहते हैं कि धान्य के खेत पीले हो कर नीचे झुक गये हैं। मानो वे जल पीने के लिए ही नीचे झुके है। वहा कभी दुर्भिक्ष की आशंका नही रहती। नगर के बाहर गोचर भूमि पर्याप्त है। वहाँ के वनो मे नागवेलें सुपारी के वृक्षो से लिपटी हैं। इसलिए ताम्बूल खाने वाले केवल चूना

लेकर ही वहा जाते है। स्थान-स्थान पर कदली, केला, ताड, दाख, अगूर के वृक्ष शोभित है। अत' वहा के निवासी विना कलेवा लिए ही यात्रा करते है।[7]

रूप-वर्णन मे कवि ने चिर-परिचित उपमानो का ही आश्रय लिया है। सत्य-भामा और रुक्मिणी के रूप-वर्णन मे परम्परागत प्रतीक-योजना ही गृहीत हुई है। फिर भी एक विशेषता है कि आचार्य सोमकीर्ति ने रूप-वर्णन मे पुरुष-रूप को उपेक्षित नही किया है। चरित्रनायक होते हुए भी प्रद्युम्न का रूप-वर्णन कवियो मे विस्मृत ही रह गया है। कामदेव का अवतार कह देना ही मानो वर्णनातिशय हो गया है। सम्भवत. 'मोहि न नारि नारि के रूपा' की भाँति यहाँ भी पुरुष कवियो ने अन्यमनस्कता का परिचय दिया है। फिर भी वे चाहते तो नारी-नयनो से ही प्रद्युम्न को निहार सकते थे। आचार्य सोमकीर्ति ने ऐसा ही किया है। काममुग्धा कनकमाला की दृष्टि के व्याज से कवि-कृत प्रद्युम्न-रूप का यह वर्णन बहुत आलकारिक और उदात्त तो नही है तथापि एक सहज रूप-चित्र कवि अवश्य प्रस्तुत कर सका है। कवि कहता है कि प्रद्युम्न के कोमल मुख, आकर्षक केशराशि, सुन्दर त्रिविधायत लोचन, शखोपम ग्रीवा, चद्रोपम मुख, सुमेरुवत वक्षस्थल, सिह सदृश कटि, गजगति और तप्त स्वर्ण सी कातिमती देह को देख कर कनकमाला कामविद्ध हो गयी।[8]

आचार्य सोमकीर्ति राजा मधु और भीम के युद्ध-प्रसगो मे युद्ध-वर्णन करते हुए कहता है कि युद्धभूमि मे चपल तुरगो की क्रीडा ही चपल तरगे है, उछलती हुई लहरो के फेन ही डुलते हुए चँवर है हाथियो के उन्नत शिर ही पर्वत-खण्ड है, गज-मुक्ताओ के ढेर ही समुद्र-गर्भस्थ मुक्ता हैं। इस प्रकार कवि ने सागरूपक का अच्छा निदर्शन प्रस्तुत किया है।

आचार्य सोमकीर्ति ने वीररस के वर्णन मे अनुभाव-चित्रण का विशेष आश्रय लिया है। कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध मे एकत्र पाण्डव और यादव पक्षीय वीरो की भावनाओ की अभिव्यक्ति आगिक चेष्टाओ के रूप मे इस प्रकार व्यंजित की गयी है कि एक ही स्थिति को लेकर भिन्न मनोभावो के अनुसार सुभटो की विभिन्न चेष्टाएँ व्युत्पन्न होती है। युद्धोन्माद मे कोई वीर छाती ठोकता है, कोई दातो से अपने ओठ काटता है तो किसी शूर वीर का कवच युद्ध क्रीडा की उत्साहपूर्ण उमग मे स्वत' टूट जाता है।[9]

इस प्रकार हम देखते है कि सोमकीर्ति का अलकार-विधान समृद्ध होते हुए भी उसमे प्रतीक-योजना चिर परिचित और रूढ है तथा महासेनाचार्य, जिनसेनाचार्य आदि पूर्ववर्ती जैन कृतिकारो के अतिरिक्त वैष्णव पुराणो तथा सस्कृत काव्य-परम्परा से दाय मे प्राप्त प्रतीक योजना से प्रभावित है। युद्ध-भूमि की समुद्र से तुलना पर वैष्णव हरिवश पुराण मे वर्णित सैन्यनद के सागरूपक का स्पष्ट प्रभाव है। फिर भी इससे कवि की बहुपठितता, रसज्ञता और कलाकुशलता सूचित होती है। कवि ने अपने वर्णनो को नीरसता से उबार कर उनमे सश्लिष्ट चित्रमयता और कल्पना-

प्रवणता का अभिनिवेश किया है। प्रद्युम्न के बाल-रूप वर्णन में सजीव तथ्यमूलकता, चित्रोपमता, संश्लिष्ट व्यापार-विधान और मनोवैज्ञानिकता का सुन्दर निदर्शन हुआ है।[10]

सोमकीर्ति ने विमान-रचना प्रसंग में नारद की दुर्दशा और प्रद्युम्न द्वारा नारद के प्रति उपहासपूर्ण उक्तियों से हास्यरस की सुन्दर सृष्टि की है। द्वारका की ओर जाते हुए मार्ग के वन-पर्वतों का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। पर्वत के सौंदर्य का श्लिष्टाश्रित वर्णन करते हुए कवि ने 'विशालवपुधारी, गुरुवंशीय, उच्चस्कन्धयुक्त अनन्त शृंगी सेवित पर्वतराज को प्रद्युम्न के सदृश ही सुशोभित बताया है। कवि पर पौराणिक शैली की छाप इतनी अधिक है कि वह कथान्तरों की ओर बरबस बढ जाता है। मार्ग में उदधिकुमारी के साथ जाते हुए दुर्योधन-सैन्य का वर्णन करते हुए बीच में ही कवि आदिनाथ भगवान के काल में उत्पन्न श्रेयान्स नामक नृप के वंश में कुरु के जन्म से प्रारंभ कर दुर्योधन द्वारा छल से राज्य-ग्रहण तक की सारी महाभारतीय कथा कह डालता है जो स्पष्टतः मूल या अधिकारी कथानक से असम्बद्ध है। इसी प्रकार प्रद्युम्न की जिज्ञासा पर मुनि वरसागर रुक्मिणी से प्रद्युम्न के वियोग का रहस्योद्घाटन करते हुए रुक्मिणी के अनेक पूर्व भवों का विस्तृत वर्णन करते हुए रुक्मिणी का सोम शर्मा और कमला नामक ब्राह्मण—दम्पति की पुत्री लक्ष्मीवती के रूप में शृंगारमद से प्रेरित हो दर्पण के पीछे खडे मुनि का अपमान करने के फलस्वरूप कुष्ट रोग से प्राणान्त हो क्रमशः गर्दभी, गृहशूकरी कुतिया दुर्गंधा नामक धीवर पुत्री बनकर जन्म लेना फिर मुनि कृपा से जाति-स्मरण हो व्याघ्र द्वारा भक्षण से मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में शची बनना और फिर वहां से चय कर रुक्मिणी के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेना—इत्यादि वृत्तान्त कहते हैं। साम्ब-जन्म भानु-सुभानु की द्यूतादि प्रतिस्पर्द्धाएं साम्ब को राज्य प्राप्ति साम्ब द्वारा घोर अनाचार तथा नेमि—राजमती प्रसंग भी पर्याप्त विस्तार से वर्णित किये गये हैं। कवि ने दीपायन मुनि के अपमान, यादवों के मद-पान और द्वारका-दाह का भी अपेक्षाकृत व्यापक वर्णन किया है। प्रतीत होता है कि कवि अपने वैष्णव तथा जैनपुराणों के ज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग और प्रदर्शन करना चाहता है। अंत में प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध द्वारा गिरनार के तीन शिखरों पर मोक्ष-प्राप्ति के वर्णन के साथ ही स्वस्ति पाठ करते हुए और अपनी काष्ठासंघीय नदीतटगच्छीय गुरु-परम्परा का परिचय देते हुए पौष सुदी त्रयोदशी, बुधवार सं० 1531 को 4850 श्लोक-प्रमाण शास्त्र (प्रद्युम्नचरितम्) की रचनापूर्ति सूचित करते हुए कवि अपने ग्रंथ की समाप्ति करता है। सोमकीर्ति की इस कृति को काव्यगुण-सम्पन्न किन्तु कथानक-संगठन में शिथिल महाकाव्य अथवा पौराणिक शैली का प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है।

सोमकीर्ति के पश्चात् मल्लिभूषण का क्रम आता है। इनका लिखा हुआ प्रद्युम्न-चरित्र बहुत प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सका। अतः कवि-परिचय

तथा रचनाकाल सम्बन्धी विवरण प्रामाणिक रूप से देख सकना संभव नहीं हो सका। श्री नाथूरामजी प्रेमी ने मल्लिभूषण का परिचय देते हुए लिखा है कि ब्रह्म नेमिदत्त ने अपने 'सुदर्शनचरित्र' में मल्लिभूषण और श्रुतसागर का एक साथ स्मरण किया है। श्रुतसागर भी मूल संघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण में हुए हैं। इनके गुरु का नाम विद्यानंदि था। अतः यह परम्परा पद्मनंदि, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानंदि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचंद्र के रूप में है। मल्लिभूषण को श्रुतसागर ने गुरुभाई लिखा है। विद्यानंदि का भट्टारक पट्ट संभवतः ईडर में था। मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्म नेमिदत्त ने भी यही परम्परा दी है। श्रुतसागर ने बीसियों ग्रंथों की रचना की है तथापि कहीं भी रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया। फिर भी उसका निर्धारण किया जा सकता है क्योंकि ब्रह्म नेमिदत्त ने 'श्रीपाल चरित्र' (र० का० सं० 1585) में मल्लिभूषण का गुरु रूप में उल्लेख किया है। स्वर्गीय बाबा दुलीचंदजी की ग्रंथ सूची में श्रुतसागर का समय सं० 1550 लिखा है। अतः मल्लिभूषण का समय भी वि० सं० 1550 के आस-पास ही होना चाहिए।[11] ईडर से सम्बन्ध होने के कारण इसकी पर्याप्त संभावना है कि यही मल्लिभूषण 'प्रद्युम्न चरित' के रचयिता हैं। इस परम्परा में इनके पहले होने वाले देवेन्द्रकीर्ति संभवतः बाद में होने वाले प्रद्युम्न कथा के प्रणेता देवेन्द्रकीर्ति से पृथक् व्यक्ति हैं। जो भी हो, निर्णायक रूप से ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों के उपलब्ध होने के बाद ही कुछ कहा जा सकेगा।

4. प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी रचनाएँ तेलुगु, मलयालम तथा कश्मीरी में

प्रद्युम्न-चरित्र विषयक प्रबंध-काव्यों की रचना उत्तर भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त द्रविड़कुल की दाक्षिणात्य भाषाओं में भी हुई। प्रद्युम्न-चरित्र ने दक्षिण भारत को भी अपनी ओर आकृष्ट किया। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तेलुगु भाषा में रचित 'प्रभावती प्रद्युम्नमु'' है जिसके रचयिता पिंगलि सूरना हैं। आंध्र वाङ्मय में महाकवि तिक्कना और पोतना के पश्चात् पिंगलि सूरना का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। श्री० बालशौरि रेड्डी का कहना है कि सर्वतोमुखी प्रतिभा से सम्पन्न सूरना प्रौढ़ कविता एवं मौलिक उद्भावना करने में अद्वितीय थे। कृष्णा जिले में पिंगलि ग्राम के ये निवासी थे तथा अमरना और अम्बम्मा के सुपुत्र थे। सूरना ने 'कलापूर्णोदयमु' और श्लिष्टार्थ पर आश्रित 'राघव पाण्डवीयमु' की भी रचना की है। कुछ पंडितों का यह मत कि सूरना विजयनगर साम्राज्य के प्रतापी नरेश कृष्णदेवराय (राज्यकाल 1487–1530) की राज्यसभा के अष्ट दिग्गजों में से एक थे, अभी तक विवादास्पद ही है। कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि सूरना नंद्याल के राजा कृष्णराजु के दरबारी कवि थे और सदाशिवराय (1542–70 ई) के समकालीन थे तथा कृष्णराज को सूरना ने "कलापूर्णो-

दयम्" समर्पित भी किया था। 'प्रभावती-प्रद्युम्नमु' पाच आश्वासों मे समाप्त हुआ है। इसमे वीर और शृंगार रसों का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।

'प्रभावती प्रद्युम्नमु' का कथा-सार इस प्रकार है—मेरु पर्वत के समीप वज्रपुरी नामक नगर का निर्माण कर वज्रनाभ नामक राक्षस राज्य करता था। उसने अपने तपोबल से ब्रह्मा को प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त कर रखा था कि उसकी आज्ञा के बिना कोई भी उस नगर मे प्रवेश नहीं कर सके। भद्र नामक एक नट ने वसुदेव के यज्ञ मे अपने अभिनय से उन्हे प्रसन्न कर यह वर प्राप्त कर लिया कि वह उस अलभ्य दुर्ग मे प्रवेश कर सके। इद्र के सरोवर की एक 'शुचिमुखी' नामक हसिनी वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती के निकट पहुँच कर प्रभावती को प्रद्युम्न के प्रति आसक्त कर देती है। प्रद्युम्न भद्र' नामक नट के साथ नट-वेष मे 'वज्रपुरी' दुर्ग मे प्रवेश कर प्रभावती के साथ प्रणयालाप करते है। अत मे देवासुर सग्राम होता है और प्रद्युम्न वज्रनाभ का वध कर उसके राज्य को चार भागो मे विभक्त कर वज्रनाभ के चार पुत्रो —प्रभावन्त चद्रप्रभु, गुणवन्त और कीर्तिवन्त को प्रतिनिधि शासक नियुक्त करते है। प्रद्युम्न-प्रभावती विवाह सम्पन्न होता है। इस काव्य मे शुचिमुखी नामक हसिनी की वाक्-चातुरी और कार्य-पटुता ने काव्य सौंदर्य मे चार चाद लगा दिये है।[12] पिगलि सूरना की इस कृति पर हरिवश पुराण मे वर्णित प्रभावती-प्रद्युम्न परिणय-प्रसग का प्रभाव स्पष्ट है।[13]

तेलुगु की ही भाँति मलयालम मे भी प्रद्युम्न-चरित विषयक काव्य-ग्रथ मिलते है। डा० के० भास्करन नायर के ग्रथ 'हिन्दी और मलयालम मे कृष्णभक्ति काव्य' से पता चलता है कि मलयालम मे कृष्ण की भक्ति विषयक स्फुट रचना तथा कृष्ण-कथा के विविध प्रसगो को आधार बनाकर प्रबन्ध-काव्यो की पर्याप्त सृष्टि हुई है और स्वभावत ऐसे ग्रथो मे आशिक रूप से प्रद्युम्न सम्बन्धी कथानक अन्तर्भुक्त हुआ है। प्रद्युम्न-जन्म और शबर-वध की कथा अत्यन्त सक्षेप मे मलयालम भाषा के महाकवि चेरुश्शेरि ने अपने 'कृष्णगाथा' नामक महाकाव्य मे वर्णित की है। चेरुशेरि ईस्वी सन् 1475—1575 के बीच (वि० स० 1532—1632) कभी हुआ था। इस महाकाव्य की रचना भागवत के दशम स्कध के आधार पर हुई है।

इस सदर्भ में प्रद्युम्न-चरित्र पर पृथक् से लिखी गयी केवल एक ही स्वतत्र कृति का नामोल्लेख श्री नायर ने किया है जो 'शबर-वध' नामक कथकलि रचना है। इसके कर्त्ता के सम्बन्ध मे मतभेद है। कुछ लोग कहते है कि कुचन नप्यार की यह कृति है तो कुछ दूसरे विद्वानो की राय है कि कुचन नप्यार के मामा केलक्कत नंप्यार ने इसे लिखा है। शम्बर-वध' के कवि ने रुक्मिणी द्वारा कृष्ण से वरदान में पुत्र—प्राप्ति की याचना और कृष्ण द्वारा शिव-कृपा से पुत्र प्राप्ति के आशीर्वाद से ग्रथ का प्रारभ किया है। इधर नारद शबर के पास जाकर उसकी स्तुति से उसके

अहंकार को जाग्रत करते हुए रुक्मिणी के गर्भ से कामदेव के अवतार के पुत्र रूप मे जन्म लेने और अपने इस भावी प्रबल शत्रु का अभी से वध करने को प्रोत्साहित करते है। शबर माया के प्रभाव से प्रद्युम्न को उठा लाता है और समुद्र मे फेंक देता है जहा मे वह एक मछली के पेट मे पड कर मछुए के द्वारा शबर के यहा ही पहुचा दिया जाता है और वहा नारद के अनुसार रति देवी ही दूसरा अवतार लेकर उसका पालन-पोषण करती है और युवक होने पर पूर्व-कथा कह कर उससे पति-पत्नीवत् आचरण करने का अनुरोध करती है। प्रद्युम्न शबर-वध कर मायावती को साथ लेकर द्वारिका चला जाता है। यह शबर-वध' नामक काव्य 'आट्टकथाम्' नामक काव्य-सग्रह (सम्पादक—के० एन० गोपालपिल्लै) मे सकलित है। शबर वध' के सभावित रचयिता कुचन नम्थार का जन्म सन् 1705 ई० और मृत्यु सन् 1648 ई० माना जाता है।[14] चाहे यह कृति कुचन नम्पार की हो चाहे उनके मामा की, इसका रचनाकाल सन् 1720 ई० (सं० 1777) के आस-पास अनुमानित किया जा सकता है। कश्मीरी भाषा मे दीनानाथ कवि कृत 'श्रीकृष्णावतार लीला' मे भी आंशिक रूप से प्रद्युम्न-मायावती कथा मिलती है जो भागवत के आधार पर ही है। यह कृति अनुमानत 18वी सदी ई० के अन्त और 19वी सदी के प्रारभ की है।[15]

तेलुगु, मलयालम तथा कश्मीरी भाषाओ मे रचित प्रद्युम्न-चरित्र विषयक कृतियो के इस सक्षिप्त परिचय के बाद पुन मूल उर्वर क्षेत्र-जैन साधको के कृतित्व की ओर लौट चलना उचित होगा। विक्रम की 17 वी शताब्दी मे ब्रह्म गुणराज, शुभचंद्र, कमलशेखर, ब्रह्म रायमल्ल, जिनचंद्र सूरि, रविसागर, वादिचद्र, भट्टारक श्रीभूषण, समयसुन्दर, गुणसागर, रत्नचद्र गणि प्रभृति एक दर्जन कवियो ने प्रद्युम्न-चरित काव्यो की रचनाएँ की। मूल सघ, सरस्वतीगच्छ के बलात्कारगण मे ही मल्लिभूषण से एक-दो पीढी बाद ही भट्टारक शुभचद्र हुए। ये भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। इनकी गुरु परम्परा पद्मनन्दि/सकलकीर्ति/भुवनकीर्ति>ज्ञानभूषण>विजयकीर्ति/शुभचंद्र है। प्रत्येक भट्टारक के अनेकानेक शिष्य-प्रशिष्य होते थे। उपर्युक्त गुरु-परम्परा क्रम मे भट्टारक पदधारी शिष्यो का ही उल्लेख है। मल्लिभूषण भी इसी गच्छ मे हुए थे। पद्मनदि का नाम मल्लिभूषण और शुभचद्र-दोनो ही की गुरु परम्परा मे है। अतः पद्मनदि से ही मल्लिभूषण की गुरु परम्परा की पृथक् शाखा प्रस्फुटित हो गयी प्रतीत होती है। शुभचद्र पद्मनदि से छठी शिष्य पीढी मे है तो मल्लिभूषण पद्मनदि से चौथी पीढी मे। कालक्रम की दृष्टि से मल्लिभूषण

5 विक्रम की 17 वी शताब्दी के कवि : शुभचद्र कृत प्रद्युम्नचरितम्

ो शुभचंद्र से पूर्वकालिकता भी इससे सिद्ध हो जाती है। शुभचद्र से आगे की शिष्य-रम्परा का क्रम इस प्रकार है--शुभचद्र>सुमतिकीर्ति>गुणकीर्ति>वादिभूषण>ामकीर्ति>यशःकीर्ति>पद्मनंदि। शुभचंद्र ने 'पाण्डव पुराण' की रचना सं० 1608 े सम्पूर्ण की थी। उसमे ग्रथकार द्वारा रचित 25 ग्रंथो का नामोल्लेख है जो स्पष्टतः 'पाण्डवपुराण' से पूर्व रचित हो चुके थे। अत 'प्रद्युम्नचरित' की रचना निश्चित रूप से 'पाण्डवपुराण (स० 1608) के पश्चात् हुई प्रतीत होती है। शुभचद्र का ही 'करकण्डु चरित' स० 1611 मे रचा गया था।[16] अत इसी के आस-पास स० 1610--15 के लगभग 'प्रद्युम्न-चरित' का रचना--काल अनुमानित किया जा सकता है। श्रीजुगलकिशोर मुख्तार का भी कहना है कि शुभचद्राचार्य विक्रम की 16वी और 17वी शताब्दी मे हो गये है।[17]

6 कमलशेखर कृत 'प्रद्युम्नकुमार चुपई'

'प्रद्युम्नकुमार चुपई' के कर्ता 'कमलशेखर' (जिन्हे भ्रमवश डा० कासलीवाल की पुस्तक मे कमलकेशर लिखा गया है) का सम्बन्ध धर्ममूर्ति के गच्छ से है। इस गच्छ में वेलराज आचार्य के दो शिष्य हुए--पुण्यलब्धि, जो उपाध्यायो मे प्रमुख थे तथा लाभशेखर। इन्ही के शिष्य कमलशेखर ने इस सुखप्रद प्रद्युम्न-चरित की रचना चुपई छद मे रची।[18] सारी कृति दोहा और चौपाई छदो मे ही रची गई है। कृति मे कुल 6 सर्ग और छद सख्या 793 है। इसकी प्रस्तावना से यह भी स्पष्ट है कि कमलशेखर ने माण्डलनगर मे चतुर्मास करते हुए स० 1626 की कार्तिक सुदी 13 को इसकी रचना सम्पूर्ण की थी।[19] जिन-स्तुति और सरस्वती--वदना के पश्चात् रुक्मिणी-हरण से कवि प्रद्युम्न-कथा को प्रारम्भ करता है। कवि ने इसे 'चुपई' के अतिरिक्त कभी 'रास' और कभी सरस 'कथा' और कभी 'चरित' कहा है।[20] इससे स्पष्ट है कि इन शब्दो का प्रयोग निश्चित विधाओ के विशिष्ट अर्थ मे न हो कर पर्याय रूप मे होता था। इस ग्रथ की प्रतिलिपि स्वर्णगिरि (सोनगिरि) मे ऋषि लालाजी द्वारा स० 1644 आषाढ बदी 1 के दिन की गयी थी। रचनाकाल से केवल 18 वर्ष बाद की प्रतिलिपि होने तथा प्रतिलिपि मे 'श्री-कमलशेखर गणि गुरूभ्योनम' लिखे जाने से सिद्ध है कि कवि के शिष्य द्वारा ही यह प्रतिलिपि की गयी है।[21] कवि की भाषा पर जूनी गुजराती का प्रभाव स्पष्ट है। उसे सौराष्ट्र देश पर विशेष अनुराग और अभिमान है। वह तीर्थ, तटिनीतोयं, तीरुलोचना, तरुणी, ताम्बूल और तोयधि-लक्ष्मी के रूप मे सौराष्ट्र देश के 'रत्नपंचक का उल्लेख करता है।[22]

विक्रम की 17वी सदी के ही एक अन्य कवि ब्रह्म रायमल्ल है। ये जयपुर राज्य के निवासी थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिखी थी जिनमे गढ हरसौर, रणथम्भोर एवं सांगानेर प्रसिद्ध है। ये अन्त मे सांगानेर मे आकर रहने लगे थे। डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने लिखा है कि ब्रह्म रायमल्ल मुनि अमरकीर्ति के शिष्य थे।[23] किन्तु 'भविष्यदत्तकथा' मे ब्रह्मरायमल्ल ने अपने गुरु का नाम 'अनन्तकीर्ति' बताया है जो उचित जान पडता है। उन्होंने 'प्रद्युम्नचरित' के अतिरिक्त हिन्दी मे अन्य अनेक रचनाएँ लिखी है, यथा-नेमीश्वर रास, हनुमन्त कथा, सुदर्शन रास, श्रीपाल रास, भविष्यदत्तकथा इत्यादि। डा० कासलीवाल ने अन्यत्र हिन्दी ब्रह्मरायमल्ल का परिचय देते हुए उन्हे हूंबड जाति मे उत्पन्न बताया है। उनके पिता का नाम महीय तथा माता का नाम चपा था। समुद्र तट पर स्थित ग्रीवापुर मे उन्होंने 'भक्तामर स्तोत्र' की वृत्ति को समाप्त किया था। स० 1667 मे रचित इस रचना के अतिरिक्त लेखक की अन्य रचना उपलब्ध नहीं है। प्रद्युम्न चरित रचयिता ब्रह्म रायमल्ल से ये पृथक् व्यक्ति प्रतीत होते है।[24]

7. ब्रह्मरायमल्ल कृत 'प्रद्युम्नरासो'

प्रद्युम्न रासो रचयिता ब्रह्म रायमल्ल विक्रम की 17 वी सदी के एक श्रेष्ठ हिन्दी कवि थे। जैसा कि कहा जा चुका है, वे भट्टारक अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। वे राजस्थानी थे किन्तु उनके जन्म-स्थान का उल्लेख उनकी किसी भी कृति मे नहीं हुआ है। डा० कासलीवाल का कहना है कि उन्होंने अपने 'प्रद्युम्न रासो' का प्रणयन रणथंभौर किले में सन् 1568 ई० (सं० 1625) मे पूर्ण किया।[25] किन्तु हस्त-लिखित प्रति से प्रतीत होता है कि प्रद्युम्नरासो स० 1628 मे लिखा गया था।[26] उन्होंने 'भविष्यदत्त कथा' की रचना सागानेर मे 1576 ई० (स० 1631) मे पूर्ण की। उनकी अन्य कृतियाँ हनुमत्रास (1559 ई० अर्थात् स० 1619) सुदर्शन रासो (सं 1619) नेमीश्वर रास तथा निर्दोषसप्तमीव्रतकथा सभी अत्यत लोकप्रिय हैं तथा राजस्थान के विभिन्न जैन भडारो मे उनकी अनेक प्रतियाँ उपलभ्य है। सभी ग्रथ अप्रकाशित है। अपने ग्रथ 'भविष्यदत्त-कथा' मे उन्होंने आत्मपरिचय तथा साँगानेर कस्बे (राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर से 12 किलोमीटर दक्षिण मे स्थित) का वर्णन करते हुए लिखा है कि मूल सघ के शारदा शुभगच्छ मे गुणो के निधान मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य अल्पमति वाले ब्रह्मरायमल्ल ने भविष्यदत्तकथा की रचना की। साँगानेर का बाजार मोती के हारो से भरा है, वहाँ उत्तुग जिन मदिर है तथा धनवान श्रावक लोग निवास करते है। आमेर के तत्कालीन राजा भवगन्तदास का भी उल्लेख कवि ने प्रशंसात्मक शब्दो मे किया है।[27]

ग्रथ का प्रारम्भ कवि ब्रह्मरायमल्ल जगत के स्वामी तीर्थंकर तथा जिनवाणी की स्तुति से करता है। फिर वह निर्ग्रंथ गुरु की वदना के साथ ही कामदेव के गुण-विस्तार करने की सूचना देता है।[28]

आगे कवि भरत क्षेत्र के जम्बूद्वीप मे स्थित द्वारिकानगरी की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है कि वहाँ सर्वप्रथम राजा अधकवृष्णि थे जो समकित दृष्टि वाले जैन श्रावक थे जिनके दस राजकुमार और एक पुत्री कुंता थी। कुंता का विवाह पाडुराय से कर दिया। उन दोनो से उत्पन्न छोटे पुत्र का नाम वासुदेव था। वसुदेव की पत्नी रोहिणी रूपकला मे अप्सरा के समान थी और जैन धर्म मे दृढ़ आस्था रखती थी। उनके दो पुत्र नारायण और बलभद्र महान योद्धा और 'शलाका पुरुष' थे। उनको जैन धर्म पर आस्था थी। आगे कथासूत्र शृंगाररता रूप-गर्विणी सत्यभामा द्वारा नारद के अपमान से गतिवान हो चलते है।

क्षिप्रगतियुक्त कथा-प्रवाह से सवलित इस कृति मे भी कवि ब्रह्मरायमल्ल ने 'पाण्डु और कुन्ती के विवाह के अतिरिक्त शिशुपाल की त्रिनेत्रता तथा मुनि से उसके निवारण का उपाय ज्ञात कर माता मदिरा रानी द्वारा द्वारका मे कृष्ण के पास पहुच कर उनके कर स्पर्श से तृतीय नेत्र का उपशम कराना, कृष्ण से शिशुपाल के एक सौ अपराधो को क्षमा करने का वचन लेना इत्यादि प्रकृष्ट कथा-धारा से इतर सूत्रो का भी गुम्फन किया है। ब्रह्मरायमल्ल कृत 'प्रद्युम्नरासो' मे कथा-सूत्रो की योजना मे धार्मिक विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है। वैष्णव पुराणो के कथानको को धार्मिक प्रभाव-सिद्धि के उद्देश्य से दिशान्तरित और रूपान्तरित करने की सामान्य प्रवृति तो समस्त जैन-काव्य-धारा मे ही परिलक्षित है, प्रस्तुत कृति मे प्रसग-योजना मे, प्रसगो की उद्दिष्टता मे तथा हेतुपरकता मे भी धार्मिक चेतना का सस्कारगत कोमल सूक्ष्म प्रभाव दर्शनीय है। उदाहरण के लिए, धमकेतु प्रद्युम्न का हरण कर उसे पहले समुद्र मे डुबोने का विचार करता है किन्तु अहिंसा तत्त्व की परिपालना की अपनी कल्पना के अनुसार कवि उसके अतर्द्वन्द्व का चित्रण करता हुआ मास-पिंड का घात कर हिंसा का पातक न मोल लेने की भावना व्यक्त करता है। 29

कवि ब्रह्मरायमल्ल कृत 'प्रद्युम्नरासो' मे ब्रज भाषा के इने-गिने क्रियापदो को छोड कर सर्वत्र राजस्थानी पदरूपो की प्रधानता है। अत इसे राजस्थानी भाषा का काव्य कहा जाना ही न्याय-सगत है। रचना प्रबन्धात्मक होते हुए भी सर्गबद्ध या सधिकडवक-बद्ध नहीं है। रचना मे आद्यन्त एक ही छद का अनपवाद-रूप से प्रयोग किया गया है।

कवि ब्रह्मरायमल्ल कथानक-सगठन मे कुशलता का निर्वाह नही कर पाये है। कथानक की क्रमिक अवस्थाओ मे सहज हेतु-बद्ध सूत्रता नही है। वर्णित कथानक में स्थान-स्थान पर हठात् अप्रत्याशित मोड आते है जिससे पाठक की रसग्राही चेतना को आघात का अनुभव होता है जैसे क्षिप्र वेग से गतिमान किसी द्रुतवाहन को अचानक एक झटके से घुमाव पर मोड दिया गया हो। कथा की गति मे यह आकस्मिकता कवि सधारु की शैली का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है।

सरस और मार्मिक प्रसगो पर भी कवि ने जम कर लेखनी नही चलाई है। लगता है, जैसे वह एक सांस मे पूर्व-प्रहुल कथावृत सुना डालने को व्यग्र हो। रस-परिपाक मे कवि सफल नही हो सका है।

भाषा की दृष्टि से कृति का महत्त्व असदिग्ध है। इसका रचनाकाल 157 ई० (स० 1628 वि०) तथा लिपिकाल सवत् 1820 वि० है। अत इसमे 17वी-18 वीसदी की राजस्थानी भाषा के प्रामाणिक रूप का परिचय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से, राजस्थानी भाषा के इतिहास-लेखन के लिए इसका असदिग्ध महत्त्व है नीचे राजस्थानी शब्दरूपो की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

ब्रह्मरायमल्ल कृत प्रद्युम्न रासो मे राजस्थानी के क्रिया-पदो का अधिक प्रयो हुआ है :—

(1) तीजा जी प्रणमु गुरु निरग्रथ
(2) भूजा भव्य दिखलै पथ
(3) तीन ऊणा नव कोडि छै
(4) कनक सिंघासन बैसनो दीया
(5) कहो न जी मुकति किसी परि जास्यां

ब्रह्म रायमल्ल कृत 'प्रद्युम्नरासो' मे ब्रजभाषापा के प्रयोग बहुत विरल हुए हैं यथा—

भयो, लीन्ही, दीन्ही सुणत (वात-सुणति मुभ हिवडो कपै) आय (आ कर)।

राजस्थानी मे व्यक्तिवाचक नामो को मनमाने, अनेक रूपो मे विकृत करने का आम चलन है। यथा—परशुराम, परसो, परस्यो, परसरामियो, परशू, परसराम, परसू आदि।

कवि ब्रह्मरायमल्ल ने भी व्यक्तिवाचक संज्ञाओ के, छंदलाघव या उच्चारण-सौकर्य हेतु, मनमाने प्रयोग किये हैं। व्यक्तिवाचक सज्ञाओ मे पर्याय शब्दो का प्रयोग (यथा कनकमाला अथवा कंचनमाला, कालसवर अथवा जमसंवर) तो सस्कृत मे सोमकीर्ति इत्यादि कवियो ने भी किया है किन्तु उच्चारण के आधार पर नामो की वर्तनी के विविध प्रयोग, देशी भाषाओ की ही विशेषता प्रतीत होती है :—

रूक्मिणी :—रुकमणी, रूपिणी, रूपणी
वीरसेन :—वीर सेना, वेरसेण (चन्द्रमा राणी वेरसेण की हरि लई जी,
प्रद्युम्न :—परदवणि, परदवड़ि,
सत्यभामा :—सतिभामा, भामां,

कृष्ण—क्रश्न, क्रिशन, किस्न कीसम (जाग्यो किसम कियो बोहो हासो) इत्यादि।

कवि के अनेक शब्द तत्कालीन सास्कृतिक सदर्भो का अपने अर्थो मे सजोये हुए है, उदाहरणार्थ:—

(1) चीरी लेकरि चाल्यो बसीठ, नग्र द्वारिका सुन्दर दीठ
चीरी देइ व्रिनो बोहो कायो

(2) पुत्र महाभड जाइयो जी सुत जायो जस्यो देवकुमार
दोय दही थाली भरीजी हो तख्यण गायो बधावोहार
रली रग हुवा घणा जी घरि-घरि गावै कामणी जी (रास ६७)

प्रद्युम्न और उदधिमाला के विवाह-प्रसग मे तत्कालीन राजस्थान की सामतवादी सस्कृति की छाप स्पष्ट है। कवि ने वर-कन्या द्वारा चार फेरे फेरे जाने का उल्लेख किया है। राजस्थान की सवर्ण जातियो मे प्रायः सात और असवर्ण जातियो मे चार फेरे फेरे जाने की प्रथा है।[30]

ब्रह्मरायमल्ल ने ठेठ राजस्थानी शब्दो का प्रयोग किया है:—

(1) जाण्यो **कूड** सत्यभामा भासै। हाड हमारो मानू हासै
(2) तुम छो **मोटा राजईजी**
(3) कचनमाला बुलाई राणी बालकल्यो तुम **छोलियां** जी ॥
(4) मनि **विसमाद** करो मत रांणी
(5) चरणिमाता का **ढोकियां** जी हमस्यूं कीज्यो **खिमा पस व** इत्यादि

क्रियापद—(1) कहियो, कह्यो (सुमति राव भीखम सूं कहिय,तो रुकमनि वर मुनिवरि कह्यो जी) पोहोचसी
(किस्न नीचघर पोषिया)

(2) जाई (आकर, एक दिवस वन क्रीडा जाई भीम महावलि वस कीयो जी)

आशीर्लिङ् अथवा सामान्य वर्तमान सूचक क्रिया पदो के रूप मे अन्त्य ऐकार का लेखन नही है किन्तु यह रूपगत नही, लिपिगत विशिष्टता ही है, यथा-दुतिया चंद ज्युं वध कुमारो (वधै)

व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के ओकारान्त रूप मिलते है जो राजस्थानी की विशेपता है:—

(1) व्याहुकरण चाल्यो ससिपालो, सजनसेन्या सावतीजी
(2) खैंच्यो जी धनुष कान लग केसो
(3) माघदेस तिहां सालीगामो

(धिक, धिक्), असमान (आसमान) बाहुडि (बहुरि बाहुडि रच्याति जोडियो), किम (चख तीजो किम जाइसी जी) ज्यू (जैसे—दुतियां चद ज्यू बधइ कुमारो), फुनि (फिर, मानदान फुनितीहै दीवायां) एती (इतनी)

विदेशी शब्द :

दीवानो, गुन्हा (गुन्हा एकसो छोडू माता) असमांनं (आसमान)

कवि ब्रह्मरायमल्ल ने अलकारो का प्रयोग बहुत कम किया है किन्तु जहा कही अलकार आये है वे स्वाभाविक हैं और अवसरोचित हैं। कवि के निम्न बिम्ब मे कल्पनाशीलता, सदर्भसगति और प्राजलता है। उत्प्रेक्षा अलकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:—

(हो) बात कह मुनि गगनि ही चढियो
जाणिक स्वर्ग गरड पखि उडियो

अचेतन पर चेतन व्यापार का आरोप—

करम जोगि कालसवर आयो देखी सिला उसासती जी (रास 98)

ब्रह्मरायमल्ल ने सवादो मे स्वाभाविकता लाने के लिए यत्र-तत्र लोकोक्तियो और मुहावरो का भी प्रयोग किया है—राजा जी सबर उपरि कालो, जीवत माखी वयु गलै जी, जीको खाजे तूणर पाणी ती को बुरोये न ताकजे जी (रास 115)

कूकर खाधी ठाकर मारी, हरत परत दोन्यू गया जी (रास 118)

कवि ब्रह्मरायमल्ल रससिद्ध कवि नही है। न केवल वे मार्मिक प्रसगो की सरस उद्भावना करने मे ही असमर्थ रहे है प्रत्युत रसाभास से भी नही बच पायें हैं। रस-सृष्टि के अवसर पर वे सामान्य औचित्य का निर्वाह करना भी कही-कही भूल गये हैं। उदाहरण के लिए प्रद्युम्न-हरण से व्यथित रुक्मिणी का रूप कवि की दृष्टि मे सहानुभूति और करुणा उपजाने वाला न होकर रौद्र और भयकर हो गया है।[31]

कविवर ब्रह्मरायमल्ल कृत प्रद्युम्नरासो की अंतिम पंक्तियो से स्पष्ट है कि कवि ने जिनसेनाचार्य के हरिवशपुराण के आधार पर गढ हरसोर मे सं० 1628 की भादवा सुदी 2, बुधवार को 195 छंदयुक्त प्रद्युम्न रासो की रचना सपूर्ण की थी।[32]

ब्रह्मरायमल्ल के लगभग समकालीन ही जिनचद्र सूरि हुए। जैन जगत मे जिनचद्र नामक अनेक विद्वान हो चुके हैं। इन्ही मे से एक "पाण्डव पुराण" के कर्ता

8. 17वीं सदी के अन्य कवि-जिनचंद्र सूरि, वादिचंद्र।

शुभचद्र के शिष्य और मेधावी के गुरु जिनेचद्र थे मेधावी ने अपनी गुरु-परम्परा सरस्वतीगच्छ मे प्रभाचद्र-परमनदि,-शुभचद्र-जिनचद्र का उल्लेख किया है। शुभचद्रकृत प्रद्युम्नचरित का रचनाकाल-स० 1610-15 के आस-पास अनुमानित किया गया है। अत शुभचद्र का शिष्य होने के नाते जिनचंद्र का कृति-काल स० 1625

40 के बीच कभी रहा होगा, ऐसी सभावना है। फिर भी, लिखित साक्ष्य के अभाव मे अंतिम रूप से कुछ कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि जिनचद्र का समय विक्रम की 17 वी सदी का द्वितीय चरण होना चाहिए।

मूलसंघ मे ही वादिचद्र हुए जो भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचद्र के शिष्य थे। इनके द्वारा गुजराती मे रचित 'श्रीपाल आख्यान' मे गुरु-परम्परा विद्यानदि-भूषण-लक्ष्मीचन्द्र वीरचद्र-ज्ञानभूषण दी हुई है। ये सस्कृत मे "पार्श्व-पुराण' (र० का० स० 1640) तथा ज्ञान सूर्योदय (र० का० स० 1648) के लेखक है। गुजराती मिश्रित हिन्दी मे उन्होने सघपति धनजी सवा के कहने से "श्रीपाल आख्यान" (र० का० स० 1651) की रचना की। सरल सस्कृत मे ही इन्होने "पाण्डवपुराण" (स 1654) "यशोधरचरित" (स० 1657) तथा "सुलोचना चरित" (स० 1661) नामक ग्रथ लिखे।[33] डा० सरोज अग्रवाल भी वादिचद्र द्वारा सं० 1648 मे "ज्ञान सूर्योदय" की रचना की पुष्टि करते हुए इसे कृष्ण मिश्र के 'प्रबोधचद्रोदय' की परम्परा मे उसके प्रत्युत्तर रूप मे रचित स्वीकार करती हैं।[34] हमारा अनुमान है कि "प्रद्युम्न चरित" के रचयिता वादिचद्र यही होने चाहिए तथा चरित काव्यो की अपनी अन्याय कृतियो के क्रम मे ही इन्होने प्रद्युम्न-चरित की रचना भी स० 1655 के आस-पास कभी की होगी।

भट्टारक श्रीभूषण ने अपने "प्रद्युम्नकुमार रास" की रचना वि० सं० 1656 मे पौष सुदी 13, बुधवार के दिन सूरत के गोपीपुरा के कायस्थ मोहल्ले मे स्थित नृसिंहपुरा के चंद्रप्रभु दिगम्बर जैन मदिर मे की थी। जिस हस्तलिखित प्रति के आधार पर श्री मूलचन्द कसनदास कापडिया ने इस कृति का गुजराती मे प्रकाशन किया है उसे सं० 1701 की आसोज सुदी 14 बुधवार को भट्टारक श्रीभूषण की शिष्य-परम्परा मे ही श्रीभूषण के शिष्य चद्रकीर्ति के शिष्य राजकीर्ति के शिष्य लक्ष्मीसेन के काल मे सूरत के चंद्रप्रभु चैत्यालय मे ही ब्रह्मइन्द्र ने प्रतिलिपित किया था। इस प्रकार मूल ग्रथ-रचना के 45 वर्ष बाद की प्रतिलिपि के आधार पर उक्त पुस्तक का सम्पादन-प्रकाशन होने से इसका पाठ पर्याप्त प्रामाणिक होना चाहिए।

9. भट्टारक श्री भूषण का 'प्रद्युम्नकुमार रास'

भट्टारक श्री भूषण ने स्वय को नदी तट गच्छ के काष्ठा संघ की परम्परा मे बताते हुए इस गच्छ मे समतभद्र-लोहाचार्य-पद्मनदि-केशवसेन-जिनसेन सूरि के होने का उल्लेख किया है। कवि ने हरिवश के रचयिता जिनसेन-तथा महापुराण के रचयिता जिनसेन-दोनो को इसी काष्ठासंघ का बताया है। यही नही, कवि महासेनाचार्य को इसी काष्ठा संघ से सम्बद्ध करते हुए उनके प्रद्युम्न चरित से परिचय की सूचना देता है। महासेनाचार्य के सम्बन्ध मे यह सूचना प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण है।[36]

महासेन के पश्चात क्रमश अकलक, नोदसेन, रा सेन, नेमसेन, वासकसेन, रत्नकीर्ति, लक्ष्मसेन, विमलसेन, विमलकीर्ति, विश्वमेन और विद्या भूषण भट्टारक के बाद स्वग विलालसेन, बिकालकीर्ति, विश्वसेन और विद्याभूषण भट्टारक के बाद स्वय (भट्टारक श्रीभूषण) का उल्लेख करना है।

भट्टारक श्रीभूषण के काव्य की भाषा जूनी गुजराती है। कवि पर धार्मिक चेतना का प्रभाव अत्यन्त प्रखर है। कृति के प्रारम्भ मे ही वह 'सकल जिनेश्वर पद नमु' कहने के साथ ही छय्यालीस गुण, अष्ट कर्म, छतीस गुण, पचवीस गुण, पचमहाव्रत इत्यादि धार्मिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है। समस्त कृति मे धर्मतत्वो का वारम्बार परिगणन किया गया है। इससे स्पष्ट है कि कवि का दृष्टिकोण एक सहृदय रससिद्ध कवि का दृष्टिकोण न रह कर एक धर्म सम्प्रदाय के साधक का दृष्टिकोण अधिक है। कवि ने महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्नचरित के प्रति आभार प्रकट किया है तथापि महासेन जैसी कवि प्रतिभा तो दूर काव्य-शैली मे महासेनाचार्य की रसात्मकता, कल्पनाशीलता, भावप्रवणता और आलकारिकता का अ शत आदान भी वह अपनी कृति मे नही कर सका है।

भट्टारक श्रीभूषण ने कथानक-सगठन मे रुक्मिणी के पूर्व भवो के नीरस वर्णन को स्थान दिया है। किन्तु दूसरी ओर रुक्मिणी द्वारा कृष्ण के पास दूत-प्रेषण का कवि ने मनोहारी वर्णन किया हे। रुक्मिणी कृष्ण को प्रणय-याचना का सदेश भेजती हुई पत्र मे लिखती है कि जिस प्रकार सती स्त्री पल-पल अपने कान्त का स्मरण करती है और मयूर मेघ का अनुक्षण स्मरण करते है वैसे ही मैं रात-दिन तुम्हारा स्मरण करती रहती हू। मै अपनी वाणी रूपी तत्री से तुझीको एक मन प्राण से जपती हुई तेरे ही रूप को प्राप्त हो गयी हूँ। जिस प्रकार केतकी के परिमल पर लुब्ध भ्रमर फिर-फिर केतकी के क्रोड मे आते है उसी प्रकार मेरा मन-भ्रमर केवडे के पुष्प रूपी तेरे रूप की ओर बरवस खिचा जाता है। यदि तू शीघ्र नही आया तो मैं अपने जीव–विनाश द्वारा तुझे प्राण समर्पित कर अपने मन की आशा पूर्ण करूँगी।

इससे प्रतीत होता है कि कवि मे मार्मिक स्थलो की उद्भावना और प्रसगोचित कोमल भावाभिव्यंजना करने की क्षमता तो है किन्तु शुष्क उपदेशना के आग्रह के कारण वह इस ओर सर्वत्र प्रवृत्त नही हो पाया है। ऐसे सुन्दर स्थल अपवाद रूप से ही कृति मे है।

, कथानक-योजना की दृष्टि से कही-कही कवि ने विशेषता भी प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ, वैदर्भी-हरण के प्रसग मे कवि ने प्रद्युम्न-साम्ब के डोमवेश धारण कर गायन-वाणी के चातुर्य प्रदर्शन का वर्णन न कर शौर्य और युद्ध से ही वैदर्भी-हरण वर्णित किया है। कवि ने राजसी पात्रो को डोम इत्यादि की भूमिका मे उतारना

मर्यादाविरुद्ध और गौरवघाती अनुभव कर इन परम्परित कथासूत्रो का परिहार किया है।

कवि की निराली विशेपता यह भी है कि प्रद्युम्न-जन्म का दिवस और लग्न भी सूचित किया है जिसका सम्वन्ध प्रद्युम्न के कामदेवत्व से हो सकता है।[37]

धार्मिक चेतना का आग्रह न केवल कृति मे स्थान-स्थान पर धर्मोपदेशना और धर्म-तत्त्व निरूपण के रूप मे लक्षित होता है अपितु पात्रो के कार्य-व्यापारो के हेतु या फलरूप मे वही प्रतिफलित होता है, उदाहरण के लिए पुत्र-वियोगिनी रुक्मिणी को पुत्र-वियोग का जितना दु ख है उससे अधिक अनुताप उसे इस चिंता को लेकर है कि यह कुफल किस पूर्वजन्म के दुष्कर्म का फल है और इस क्रम मे वह दसियो कर्म-विकल्पो का अनुचिंतन करने लगती है।

वस्तु-वर्णन मे कवि ने वस्तु-परिगणन शैली का ही आश्रय लिया है तथा देश-काल का ध्यान भुलाकर फल-पुष्पों के वृक्षो की विस्तृत सूचियाँ गिना दी है। इसी प्रकार शस्त्र-परिगणना करते समय वह उस युग के शस्त्रो मे 'वदूक' का नाम गिनाने के अनौचित्य को भी भुला वैठा है। कवि कृत रूप-वर्णन भी परम्पराभुक्त और रूढप्रतीकाश्रित है। वाद्य-यन्त्रो के नामोल्लेख करते हुए कवि ने वाद्यो की ध्वनि का वर्णन करते हुए अनुरणनात्मकता की व्यजना की है।[38] कवि को वसत-क्रीडा वर्णन विशेप प्रिय है। मधु नृप तथा प्रद्युम्न की वसत क्रीडाओ का कवि ने सुन्दर बर्णन किया है। कवि ने समस्त कृति को मुख्य रूप से दोहा—चौपाई मे निबद्ध करते हुए गौडी, रामगिरि, केदार, वसत, आसावरी, मल्हार, सोरठी इत्यादि रागो मे निबद्ध किया है जिससे कवि का सगीतज्ञान और इस 'रास' सज्ञक कृति की गेयता सूचित होती है। कहना न होगा कि परम्परागत दोषो और न्यूनताओ होते हुए भी भट्टारक श्रीभूषण ने अपनी कृति मे समसामयिक कवियो की अपेक्षा रोचकता और काव्य-कुशलता का अधिक निर्वाह किया है।

10. समयसुन्दर, गुणसागर तथा रत्नचंद्र गणि

'साम्बप्रद्युम्न चौपाई' के रचयिता कविवर महोपाध्याय समयसुन्दर का जन्म मरुधर (मारवाड) प्रदेश के सांचोर (सत्यपुर) नगर मे हुआ, जैसा कि कवि स्वरचित सीताराम चतुष्पदी के खण्ड 6, ढाल 3 के अ तिम पद्य मे कहता है—'मुझ जन्म सांचोर माहि, तिहा चारि मास रहा उछाहि'। इससे स्पष्ट है कि कवि जन्म के वाद चार मास तक ही साचोर मे रहा। कवि का जन्म पोरवाल (प्राग्वाट) जाति मे हुआ। कवि के माता-पिता का नाम क्रमश· लीला देवी और रूपसी (रूपसिंह) था। कवि का जन्म-समय अज्ञात है किन्तु श्री मोहनलाल दुलीचद देशाई के मत को मान्य करते हुए श्री अगर चद जी नाहटा ने इनका जन्म-काल अनुमानत: स० 1620 स्वीकार किया है।[39]

किन्तु महोपाध्याय विनयसागर तर्कों के आधार पर जन्म स० 1610 के आस-पास निश्चित करते है।[40] कवि के जन्म नाम और प्रारम्भिक अध्ययन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है किन्तु यही अनुमान होता है कि युगप्रधान आचार्य जिनचद्रसूरि ने स० 1628 के आस-पास ही स्वहस्त से इन्हे दीक्षा प्रदान कर अपने प्रमुख और प्रथम शिष्य श्री सकलचद्र गणि का शिष्य घोषित कर समयसुन्दर नाम प्रदान किया होगा। कवि अपने को खरतरगच्छ का अनुयायी बताते हुए आद्याचार्य नेमिचद्र सूरि से 27 वी पीढी मे घोषित करता है। कवि, सम्राट् अकबर द्वारा प्रदत्त 'युग प्रधान' पद-, धारक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनचंद्रसूरि का प्रशिष्य था। कवि समयसुन्दर को व्याकरण छद, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्रो तथा नाना भाषाओ का गहरा ज्ञान था। वह श्रेष्ठ गीतिकार भी था। कवि ने प्रभूत देशाटन करते हुए पुष्कल बहुविध साहित्य की रचना की। कवि के स्वभाव मे उदारता, गुणग्राहकता और भावुकता कूट-कूट कर भरी थी। सिंध देश के हाकिम मखनूम माहम्मद शेख काजी को अपने उपदेश से प्रभावित कर पचनद प्रदेश मे गोहत्या तथा जलचर-जीव-वध की निषेधाज्ञा जारी कराने जैसे अनेक सामाजिक सत्कार्यो का श्रेय कवि को है। कवि की शिष्य-परम्परा भी विशाल थी। खेद है कि ऐसे गुणवान प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी कवि को गुजरात मे स० 1687 मे पडे दुष्काल के फलस्वरूप वृद्धावस्था मे अत्यत दारुण दिन देखने पडे। चौरासी गच्छ के सर्वमान्य कवि को वृद्धावस्था मे स्वार्थी शिष्यो ने निराश्रित छोड दिया जिससे उसे साधुओ के लिए वर्जित कार्य शास्त्र-पात्र-वस्त्र विक्रयादि कर जीवन-यापन करना पडा जिसका कवि ने अत्यन्त करुण वर्णन किया है। अन्त मे अहमदाबाद मे स० 1703 चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को कवि का स्वर्गवास हुआ।[41] समयसुन्दर के शिष्य वादी हर्षनन्दन ने भी अपने विशालकाय ग्रथ "ऋषि-मण्डल टीका" के द्वितीय विभाग मे अनेक चक्रवर्तियो तथा जैन धर्म के प्रसिद्ध पुरुषो के साथ ही प्रद्युम्न-शम्भु-अनिरुद्ध की कथा भी उपन्यस्त की है।

'साम्बप्रद्युम्न चौपाई' कविवर समयसुन्दर की प्रथमाभ्यास के रूप मे रची हु कृति है।[42] कवि ने स० 1659 की विजयादशमी को खंभात मे चातुर्मास करते हुए जैसलमेर वास्तव्य नानाशास्त्रविचार रसिक साह शिवराज लोढा की अभ्यर्थना से इसकी कृति की रचना की है। यह रासकाव्य दो खण्डो मे विभक्त है तथा इसमे 21 देशी ढाले और 535 गाथाएँ है। ग्रथ परिमाण 800 छदो का कहा गया है। काव्य के प्रारम्भ मे कवि ने नेमि, पार्श्व, वर्धमान आदि तीर्थकरो और गौतमगणधर को नमस्कार करते हुए प्रथमाभ्यास के रूप मे साम्ब-प्रद्युम्नकुमार चरित-वर्णन करने का उल्लेख किया है। कवि कहता है कि जैनागम के आठवें अगसूत्र मे उसका सम्बन्ध सक्षेप से है किन्तु मैं यहाँ प्रकरण के आधार से विस्तृत प्रबन्ध कर रहा हू। खभात मे रची जाने पर भी रचना की भाषा राजस्थानी है क्योंकि कवि का जन्म साचोर

मे हुआ था तथा सागानेर इत्यादि राजस्थान के पचीसो नगरो और ग्रामो मे कवि ने विहार और काव्य--सृजन किया था। कवि का सर्वाधिक सम्बन्ध राजस्थान और गुजरात से था।

'साम्ब प्रद्युम्न चौपाई' के कथानक-संगठन की एक विशेषता यह भी है कि कवि ने परम्परा से हट कर अनेक अतिरिक्त कथासूत्रो अथवा कथान्तरो की योजना की है। सपत्नियो के पुत्र-जन्म सम्बन्धी कथावृत को कवि ने कुछ अन्तर से व्यक्त किया है। आहार के लिए पधारे प्रभावक मुनि रुक्मिणी की जिज्ञासा पर उसे पुत्र-लाभ का आशीर्वाद प्रदान करते हैं। सत्यभामा छलपूर्वक मुनि-वचन पर अपना अधिकार जताते हुए मुनि के आशीर्वाद को अपने प्रति मानती है तथा रुक्मिणी पर मिथ्यावादिनी होने का आरोप लगाकर कृष्ण से न्याय-प्राप्ति की प्रार्थना का कपट-नाटक रचती है। इस प्रकार कवि ने कथा के पौराणिक सूत्रो पर अधिक बल दिया है तथा सपत्नी-ईर्ष्या के चित्रण को और भी उभारते हुए सत्यभामा के चरित्र को हीनतर रूप मे वर्णित किया है। कवि ने धूमकेतु द्वारा अपहृत शिशु प्रद्युम्न को शिला तले न ढक कर व्योम से नीचे भूमि पर गिराने का उल्लेख किया है। कथानक-योजना मे अन्य अन्तर इस प्रकार हैं :—

(1) प्रद्युम्न-जन्म के बाद रुक्मिणी कृष्ण की गोद मे प्रद्युम्न को देते हुए यत्न से रखने के लिए कहती है। कृष्ण के पास से ही प्रद्युम्न का अपहरण होता है। रुक्मिणी कृष्ण से अपना पुत्र माँगती है।

(2) चरण-शीर्ष-प्रकरण से सपत्नियो के पुत्रो की ज्येष्ठता कनिष्ठता की विस्तृत योजना नही है।

(3) प्रद्युम्न-हरण पर कवि नगर मे एकमात्र सत्यभामा का हर्षमग्न होना वर्णित करता है।

(4) कवि मधु द्वारा कनकप्रभ को पराजित कर बलात् चंद्राभा को ले जाने का वर्णन करता है। वसन्तोत्सव के बहाने छलपूर्वक चन्द्राभा के पति को राजधानी बुलाने और छल से उसकी पत्नी को आभूषणो के व्याज से रोक रखने इत्यादि कथा-सूत्रो को कवि ने छोड दिया है।

(5) विमान-रचना और नारद-उपहास प्रसंग का विस्तार नही है।

(6) प्रद्युम्न द्वारका मे वर (भानु) के घोडे पर चढी हुई कन्या (उदधिमाला) का हरण करता है न कि मार्ग मे किरात-वेष मे।

(7) कृष्ण द्वारा सत्यभामा को रति-दान के समय प्रद्युम्न भेरी-निनाद करता है जिसके फलस्वरूप सत्यभामा के भीरु पुत्र उत्पन्न होता है। इसीलिए कवि ने सत्यभामा के पुत्र का नाम 'सुभानु' के स्थान पर 'भीरुक' लिखा है।

(8) वैदर्भी-हरण प्रसंग मे डोमवेशधारी प्रद्युम्न साम्ब पटह-वादन कर मत्त हाथी को मुग्ध करने के फलस्वरूप राजा की घोषणा के अनुसार पुरस्कार रूप मे वैदर्भी को प्राप्त करते हैं।

(9) प्रद्युम्न-वैदर्भी प्रसग मे प्रद्युम्न रात्रि के समय आकाश मार्ग से वैदर्भी के पास जाता है और रुक्मिणी का पत्र उसे देता है जिसमे रुक्मिणी उसे प्रद्युम्न से विवाह के लिए प्रेरित करती है। प्रात.काल धाय वैदर्भी को कंकण और नवीन साडी इत्यादि पहने देख उसके रात्रि मे विवाहित हो जाने की बात से राजा को अवगत कराती है। कवि की इस कथा-योजना पर वैष्णव हरिवश पुराण के उषा–अनिरुद्ध कथानक का प्रभाव है।

उक्त निदर्शनो से स्पष्ट है कि समयसुन्दर की कथानक-योजना मे पौराणिक सूत्रो के विशेष आग्रह के साथ-साथ अपनी रुचि और सूझबूझ भी झलकती है।

प्रद्युम्न-चरित्र-विषयक काव्य कृतियो मे एक गुणसागर रचित 'प्रद्युम्न कवर की सज्झाय' भी है। प्रद्युम्न-चरित्र सम्बन्धी स्फुट काव्य-रूपो मे इसकी गिनती की जा सकती है। 'सज्झाय' एक विशिष्ट काव्यरूप प्रतीत होता है। अनेक अवतारी पुरुषो तीर्थंकरो, श्रावको, राजा-रानियो, सिद्धो, यतियो, पर 'सज्झाय' लिखे गये हैं यथा पुंडरीक की सज्झाय, वज्रदत भूपाल की सज्झाय, पच पाडवो की सज्झाय, पद्मावती की सज्झाय, मेघरथ राजा की सज्झाय, नेम राजमती की दस भव की सज्झाय, नेमनाथ की नव भव की सज्झाय, निर्मोही राजा की सज्झाय, धर्मरुचि अणगार की सज्झाय, धन्नाजी की सज्झाय, दशारणभद्र राजा की सज्झाय, तुगीया के श्रावक की सज्झाय' झाझरिया मुनि की सज्झाय' ढढण रिख की सज्झाय, जीरण सेठ का सज्झय, प्रागदास जी महाराज का सधारा की सज्झाय इत्यादि शताधिक सज्झाए राजस्थान के जैन भडारो मे उपलब्ध है। हमारा अनुमान है कि छोटे-छोटे धार्मिक-पौराणिक कथावृत्तो को लघु गेय रूप मे 'स्वाध्याय' हेतु लिखा गया। इसीलिए सभवत इनका नामकरण भी 'सज्झाय' (स्वाध्याय>साज्झाय>सज्झाय>सिज्झाइ) पड गया। कालान्तर मे धार्मिक पुरुषो के चरित्र तथा लोक-कथा सम्बन्धी जनप्रिय वृत्त भी सज्झाय के वर्ण्य विषय बनते चले गये। इस विषय मे और शोध अभी अपेक्षित है।

'प्रजनकवर की सज्झाय' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर स्थित आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार मे है। इसमे यादव-वंश-विनाश और द्वारका-दाह के उपरात प्रद्युम्न के दीक्षाग्रहण करने का प्रसग वर्णित है। भाषा राजस्थानी है। प्रस्तुत सज्झाय मे दोहा, छद तथा ढालो का प्रयोग हुआ है। यह एक अति लघु रचना है जिसकी छद सख्या 27 है। कथा-वृत्त अति सक्षिप्त है। माता की अनुमति लेकर

प्रद्युम्न अन्त पुर मे रानी को दीक्षा लेने की सूचना देते है। रानी (यहां प्रद्युम्न-पत्नी का नामोल्लेख नही है) उन्हे दीक्षा से विरत कर राज्य सुख भोगने को प्रेरित करती है और समझाती है कि नारी के मोह-पाश से ब्रह्मा, रावण, शातनु भी मुक्त नहीं हुए पचाग्नि-ताप और काशी मे करवत-ग्रहण जैसे। कठिन सिद्धियो की प्राप्ति के बाद भी कामी पुरुष नारी को कामना ही करते है। नारी से नर की मुक्ति कहा? तुम मुक्ति-पथ के पथिक हो वह भी जिनराज के मार्ग के। यह मार्ग अति कठिन है। इसमे केशलु चन और भिक्षा-परायण जैसे कष्ट कर्म तुम कैसे कर पाओगे? दमयती सत्यवती और पाडव-नारी (द्रौपदी) धन्य है जो आपति मे पतियो के संग रही। क्या घर क्या बनवास-सर्वत्र नारी का साहचर्य भला है अत मे प्रद्युम्न उसकी उक्तियो से प्रभावित हो कर प्रिया के साथ ही सयम लेने का निश्चय प्रकट करते है।[43]

कृति के रचनाकाल या लिपिकाल का कोई उल्लेख नही है। कृतिकार गुणसागर है। ये गुणसागर कौन है इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। विनयचद्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन, जयपुर मे ही गुणसागर कृत 'ढाल सागर' की भी हस्तलिखित प्रति मिलती है।[44] उक्त ग्रंथ के अन्त मे दिये गये परिचय से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता विजयगच्छ परम्परा मे पद्मसागर सूरि के शिष्य थे। उन्होने स० 76 की श्रावण सुद तीज को उसकी रचना कुकुटेश्वर नगर के पार्श्वनाथ मदिर मे सपूर्ण की। यह स० 76 स० 1576 है, इसका अनुमान ग्रंथ की प्रस्तावना से होता है।[45] किन्तु इस ग्रथ की प्रकाशित प्रति मे, जिसका प्रकाशन श्रावक मगनलाल, झवेरचद शाह, लीवडी, कठियावाड द्वारा राजनगर यूनियन प्रिंटिंग प्रेस से स० 1946 मे हुआ है ग्रथ का रचनाकाल स० 1672 श्रावण सुदी तीज दिया गया है।[46] प्रकाशित प्रति का पाठ हस्तलिखित प्रति के पाठ की अपेक्षा कम स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होता है तथा उसके हस्तलिखित रूप का कोई प्रामाणिक विवरण भी प्रकाशित कृति मे प्रस्तुत नही किया गया है, फिर भी गुणसागरकृत ढालसागर के सम्बन्ध मे अन्यान्य हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध होने पर तथा विजयगच्छ की अधिकृत गुरु-पट्टावली से उनके तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त ही निर्णायक रूप से कुछ कहा जाना सभव है।

इस ढालसागर मे, जिसमे कविकथनानुसार 151 ढाले है, तथा कवि ने जिसे 'हरिवंश प्रबध' भी कहा है, चौथे अधिकार से प्रद्युम्न चरित्र विषयक कथा प्रारंभ होती है जो पाचवें अधिकार मे समाप्त हो जाती है। कवि ने दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण से भावी सततियो के विवाह विषयक प्रस्ताव से प्रद्युम्न कथा का प्रारभ कर वैदर्भी-हरण के साथ ही प्रद्युम्न-कथा को समाप्त कर दिया है। इस प्रकार सत्यभामा द्वारा नारद-अपमान, रुक्मिणी-हरण, द्वारका दाह और नेमिराजीमती की शरण मे प्रद्युम्न तथा रानियो द्वारा दीक्षा धारणा के प्रकरण इस प्रसंग के तारतम्य क्रम में नही

वर्णित किये गये है। कथा वृत्तो के व्यवधान से इन प्रकरणो का निबधन हुआ है। कवि ने 'ढालसागर' मे प्रद्युम्न-चरित का और भी उत्कृष्ट रूप दिखाया है। दुर्योधन स्वय द्वारका मे आकर प्रद्युम्न से उदधि के विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु प्रद्युम्न अनुज-वधू को 'पुत्रीवत' घोषित कर इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है। यहा तुलसी की 'अनुजबधू भगिनीसुतनारी, सुनु सठ ये कन्या समचारी की नैतिकता का स्वर मुखरित प्रतीत होता है जो श्लाघनीय है। 'हरिवश नो विस्तार' कह कर कवि ने जिनसेनाचार्य के हरिवशपुराण के प्रभाव को स्वीकार किया है। भीलवेषधारी प्रद्युम्न की दुर्योधन के प्रति उक्ति के सदर्भ मे सभवत हठी हमीर की ओर सकेत है। कवि ने पातसाह' 'शाबास' जैसे शब्दो का प्रयोग किया है। कवि की रचना मे देशी ढालो के साथ-साथ लौकिक भावानुभूतियो और लौकिक व्यजनाओ का मिठास है। बिछुडे हुए पुत्र से मिलने पर रुक्मिणी के हर्षविभोर हृदय का उल्लास दर्शनीय है।[47] भाषा की दृष्टि से 'प्रजनकवर की सिज्झाइ' तथा ढालसागर का कृतिकार एक ही कवि (गुणसागर) प्रतीत होता है अत प्रजनकवर की सिज्झाइ' का रचना-काल भी स० 1576 से सं० 1673 के बीच कभी होना चाहिए।

वाचक रत्नचद्र गणि द्वारा सस्कृत मे रचित 'प्रद्युम्न चरितम्' महाकाव्य 17 सर्गो मे निबद्ध है। इसका पत्राकार 266 पृष्ठो मे बी वी एण्ड मण्डली भावनगर से प्रकाशन हुआ है। प्रशस्ति के अनुसार इसकी रचना स० 1674 की विजय दशमी के दिन पूर्ण हुई थी।[48] रत्नचन्द्र गणि ने स्वय को तपागच्छीय बताते हुए गुरु-परम्परा-क्रम मे विमलसूरि से दसवी पीढी मे गिनाया है। कवि ने हीरविजयसूरि की रचनाओ कृपारसकोश, जबू द्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र, प्रमेयरत्नमजूषा आदि का उल्लेख करते हुए बादशाह अकबर द्वारा उनके साक्षात्कार और ग्रथ श्रवण से प्रभावित हो छह मास के लिए पशु-वध निषेधाज्ञा जारी करने का उल्लेख किया है। रत्नचद्र गणि के 'प्रद्युम्नचरितम्' की भाषा शिथिल, सदोष और अभिव्यक्ति परम्परानुगत है।

देवेन्द्रकीर्ति ने अपने 'प्रद्युम्न प्रबध' की रचना सूरत निवासी सघपति श्री क्षेम जी सूरजी के अनुरोध से महेश्वर नगर मे स० 1722 मे चैत सुदी 3 बुधवार को सपूर्ण की। कवि कहता है कि उसने यह मनोहारी 'प्रद्युम्नप्रबन्ध' प्रद्युम्न-चरित्र के गुणरूपी सूत्रो मे समस्त ग्रथो रूपी वनकुसुमो को विवेकपूर्वक गू थकर तैयार किया है।[49] गच्छपतियो की चरणवदना करता हुआ कवि मूलसंघीय अपनी गुरु-परम्परा (सकलकीर्ति>भुवनकीर्ति>ज्ञानभूषण इत्यादि) के क्रम मे स्वय को ग्यारहवी पीढी मे बताता है। कवि ने अपने प्रद्युम्न 'प्रबध को जिनसेनाचार्य के हरिवशपुराण की शुद्ध उद्धरणी कहा है।[50]

11. देवेन्द्रकीर्ति का 'प्रद्युम्न प्रबन्ध'

'प्रद्युम्न-कथा-प्रबध' गेय रचना है। कवि राग आसाउरी (आसवरी) से कथा का प्रारम्भ करता है। कवि ने अन्य राग-रागिनियो मे भैरवी, विराडी, देशाख 'केदार;

मारवणी, सामेरी, गौडी, सारंग, मल्हार, रामश्री, धन्याश्री तथा छंदो मे दूहा, चौपाई, त्रोटक छदो का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कवि ने देशी ढालो, यथा बारहमासे की ढाल इत्यादि का भी प्रयोग किया है।

देवेन्द्रकीर्ति की कृति मे सर्वत्र छन्दो के पूर्व 'आ' 'तो' इत्यादि गीतारभी ध्वनिग्रामो का प्रयोग हुआ है। वैसे ही जैसे ब्रह्मरायमल्ल की कृति में 'हो' तथा 'तो' का छदो के अन्त मे प्रयोग किया गया है। इससे भी इन काव्यकृतियो की गेयता सिद्ध होती है।

देवेन्द्रकीर्ति ने रुक्मिणी के पूर्वभवो का वर्णन नही किया है। कालसंवर द्वारा प्रद्यम्न के नामकरण मे 'प्रद्युम्न' अर्थ की ओर संकेत है—'द्युम्न वरण दीठा थी जाणि, प्रद्युम्न नाम धरयूं सूख खाणि 'मनोवेग और वसन्त विद्याधर के शत्रुता भाव की कथा अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णित है। द्वारका मे प्रद्युम्न द्वारा सम्पन्न क्रीडा-कौतुकों की सूची मे एक विशिष्ट कौतुक-व्यापार का वर्णन है। सत्यभामा के गोपुर पर कृष्ण-रूप धारण कर प्रद्युम्न कई हास्य और तिरस्कारपूर्ण कौतुक-कृत्य करता है। किन्तु प्रद्युम्न को स्वय कृष्ण रूप क्यो धारण करना पडा और इसकी क्या विशिष्ट हेतुमत्ता और सार्थकता थी तथा वे हास्य-तिरस्कार-युक्त कौतुक-व्यापार क्या थे, कवि यह स्पष्ट नही कर पाया है। साम्ब-सुभानु की द्यूतादि स्पर्द्धाओ का सविस्तार वर्णन न कर कवि ने केवल सब क्रीडाओ मे साम्ब-विजय की सूचना मात्र दे दी है। कृष्ण-जाम्बवती द्वारा अहीर-दम्पत्ति वेश धारण कर साम्ब के चरित्र की परीक्षा लेने सम्बन्धी प्रसग भी वर्णित नही है। वेदर्भी-हरण प्रसग मे कवि ने प्रद्युम्न और साम्ब द्वारा नर्तक वेश धारण कर रुक्मी की सभा मे नृत्य और हरियश-गायन के साथ ही शिशुपाल-वध के अभिनय द्वारा वैदर्भी को मुग्ध करने का उल्लेख किया है। उदधि के गर्भ से प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध के जन्म तथा कृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र मे जरासध पर विजय के प्रसग भी कवि ने वर्णित किये है।

कथानक-योजना की भाँति ही चरित्र-चित्रण के क्षेत्र मे भी कवि की कुछ निजी विशेषताएँ हैं। एक ओर वह नारद ऋषि को 'गुणधाम' और सर्वप्रणम्य रूप मे चित्रित करते हुए उन्हे शील का वज्र कछोटा बाह मे झोली और कठ मे किन्द की जनेऊ धारण किये हुए 'उदार गुणवन्त ब्रह्मचारी' तथा 'व्योमगामी' इत्यादि कह कर प्रशसित करता है तो दूसरी ओर उसे अनेक कलेशकटाल का कर्त्ता कह कर मरने पर उसके नरकगामी होने की बात कह कर भर्त्सना भी करता है।

कवि देवेन्द्रकीर्ति ने प्रद्युम्न-हरण पर व्यथित रुक्मिणी के करुणापूर्ण रुदन का चित्रण करते हुए रुक्मिणी द्वारा सिन्धु मे डूबने, आग मे जल मरने, जोगिन होने तथा करवत लेने तक की बात कह डाली है।[51]

नारद के चरित्र-चित्रण मे यह विषमता पारम्परिक अनुश्रुतिवश ही है । उसी प्रकार प्रद्युम्न-हरण पर व्यथित रुक्मिणी के चरित्रांकण पर भी धार्मिक चेतना की छाप है । वह वात्सल्यमयी सहज अकृत्रिम मातृ-हृदया नारी ही नही है उसकी पश्चात्तापमयी वेदना पर जैन श्राविका के सस्कारो की छाप भी स्पष्ट लक्षित होती है जब वह प्रद्युम्न-हरण के अपने दुर्भाग्य हेतु के रूप मे अपने ही शास्त्रनिषिद्ध कर्म करने की दुश्चिन्ता से ग्रस्त होती हुई नाना प्रकार की कल्पनाएँ करती है ।

कवि देवेन्द्रकीर्ति ने कनकमाला के काममुग्ध होने पर उसके हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को कुशलतापूर्वक प्रकट किया है । पाप और पुण्य के बीच सशय भाव से झूलते हुए नारी के मानस की उथल-पुथल की थाह पाने का सफल प्रयत्न भी उसने किया है । विरहानल-ताप से दग्ध कांचनमाला की दैहिक तथा मानसिक दोनो अवस्थाओ का कवि ने सापेक्ष समन्वित चित्र कुशलतापूर्वक अकित किया है । इस काम-दशा वर्णन मे अभिलाषा आदि सचारी भावो, श्रृगारिक चेष्टाओ और मरणाशका आदि कामदशाओ का आकलन है, चदन-चपाकली आदि विरहसन्ताप-शामक उपचारो के असफल होने का पारम्परिक वर्णन है और साथ ही काम-बाण से विद्ध हृदय की पाप-भीरुता, आशा-निराशा, तर्क-वितर्क-प्रवणता का स्वभाविक मनोवैज्ञानिक निरूपण भी है ।[52]

नेमि जिनेश्वर ने जब द्वादश वर्ष मे द्वारिका-नाश की भविष्यवाणी की तो समुद्रविजय, वसुदेव, हरि, हलधर आदि समस्त यदुकुलीय राज्यवशी जन वैराग्य-भाव से अभिभूत हो उठे और उन्होने अपने परिवार की स्त्रियो सहित दीक्षा ग्रहण कर ली । कवि देवेन्द्रकीर्ति ने इस प्रसग का जम कर वर्णन किया है । यह समस्त वर्णन इस काव्य मे विस्तार और महत्त्व की दृष्टि से सर्वप्रमुख हो गया है । उसे पढ कर प्रतीत होता है जैसे प्रद्युम्न का व्यक्तित्व प्रमुखत एक जैन मुनि का व्यक्तित्व है और एक वीर अथवा अद्भुत कथानायक की दृष्टि से प्रद्युम्न का चरित्र दब गया है । तथ्य यह है कि धार्मिक चेतना एव नैतिकता के मूल्यो को क्रियाशील जीवन मे मनोरमता से गुम्फित करने की अपेक्षा पारिभाषिक रूढ शब्दावली के माध्यम से आग्रहपूर्ण आरोप के कारण जैन कृतिकारो के काव्य मे सौदर्य तत्त्व का ह्रास हो गया है तथा एक कलाकार के रूप मे उनके विकास के स्रोत अवरुद्ध हो गये है । साथ ही, 'शिव' का सुन्दर से सामजस्य न कर पाने के कारण, काव्य की वाछित नैतिक अपील भी कमजोर पड गयी है ।

12. विक्रम की 19 वीं सदी के कवि : मयाराम भोजक, हर्षविजय, बूलचंद

विक्रम की 19 वी शताब्दी के प्रद्युम्न-चरित काव्यकारो मे मयाराम भोजक, हर्षविजय और बूलचद सम्बन्धी विवरण उपलब्ध हैं । मयाराम भोजक ने अपने 'प्रद्युम्न कुमार रास' की रचना स० 1818 मे की थी । यह रचनाकाल डलसपुर पाटन के वागुलपाडा मे जगजीवन पानाचद द्वारा स० 1930 की मगसर सुदी 12 रविवार के दिन लिखित प्रतिलिपि

मे नही दिया गया है, जिसके आधार पर श्री देशाई ने इस कृति के सम्बन्ध मे जानकारी दी है अपितु लींबडी भडार की किसी अन्य प्रति के आधार पर दिया गया है। जिनसेनाचार्यकृत हरिवशपुराण की कथा के आधार पर वडनगर मे रामचद के सुत अमीचद द्वारा वाञ्छा प्रकट करने पर कवि ने 'प्रद्युम्नकुमार रास' की रचना की। कवि की भाषा पर प्राचीन गुजराती का अत्यधिक प्रभाव है।

हर्षविजय कृत 'साम्ब प्रद्युम्न रास' स० 1842 मे रचा गया है। इस ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति स० 1850 की मृगशीर्ष सुदी 8 मगलवार के दिन प० प्रेमविजय के शिष्य प० रूपविजय के शिष्य राज्यविजय ने लिपित की थी जो ईडर मे गोरजी के भडार मे (वेष्टन स 144) उपलब्ध है। कवि ने उम्मटराय के ग्राम उमतानगरी मे श्रीधर के यहा निवास करते समय इस कृति की रचना की थी। इस कृति मे कवि कथनानुसार 64 ढाले है। कवि ने अपने को अकवर वादशाह के प्रतिवोधदाता हीरविजय सूरि की शाखा मे वताते हुए गुरु-परम्परा दी है। कलिकाल मे कल्पतरुसदृश श्री विजयधर्म सूरीश्वर के सघ शासन काल मे कवि ने इस कृति की रचना की थी।[53] मयाराम और हर्षविजय की रचना की अभिव्यक्ति और भाषा का स्तर प्राय समान है।

कवि वूलचद कृत 'प्रद्युम्न चरित' का रचना काल स० 1843 है। इसकी एक प्रति दिल्ली के सेठ का कूचा वाले मदिर मे है।[54] इसी की एक अन्य प्रति स० 1908 की लिखी हुई दिगम्वर जैन पचायती मन्दिर आवूपुरा, मुजफ्फरनगर मे है।[55] इसी की एक प्रति हमने आगरा मे दिगम्वर जैन साहित्य शोध सस्थान मे श्री महेन्द्र जी के पास देखी थी, जिसके आधार पर आगे परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। सम्भवतः यह कृति साहित्य शोध सस्थान आगरा से प्रकाशित भी हो चुकी है क्यो कि यह उस समय प्रकाशनाधीन थी।

श्री गदाधरसिंह ने शोध-प्रवध 'मध्य युगीन हिंदी जैन साहित्य का अध्ययन' मे 'पाडवपुराण' के रचयिता बुलाकीदास का परिचय देते हुए उनका नाम वूलचंद भी लिखा है। कवि द्वारा स्वय प्रस्तुत आत्म-परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जाति के गोयल गौत्र मे उत्पन्न वयाना वासी राजमान्य साहु अमरसिंह के प्रपौत्र नदलाल के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम जैनी था जो अतीव सुदर और विदुषी थी जिनके पास विद्याध्ययन के लिए वडे-वडे विद्वान आते थे। इनके पितामह वयाना छोड़ आगरा आ वसे थे। कवि वूलचद या वुलाकीदास ने अपने विद्या-गुरु का नाम अरुणरतन पंडित लिखा है। जीविका उपार्जन हेतु वे इद्रपथ मे आकर रहने लगे थे। काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका के हस्तलिखित ग्रंथो के 15 वे त्रैमासिक विवरण मे उनका वयाना से जहानावाद आकर रहने का भी उल्लेख है। इसी शोध-पत्रिका मे उनकी एक रचना का नाम 'श्री मन्महाशीलाभरण भूपित' दिया

है जो प्रो० गदाधरसिंह के अनुसार उचित ही ग्रंथ का नाम नही अपितु 'पाडवपुराण' का ही विशेषण है। प्रो० सिंह ने बुलचद या बुलाकीदास की 'पाडवपुराण' (रचनाकाल 1697 ई०) सहित चार कृतियो 'वचनकोश', 'प्रश्नोत्तर श्रावकाचर', 'पाडवपुराण' तथा 'जैन चौबीसी' का उल्लेख किया है। कवि का जीवन-काल अनुमानतः (वि. स 1660-1760) है तथा इसने शाहजहा और औरगजेब के राज्यकाल का उल्लेख किया है। स्पष्ट है कि पाडवपुराण' के रचयिता बुलाकीदास उर्फ बूलचद 'प्रद्युम्न-चरित' के रचयिता बूलचद से भिन्न व्यक्ति है।

प्रद्युम्न-चरित' (रचयिता बूलचद) की एक प्रति हमने श्री जैन साहित्य शोध-सस्थान आगरा मे देखी जिसका प्रतिलिपिकाल है 1922 वि० भाद्रपद सुदी 13, रविवार। प्रतिकर्ता है—कुवरसेन जिन्होने किन्ही लाला मथुरादास के पठनार्थ प्रतिलिपि की है। पत्र सं० 83; प्रति अच्छी दशा मे है।

इस प्रतिलिपि के अनुसार ग्रथ के रचयिता कवि बूलचद्र है। कवि अपने को अग्रवाल जातीय और अछनेरा निवासी बताता है तथा रचनाकाल 1843 वि० वैशाख वदी 9 सूचित करता है।

ग्रथ के अंत मे कवि अपना परिचय देते हुए कहता है कि उसका जन्म साहु परमल के घर मे हुआ है और अछनेरा नगर मे उसका निवास है। तीन जैनी मित्रो—ठडीराम, अंब, मजलसहाय, की प्रेरणा से कि सस्कृत मे रचित प्रद्युम्न-चरित्र क्लिष्ट होने से सर्वजन सुलभ नही है, भाषा मे इसकी रचना उग्रसेन के शिष्य बूलचद ने जलपथ नगर (जलेसर-ले०) मे की थी।[56] ग्रथ की भाषा ब्रजभाषा मिश्रित है। कवि का अभिव्यक्ति-स्तर साधारण कोटि का है।

'प्रद्युम्न-चरित. भाषा-वचनिका' (र० का० सं० 1816) ज्वालाप्रसाद, बख्तावरसिंह तथा मन्नालाल का सामूहिक प्रयास है जो सशोधन-परिवर्तन की प्रक्रिया से सक्रमित हुआ है।

13. बीसवीं शताब्दी की एक गद्य-रचना ज्वालाप्रसाद, बख्तावरसिंह तथा मन्नालाल कृत प्रद्युम्नचरित्र भाषा-वचनिका

इस रचना का महत्त्व इस दृष्टि से विशेष है कि यह आधुनिक युग की प्रद्युम्न-चरित्र विषयक एक मात्र गद्य-कृति है। इससे पूर्व भी केवल प्राकृत गद्य मे प्रद्युम्न-चरित्र लिखे जाने का उल्लेख पाया जाता है। (दृष्टव्य परिशिष्ट 1, कृति सं० 25) किन्तु प्राकृत की कृति उपलब्ध नही है। इस 'प्रद्युम्न-चरित्र : भाषा-वचनिका' के सम्बन्ध मे अनेक भ्रमपूर्ण विवरण खोज रिपोर्टो तथा इतिहास ग्रथो मे दिये गये है। उन भ्रातियो का यथासाध्य निराकरण करते हुए प्राप्त तथ्यो के विश्लेषण के आधार पर आगे कुछ स्थापनाएँ की गयी हैं। 'भाषा वचनिका'

अनेक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्य है। हमने उनमे से निम्नलिखित छः प्रतियो का अवलोकन कर उनके आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किये है :—

1. पाटौदियो के मदिर, जयपुर की प्रति (वेष्टन स० 116/1) पत्र स० 271, लिपिकाल अज्ञात।

2 इसी की एक प्रति दीवानजी (अमरचद जी) के मदिर जयपुर मे है जिसका प्रतिलिपिकाल भाद्र पक्ष शुक्ला 15 स० 1983 है। जयपुर मे उपलब्ध मन्नालाल कृत प्रद्युम्न-चरित्र की तीनो प्रतियो मे यह अर्वाचीनतम है।

3 इसी की अन्य एक प्रति जयपुर के ही सघी जी के मन्दिर मे है (वेष्टन सख्या 27/4 तथा पत्र-सख्या 321) इसका लिपिकाल भृगुवार, मार्गशीर्ष शुक्ला 2, सवत् 1933 है अर्थात् मन्नालाल द्वारा ग्रंथ-लेखन के सिर्फ 17 साल बाद की ही यह प्रति है। अत इसकी प्रामाणिकता और महत्त्व स्पष्ट है। प्रतिलिपिकार स्वय इसकी प्रामाणिकता की घोषणा इन शब्दो मे करता है — "लिखी नवल दिल्ली का खरड़ा माफिक। बाचे जेह ने श्री जिनायनम.। संवत् 1933 का मार्गशीर्ष शुक्ल 2 भृगुवासरे समाप्त भयो।"

इससे स्पष्ट है कि संघीजी के मंदिर की यह प्रति मूल मन्नालाल द्वारा रचित ग्रथ की प्रत्यक्ष प्रतिलिपि है। इसमे ग्रंथ-लेखन सम्बन्धी प्रयत्नो का विवरण और भी विस्तृत रूप से दिया गया है, यहाँ तक कि ग्रंथ-लेखन हेतु कागज, स्याही, सिगरफ, लेखनी इत्यादि सामान्य साधन प्रदान करने वाले कानमल, मुरलीधर, गोपालराय आदि को भी मन्नालाल ने कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया है।

इन विशिष्टताओ के अतिरिक्त तीनो प्रतियो के मुख्य कलेवर मे एव कथानक तथा वर्णन-क्रम मे, वर्तनी तथा लेखन-शैली सम्बन्धी विभिन्नताओ को छोड़कर सादृश्य है,

4. इसकी चौथी प्रति तेरहपंथियो के बडे मंदिर मे है (वेष्टन सं० 1157 पत्र संख्या 244) कथ्य मे सादृश्य होते हुए भी संघी जी के मदिर की प्रति से इसमे कही-कही अन्तर है जिसे हमने यथास्थान स्पष्ट किया है। प्रतिलिपि-काल सम्बन्धी सूचना नही है।

5. इसी की पाचवी हस्तलिखित प्रति बाबा दुलीचंदजी (बडा मदिर) के भड़ार मे है। (वेष्टन सख्या 494, पत्र संख्या 501 तथा लिपि संवत् 1937 वैशाख बदी वृहस्पतिवार) इस प्रकार यह संघी जी के मदिर की प्रति से 4 वर्ष बाद प्रतिलिपित की गयी है।

6. इसकी छठी प्रति दिगम्बर जैन मदिर, चाँदनी चौक, दिल्ली मे है, (वेष्टन सख्या 209) वेष्टन पर लिपि-सवत 1928 दिया हुआ है किन्तु वस्तुत:

प्रतिलिपि-काल सवत् 1957 है जैसा कि अ त मे लिखा है—'सवत् 1957 की मिति फाल्गुन शुक्ला 15 वार सोमवार को यह शास्त्र लिखकर समाप्त किया। लिन्यतम अमीलाल श्रमा (शर्मा ?) पाले ग्राम मध्ये, जिला दिल्ली।" इस प्रतिलिपि मे वचनिका की श्लोक-संख्या 9, 817 दी हुई है। अपने कथ्य मे यह भी अन्य प्रतियो से सादृश्य रखती है। इन प्रतियो का तुलनात्मक निरीक्षण किये जाने पर प्रतीत होता है कि कथ्य मे कोई अ तर नही है। कृति मे कथानक-योजना, सर्ग-विभाजन तथा कथ्य का मुख्य कलेवर और रूप समान है। फिर भी यत्किंचित अ तर है। उस अ तर के स्वरूप को स्पष्ट कर देना भी उचित होगा। सघी जी के मदिर की प्रति और दिगम्बर जैन मदिर बडा, तेरहपंथियो का, जयपुर की प्रति (वेप्टन स० 1157) मे लिपिकाल की वर्तनी सम्बन्धी व्यक्तिगत भूलो को छोडकर सर्वत्र साम्य है। कही-कही एक-आध स्थल पर अन्य ग्रथोक्त सस्कृत श्लोको के लेखन तथा सर्ग-समाप्ति की सूचना-शैली मे अ तर है।

एक मुख्य अ तर यह है कि तेरहपथियो के बडे मदिर वाली प्रति मे श्लोक सख्या 9, 750 दी गयी है—"या चरित्र की वचनिका की बत्तीस अक्षरन के श्लोक तैं गणिना नवहजार सात मे पचास है", जबकि सघी जी के मदिर की प्रति मे उक्त सख्या 9,217 दी गयी है—"या चरित्र की वचनिका की बत्तीस अक्षर के श्लोक ते गणिना नव हजार दोय से सतरा ।। 9217 ।। है।"

बाबा दुलीचदजी (बडे मदिर) के भंडार को प्रति मे वचनिका की अक्षर सख्या नही दी गयी है। यह तेरहपथी मंदिर की प्रति से साम्य रखती है किन्तु अ श मे उसका साम्य सघीजी के मदिर की प्रति से भी है। प्रतीत होता है कि तेरह-पथियो के मदिर की प्रति दुलीचद जी (बडे मदिर) के भडार की प्रति से लिपित की गयी है। फिर भी समस्त प्रतिया किन्ही अन्य एक दो मूल प्रतिलिपियो की नकल हो सकती हैं। उक्त प्रतियो के अवलोकन से विदित होता है कि मन्नालाल ने स्वतत्र और मौलिक प्रद्युम्न-चरित्र का प्रणयन नही किया अपितु सोमकीर्ति द्वारा सस्कृत मे रचित प्रद्युम्न-चरित्र का हिन्दी गद्य मे रूपान्तर किया है। रूपान्तरकार मन्नालाल ने स्वयं इसे 'भाषावचनिका' कहते हुए प्रारम्भ मे ही सूचित किया है—'अथ प्रद्युम्न-चरित्र की देशभाषामय वचन (का) लिख्यते" तथा अ तिम सोलहवी सधि (सर्ग) की समाप्ति पर भी यह उल्लेख है—'इति श्री प्रद्युम्न चरित्रे श्री सोमसेनाचार्य विरचिते श्री प्रद्युनकुमार मुनि शबु अनुरूद्धादि निर्वाणगमन देशभाषावचनिका मय षोडश सधि समाप्ता सर्व चतुर्विध संधस्य मगलमस्तु कल्याणरस्तु शुभम् भवतु।[67]

रूपान्तरकार मन्नालाल ने ग्रंथ के रूपान्तर की प्रेरणा और प्रणयन के सम्बन्ध मे सविस्तार विवरण दिया है। उसने दिल्ली मे लाला हरसुखरायजी के

मदिर मे अनेक श्रावक बन्धुओ की उपस्थिति मे जिनधर्मी, गिरधारी अग्रवाल द्वारा मूल सस्कृत मे रचित सोमकीर्ति के ग्रथ का वाचन करने, उसे सुन कर ज्वालानाथ बैदाडा द्वारा सब लोगो की सुविधार्थ उसके भाषा वचनिका रूप मे ढाले जाने की इच्छा प्रकट करने और अपने छोटे भाई मन्नालाल द्वारा उत्साह बढाने पर गोपालराम के यहाँ से मूलग्रथ मँगाकर ज्वालानाथ द्वारा प्रद्युम्न के विजयार्ध पर्वत से लौट कर आने तक की कथा का भावानुवाद करने और दुर्भाग्यवश दिवगति हो जाने, बख्तावर सिह अग्रवाल जैनी से शेष ग्रथ का भावान्तर कराने किन्तु प्रवाहपूर्ण एव रुचिकर प्रतीत न होने के कारण अपने भतीजे चिमनलाल के अनुरोध पर स्वय मन्नालाल द्वारा शेष ग्रथ का भावान्तर किए जाने का वृत्तान्त लिखा है। मन्नालाल ने आगे सन् 1857 का सिपाही विद्रोह फूट पडने से ग्रथ-रचना मे विघ्न पडने का उल्लेख इन शब्दो मे किया है—

'पीछे जेठ वदि 2 सोमवार पहरि दिन चढे उपराति अगरेज बहादुर से राजा प्रजा के रक्षक जिनके राज्य विषै सिंघ अर गाय एक घाट पाणी पीवैं तिनकी सेना के पूरबी लोक विचार रहित भया ।। अपने प्रतिपालक राजाधिराज अगरेजन तै विपरीतता भजी और न करणे योग्य कार्य कीये तदि दिल्ली मे रौद्र अंधकार प्रगट्या सर्वप्रजा क्षोभ आकुलता उपजी ।। ता कारण कर ताहि दीन तै या चरित्र लिखने का अनाध्याय भया ।।[60]

यही नही, ग्रथकार को अन्यान्य विपत्तियो ने भी आ घेरा। ग्रथकार की स्त्री ने ज्वर न आयु त्यागी और रोगोत्पत्ति से उसी वर्ष भतीजे चिम्मनलाल ने भी देहत्याग कर दिया। अत 'चित्त शोकाकुलित' रहा। फिर ग्रथ के अपूर्ण रह जाने को कार्य की असिद्धि मानते हुए ग्रंथकार ने "पचनमस्कार मत्र का स्मर्ण कर" रविवार माघ-शुक्ला पचमी, स० 1915 से पुन: लिखने का प्रारम्भ किया तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी के ध्यान-माहात्म्य से सोमवार जेठ वदि 5, स० 1916 के शुभ दिन यह चरित्र (ग्रथ) समाप्त हुआ।"

अन्त मे ग्रथकार स्वस्ति-वाचन करता हुआ यह भी सूचित करता है कि यह ग्रथ "दिल्ली का छोटामालीवाड़ा का श्री महावीर जिन चैत्यालय समीप लिख्या मन्नालाल ने शुभम् भवतु कल्याणमस्तु। इति श्री प्रद्युम्नचरित्रे नाम ग्रंथ भाषावचनिका समाप्तः।"

प्रतिलिपिकार ने मात्र इतनी ही सूचना दी है कि फतेहलाल जी गोधा की मा मुसर्फाणी जी के लिखवाने पर गणेशलाल पाड्या ने लिखा। प्रतिलिपि के स्थान, समय आदि की सूचना नही है।[61]

वस्तुत: इस भषा-वचनिका के कृतीत्व को लेकर नाना भडारो के सूचिकारो अथवा प्राचीन ग्रथो के विवरण प्रकाशित करते समय सूचि-ग्रंथ-निर्माताओ ने सशय

को बढने दिया है। उनमे से किसी ने भी हस्तलिखित प्रतियो की उत्थानिकाओ तथा पुष्पिकाओ को ध्यान से पढने का कष्ट नही किया है। यही कारण है कि विविध शोधपूर्ण ग्रथो तथा हस्तलिखित ग्रथ-भडारो की सूचियो मे एव वेष्टन-फलको पर भाषा-वचनिका सम्बन्धी जो विवरण दिये गये है वे भ्रमपूर्ण हैं। कही भाषा-वचनिका के कर्तारूप मे केवल मन्नालाल का नाम दिया गया है। कही मन्नालाल का नाम बिलकुल गायब कर उसके स्थान पर ज्वालाप्रसाद बख्तावरसिंह लिखा गया है।[62] कही मन्नालाल ज्वालाप्रसाद लिखा गया है तो कही मन्नालाल बख्तावरसिंह लिख दिया गया है। कही बख्तावरसिंह ही लिख दिया गया है या बख्तावरसिंह की जगह बख्तावरमल कर दिया गया है।[63] और कही मन्नालाल और बख्तावरसिंह कृत दो पृथक् कृतियो के रूप मे उल्लेख किया गया है।[64] कही सपूर्ण कृति का रचयिता बख्तावरसिंह को ही स्वीकार कर लिया गया है।[65] खेद यह है कि यह स्थिति तब है जब कि उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो का पाठ प्रायः समरूप है तथा सभी मे इस कृति के लिखे जाने की प्रेरणा तथा लेखन-सम्बन्धी इतिवृत्त एक सा दिया गया है। मूल भाषा वचनिका की रचना (सवत 1911—16) के समय से निकटवर्ती कालावधि की लिखी हुई प्रति मे सत्रह वर्ष का ही अतर है तथा वह दिल्ली के खरडे से (मूल मन्नालाल लिखित प्रति से) उतारी गयी है ऐसा उल्लेख होने से उसकी प्रामाणिकता भी असदिग्ध है। हमारा आशय यहा सघी जी मदिर की प्रति से है। इसके अंतिम पत्रको मे दिये गये विवरण से (जो अन्य सभी प्रतियो मे भी है) भाषा-वचनिका के प्रणयन एव प्रणेताओ के सम्बन्ध मे स्थिति स्पष्ट हो जाती है, जो इस प्रकार है—

(1) प्रद्युम्न-चरित भाषा-वचनिका के लेखन की मूल प्रेरणा मगलसेन के बडे पुत्र ज्वालानाथ को हुई।

(2) ज्वालानाथ ने भाषा अक्षरार्थ लिखना प्रारभ किया तथा अनुक्रम से निज बुद्धि अनुसार 3,850 श्लोक (प्रद्युम्न के विजयार्द्ध से आने तक की अर्थात् सर्ग 10 के प्रारम्भ तक-ले०) लिखा।

(3) मन्नालाल ने केवल गोष्ठि करने अर्थात् मंत्रणा करने पर प्रारम्भ मे बड़े भाई का 'अनुराग बढाया'।

(4) असोज वदी 14, सवत 1911 को ज्वालानाथ का देहान्त हो गया।

(5) ज्वालानाथ केवल 'भाषा अक्षरार्थ' और 'श्लोकार्थ भाषा' करने अर्थात् श्लोको का भाषानुवाद करने मे ही सक्षम रहे।

(6) ज्वालानाथ के पुत्र चिमनलाल ने शेष ग्रथ अर्थात् सर्ग 10 से 16 का भाषानुवाद अग्रवाल जैन पडित बखतावरसिंह से करवाया। लिपिकर्ता चिमनलाल रहा।

(7) बखतावरसिह कृत भाषानुवाद, सभा मे वाचन होने पर, सुचारु और धारा-प्रवाह नही प्रतीत हुआ ।

(8) फलत चिमनलाल ने अपने चाचा मन्नालाल से यथायोग्य स्थान पर दृष्टान्त तथा अन्यान्य ग्रथो के श्लोक मिलाकर निज बुद्धि बल के प्रयोग से सुन्दर ललित मनोहारी वचनिका लिखने का अनुरोध किया ।

(9) मन्नालाल ने सवत् 1913 माघ सुदी 5 के दिन शुरू से, नये सिरे से, भाषानुवाद को दृष्टान्त श्लोकादि मिलाकर लिखना प्रारम्भ किया तथा समस्त वचनिका नाना विघ्नो के उपरान्त सवत 1916 जेष्ठ कृष्णा पचमी को समाप्त की ।

निष्कर्ष यह है कि इस रचना को एक सामूहिक या सहकारी प्रयत्न कह सकते है जिसमे मूल प्रेरणा तथा आशिक श्रम ज्वालानाथ का है तथा योगदान बखतावर सिह का भी है किन्तु कृति का वर्तमान रूप मन्नालाल द्वारा सशोधित एवं परिवर्द्धित है । मन्नालाल से पूर्ववर्ती प्रयत्नो के आलेखो की मूल हस्तलिखित प्रतिया मिलने पर ही ज्वालानाथ तथा बखतावरसिह के पृथक् कृतीत्व को चिह्नित तथा रेखाकित किया जा सकना है ।

मन्नालाल कृत यह भाषा-वचनिका न तो नितान्त अनुवाद है, न नितान्त व्याख्या । उसमे यद्यपि व्याख्या या भाष्य करने की प्रवृत्ति है तथापि अत्यन्त विरल ही है । यथा—

।। अथ ।। प्रथम श्रीसन्मति जो महावीर स्वामी अंतिम तीर्थेश्वर तिनको नमस्कार करो हौ ।। इसमे आचार्यनिका ।। ऐसा प्रयोजन सूचे है ।। जो इस पंचमकाल मे अद्यापि उनही का तीर्थ प्रवर्ति है ।। सौ विशेष उपगार जणाया है ।। वीर ।। अति वीर ।। महावीर ।। सन्मति ।। वर्द्धमान ।। इन पाच नामानि करि कथा प्रसिद्ध जे अतिम तीर्थंकर तिनकू नमस्कार कर श्री नेमनाथ जिन कौ नमस्कार करौ हौ ।। इत्यादि ।।

उद्धृत गद्याश प्रारम्भिक मगलपाठ के मूल श्लोक की व्याख्या है । किन्तु व्याख्यामूलक यह दृष्टिकोण आगे कथा-प्रवाह आरभ होते ही पीछे छूट जाता है और ग्रथकार अव्याहत रूप से कथा की धाराप्रावाहिकता के साथ बहने लगता है । अत: मन्नालाल कृत यह भाषा वचनिका ग्रथ शुद्ध व्याख्या, भाष्य अथवा अनुवाद न होकर सोमकीर्ति रचित प्रद्युम्न चरित्र को आधारभूत एवं मुख्य उपजीव्य ग्रथ के रूप मे प्रयुक्त करते हुए अन्यान्य दृष्टातो तथा इतर ग्रथो के श्लोको की छाया ग्रहण करते हुए लिखी गई कृति है । इसमे ग्रथकार ने कथा-योजना और सर्ग-विभाजन को मूल ग्रथ का अनुवर्ती रखते हुए भी वस्तु-व्यापार-वर्णन मे आवश्यक परिवर्तनो के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता से कार्य किया है । फलत: इसे व्याख्या की छाया लिए एक स्वच्छद

अनुवाद-कृति कहा जाना अधिक युक्तिसंगत होगा। इस कृति का महत्त्व हिन्दी गद्य के विकास क्रम के अध्ययन की दृष्टि से असंदिग्ध है। आज से एक शतक से भी अधिक पूर्ववर्ती हिन्दी गद्य का कृति में प्रामाणिक स्वरूप उपलब्ध होता है जिसमें ब्रज भाषा तथा राजस्थानी के प्रयोगों से मिश्रित खडी बोली का प्रारंभिककालीन गद्य-रूप अपनी विकासशील अवस्था में दीख पडता है। इस ग्रंथ के गद्य रूप की तुलना अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती गद्य ग्रंथों यथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा लल्लूलाल कृत प्रेमसागर आदि से करना अत्यन्त रोचक होगा जिससे न केवल हिन्दी गद्य की ही एक खोई हुई कडी प्राप्त होगी अपितु इस तथ्य की उद्भावना भी हो सकेगी कि खडी बोली को आधार बनाते हुए भी प्रारंभिक हिन्दी गद्य किस प्रकार अपनी रूप-रचना में स्थानीय तथा विविध देशीय प्रयोगों को भी आत्मसात कर रहा था।

कवि अमोलक ऋषि ने संवत 1969 आसोज सुदी 7 बुधवार को 'प्रद्युम्न चरित' की रचना की थी। कवि अपनी गुरु परम्परा का परिचय देते हुए वर्धमान स्वामी के पट्टकाल में (पाटे) सुधर्मा स्वामी के बाद अनेक पीढियों के अन्तर से लवजी ऋषि के होने तथा उनसे दसवीं पीढी में रत्न ऋषि के पास बालकवत रहते हुए दक्षिण देश पेठ में 'कोकाना' ग्राम में चौमासा करते हुए 'प्रद्युम्न कुमार चरित्र' की रचना करने की सूचना देता है।[67]

14. बीसवीं शताब्दी के प्रद्युम्नचरित-प्रणेता कवि अमोलक ऋषि, खूबचंद महाराज, सूर्यमुनि, गुणभद्र अगास, जैनेन्द्र किशोर इत्यादि

अमोलक ऋषि द्वारा रचित 'प्रद्युम्नकुमार चरित्र' में कथानक-योजना की दृष्टि से कुछ विशेषताएँ हैं। जन्म के छठे दिन प्रद्युम्न के हरण की घटना का वर्णन करता हुआ कवि प्रद्युम्न को कनकमाला के गूढ गर्भ से उत्पन्न शिशु-रूप में घोषित कर यमसंवर द्वारा 12 वें दिन परिवार का भोज देकर शिशु के 'प्रद्युम्न' नामकरण करने का उल्लेख करता है। शत्रु का दमन करने के सामर्थ्य की अभिलाषा से ही प्रद्युम्न नाम रखा गया। इसी प्रकार तेरहवीं बार के साहसिक अभियान में काल-वन में दैत्य-पराजय पर दैत्य द्वारा पुष्प धनु तथा मदन, मोहन, तापन, शोषण, उन्मादन नामक पंचबाण प्रदान करने पर ही प्रद्युम्न के 'मदनकुमार' नाम से विख्यात होने की बात भी कवि कहता है।[68] कवि ने रुक्मिणी का पूर्व भव वर्णित करते हुए लिखा है कि कौसाम्बी नरेश महीश्वर की रानी मोहनावती ने पति के साथ उपवन-विहार करते हुए मयूरी के अण्डे उठा लिए। 16 घडी बाद मेघ वर्षा से अण्डे धुल जाने पर यह पातक दूर हुआ। अत मोहना-

वती ही आगामी भव मे रुक्मिणी के रूप मे जन्म लेकर 16 वर्ष तक पुत्र-वियोग सहन करेगी। अमोलक ऋषि की इस कृति मे 'आर्य' नामक ऋषि ही प्रद्युम्न को उसका पूर्व भव बताते हुए उसे कनकमाला मे 'रोहिणी' और 'प्रज्ञप्ति' विद्याएँ छल पूर्वक हरण करने की प्रेरणा देते है। आर्य ऋषि ही रुक्मिणी के पूर्व भव का कथन करते है। अमोलक ऋषि द्वारा पूर्ववर्ती अतिमुक्तक आदि नामो के स्थान पर अपने ही जैन श्रमणो के ऋषि सज्ञक कुल के आर्य मुनि का नाम प्रस्तुत करने से कवियो द्वारा सप्रदाय की महत्त्ववृद्धि के लिए पौराणिक कथाओ मे हेर-फेर करने की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। यही प्रवृत्ति कवि द्वारा प्रद्युम्न, साम्ब आदि को ऋषि कह कर उनके द्वारा अन्त समय मे अनशनपूर्वक देह-त्याग कर शिवलोक मे गमन करने के वर्णन के मूल मे झलकती है।

कवि ने साम्ब का चरित्र पूर्वापेक्षा हीनतर चित्रित किया है। कृष्ण एवं जाम्बवती द्वारा वृद्ध अहीर तथा युवा अहीररत्नी का वेष धारण कर साम्ब के दुराचार की प्रामाणिक परीक्षा करने के अतिरिक्त कवि ने साम्ब द्वारा अपने अपराधो के उद्घाटन से क्रुद्ध होकर अपनी अपकीर्ति फैलाने पर मुह मे काष्ठछुरी ठोकने की घोषणा का वर्णन किया है।

कवि की भाषा राजस्थानी है। भाषा के अतिरिक्त वस्तु-वर्णन इत्यादि मे भी राजस्थान की तत्कालीन सामती सस्कृति की छाप है। मुह मे काष्ठछुरी ठोकने की साम्ब द्वारा घोषणा सामत-युग की दण्डव्यवस्था की द्योतक है। कृष्ण के जल-पान के निमित्त रखे मोदको को केसरिया लड्डू कहना भी उसी सस्कृति के प्रभाववश है। मनोभावनाओ के वर्णन मे भी यही सस्कृति प्रतिफलित दीखती है। प्रद्युम्न द्वारा अपने पितामह वसुदेव को मेष-युद्ध मे पराजित करने पर कवि कहता है कि सिंह किसके सगे हुए है? इस लोकोक्ति का उदाहरण प्रद्युम्न ने प्रस्तुत कर दिया कि वह दादाजी के साथ भी साहसिक स्पर्द्धा करने से नही चूका'।[69] युगीन सामाजिकता की ही छाप इस आशय की उक्ति मे है कि ब्राह्मणवेशी प्रद्युम्न ने सौंदर्य प्रदान करने का प्रलोभन देकर सत्यभामा को गधे की विष्ठा की माला पहना, मूँड मुँडवा, मुँह काला कर मिथ्या मत्र-जाप का आदेश दिया। साम्ब और सुभानु के साथ ही उसी समय नगर के तीन अन्य घरो मे—मत्री के यहा बुद्धि सेन, सेनापति के जयसेन तथा सारथी के घर पद्म नामक पुत्र होने का कवि अमोलक ऋषि ने ही वर्णन किया है, अन्य प्रद्युम्न-चरित प्रणेता कवियो ने नही। एक साथ राजा, मत्री और सारथी के घरो मे तीन पुत्र उत्पन्न होने की कथा-रूढि प्राचीन है और सभवत. कथा-सरित्सागर के युग की देन है। वही से प्रद्युम्न-कथा मे इस कवि ने उसका आदान किया है।

प्रद्युम्न द्वारा विद्या लाभ के प्रसग मे कवि ने 72 पुरुष-कलाओ, 64 महिला कलाओ तथा 18 लिपियो को सीख कर प्रद्युम्न द्वारा दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने का उल्लेख किया है। साम्ब-सुभानु प्रतिस्पर्द्धाओ मे कवि ने दडी (गेंद) का खेल, वस्तु-भाव, हार-परीक्षा, मुट्ठी खोलना, उठ-वैठ (दड बैठक) अश्व-परीक्षा इत्यादि क्रीडाओ का उल्लेख किया है। इससे सामती युग मे मनोरजन और शारीरिक प्रशिक्षण के लिए नाना क्रीडाओ के प्रचलन का परिचय मिलता है। साहसिक अभियान-क्रम मे प्रद्युम्न की यमसंवर के प्रति उक्ति मे राजस्थान का पूरा सामती रग है।[70] भोमिया (छोटे भूमिपति), हजूर, फौज, सीमाडिया (सीमावर्ती शासक) जोरावर इत्यादि शब्दो के प्रयोग से जहा कवि का ऐतिहासिक ज्ञान का अभाव और देशकालगत अनौचित्य झलकता है वही तत्कालीन मुगल-राजपूती सस्कृति का परिचय भी मिलता है। तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण भी अनायास ही हो गया है। प्रद्युम्न द्वारा द्वारका के बाजार की दुर्दशा करने पर सेठो की अस्तव्यस्तता दर्शनीय है।[71] पुत्र-वियोगिनी-रुक्मिणी के हृदय की करुण दशा का कवि ने सहज चित्रण किया है। वहा रुक्मिणी एक सामान्य राजस्थानी नारी प्रतीत होती है जिसके मातृत्व मे लौकिक रग है। पुत्र-वियोग-विह्वला रुक्मिणी के मनोभावो का यह चित्रण सपूर्ण प्रद्युम्न-चरित काव्य-धारा मे बेजोड है।[72]

कवि ने वस्तु-वर्णन मे भी अच्छी कलाकुशलता का परिचय दिया है। प्रद्युम्न इत्यादि पात्रो के रूप-वर्णन मे वह वैष्णव कवियो की पारम्परिक रूप-वर्णन शैली से प्रभावित है। सैन्य-सज्जा और युद्ध-वर्णन, विमान-चालन प्रसगो मे नारद की उपहास्यास्पद स्थिति का चित्रण, प्रद्युम्न का भील वेश, अश्वलक्षण वर्णन, प्रद्युम्न द्वारा विपर्यस्त द्वारका के बाजार का चित्रण, सत्यभामा के यहा भोजन-रत ब्रह्मणो की आपसी सिर फुटौवल—इत्यादि स्थल वस्तु-व्यापार वर्णन की दृष्टि से रोचक बन पडे हैं।[73] प्रद्युम्न-मिलन पर आह्लादमयी रुक्मिणी के हृदय का सुन्दर वर्णन हुआ है किंतु उस पर भट्टारक श्रीभूषण की शैली का प्रभाव स्पष्ट है, जो मूलत. लोकगीतो की शैली प्रतीत होती है।[74] काम-परवशा स्त्री स्वभाव का वर्णन करते हुए कवि उसी धारा मे बहता है जो भर्तृहरि के वैराग्यशतक और शुकरभा सवाद आदि मे प्रवाहित है। वनिता की उपमा लता से देते हुए कवि ने रहस्यमय तिरिया-चरित का परम्परागत प्रतीक-व्यापारो के माध्यम से चित्रण किया है।[75]

जैसा कि पुस्तक की भूमिका मे कहा गया है, इसकी रचना प्राचीन ढालो मे हुई है। पुस्तक की भाषा राजस्थानी है जिसके कुछ शब्दरूप प्रस्तुत हैं—

संज्ञा	क्रिया-रूप	क्रियारूप	अन्य कारक तथा सर्वनामादि .
सुपनां, कुमर			
	पेखियो, करस्या	प्रणमीकरी	म्हेर कर, माहरी,
	लेवू , देसूं	आणी,	एहतणी, (षष्ठी विभक्ति)
	कपाया थयो,	वरणवू ,	पुण्येग्रथे (सप्तमी)
	पहोचाड़ी,	उपराजियो,	तेह (सर्वनाम द्वितीया)
	दाखी,	भणी,	हूँ (सर्वनाम प्रथम पुरुष,
	खमाविया,	परशसियो,	एक वचन) काँई (प्रश्न
	आपीयो,	देखाय,	वाचक सर्वनाम)
	लीधको,	फलियो,	
	कीधो,	वरणू ,	
	दीधो,	छे	
	नाखती,	आरोगे,	
	दीप्यो,	अवलोकियो,	
	ओलख्या,		

क्रिया विशेषण —एह्वा (ऐसा, इस प्रकार) एथ (यहा) कानी (की तरफ) किता काल ने अन्तरे (कितने समय के बाद) एतले पाछल (इसके पश्चात) ।

उर्दू-फारसी के शब्दो का भी कृति मे बाहुल्य है यथा—कासीद, उर्फ, शाबास, चुगली, समशेर, हुस्यार, दाग, खुशाल, तमासो, सुलतान, गजब, नूर, बदनामी, मरद, फौज, हुकम, फरमावियो, गुमानी, नजर, मुलक, नीशाण, कचेरी, मगरुर, फरमावे, हकीगत, दिलजानी, मेहरवानी, मिजमानी, खुवार (ख्वार) महनत आराम, मुलाहिजो, बकशीश, फते, सरमिन्दो, गाजी, बख्तर, बेपरवाही, दिले, मरजी इत्यादि ।

ठेठ राजस्थानी के शब्द भी प्रचुर मात्रा मे है—ठपकारी फोपल-पान, बीजी, डोहला (दोहद) अरडाटपाड़तो, घाघरी, ओढणी लपराई राड, कामणगारा, महलमालिया, इडा (अडा) बागल (चिमगादड़) पलाण (जीन), अलखामणी, सामठो, सगपण, परमाण, लाडी, रुवडी गाडर, रीभ, ओखाणो, करडा, निसरडा, भूडी, बाजोठ, कूकेड, जीमणे (दाहिने) ढील्यो, घूलघानी, लूंखो, हेज । कवि के वातावरण-चित्तण मे मध्यकालीन राजपूत-मुगल सस्कृति का प्रभाव अनेक स्थलो पर है[76] ।

श्री खूबचद महाराज द्वारा सं० 1964 मे रचित 'प्रद्युम्नकुमार की लावणी' के प्रणयन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न-चरित को 'लावणी' जैसे गेय रूपो मे अभिव्यक्त

किए जाने के प्रयत्न भी होते रहे हैं। इसकी रचना श्री नंदलाल जी के शिष्य श्री खूबचंद महाराज द्वारा हुई है तथा इसका प्रकाशन श्री नारायण मूलचंद जैन ने कोटा में श्री किस्तूरचन्द जी महाराज के चातुर्मास के अवसर पर किया है। भूमिका में प्रकाशक ने लावणी-प्रकाशन के अपने उद्देश्य और लावणी की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "विदित हो कि आजकल के भव्य प्राणियों को शास्त्र की रुचि बहुत ही कम है और लावणियें आदि गाने का शोक (शौक) जिणादा है वास्ते मुनि श्री मुखलाल जी महाराज से यह प्रद्युम्नकुंवर शाम्भकुंवर की लावणी शुद्ध उतार कर संघ को अमूल्य भेंट देने के लिए छपवाई सो आशा है कि इसको पढकर भव्य प्राणी अर्थात् मेरे स्वधर्मी प्रिये अपना जन्मकृतार्थ करेंगे।" इस भूमिका से स्पष्ट है कि शास्त्रीयपरम्परा पर आधारित ग्रंथ क्लिष्ट कठिन होने से धार्मिक तथा पौराणिक महापुरुषों के चारित्र्य गान के लिए लावणी जैसे गेय रूप का महत्त्व स्वीकार किया गया। प्रस्तुत लावणी का प्रकाशन प्राचीन मुद्रण शैली में गद्य की भांति सीधी एकरस पंक्तियों में किया गया है तथा तुकान्त में और टेक के प्रारंभ में दो विरामचिन्हों के प्रयोग से पद्यपंक्तियों की पृथकता का बोध कराया गया है आगे कथा सार संक्षेप में इस प्रकार है कि रुक्मी क्षोभ व्यक्त करते हुए कहता है कि रुक्मिणी और उसकी भुआ ने गुप्त रूप से गोविन्द को बाग में बुला लिया और पूजा के मिस वहां जाकर हरि के साथ प्रस्थान कर गयी। इस प्रकार दुर्जन लोग हँसे और वंश में कलंक (आग) लगा, खूब 'फतीजी' हुई शूरवीर सरदारों की बात 'गमाई (खोयी गयी) मेरे भावे तो बहिन रुक्मिणी मर चुकी है। अपनी प्रिय वैदर्भी वल्लभ की कुमारी (कुंवरी) को अब मैं डूम से भले ही परणा दूँ। प्रद्युम्न ने कहा, मैं मामा के वचन निभाऊंगा और वैदर्भी कुमारी को वधू (बींदणी) बनाकर आपके चरणों में लाऊंगा। यह कर जाम्बवतीसुत साम्बकुमार से सलाह (सल्ला) करके युगलवीर जोड़ी बना प्रद्युम्न कुन्दनपुर पर चढ आये। विद्या के जोर से अपना डोम का रूप बनवाया, कई घोडे, ऊंट पाडे-बकरी (छाली) साथ लिये और बाग में डेरे लगाये। दोनों भाइयों ने आधी रात (मदरात) उठ कर वीणा और वेणु बजाना प्रारंभ किया। मिलकर छः राग और छत्तीस रागनियां गायी जिन्हें सुन जंगल के कई जीव लुभा गये। प्रद्युम्न ने जो संदेश वैदर्भी कुमारी को राग में दिया उसे रचयिता ने पनिहारी राग में निबद्ध किया है। पनिहारि राग में उक्त संदेश को निबद्ध कर देने के बाद कवि पुनः कविता का प्रवाह मूल टेक से जोड देता है।[77]

राजस्थानी भाषा में रचित यह 'लावणी' इसकी पुष्टि करती है कि लावणी गाये जाने का एक सामान्य प्रचलन समाज में रहा है तथा लावणी की लोकप्रियता जैन-जगत में भी पर्याप्त थी। जैनियों में सदा ही लोकप्रचलित काव्य-रसों, राग-रागिनियों और धुनों में अपने शास्त्र-वचनों तथा महापुरुषों के चरित्रों को ढालने की प्रवृत्ति रही है। यह 'प्रजनकुंवर की लावणी' उसी प्रवृत्ति का निर्देशन है।

श्री गुणभद्र जैन अगास कृत 'प्रद्युम्न चरित्र' विक्रम की बीसवी सदी के अंतिम चरण की रचना है। जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता की ओर से प्रकाशित इसके प्रथम संस्करण मे प्रकाशन सवत् दीपावली 2456 मुद्रित है जो स्पष्टत वीर-निर्वाण सवत् है। अत इसका प्रकाशन-वर्ष वि० स० 1986 होने के कारण एक-दो वर्ष पूर्व रचना मानने पर इसका रचनाकाल 1927 ई० के आसपास ठहरता है। वस्तुतः गुणभद्र उन कवियो मे है जिनका कवि-रूप मे उदय मैथिलशरण की 'भारत भारती' और 'जयद्रथवध' की काव्य-शैली के प्रभावस्वरूप हुआ। एक समय देश मे यह काव्य-शैली अपनी व्यापक अपील रखती थी तथा उस युग मे उदीयमान प्राय हर कवि मैथिलीशरण शैली के काव्य-सृजन मे आत्मतोष और यश अर्जित करने का आकाक्षी रहता था। इस दृष्टि से हम गुणभद्र अगास को द्विवेदी-युग की काव्य-शैली के उत्कर्षकाल के खेवे का अन्यतम जैन कवि कह सकते है। इस खेवे के जैन कवियो मे उन्होने विशेष ख्याति अर्जित की ऐसा प्रतीत होता है। इसलिए भारतीय ज्ञानपीठ की सचालिका श्रीमती रमा जैन द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित 'आधुनिक जैन कवि' मेगुणभद्र अगास को युगान्तरकारी जैन कवियो मे स्थान दिया गया है। आधुनिक युग के जैन-काव्य के सीमित क्षेत्र और अल्प उपलब्धियो की दृष्टि से यह कथन सभवत अत्युक्तिपूर्ण और असगत नही लगे। किन्तु श्रीमती रमा जैन ने गुणभद्र के काव्य की सीमाओ को भी स्पष्टत· स्वीकार किया है जब वे कहती है कि "गुणभद्र अगास ने परम्परागत कहानियो को पद्यबद्ध करने का कार्य हाथ मे लिया। निस्सदेह उनकी शैली मुख्यत: वर्णनात्मक है भावात्मक नही। लम्बी कथाओ को बहुत समय चाहिए, सुरुचिपूर्ण क्षेत्र चाहिए। दूसरे, प्रत्येक कवि 'साकेत' नही लिख सकता, शायद 'जयद्रथवध' लिख सकता है। फिर भी आज जो 'जयद्रथवध लिख रहा है उससे कल हम 'साकेत' की आशा कर ही सकते है।" स्पष्ट है कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण के दौर मे गाधी-युग के नैतिक मूल्यो के प्रभाव मे जहा खडी बोली के काव्य मे ओजस्विता, मर्यादा, नियमबद्धता और दृढता आयी वही शब्दकार्पण्य, रसविरहिति और शुष्क कथ्यमूलकता भी। इसी का प्रतिफलन द्विवेदी-युग की अनुशासित काव्य-कला मे दृष्टिगत होता है। इसलिए साकेत' का उस युग मे सरसता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ काव्य के रूप मे स्वागत हुआ और 'जयद्रथ वध' की शैली और स्तर के कवि से साकेत जैसी कृति प्रदान करने की कामना व्यक्त की गयी। खेद है कि कवि गुणभद्र को लेकर यह कामना फलवती नही हो सकी। तथापि उनमे एक श्रेष्ठ कवि बनने की संभावनाएँ थी इससे अस्वीकार नही किया जा सकता। 'प्रद्युम्न चरित्र' के अतिरिक्त गुणभद्र अगास की अन्य प्रमुख रचनाएँ 'जैन भारती', 'रामवनवास', 'साध्वी' और 'कुमारी अनन्तमती' इत्यादि है।[78]

गुणभद्र अगास का 'प्रद्युम्नचरित्र' खडी बोली मे लिखा गया 5 सर्गो का लघु प्रबधकाव्य है। कवि प्रारम्भ मे उस युग मे प्रचलित ईश-वदना की सामान्य

शैली मे नेमिजिन की स्तुति कर प्रद्युम्न को प्रणाम करता है फिर पाठक से प्रद्युम्न-कथा सुनने और जातीय पूर्वपुरुषो के गुण-स्मरण का आग्रह करता है।[79]

कवि गुणभद्र ने अपनी कृति मे परम्परागत कथासूत्रो का गुम्फन किया है तथा शृगाररता सत्यभामा द्वारा नारद के अपमान से कथानक का प्रारभ कर प्रद्यम्न-निर्वाण पर उसे समाप्त किया है फिर भी कथानक-योजना सम्बन्धी कतिपय विशेषताएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं। जैन परम्परा मे कृष्ण-रुक्मिणी मिलन कराने मे नारद ही एकमात्र सेतु का कार्य करते है। जैन कवियो ने रुक्मिणी द्वारा अपने सदेश निवेदन के लिए कृष्ण के पास दूत का प्रेषण आवश्यक नही समझा है। गुणभद्र द्वारा रुक्मिणी की ओर से कृष्ण-सेवा मे दूत-प्रेषण की योजना पर वैष्णव प्रभाव स्पष्ट है। कवि ने शिशुपाल पक्ष के सैनिको द्वारा रोके जाने पर रुक्मिणी का उन्हे छल कर कामदेव-पूजन के लिए जाना वर्णित किया है। कथा-सूत्र की इस योजना पर सोमकीर्ति का प्रभाव है। वज्रमुद्रिका का विचूर्णन, सप्ततालभेदन आदि शौर्य-कृत्य कृष्ण, रुक्मिणी को आश्वस्त करने के लिए ही करते हैं। नारद द्वारा कृष्ण के अभिज्ञान के रूप मे इन शौर्य व्यापारो की पूर्व सूचना नही दी जाती। इस अवसर पर कवि ने कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के करतल मे स्वस्तिक (साथिया)-रचना का अतिरिक्त उल्लेख किया है। यह भी सोमकीर्ति से ही प्रेरित है।[80] कवि ने इस अवसर पर मधु-हेमरथ के रूप मे प्रद्युम्न-धूमकेतु के पूर्व भवो का वर्णन नही किया किया है, यहां तक कि धूमकेतु का नामोल्लेख तक न कर 'हा दैत्य कोई उस समय आकाश मे था जा रहा' कह कर ही प्रकरण का निर्वाह कर लिया गया है। प्रद्युम्न-हरण के दिन का उल्लेख नही है किंतु मधु-हेमरथ रूप मे प्रद्युम्न-धूमकेत के पूर्वभव का प्रसग सीमंधर स्वामी नारद को सुनाते है। मधु-हेमरथ प्रसग मे मत्री की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शित की गयी है। प्रद्युम्न द्वारा षोडशलाभ-प्राप्ति से पूर्व ही, नृपकालसवर द्वारा प्रद्युम्न पर सामान्यत प्रेम भाव से ही ईर्ष्यादग्ध हो उसकी रानिया अपने 500 पुत्रो को प्रद्युम्न-घात के लिए प्रेरित करती हैं। कवि ने इस प्रसग मे प्रद्युम्न के सौतिले भाइयो द्वारा उसे ताम्बूल मे विष देकर प्राण-घात की चेष्टा करने का अतिरिक्त उल्लेख किया है।[81]

षोडशलाभ-प्राप्ति प्रकरण मे पराक्रमो का उल्लेख नही कर विशेष विद्याओ या उपहारो के नाम दिये है। इस प्रसग मे मकरध्वजा और स्वर्ण-पट ये दो ही नाम गिना कर कवि ने 'बहुद्रव्यो' बहुत सी सम्पदा बहु वस्तुएँ कह कर ही काम चला लिया है। हा, 'रति' की प्राप्ति का वर्णन करना वह नही भूला है। मनोहारी मायावी विमान की रचना और इस अवसर पर प्रद्युम्न द्वारा नारद से परिहास के प्रसंग को कवि टाल गया है। किन्तु द्वारका मे किये गये क्रीडा-कौतुको का वर्णन करना वह नही भूला है। प्रद्युम्न और रुक्मिणी के पूर्व भवो के अनावश्यक वर्णनो के परिहार

से भी उसने काव्य-कलेवर को भाराक्रान्त होने से बचा लिया है। साम्ब रूप मे कैटभ-जन्म और साम्ब-सुभानु द्यूत क्रीडादि प्रतिस्पर्द्धाओं के समस्त प्रसग को कवि टाल गया है। प्रद्युम्न द्वारा रुक्मिणी-हरण के फलस्वरूप हुए कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध के अन्त मे ही प्रद्युम्न विरक्त हो जिन दीक्षा ग्रहण कर लेते है। नेमिराजीमती प्रकरण की सहायता के बिना ही कवि ने प्रद्युम्न द्वारा वैराग्य-प्राप्ति और तपस्या का वर्णन कर कथानक की परिसमाप्ति कर दी है। कहा जा सकता है कि कवि ने कथानक-सगठन मे सौष्ठव का ध्यान रखा है तथा कथानक-योजना की दृष्टि से इसे खण्ड-काव्य कहा जा सकता है। किन्तु यह वर्णात्मिक शैली का खण्डकाव्य है और इसमें मार्मिक प्रसगो की सरस उद्भावना के सूचक स्थलो का अभाव है। कवि ने कृष्ण और रुक्मिणी के चरित्र का आदरास्पद रूप मे चित्रण किया है। वह नारद के मुख से कृष्ण को 'यदुवश रूपी पंकजो को खिलाने के लिए रवि' कह कर प्रशसित करता है। रुक्मिणी अपने केश देने के लिए सहर्ष तत्पर हो जाती है। वह सत्यभामा द्वारा प्रेषित नाई दिवाकीर्ति को नि:सकोच अपना कार्य (केशकर्तन) सम्पन्न करने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु चरित्राकण मे कवि कहीं-कहीं चूक भी गया है। कृष्ण को 'शत्रुओ को रुलाने के लिए यमराज' कह कर कवि ने सादृश्य-विधान के औचित्य को भुला दिया है। इसी प्रकार कृष्ण का रुक्मिणी से यह कहना कि 'मम वीरता के गीत गाये सुर सदा सुरलोक में' कृष्ण के अह को व्यक्त करता है जो प्रिय नही लगता।

गुणभद्र अगास की इस कृति मे भी प्रद्युम्न-काव्य-परम्परा में प्रयुक्त वर्णन-रूढियो का प्रयोग हुआ है। कवि सत्यभामा के प्रति कृष्ण के प्रेम को प्रकट करने के लिए गौरी के प्रति शिव तथा शची के प्रति इंद्र के प्रेम का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार कवि ने नारी-रूप के प्रति जिज्ञासा तथा पुत्रागम-चिन्ह नामक पूर्वोक्त रूढियो को भी निबद्ध किया है।

कवि को नीति-वाक्य-कथन विशेष प्रिय है। पूर्ववर्ती कवियो में सोमकीर्ति ने नीति-वाक्य-कथन मे विशेष रुचि व्यक्त की है। कवि पर सोमकीर्ति के प्रभाव को इंगित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी-युग मे भी नीति के आग्रह का स्वर मुखर था। कवि ने अनेक थलो पर नीति-वाक्य अंकित किये है।[82]

कवि ने कृति मे आद्योपान्त हरिगीतिका छद का सर्वाधिक प्रयोग किया है। भारतभारती और 'जयद्रथवध' ने हरिगीतिका छद को उस युग मे पर्याप्त लोकप्रियता प्रदान कर दी थी। हरिगीतिका के अतिरिक्त रोला, छप्पय और द्रुतविलम्बित का भी प्रयोग किया गया है। चतुर्थसर्ग का प्रारभ रोला छद से किया है किन्तु प्रत्येक सर्ग के अन्त मे छद-परिवर्तन की प्रवृत्ति का निर्वाह नही है। सर्ग के मध्य मे प्रसगानुकूल छद परिवर्तन का परिचय द्वितीय सर्ग के मध्य मे मिलता है।

कवि को अलंकारो मे उत्प्रेक्षा सर्वाधिक प्रिय है। उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त दृष्टान्त और निदर्शन अलंकारो का भी अनेक स्थलो पर प्रयोग किया गया है।[83] छंद की सुविधा के लिए मात्रा घटाने-बढाने की स्वतन्त्रता मे वर्तनी-शुद्धि का ध्यान भुला देने की सामान्य प्रवृत्ति इस कृति मे पायी जाती है। ऐसे कुछ शब्द ये हैं—मुनी, प्रभू, ऋपी, गती, अती, नहि हरी (हरि), हानी, चहता (चाहता) इत्यादि। व्याकरण-असम्मत अशुद्ध प्रयोग भी है, यथा-लावण्यता, उनने इत्यादि। कहीं-कहीं कवि कालगत औचित्य का भी विस्मरण कर बैठा है। किरात (भील) वेप मे प्रद्युम्न दुर्योधन-पक्ष से "टैक्स" वसूल करने की भाषा में वार्तालाप करता है।[84] सन् 1925 ई० के आस-पास स्वायत्त शासन के लक्ष्य से प्रेरित आन्दोलन की राजनीति मे बहुप्रचारित 'टैक्स' शब्द का सांस्कृतिक सीमाओ का अतिक्रमण कर जाना विस्मयजनक नही था। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-शैली की निजी छाप तुकान्त-प्रियता भी कवि मे पायी जाती है। कुल मिलाकर यह खडी बोली का वर्णनात्मक खण्डकाव्य है जिसमे मार्मिक स्थलो की सरस उद्भावना की अपेक्षा इतिवृत्तकथन की ओर ही विशेष झुकाव है। प्रद्युम्न-चरित-काव्य-धारा मे अपभ्रंश के बाद पुरानी हिन्दी से ही शुष्कइतिवृत्तकथन का जो स्वर मुखर होता चला गया उसी की गूंज इसमे भी है। सिद्ध तथा सिंह के 'पज्जुण्ण चरिउ' तक तो संस्कृत काव्य-शैलो के प्रभाववश काव्य मे सरसता का तत्व बना रहा किन्तु सधारु से ही इतिवृत्तात्मकता का बोलबाला हो चला। आधुनिक युग मे खडी बोली के प्रद्युम्न-चरित काव्यो मे भी इस अभाव की पूर्ति का प्रयास नही दीख पडता। फिर भी इस कृति का इस दृष्टि से महत्त्व है कि प्रद्युम्न-कथा द्विवेदी युग मे भी काव्य क्षेत्र मे विशेपत उसके जैन अंचल मे, लोकप्रिय रही है तथा एकाधिक रचनाएँ प्रद्युम्न-चरित्र को उपजीव्य बना कर लिखी गयी है और प्रशंसित तथा समादृत हुई है।

ऐसी ही एक रचना श्री सूर्यमुनि रचित प्रद्युम्न चरित्र' है। सूर्य मुनि ने स्वयं को 'द्राविस गच्छ के पूज्य' धर्मदास गुरुवर के गच्छ मे 'एव मुनि मे शिरताज किरपाल दयालू जैनाचारज' स्वर्गीय नन्दलाल महाराज का 'पद-पकज चाकर चेलो' बताते हुए लिखा है कि इस ग्रथ की रचना वि० स० 1987 के फागुन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को गुरुवार के दिन मालवा प्रदेश के नीमाड कस्बे मे संपूर्ण हुई। प्रकाशित कृति मे इसे 'लावणी नवरगी कहा गया है।[85] इससे इसकी गेयता सूचित होती है। सगीत रागकल्पद्रुम के अनुसार लावनी (लावणी) उपराग है—"लावणी जोगिया जगी अहग सुहाना कोल्लिका" यह देशी राग के अन्तर्गत है। देशी राग के सम्बन्ध मे कहा गया है कि भिन्न-भिन्न देशो मे जो भिन्न-भिन्न नाम धारण करे वह देशी राग है—'देशे-देशे भिन्न नाम तद्देशीगानमुच्यते।"[86] दीपक राग की भार्या 'देशी' रागिनी से इसमे भिन्नता है। स्पष्ट है कि लोकगीतो से इसका विकास हुआ है। इसका सम्बन्ध लावनी देश (लावाणक) से प्रतीत होता है जो मगध के

समीप था। मिया तानसेन ने जिन देशी रागिनियो को शास्त्रीयता प्रदान की थी उनमे लावनी भी थी। मगध देश से विशेष सम्बन्ध होने के कारण जैन कृतिकारो मे लावणी शैली बहुत लोकप्रिय रही है। भारतेंदु तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भी लावणी मे रचनाएँ की है तथा भारतेंदु युग तक लावणीवाजो के दगल आयोजित किये जाते थे।[87] सूर्यमुनि की कृति भाषायी शिल्प और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से सामान्य कोटि की रचना है।[88] कवि मूलचद 'वत्सल' ने प्रद्युम्न-कथा पर स्वतंत्र रूप से प्रबन्धात्मक कृति की रचना नही की किन्तु उनकी 'वीर पचरत्न' के पाच महनीय जैन युद्धवीरो मे से एक प्रद्युम्न भी है।[89]

बीसवी सदी मे प्रद्युम्न-चरित विषयक काव्यकृतियो के रचयिताओ मे गुणभद्र 'अगास' के अतिरिक्त अमोलकऋषि, खूबचद जी महाराज, दयाचंद्र जैन, सूर्यमुनि और जैनेन्द्रकिशोर (आरानिवासी) के नाम उल्लेखनीय है। किंतु प्रद्युम्न चरित काव्य-धारा मे इस युग का प्रतिनिधि कवि गुणभद्र को ही कहा जा सकता है क्योंकि उनकी कृति मे न केवल खडी बोली हिन्दी के आधुनिक परिनिष्ठत रूप का ही निदर्शन मिलता है, काव्यदोष होते हुए भी वे काव्य-सौष्ठव तथा युगीन काव्य शैली को भी सर्वाधिक आत्मसात किये हुए है। जैनेन्द्रकिशोर के साथ ही आधुनिक युग मे प्रद्युम्न-चरित काव्य धारा विलुप्त होती हुई प्रतीत होती है। वि० सं० 2015 मे प्रकाशित मुनि श्री शुक्लचंद्र प्रणीत गद्य ग्रंथ 'शुक्लजैन महाभारत' मे प्रद्युम्न कथा विस्तार से दी गयी है। किन्तु खेद है कि जैनेन्द्रकिशोर (स० 2000 के आसपास) के बाद पिछली चौथाई सदी मे कोई स्वतत्र महत्त्वपूर्ण कृति दृष्टिगत नही हुई। फिर भी प्रद्युम्न-चरित की अविच्छिन्न धारा उसकी लोकप्रियता की सूचक है, अतः यदि कविजन पुनः इस ओर आकृष्ट हो तो आश्चर्य नही होना चाहिए। क्या हम आशा करे कि कोई समर्थ कवि अपनी तत्त्वदर्शिनी प्रतिभा के बल पर इस परम्पराविहित धार्मिक कथा-वस्तु को पौराणिक और रोमाचक शैली की रूढि-परकता से उबार कर इसमे युगानुरूप नूतन स्वर भरते हुए जीवन के नये सदर्भो और अर्थो से इसे अनुप्राणित कर सकेगा ?

**

सन्दर्भ : अध्याय * 4

1 डॉ० कस्तूरचद कासलीवाल द्वारा संपादित सधारुकृत प्रद्युम्नचरित प्रस्तावना पृ० स० 13,

2 प्रशस्ति सग्रह, प्र० श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, जयपुर, पृ० सं० 12,

3 वही पृ० 16, तथा प० परमानंद जैन शास्त्री प्रशस्ति संग्रह, पृ० 17,

4. द्रष्टव्य इसी शोध-प्रबन्ध का परिशिष्ट

5 सोमकीर्ति- प्रद्युम्नचरितम् हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्र भंडार, वेष्टन स० 685, सर्ग 3,

6 अस्तमिते प्रतीसूर्य पर दिग्गणिका वधू: ।
चित्राम्बरधराजाता तिस्व सौवानिषेवितु ।।
अंधकासमूहेतु दीपानानिकरो निशि ।
रराजतेजसायुक्तो लोकैश्चप्रकटीकृत ।।
विमल सुदशायुक्ता सुपात्रस्यनिषेवक. ।
राजलेतेजसायुक्तो मलिनेमध्यगते पि हि ।।
वही पत्र 47, श्लोक 77, 78, 80, 83, 84

7 शालिवप्रावभुर्यत्र सर्कपिंडा पदे पदे ।
शालयस्तेषु राजन्ते नम्रा पातुं जलं यथा ।।
नागवल्लीभिराश्लिष्टा पूगवृक्षावनेवने ।
ताम्बूलार्थं जनायत्र चूर्ण नीत्वा व्रजन्ति हि ।।
मोच चोच मयावृक्षा स्फुरत् द्राक्षादिमडपा ।
संवलेन विना लोका यान्ति यत्र प्रवासिन ।।
वही, द्वितीय सर्ग पत्रांक 6, श्लोक 5, 8, 9, 11, 14, 15

8 वही, पत्रांक 135, श्लोक 13-16

9 वही, पत्राक 198, श्लोक 6-16,

10 वही, पत्रांक 192, श्लोक 84-96 ।

11 नाथूराम प्रेमी. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 371-75

12 श्री बालशौरि रेड्डी : तेलुगु साहित्य का इतिहास, प्र० हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ० सं० 136; 147, 149-50

13 परशुराम चतुर्वेदी: भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा, पृ० 110

14. डॉ० के० भास्करन नायर. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृ० 205 तथा 50; 60-71;
15. दीनानाथ कवि कृत 'श्रीकृष्णावतार लीला', जार्ज ग्रियर्सन द्वारा मूल कश्मीरी पाठ के साथ रोमन लिपि में सपादित तथा बिब्लिओथिका इण्डिका सीरीज स० 247 मे प्रकाशित।
16 श्री नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 380-84,
17 श्री जुगलकिशोर मुख्तार · जैन साहित्य के इतिहास पर विशद प्रकाश, प्र० वीर शासन संघ, कलकत्ता, पृ० 107,
18 मोहनलाल दुलीचद देशाई. जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्ड 1 पृ० सं० 659-61
19, कमलशेखर रहिया चौमासि। माडंल नयर घणाई उल्हासि ।।
संवत सोल छविसई करि। दूहा चुपई हीयडई धरी ।।
काती सुदि नइ दिन त्रयोदसि। कीधी चुपइ मन उल्हसी ।।
—वही।
20. श्री जिनवर सवि पय नमि, समरी सरसति माय।
रास रचु ँरलीयामणु, वलि वदी गुरू पाय ।।
सरस कथा यादव तणी, कहिस्यू ँ ते ईक चितु।
कुमर पजूनह तेह तणु ँ, निसुणउ चारु चरितु ।।
—वही।
21 793 गाथा स्वर्णगिरि मध्ये ऋषि लालाजी लिखित 24-15 नं 499 म० जै० वि (2) 793 गाथा इति प्रद्युम्न चरित्रे नेमकुमार दीक्षा केवल ग्यांन प्रद्युम्नकुमार दीक्षा ग्यान निर्वाण नाम्ना षष्ट सर्ग. इति प्रद्युम्नकुमार चउपई संपूर्ण। सं० 1644 वर्ष आषाढ़ वदि 1 लख्यतं। पत्र 44-11 नं 643 गोडीजी मु वई —वही
22. तीर्थानि तटिनीतोय, तरुणी लोललोचना।
ताम्बूल तोयधेर्लक्ष्मी, सौराष्ट्रे रत्नपंचकम् ।।
23 डा० कासलीवाल. प्रशस्ति संग्रह, प्र० दिग० जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी, जयपुर-पृ० 21
24. वही, पृ० 11,
25 डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल का प्रकाशित शोध प्रबंध-जैन ग्रंथ भंडार्स इन राजस्थान, पृ० 239,
26. प्रद्युम्नरासो-रचयिता ब्रह्मरायमल्ल, हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्र भडार वेष्टन सं० 700
27. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, जैन ग्रन्थ भंडार्स इन राजस्थान, पृ० 239

28 कामदेव गुण बिस्तरूं जी ।
हूं मूरिख अति अपढ़ अयांन भाव भेद जाणू नहीं जी ।।
थोड़ी बुद्धि किम करूं जी बखांण तो ।।रास ।।4।।
—प्रद्युम्नरासो ब्रह्मरायमल्ल-आमेर शास्त्र भंडार की हस्तलिखित प्रतिलिपि काल सं 1820, पत्र स० 18 वेष्टन सं 700,.

29 पाछै चित्त बिचारै बातां
मसापिंड की न करूं घातां
तो बन मांहै ले रालस्यूं जी ।
जन भैभीत स्यघ ले स्यालो
तख्यण सिलातलि चपियो जी
हो व्यंतरि गया जिहांनिज आलै ।।वही, रास ।।70।।

30. वर कन्या भवरी फेर्‌या चार जरजोधन कर गहुतीभारि
हाथ जुडावै घी तणो जी ।
रथ हस्ती कंचन केकाण छत्र चवरदासी मणी जी
कामदेव नै दीन्हो दांन ।।रास 181-82 ।।
ब्रह्मरायमल्ल: प्रद्युम्नरासोहस्तलिखित प्रति, आमेरशस्त्र भंडार

31. हो बालक सेज्या थांन न दीसै रुदन करै हरि कांमणी जी
हो धूणो सीस दोऊं कर मीचै ।।76।।
राजा भीखंम तणी कुमारी हिवडै सिर कूटै अति मारी
दीसै खरी डरांवणी जी ।
—वही

32. सोलासै अठबीस बिचारो भादवा सुदि दुतिय बुधवारो
गढ हरसोर महाभलो जी
तिहू मे भला जिनेसुर थांन श्रावकलोग बसै भला जी
देवशास्त्र गुर राखै मांन ।। रास 194।।
कडा एक सो अधिक पच्याणु रास रहसि हरि वंस बखाणु
भावभेद जुवा जुवा जी
जैसी मुति कीन्हों अवकास पंडित कोई मति हंसो जी
तैसी मति कीन्हो परकास
तो रास भणो पड़दवणि को जी ।।
इति श्री पडदवणिरासो सपूर्ण ।। मि० असाढ़ प्रथम बुदि 7 ।। सं० 1820 आमेर शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति वष्टन स 700 ।

33. श्री० नाथूराम प्रेमी: जैन साहित्य और इतिहास, प्र० हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई, पृष्ठ 378; 385-88;

34. डॉ० श्रीमती सरोज अग्रवाल, प्रबोध चंद्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा नामक शोधप्रबंध, प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० 62

35. श्री प्रद्युम्न तणुं ग्रे रास । रचिउ चंद्रप्रभु नी पास ।।
काष्ठासंघ सूरत गुणवंत । तेह नगर ना गुण बोलन्त ।।
तिहां नाति शिरोमण नरसघपुरा । सहुमांहि दिशि नरवरा ।।
सवत सोलसि छपनु जाण । पोष सुदि तेरसि सुख खांण ।।
बुधवार ते बुधि दातार । कविजनगि ते सदा सुखकार ।।
—भट्टारक श्रीभूषण रचित "प्रद्युम्नकुमार रास"
प्र०, मूलचद कसनदास कापडिया, मंत्री, दिग० जैन गुजराती साहित्योद्धारक फंड, सूरत, प्रथम आवृत्ति, —वही, पृ० 140-43

36. महासेन सूरिवर बुध भाण । प्रद्युम्न काव्य नुं करूं बखाण ।।
—वही, पृ० 139 ।

37 माघ सुदि पंचमी ने दिनि । गुरुवार शोभित अनुमनि ।।
मध्य रात्रि सुल जनम्युं चग । सुवर्ण कान्ति शोभित उत्तंग ।।
—वही पृ० सं० 33

38 वही, पृ० 6; 28; 105; 108; 110;

39 श्री अगरचद नाहटा का लेख 'कविवर समयसुंदर', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 57, अंक 1, सं० 2009

40. समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि, प्र० नाहटा ब्रदर्स, 4 जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता—7, पृ० 4

41. द्रष्टव्य—महोपाध्याय विनयसागर द्वारा लिखित कवि की जीवनी, समयसुंदर कृति कुसुमांजलि का प्रस्तावना भाग ।

42. श्री अगरचद नाहटा का लेख राजस्थानी भाषा का एक उल्लेखनीय कृष्ण (पुत्रो सम्बन्धी) काव्य" ? 'सप्तसिंधु' मासिक पत्र के जुलाई 1967 के अंक मे प्रकाशित ।

43. नारि ने पीउ साथि भलो रे, का घर का वनवास जी ।
पतिव्रता व्रत साचो तो रे, सुख दुख सारिखो जास ।।
प्रीउनी नारि ले संजम लेस्यां, साधसां निज काज जी ।
मुक्त महल मैं सामी सरसी, करस्यां अविचल राज ।।
सगतीसा सोमाए ढालइ, हरख्यो कामकुमारजी ।

श्री गुणसारग (सागर ?) निजपद थापो, श्री अनुर उदार ।।

—इति श्री प्रजनकवर की सिज्झाइ समतु ।। गुणसागर प्रजंनकवर की सज्झाय

—श्री विनयचंद्र ज्ञान भण्डार, जयपुर की हस्तलिखित प्रति के आधार पर ।

44. गुणसागर कृत 'ढालसागर' की हस्तलिखित प्रति, आचार्य विनयचंद्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन, जयपुर मे प्राप्य, लिपिकाल स० 1863 वैशाख बदी 7, बृहस्पतिवार, ग्रथ क्रमांक 119/25, 12; 8

45. सवछर छहुत्तरे, मास श्रावण सुद ।
तीज सोम सनुत्तरा काई वासर रे वार अविरुद्ध ।।
कुकुटेश्वर नगर महं रे पास स्वामीपसायै ।
सघनइ उच्छवपणइ, काई रचियो रे मई चरित सुमायै ।।
ढाल सागर नाम श्री हरिवंश नो विस्तार ।—इत्यादि
गणहर गौतम गुण निलउ, लब्धि पात्र सुविचार—वही ।
पनरह सहंरे तिडोत्तिरां, दीधो जेण आहार ।। —वही ।

46 संवत सोल बहुत्तरे, मास श्रावण शुध ।
तीज सोम सुमुरतां, कांइ वासर रे वार अविरुध ।।
हस्तलिखित (विनयचद्र भंडार की) प्रति के गणधर गौतम गुण निलउ के स्थान पर प्रकाशित ग्रथ मे इस प्रकार पाठ है—
गणधर गौतम गुणा निलो, गौतम गुरुयो नाम ।
गौतम गुरू गुरू मे वडो, गौतम करूं प्रणाम ।।
—गुणसागर कृत ढालसगर, पत्राकार, प्र०श्रावक मगनलाल झवेरचद शाह, लीबड़ी, मुद्रक, राजनगर यूनियन प्रेस, स० 1946 मे प्रकाशित ।

47. प्रेम गहेलो गोरडो, चिगन करे लख कोड हो ।
धन वुठा जिम मोरलो, नित्य करे नर ओड हो ।।
चंदन तो शीतल कह्यो, तेह थी चंद सुचग हो ।
चदन चद विचारतां, शीतल नंदन सग हो ।।
मिश्री तो मीठी सही, तेह थी अमृत जोइ हो ।
मिश्री अमृत दोय मे, मीठो नंदन होइ हो ।
—वही, खण्ड 4, पृ० 106;

48 युग मुनि रसशशि वर्षे मासीणे विजयदशमिका दिवसे ।
वारे विद्यौ च विद्धे वाचक रत्नचंद्र इति चरितम् ।।
—वाचक रत्नचंद्र गणि विरचित 'प्रद्युम्नचरितम्' महाकाव्य, वी. वीं. एण्ड मण्डली भावनगर से प्रकाशित, श्री अगरचद जी नाहटा के संग्रह में उपलब्ध ।

49 संवत सत्तरबावीस सुदी चैत्र तीज बुधवार रे ।
महेश्वर माहि रचना रची रहि चंद्रनाथ गृहद्वार रे ।।
मनोहार प्रबन्ध ए गुंथ्यो करि विवेक ।
प्रद्युम्न गुण सूत्रों करी, नव वन कुसुम अनेक ।।
—देवेन्द्रकीर्ति प्रद्युम्न प्रबध, हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्र भडार, जयपुर वेष्टन स 699

50 ए गच्छपति पद नमि कहूं, प्रद्युम्न कथा प्रबध ।
हरिवंस ग्रंथ थी उद्धरी, जोह सुद्ध सम्बन्ध ।।
—वही—आमेर शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति (वेष्टन स० 699)

51 वही, पत्र सं० 34; पत्र स 7, पत्र स. 6,

52. वही, पत्रांक 21-22

53. मोहनलाल दुलीचद देशाई जैन गुर्जर कविओ, भागत्रीजो. खड 1, पृ० 75; 173-74,

54 'अनेकान्त' मासिक पत्र, वर्ष 4, पृ० 474

55 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण—प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम खण्ड, पृ० 552

56. अगरवाल है मेरी जात । हूं मूरख लोग विख्यात ।[1]
कुंवर परदवनभयो चरित्र । जो पढसी सो होय पवित्र ।।
साहू परमल घर मेरो अवतार । सुध जनम भो पालनहार ।।
अछनेर हम बसतें जान । सुनो चरित्र सो कियो बखान ।।
ठारासौ तीताल में वैसाख बदी नमहोई ।
उग्रसेन शिष्य बूलचद जलपथ में रच सोय ।।
—जैन साहित्य शोध-सस्थान, आगरा मे प्राप्त प्रति

57, 58, तथा 59 के लिए देखिए · मन्नालालकृत द्युम्न-चरित्र की भाषा वचनिका, हस्त० लि० पाटोदियों के मंदिर, जयपुर (वेष्टन स० 116/1 पत्र सं० 271 लिपिकाल अज्ञात) की प्रति के प्रारम्भिक तथा अंतिम पत्रक तथा सघीजी के मंदिर की प्रति (वेष्टन सं० 27/4 पत्र सं० 321 लिपि सवत 1933)

---

1 प्रस्तुत अर्द्धाली प्रति में 'जो पढसी सो होय पवित्र' के बाद दी गई है । यहां इसके स्थान पर रिक्तता है तथा वहां इसकी संगति में अन्य अर्द्धाली नहीं है । तुक तथा अर्थ सगति से भी इस अर्द्धाली का स्थान यहीं होना उचित है । प्रतिलिपिकार द्वारा स्मृति-भ्रम से यह क्रम-च्युति हो गयी प्रतीत होती है ।

60\. 61 मन्नालालकृत प्रद्युम्न चरित भाषा वचनिका हस्त-प्रति पाटोदियों का मंदिर, जयपुर (अंतिम भाग)

62\. अधिकांश भंडारो तथा सूचियो मे इसी तरह उल्लेख है, देखिए—दिगम्बर जैन मंदिर बड़ा तेरहपंथियो का, जयपुर की हस्त० प्रति (वेष्टन संख्या 1157, पत्र संख्या 244)

63 देखिए, दिगम्बर जैन लाल मंदिर, चांदनी चौक, दिल्ली की हस्त० प्रति, (वेष्टन स० 209), जहां 'टीका बख्तावरमल' उल्लेख है।

64 श्री नेमिचंद्र जैन लिखते हैं कि विक्रम की 20वीं सदी के प्रारम्भ मे बख्तावरमल रतनलाल ने प्रद्युम्न चरित्र और मन्नालाल बैनाड़ा ने प्रद्युम्न चरित्र वचनिका की रचना की—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृष्ठ, 210,

65 डाक्टर कस्तूरचंद्र कासलीवाल तथा चैनसुखदास सम्पादित 'प्रद्युम्न चरित्र' पृष्ठ 13

66\. प्रद्युम्नचरित-भाषा-वचनिका, संघी जी के मंदिर की हस्तलिखित प्रति, (वेष्टन संख्या 27/4 पत्रांक योग 321 पत्र स० 319-20)

67\. अमोलक ऋषि रचित 'प्रद्युम्नकुमार चरित्र' प्र० सेठ ज्वालाप्रसाद माणकचंद जैन जौहरी, महेन्द्रगढ (पटियाला) मुद्रक श्री कौशिक प्रिंटिंग प्रेस, महेन्द्रगढ़ प्रकाशन स० 1992, का अंतिम भाग।

68\. वही, प्रथम स्कंध, पृ० 32

69 दादा जी थी नहीं टल्या श्री प्रद्युम्नकुमार।
सिंह सगा ना काहु के, यह ओखाणो मिल्यो इक वार ॥

70\. देखो हजूर, अभी आप नमाषूं भोमिया,
फौज सजण को हुक्म कुमर फरमावियो
सीमाड़िया सब साध्या, साध्या महाजोरावर।—इत्यादि, वही,

71\. ढूंढाला फूंदाला सेठिया, घबराई ने बांधा होय।—इत्यादि, वही पृ० 92,

72\. तत्क्षण जागी रुक्मिणी रे कुमर न देख्यो पास।
मोह झाल उठी हृदये, पड़ी मूरछा आई तास रे॥
कुमर कुमर मुख ऊचरी रे कूटे सिर उर सोय।
आंतरड़ी कुरले घणी दीन वचन वदि रही रोय रे॥
कौन वैरी हैं मांहिरो रे रंग मे कीधा भंग।
ऊंडी ऊठे कुरकली, वली थर-थर धूजे अंग रे॥
मुझ थी भली जग पंखणी रे पाले बच्चा चूगो देय।
मैं वृथा हुई मनुष्यणी, धिग-धिग मुझ जनम छै एह रे॥ —वही

73\. वही, प्रथम स्कन्ध, पृ० 39; द्वितीय स्कंध, पृ० 55, 63, 68, तृतीय स्कंध, पृ० 78, 81, 91-92, 99-100,

74 वही, चतुर्थ स्कंध, पृ० 129,

75 वनिता भाव बेली समा ऊंच-नीच नहीं जोय ।
लिपट जाय झट जेह थी कुल लज्जा तज सोय ।।
जिम जलगमन अधोगती नारी बुद्धि तेम ।
पकज हस भ्रमर मे धारे सरीखो प्रेम ।।
एक मने एक नयन मे एक वचन एक वयण ।
एक ने भोगे सेज मे कोण तेहणो सयण ।।
मूषक थी डरे सिह ने ग्रहे, पड़े देहली थी चढ़े पहाड ।
पुरुष-भाग्य नारी-चरित्र को कौन पूर्ण जाने ताड़ ।।
फंदो विकट नारीतणो सुगणा मत फसो कोय ।
नारी श्वानी समी, रीझ्या काटे ते खीज्या
थी भरे बटकोय रे भाई ।।
—वही, द्वितीय स्कध, पृ० 45, 52

76 अरड़ाट पाडतो, ताल कूटतो, आयो कुमर कानी ।।
तब महासुर प्रद्युम्न सामे, हुयो ठोकी भुज जांघानी ।।
भीड़ी पड्यो ते सुर के साथे, रजपूती मदठानी ।।
—वही, प्रथम स्कन्ध, पृ० 30 (गोपुरगुफामे प्रद्युम्न-असुर युद्ध)
भला पधारया, पावन करी, मे दासी छू हो साहिब छो आप
—वही, द्वितीय स्कंध, पृ० 43 (मायावती-प्रद्युम्न सवाद)
रक्तप्रनाल आमिष कादव, हुयो तिह विकाल ।
कायर की तो छाती धूजे, सूरा होय उजमाल ।।
—वही, द्वितीय स्कध, पृ० 55 (प्रद्युम्न-कालसंवर युद्ध)
अश्व उत्तम सिणगारियो तिण पे हुवा अश्वार ।
केशरियो जामो जरी भर्‌यो, पेहरण छै श्रेयकार ।।—वही ।

77 'प्रद्युम्नकमार की लावणी'–रचयिता श्री खूबचंद महाराज, पृ० नारायण मूलचद्र जैन, कोटा । लावणी का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—
।।श्री प्रजनकुंवर की लावणी—चाल द्रोंन ।।
ये प्रजनकंवर की प्रकट सुनों पुन्याइ ।
महाराज ।। मात रुकमणी की जायाजी ।।
जाने भोग छोड़ लिया जोग, रोग करमो का मिटाया जी ।।टेक।।
ये सोरठ नामां देस द्वारिका नगरी ।
महाराज ।।राजपाले हरिकारायजी
वे तीन खण्ड का नाथ–जिनो का पुन्य सवाया जी
रुक्मणी आपकी प्रेमवती पटराणी ।
महाराज ।। जिन्होने नदण नीको जी ।

हे प्रजनकुंवर जी नाम एक जादवकुल टीको जी।।
निज मात तात सगपरण की दिल मे धारी
महाराज ।। दूत को तुरत बुलाया जी ।। ।।। जाने भोग--

78. श्रीमती रमा जैन संपादित "आधुनिक जैन कवि," प्र० भारतीय ज्ञानपीठ द्वितीय सस्करण, पृ० सं० 23

79. जिनके पदो मे सुर असुर सादर झुकाते शीश को।
मेरी विनययुत वदना उन नेमि जिन जगदीश को।।
हे कामविजयी वीर प्रभुवर! आप ही गुण धाम हो।
चरणारविन्दो में प्रभो मेरा सदैव प्रणाम हो ।।1।।
श्री कृष्णसुत प्रद्युम्न की, पाठक कथा सुन लीजिए।
निज पूर्व पुरुषो के गुणो की याद मन मे कीजिए ।।इत्यादि
गुणभद्र अगास प्रद्यम्न चरित्र, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, हरिसन रोड़, कलकत्ता।

80 आचार्य सोमकीर्ति—प्रद्युम्न चरितम् सर्ग 4, श्लोक 25-40, 85-90,

81 गुणभद्र अगास. प्रद्युम्न चरित्र, प्र० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, सर्ग 3, छंद 5, पृ० 43

82 नित उद्यमी मानव जगत मे भोगते सब भोग है।
पर दुःख पाते हैं हृदय मे घोर कायर लोग हैं।।
सुकृति जनो को आपदा भी दे न सकती त्रास है।
उनके हृदय में नित्य ही रहता प्रभू का वास है।।
वही, पृ० 9 तथा 25,

83. वही, पृ० 9, 11, 12, 50, 75,

84 आज्ञा पाकर यहां कृष्ण की मैं रहता हूं।
राज नियम अनुसार टैक्स लेना चाहता हू।।
वही, पृ० 60,

85. सूर्यमुनि रचित प्रद्युम्न चरित्र, प्र० धर्मदास जैन मित्र-मण्डल का आदि तथा अन्त भाग।

86 राग कल्पद्रुम, 1, पृ० 17,

87 डा० रामखेलावन पाण्डेय की टिप्पणी—हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ० 743,

88. आनन्द रंग से पाले राजमुरारी, (महाराज) दत इक पत्र ले आया जी।
यशगान करी पद नमी पत्र को नजर कराया जी।।
हे कुरु-जंगल का दुर्योधन महाराया (महाराज) तिन्हे यह दूत पठाया जी।
धर प्रेम तभी गोविन्द पत्र बांच हर्षाया जी।।
—सूर्यमुनि प्रद्युम्न चरित्र, प्रारंभिक भाग

89 श्री नेमिचंद जैन, हिंदी जैन साहित्य परिशीलन, पृ० 35

शुद्धि-पत्र

[खण्ड 2, अध्याय 3 की संदर्भ संख्याओं में संशोधन]

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
117	संदर्भ-सूचक अङ्क 39 के बाद पुन: छप गये हैं 38 तथा 39;	इनके स्थान पर पढ़ें, क्रमश: 40 तथा 41;
117 से 138	सदर्भ सूचक अङ्क 40 से अङ्क 102 तक;	प्रत्येक सदर्भ-सूचक अङ्क मे 2 जोडकर पढ़े, यथा 40 के स्थान पर 42; 41 के स्थान पर 43 तथा इसी प्रकार अङ्क 102 तक अङ्क 104 पढ़ने का कष्ट करे।
139 से 154	सदर्भ-सूचक अङ्क 102 पुन छप गया है।	दूसरी बार छपे अङ्क 102 के स्थान पर कृपया तीन अङ्क जोड़ कर 105 पढें तथा इसी प्रकार पृ० 139 से पृ० 145 के संदर्भ अङ्क 149 तक प्रत्येक संदर्भ मे 3 अङ्क जोड़ते हुए 149 के स्थान पर पढ़ें 152;
154	संदर्भ अङ्क 219	इसके स्थान पर पढ़ें अंक 153
156	प्रद्युम्न-कथा-चक्र शीर्षक मे अङ्क मुद्रित नही हैं।	प्रद्युम्न-कथा-चक्र के आगे अङ्कित करें अङ्क 154
157	सदर्भ अङ्क 221	221 के स्थान पर पढ़ें 155
162 से 168	सदर्भ अङ्क 153 से सदर्भ अङ्क 183 तक	इनके स्थान पर 3 अङ्क जोड़ते हुए क्रमश: 153 के स्थान पर 156 पढ़ें और इसी क्रम मे संदर्भ अंक 183 तक 3 अङ्क जोड़ते हुए 183 के स्थान पर 186 पढ़ने का कष्ट करें।

तालिका (क)

प्रद्युम्न-चरित ग्रन्थ-सूची

क्र स.	भाषा	ग्रथ नाम	ग्र थकार	रचना-काल	प्रकाशित या हस्तलिखित	प्रकाशक या हस्तलिखित ग्र थ-भण्डार	विशेष विवरण तथा सूचना का आधार
1	2	3	4	5	6	7	8
1	सस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	महासेनाचार्य	11वी सदी (स.1031-66 के मध्य)	प्रकाशित	प० मनोहरलाल शास्त्री राम-प्रसाद शास्त्री सपादित तथा माणिकचन्द्र जैन दिगम्बर ग्रथ माला, हीराबाग बम्बई द्वारा 1917 मे प्रकाशित ।	(अनेक सूत्र)
2.	अपभ्रंश	पज्जुण्ण चरिउ	सिद्ध तथा सिंह	13वी सदी	हस्त	आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर प्रति स 696	"
3.	सस्कृत [नाटक]	प्रद्युम्ना-भ्युदय	रवि वर्मा केरल राजकुमार	13वी सदी का उत्तरार्ध	प्रकाशित	टी. गणपति शास्त्री सपादित तथा त्रिवेंद्रम सस्कृत सीरीज मे प्रकाशित 1910	एस. एन. दासगुप्त और एस. के. डे. हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर वॉल्यूम 1 पृ० 466

क्रम	भाषा	ग्रन्थ	रचयिता	रचनाकाल	स्थिति	प्राप्ति स्थान	स्रोत
	पुरानी हिन्दी	परदवणु चरितु	सधारु	सं० 1411	प्रकाशित	दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी, जयपुर	नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 12वी त्रैमासिक रिपोर्ट तथा अन्य सूत्र ।
	पुरानी हिन्दी	प्रद्युम्नकथा	रूपचन्द	स० 1402(?)	हस्तलिखित		ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेंस 24वे सेशन मे गठित श्रीमती सुनीता 'जैन कवियो की कतिपय अप्रकाशित हिन्दी रचनाएं" सम्पादक डा. विद्यानिवास मिश्र वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, अक्टूबर अङ्क 1964
6	सस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	सकलकीर्ति	15वी सदी	हस्तलिखित	तेरापथी बड़ा मन्दिर, जयपुर वेष्टन सं० 1156 या 1516	डा कासलीवाल : राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ-सूची भाग 2, पृ० 225 तथा एच. डी वेलणकर : जिनरत्नकोष प्र. भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना ।
7.	अपभ्रंश	पज्जुण्ण चरिउ	रइधू	स० 1481–1536 के मध्य	हस्तलिखित	तेरापथी बडा मन्दिर जयपुर वेष्टन स० 70	एच डी. वेलणकर . जिनरत्न कोष तथा परमानन्द जैन शास्त्री प्रशस्ति सग्रह, पृ० 16–17
8	प्राकृत पद्य	प्रद्युम्न चरित	रल्हण		हस्तलिखित	दिगम्बर जैन भण्डार, ईडर वेष्टन स० 120	एच. डी. वेलणकर जिनरत्न कोष

9.	संस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	सोमकीर्ति	सं० 1530	मूल हस्त. अनु. प्रका.	हस्त. प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे प्राप्य।	डॉ० कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान पृ० 204
10	संस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	मल्लिभूषण	सं० 1550 लगभग	हस्तलिखित	दिगम्बर भण्डार सूची जयपुर	वेलणकर : जिनरत्नकोष
11.	सस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	रविषेण	सं० 1575	हस्तलिखित	आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर	डॉ. कासलीवाल : जैन ग्रण्थ भण्डार्स इन राजस्थान पृ 149
12.	हिन्दी	प्रद्युम्नरास	ब्रह्मगुणराज	स० 1606	हस्तलिखित	भट्टारक यशकीर्ति जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव तीर्थ (उदयपुर-अहमदाबाद रेल मार्ग पर स्थित)	डॉ कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ. 116
13.	संस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	शुभचद्र	17वी सदी (स० 1610-15 के लगभग)	हस्तलिखित	दिगम्बर भण्डार सूची, जयपुर	वेलणकर : जिनरत्नकोष
14.	तेलुगु, पद्य	प्रभावती प्रद्युम्न	पिंगलिसूरना प्राय:	सं० 1625 (17वी शती)			श्री परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० 110 श्री बालशौरि रेड्डी : तेलुगु साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 147
15.	हिन्दी (गुज.)	प्रद्युम्न चौपई	कमलशेखर	सं. 1626	हस्तलिखित	महावीर जैन विद्यालय, सोनगिरि तथा जैन ग्रथ भण्डार, माण्डल	मोहनलाल दुलीचन्द देसाई : जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग खण्ड 1 लो, पृ० 659–61

16.	हिन्दी	प्रद्युम्न रासो	ब्रह्म रायमल्ल	स० 1628	हस्तलिखित	आमेर शास्त्र भण्डार, वेष्टन स० 700	डॉ० कासलीवाल : जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० 156
17	हिन्दी	शाम्ब प्रद्युम्न चौपई	जिनचन्द्रसूरि	17वी सदी (अनु स. 1625–40 के मध्य)			डॉ० कासलीवाल् सम्पादित सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, पृ० 13
18	सस्कृत	प्रद्युम्न-चरितम्	रविसागर	स० 1645	प्रकाशित	हीरालाल हसराज (जामनगर से प्रकाशित)	वेलणकर . जिनरत्नकोष भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च ग्रथ स० 1301
19	सस्कृत	प्रद्युम्न चरितम्	वादिचद्र	स० 1645 के लगभग	हस्तलिखित	ईडर भण्डार, वेष्टन स० 53-54	वेलणकर जिनरत्नकोश
20.	हिंद (गुज)	प्रद्युम्नकुमाररास	भट्टारक श्रीभूषण	सं० 1656	प्रकाशित	दिगम्बर जैन साहित्योद्धारक फण्ड, सूरत	ए केटेलॉग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पजाब जैन भंडार्स लाहौर 1939, भाग 1
21	हिन्दी (राजस्थानी)	शाम्बप्रद्युम्नरास	समयसुन्दर	स० 1659	हस्तलिखित	शास्त्र भडार मन्दिर छोटे दीवान जी जयपुर, वेष्टन सं० 638	मो. दु देशाई : जैन गुर्जर कविओ त्रीजो भाग, खण्डत्रीजो पृ० 1514 पहेली भाग, खण्ड त्रीजो, पृ० 846-49

2.	हिन्दी	श्री प्रजन कंवर की सज्झाय	गुणसागर	सं. 1672(?)	हस्तलिखित	आचार्य विनयचंद्र ज्ञान भण्डार, जयपुर	
3	सस्कृत	प्रद्युम्नचरितम्	रत्नचंद्रगणि	स 1671 या स 1674 ?	प्रकाशित	भावनगर से प्रकाशित ओरिएण्टल इ स्टीट्यूट, बडौदा, ग्रथ स० 2866 (आमेरशास्त्र भडार जयपुर मे प्राप्य)	बेलणकर : जिनरत्नकोश डॉ० कासलीवाल : जैन ग्रथ भडारों इन राजस्थान, पृ० 149 नाहटाजी की सूचनानुसार बी. बी एण्ड मडली भावनगर से पत्राकार 266 पृष्ठों मे प्रकाशित प्रशस्ति के अनुसार र. का. सं 1674
24.	प्राकृत पद्य	प्रद्युम्न काव्य पञ्जिका	अज्ञात	—	हस्तलिखित	पत्र स० 8 प्रति अपूर्ण, ठोलियो का मन्दिर जयपुर, वेष्टन स० 342	डॉ० कासलीवाल · राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रथ सूची, तृतीय भाग, पृ० 213
25.	प्राकृत गद्य	प्रद्युम्नचरित्र	अज्ञात	—	हस्तलिखित	सघवीपाडा भडार पाटन, पत्र स० 107-34, वेष्टन स० 205	लालचन्द भगवानदास गांधी · पाटन भंडार नी ग्रथ सूची प्र. गायकवाड ओ सिरीज, बडौदा, ग्रथ स० 76 पृ० 136
26.	हिंदी	प्रद्युम्नचरित्र	अज्ञात	—	हस्तलिखित	विजयधर्म लक्ष्मी ज्ञानमन्दिर आगरा,	वेलणकर : जिनरत्नकोश

क्र. भाषा	ग्रंथ	लेखक	संवत्	स्थिति	स्थान	संदर्भ
27. संस्कृत	प्रद्युम्नचरितम्	भोगकीर्ति	—	हस्तलिखित	दिग. भंडार ईडर, वेष्टन सं० 120	वेलणकर : जिनरत्नकोश
28. संस्कृत	प्रद्युम्नचरितम्	जिनेश्वर सूरि	—	हस्तलिखित	विमलगच्छ उपाश्रयभडार, हाजा पटेल की पोल, ग्रहमदाबाद, वेष्टन स. 22	वेलणकार : जिनरत्नकोश
29. सस्कृत	प्रद्युम्नचरितम्	यशोधर	—	—	—	वेलणकर : जिनरत्नकोश
30. हिन्दी	प्रद्युम्न रास	कृष्णराय	—	हस्तलिखित	शास्त्रभडार गोधो का मन्दिर जयपुर, वेष्टन स० 233, पत्र सं० 4-27	राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रंथ-सूची, भाग 4 पृ० 722
31. हिन्दी	प्रद्युम्नचरित्र	रामचद्र	—	हस्तलिखित	राजेद्रसूरि शास्त्र भडार, ग्राहोर, (इस भंडार की सूची ग्रभय जैन ग्रथालय बीकानेर मे है)	डॉ० कासलीवाल : जैन ग्रथ भण्डार्स इन राजस्थान, पृ० 109
32. हिंदी (गुज)	प्रद्युम्न प्रबन्ध	देवेन्द्रकीर्ति	स 1722	हस्तलिखित	ग्रामेरशास्त्र भडार जयपुर, वे० स० 699	
33. हिंदी (गुज.)	शाम्ब प्रद्युम्न रास	ज्ञानसागर	सं. 1727	हस्तलिखित		देशाई : जैन गुर्जर कविग्रो, बीजो भाग, पृ० 79, 615;

34.	हिंदी (गुज)	शाम्ब प्रद्युम्न रास	ऋषि हेतराज	स. 1734	प्रकाशित	श्री जैन विद्याशाला, ज्ञान मण्डार, अहमदाबाद	श्री सोहनमल जी कोठारी, आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार, जयपुर की सूचनानुसार
35	हिंदी (गुज)	प्रद्युम्न चरित्र	ऋषि फतेचद	स 1780	हस्तलिखित	वि ल सू म. ज्ञान भडार खभात	श्री सोहनमल जी कोठारी की सूचनानुसार
36.	मलयालम	शम्बरवध	कचन नम्प्यार या केलक्कन नम्प्यार	स 1777	हस्तलिखित		डॉ के भास्करन नायर : हिन्दी और मलयालम मे कृष्ण-भक्ति काव्य प्र. राजपाल एण्ड संस, पृ० 205 50
37.	हिंदी	प्रद्युम्नरास	मयाराम	स. 1818	हस्तलिखित	लिम्बडी भडार	देशाई जैनगुर्जर कविओ, त्रीजो भाग खण्ड 1 लो, पृ० 70
38	हिंदी	शाम्ब प्रद्युम्न रास	हर्षविजय	स 1824	हस्तलिखित	गोरजी के भडार ईडर मे स 1850 की लिखी प्रति वेष्टन स. 144	देशाई : जैनगुर्जर कविओ त्रीजो भाग, 1 लो खण्ड, पृ० 173-4
39.	हिंदी	प्रद्युम्नचरित्र	बूलचन्द	स. 1843	हस्तलिखित	दिग जैन पचायती मदिर आबूपुरा, मुजफ्फरनगर वेष्टन स 10	हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, प्र. नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम खण्ड, पृ० 552
,,	,,	,,		--	प्रकाशित	दिग. जैन साहित्य सस्थान	अनेकान्त (मासिक) वर्ष 4, पृ०

					आगरा से प्रकाशित, एक हस्त. प्रति सेठ का कूचा, जैन मन्दिर दिल्ली मे है।	474 कामता प्रसाद जैन: हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ० 220
40. हिंदी	प्रद्युम्नप्रकाश	शिवचंद्र	स. 1879	हस्तलिखित	पंचायती मन्दिर जैन ग्रथ भंडार, भरतपुर	डा० कासलीवाल से प्राप्त सूचना के आधार पर तथा राजस्थान (?) भारती अंक 3;2 (डा. कैलाशचन्द्र जैन कृत जैनिज्म इन राजस्थान पृ० 170 पर उद्धृत)
41. सस्कृत (नाटक)	प्रद्युम्नविजय	शकर दीक्षित	पिछली सदी का मध्य भाग (स 1907 के लगभग)	— —	— —	डॉसन : ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिंदू माइथोलोजी
42. हिंदी (गद्य)	प्रद्युम्नचरित्र	ज्वालाप्रसाद	स 1916	हस्तलिखित	दिल्ली तथा जयपुर के भडारो में अनेक प्रतियाँ (देखो परिशिष्ट 2)	— —
43 हिंदी व्रज (नाटक)	प्रद्युम्नविजय	गणेश कवि	सं. 1921 या सन् 1864 ई. प्र व. अज्ञात	प्रकाशित	—	हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मंडल भाग 2 पृ 325

44. हिंदी नाटक	प्रद्युम्नविजय	अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध	1893 ई. मे प्रकाशित) (म. 1950	प्रकाशित	—	हिन्दी साहित्यकोश, भाग 2, पृ 20
45. हिंदी गुज.	प्रद्युम्नचरित्र	अमोलकऋषि	स. 1959	प्रकाशित	प्र. सेठ माणकचद ज्वाला प्रसाद जैन जौहरी, महेंद्र गढ, पाटियाला, स 1992	आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार, जयपुर मे प्राप्य
46. हिन्दी गुज.	प्रद्युम्नकुमार की लावणी	खूबचन्द महाराज	सं. 1964	प्रकाशित	नारायण मूलचन्द जैन, कोटा द्वारा प्रकाशित	
47. हिन्दी	प्रद्युम्नचरित्र	दयानन्द जैन (गोयलीय ?)	प्रकाशन वर्ष 1914 ई. स. 1971	प्रकाशित	श्री मूलचन्द जैन मैनेजर सद्बोध रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित, श्री सन्मति पुस्तकालय जयपुर मे प्राप्य	पन्ना लाल जैन अग्रवाल : प्रकाशित जैन साहित्य, प्र० जैन दिग० मडल, धर्मपुरा, दिल्ली, पृ०176
48. हिन्दी	प्रद्युम्नचरित्र	गुणभद्र जैन अगास	स. 1986 प्रकाशित	प्रकाशित	जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, हरीसन रोड कलकत्ता से प्रकाशित	श्री आगरचन्द्र जी नाहटा, बीकानेर के सग्रह मे
49. हिन्दी	प्रद्युम्नचरित	सूर्यमुनि	सं. 1987	प्रकाशित	धर्मदास जैम मित्रमडल, कलकत्ता	श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के संग्रह मे

50. हिन्दी (नाटक)	प्रद्युम्नचरित्र	स्व. जैनेंद्र किशोर आरा	सन् 1925-50 सं. 1982-2007 के मध्य कभी	प्रकाशित	—	नेमिचन्द्र जैन : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ० 214
51. हिन्दी	प्रद्युम्नकुमार	—	—	प्रकाशित	अमोल जैन ज्ञानालय धूलिया	— —
52. हिन्दी	प्रद्युम्नचरित्र	काशिनाथ	—	प्रकाशित	बम्बई से प्रकाशित : महावीर जैन लायब्रेरी चादनी चौक दिल्ली मे प्राप्य	श्री जीवनलाल जी बोथरा, मालीवाडा दिल्ली की सूचनानुसार
53. हिन्दी	प्रद्युम्नरास	ब्रह्म जिनदास	—		—	(सूत्र–जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह भूमिका भाग, पृ० 12; डा० कैलाशचन्द्र जैन कृत "जैनिज्म इन राजस्थान" नामक शोध-प्रबंध पृ० 166 पर उद्धृत)

तालिका (ख)

प्रद्युम्न-चरित विषयक हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण

[1] प्रद्युम्नचरितम् (संस्कृत) . महासेनाचार्य [रचनाकाल 11वीं सदी]

माणिक्यचद्र जैन दिगम्बर सिरीज 8, बम्बई से सन् 1917 मे प्रकाशित। चारुकीर्ति के शिष्य महासेनाचार्य राजा भोजदेव के पिता राजा सिधुराज के दरबार मे पप्पट के गुरु थे।

एच० डी० वेलणकर : जिनरत्नकोष भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना। इस ग्रन्थ की निम्नांकित हस्तलिखित प्रतियो का पता चलता है :—

(1) भाषा सस्कृत, पत्र सं० 104, लिपि स० 1548, लिपिकर्ता मुनि रत्नकीर्ति, प्रशस्ति है, दश सर्ग है, श्री महावीर अतिशय क्षेत्र भंडार।

(2) पत्र स० 104, सर्ग सं० 14, लिपि सं० 1515, लिपिस्थान टोडा, ग्रंथ पूर्ण किंतु जीर्णावस्था में, श्रीअतिशय क्षेत्र महावीरजी

(3) पत्र सं० 58, वेष्टन सं० 236, शास्त्र भंडार, मन्दिर छोटे दीवान जी, जयपुर;

(4) पत्र सं० 101, वेष्टन सं० 345, जैन मदिर पार्श्वनाथ, जयपुर मे है।

(5) पत्र सं० 118, ले० सं० 1595 जेठ वुदी 4, वेष्टन सं० 346, उपर्युक्त जैन मन्दिर, पार्श्वनाथ, जयपुर मे ही है।

(6) पत्र स० 88, लेखन स० 1711 ज्येष्ठ सुदी 6, पूर्ण, वेष्टन स० 264, कुल 24 परिच्छेद, कठिन शब्दों के भी अर्थ दिये हैं। प्रति ठोलियों का मन्दिर, जयपुर मे है।

(प्रति स० 1 से 6 के लिए द्रष्टव्य, क्रमशः राज० जैन शास्त्र-भडार ग्रथ सूची, भाग; 1 पृ० 193; वही; भाग 4, पृ० 180; वही; वही, तथा भाग 3; पृ० 213)

(7) पंडित महासेन, भाषा सस्कृत, लिपि कन्नड, लेखन काल × पत्र सं० 97, अपूर्ण तथा शुद्ध। जीर्ण। ग्रंथ स 15, मूडविद्री जैन मठ ताडपत्रीय ग्रथ सग्रह।

(8) वही, पत्र सं० 13, लेखन काल × दशा जीर्ण, ग्र थ सं० 599, मूडविद्री जैन मठ ताडपत्रीय ग्रंथ संग्रह।

(9) वही, पत्र स० 94, लेखन काल × अपूर्ण तथा सामान्य शुद्ध। दशा जीर्ण तथा खण्डित। ग्रंथ सं० 656, मूडबिद्री जैन मठ का ताडपत्रीय ग्र थ सग्रह।

(प्रति स० 7 से 9 के लिए द्रष्टव्यः प्रांतीय ताडपत्रीय ग्र थ सूची, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ० 155)

[2] पज्जुण्ण चरिउ (अपभ्रंश) : महाकवि सिंह (वस्तुतः सिद्ध तथा सिंह)

(1) पत्र सं० 117, लिपि स० 1577, लाखहरी नगर मे पांडे गूजर ने, प्रतिलिपि कराई, आमेर भडार वेष्टन स० 36

(2) पत्र स० 115, लिपि स० 1577, लाखपुरी मे बधेरवाल जाति में उत्पन्न छीहल ने प्रतिलिपि करायी, आमेर भडार वेष्टन सं० 36

(3) पत्र सं० 163, आमेर भंडार मे प्राप्य।

(4) पत्र स० 175, लिपि स० 1587, भट्टारक गुणभद्र के समय में अग्रवाल वशोत्पन्न चौधरी घूहड़ ने बाई तोल्ही के उपदेश से जिनदास के द्वारा प्रतिलिपि करायी, आमेर भंडार, वेष्टन सं० 36

(5) पत्र स० 152, वेष्टन स 87, आमेर भडार मे प्राप्य,

(6) पत्र स० 102, लिपि स० 1553, ग्रंथ समाप्ति पर कवि परिचय, आमेर भडार, वेष्टन सं 391,

(7) पत्र स० 171, लिपि स० 1595, भाद्रपद सुदी 13, आमेर भडार, वेप्टन स० 46, सिंहकृत प्रद्युम्न चरित्र की एक प्रति संवत् 1595, भाद्रपद सुदी 13 के दिन मूलसघ के नद्य आम्नाय में वलात्कारगण की सरस्वतीगच्छ परम्परा मे कुंदकुंदाचार्य के अन्वय में, अजमेर नगर मे खण्डेलवाल अजमेरा गोत्र के साहू सुरजन तथा उसकी भार्या सुनरवती ने लिखवाकर दशलाक्षणिक व्रतोद्यापन हेतु अर्जिका विनयश्री को अर्पित की

(8) पत्र स० 107, लिपि स० 1541, श्रावण वदी 2, आमेर भडार, वेष्टन स० 46

(9) पत्र स० 134, लिपि सं० 1568 आषाढ सुदी 5, वेष्टन सं० 46, आमेर भण्डार,

(10) पत्र सं० 95, लिपि स० 1518 जेठ सुदी 6, लिपि स्थान श्री नैणवाह पत्तन, वेष्टन स० 46 आमेर भण्डार,

कवि सिंह कृत प्रद्युम्न चरित की एक प्रति सवत् 1518 के ज्येष्ठ मास मे शुक्ल पक्ष की षष्ठमी, शुक्रवार को, सुलतान अलाउद्दीन के राज्य में नैणवाह पत्तन मे मूलसघ के बलात्कारगण की सरस्वतीगच्छ परम्परा में कुदकुदाचार्य के अन्वय में मुनि नेत्रानन्दिदेव के शिष्य ब्रह्म गाल्हा को साह कील्हा की भार्या ने लिखवाकर अर्पित की।

(प्रति स० 1 से 10 के लिए द्रष्टव्यः राजस्थान जैन शास्त्र भण्डार ग्रंथ-सूची, भाग 1; पृ० 94 एव 95, तथा प्रति सं० 7 एव 10 के लिए द्रष्टव्यः प्रशस्तिसंग्रह, दिग० अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीर जी, पृ० 138)

(11) पत्र स० 4 से 89, भाषा अपभ्रंश, वेष्टन स० 2004, शास्त्र भण्डार मन्दिर पाटोदी, जयपुर में है।

(राज० जैनशास्त्र भण्डार ग्रंथ सूची, जिल्द 4, पृ० 182)

(12) पत्र सं 143, अपभ्रंश लेखन स 1398 चैत्र सुदी 3 प्रति पूर्ण वेष्टन सं० 181, ठोलियों का मन्दिर, जयपुर मे,

तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के दावणइया गाव मे डूंगा, पत्ता, सांगा आदि सोगाणियो ने मुनि पद्मकीर्ति को भेट मे दी।

(राज० जैनशास्त्र भण्डार ग्रंथ सूची. तृतीय भाग, पृ० 213)

(13) पत्र स० 144, अपभ्रंश, लेखनकाल स. 1646 आश्विन बदी 6, वेष्टन सं० 1148, (प्रति पूर्ण एव सामान्य शुद्ध) लूणकरण जी पाड्या के मन्दिर मे है। मोजमाबाद मे आदीश्वर चैत्यालय मे जोशी ऊदा ने प्रतिलिपि की थी।

(14) पत्र सं० 140, लेखन स० 1604 आषाढ बदी 13, वेष्टन सं० 1149, बड़ा मन्दिर तेरापंथी, जयपुर मे है। लेखक प्रशस्ति के अनुसार दौलतखाँ के राज्य में रतिवासा (रेवासा) ग्राम मे छाबडा गोत्री संघी रणमल्ल के पुत्र साहु ताल्हू तथा उसकी भार्या तिहुणश्री ने इसे मुनि श्री जयकीर्ति को प्रदान किया था।

(15) पत्र सं० 34–101, लेखन सं० 1645 पौष सुदी 12, प्रति अपूर्ण सामान्य शुद्ध, वेष्टन सं० 1150 बड़ा मन्दिर तेरापंथी, जयपुर में प्राप्य।

(प्रति सं० 13 से 15 के लिए द्रष्टव्य: राज० जैन शास्त्र भण्डार ग्रंथ सूची, द्वितीय भाग, पृ० 224 तथा पृ० 225)

[3] **प्रद्युम्नाभ्युदय (संस्कृत नाटक) . रविवर्मा (केरल राजकुमार)**

रचना काल 13 वी सदी का उत्तरार्द्ध स० टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवेद्रम संस्कृत सीरीज मे प्रकाशित 1910 एस० एन० रामगुप्त तथा

एस० के० डे हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, वॉल्यूम 1, पृ० 466,

[4] परदवण चरितु–सधारु

(1) लेखक सधारु, भाषा पुरानी हिंदी, पत्र स० 34 आकार 11½×51½ इञ्च, लेखनकाल स० 1605 आसोज बदी 3 मगलवार, जयपुर के बधीचद जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे प्राप्य।

(2) अग्रवाल जैन पचायती मन्दिर कामा की प्रति।

(3) खडेलवाल जैन पचायती मन्दिर कामा की प्रति–पत्र स० 32, आकार 10×4½ इञ्च, 23 से 28 तक के मध्य के छ पत्र नही हैं।

(4) देहली के सेठ कूचे के जैन मन्दिर की प्रति–पत्र स० 72, प्रतिलिपि काल स० 1648 जेठ सुदी 12 गुरुवार, हिसार नगर में दयालदास ने पाण्डे प्रहलाद से लिखायी (श्री कामताप्रसाद जैन द्वारा 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास' पृ० 135 मे तथा दिल्ली के अनेकान्त मासिक पत्र में दिया विवरण सभवत इसी प्रति से सम्बद्ध है।

(5) सिंधिया ओरिएटल इस्टीट्यूट उज्जैन के सग्रहालय की प्रति-प्रतिलिपि काल सं० 1634, आसोज बदी 11 आदित्यवार, राजगच्छ के उपाध्याय विनयसुन्दर के प्रशिष्य एव भक्तिरत्न के शिष्य नवरत्न ने स्व-पठनार्थ प्रतिलिपि की थी।

(6) दिगम्बर जैन मन्दिर रीवा की प्रति–इसका परिचय नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ।

(7) नाहटाजी से प्राप्त–पत्र सं० 27, आकार 10 1/2×4 1/2 प्रतिलिपि काल स० 1696, श्रावण बदी 9 आदित्यवार।

(उपर्युक्त सातो प्रतियों की सूचना के लिए द्रष्टव्य डा० कस्तूरचद कासलीवाल सपादित 'सधारुकृत प्रद्युम्न चरित', प्रस्तावना, पृ० 8–11)

(8) अगरवाल कृत र० स० 1411, जैन मदिर बडा, बाराबकी मे प्राप्य।

(हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम खण्ड, पृ० 586)

[5] प्रद्युम्न चरितम् (संस्कृत) · भट्टारक सकलकीर्ति (रचनाकाल 15वीं सदी)

(1) पत्र सं 386, भाषा सस्कृत, अपूर्ण, 300 से पहले तथा 386 के बाद के पत्र नही है, वेष्टन स० 1256, बडा मन्दिर तेरापथी, जयपुर मे प्राप्य,

(राज० जैनशास्त्र भण्डार ग्रंथ सूची, द्वितीय भाग, पृ० 225)

वेलणकर ने दिगम्बर भडार सूची, सवाई जयपुर की एक प्रति का उल्लेख किया है जो सम्भवत· यही है।

(एच० डी० वेलणकर . जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना, 1944)

[6] प्रद्युम्न चरित्र (अपभ्रंश) : रइधू (रचनाकाल 15वीं सदी)

तेरापथी बड़ा भण्डार, जयपुर (सम्मति पुस्तकालय) वेप्टन स० 60

(एच० डी० वेलणकर : जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्ठल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना)

[7] प्रद्युम्न चरित्र (प्राकृत) . रल्हण

ईडर भण्डार, वेप्टन स० 120,

(एच. डी. वेलणकर : जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना)

[8] प्रद्युम्न चरितम् (सस्कृत) : सोमकीर्ति (रचना संवत् 1530)

भीमसेन के शिष्य सोमकीर्ति रचित इसके दो रूप मिलते है एक 14 सर्गो मे दूसरा 16 सर्गो मे।

(1) ललितकीर्ति भण्डार अजमेर, वेष्टन सा० 222,

(2) रचयिता सोमसेन, ललितकीर्ति भण्डार अजमेर, वेष्टन सां 210,

(प्रति स. 1 एव 2 के लिए 'एच० डी० वेलणकर जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना)

(3) सोमकीर्ति. आचार्य देवेन्द्र भूषण ने स्वाध्याय के लिए प्रतिलिपि की सन् 1667 ई० मे हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध।

(डा० क. कासलीवाल : जैनग्रथ भडार्स इन राजस्थान, पृ० 204)

(4) भाषा संस्कृत, पत्र सं० 255, श्लोक प्रमाण 5000, लिपि स० 1710, आमेर भण्डार में प्राप्य।

(6) पत्र स० 105, लिपि स० 167· जेठ बदी 13, रतलाम नगरे श्री अमृतचद्र तत् शिष्य गोपालेनालेखित, वेप्टन स० 86, आमेर भण्डार

(7) पत्र स० 136, लिपि स० 1724, लिपिस्थान सुलतानपुर, मलव देश, आमेर भडार में प्राप्य।

(8) पत्र स० 214, लिपि स० 1611, ग्र थकार तथा लिपिकार द्वारा प्रशस्तियां, ग्र'थ जीर्ण है। श्री अतिशयक्षेत्र महावीरजी

(प्रति सं० 4 से 8 के लिए द्रष्टव्य : राज० जैन शास्त्र भडार ग्रथ सूची, प्रथम भाग, पृ० 94; पृ० 95 तथा पृ० 193)

(9) पत्र स० 172, भाषा सस्कृत, लिपिकाल स० 1749 माघ सुदी पूर्णिमा, प्रति मे प्रारम्भ के 50 पत्र नही है, वेष्टन स० 1151 बगरू मे सबलसिंह के शासनकाल मे प्रतिलिपि हुई। बड़ा मन्दिर तेरापंथी, जयपुर मे प्राप्य।

(10) पत्र स० 174—256, वेष्टन स० 1152, बडा मन्दिर तेरा पथी जयपुर मे प्राप्य।

(11) पत्र स 109—1339 लेखन काल 1888, अपूर्ण, वेष्टन स० 1153 जयपुर मे केसरीसिंह कासलीवाल ने प्रतिलिपि करायी। जयपुर के तेरापथी बडे मन्दिर मे प्राप्य।

(12) पत्र सं० 140, वेष्टन स० 1154, बडे मन्दिर जयपुर मे प्राप्य।

(13) (सोमकीर्ति ?) पत्र स० 173, वेटप्न स० 1155, जयपुर के बडे मन्दिर मे प्राप्य।

(प्रति स० 9 से 13 के लिए द्रष्टव्य: राज जैन शास्त्र भडार ग्रथ सूचो, द्वितीय भाग, पृ 225)

(14) सस्कृत, पत्र स० 105, रचना स. 1530, लेखन स० 1721, पूर्ण, वेष्टन स० 155, भंडार दिग० जैन मन्दिर पटौदी, जयपुर,

(15) पत्र स० 55, ले० स० 1885, वेष्टन स० 113, 'ब' भण्डार दिग० जैन मन्दिर जोबनेर मे है। लेखक प्रशस्ति अपूर्ण है।

(16) प्रति अपूर्ण, पत्र सं० 126, वेप्टन सं० 61, 'ग' भण्डार दिगम्बर जैन मन्दिर चौधरियो का, जयपुर मे है।

(17) पत्र स० 224, ले सं० 1802, वेप्टन सं० 61, 'घ' भण्डार दिगम्बर जैन मन्दिर नया, बैराठियो का, जयपुर मे है।

(18) पत्र स० 116—165, ले० स० 1866, वे० स० 507, 'ड' भण्डार दिगम्बर जैन मन्दिर सघी जी जयपुर मे है, इसी मे रचना काल 1530 दिया है।

(19) पत्र स. 221, ले० स० 1833, वेष्टन स० 21, 'छ' भण्डार जैन मन्दिर गोधो का, जयपुर मे है।

(20) पत्र स० 202, ले० सं० 2816, वेष्टन स० 21, 'छ' भण्डार जैन मन्दिर गोधो का जयपुर मे है ।

(21) पत्र सं० 284, ले० 1804 वेष्टन सं० 374, दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ, जयपुर में है ।

(प्रति स० 14 से 21 तक के लिए द्रष्टव्य राज० जैनशास्त्र भंडार ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, पृ० 181)

(22) पत्र सं० 236, वेष्टन स० 263, श्लोक स० 4650, प्रति प्राचीन है ।

(23) एक प्रति स० 1647 की लिखी और है। ठोलियो के मंदिर के भंडार मे है ।

(राज० जैनशास्त्र ग्रंथ सूची, तृतीय भाग, पृ० 213)

(24-26) 'अ' भंडार जैन मंदिर पाटोदी, जयपुर मे 3 प्रतिया, वेष्टन स० 419, 948, 1089 तथा

(27) 'ङ' भण्डार जैन मदिर सघी जी, जयपुर मे एक प्रति वेष्टन स० 508 और है ।

(28) पत्र स० 50, सास्कृत, अपूर्ण, वेष्टन स० 235, 'च' भंडार, जैन मंदिर छोटे दीवान जी, जयपुर मे है ।

(प्रति सं 27 तथा 28 के लिए द्रष्टव्य राज० जैन शास्त्र भडार ग्रंथ सूची, चतुर्थ भाग, पृ० 228)

[9] **प्रद्युम्न चरितम् (संस्कृत) . मल्लिभूषण** (र० का० 17वी सदी) दिगम्बर भडार सूची सवाई जयपुर (एच. डी वेलणकर, जिनरत्नकोष भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना)

[10] **प्रद्युम्न चरित (संस्कृत) रविषेण** (रचना काल 1518 ई०) सवत् 1575, हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भडार जयपुर मे है । (डॉ० क० कासलीवाल—जैन ग्रंथ भडार्स इन राजस्थान, पृ० सं० 149)

[11] **प्रद्युम्न रास : ब्रह्म गुणराज** (रचनाकाल सन् 1549 ई.)

(1) भट्टारक यशकीर्ति, जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेवतीर्थ (उदयपुर से अहमदाबाद मार्ग पर स्थित) मे प्रति प्राप्य ।

डॉ० क० कासलीवाल : "जैन ग्रंथ भंडार्स इन राजस्थान" शोध प्रवंध, प्रकाशक श्री दिगम्बर अतिशयक्षेत्र श्री महावीरजी जयपुर, पृष्ठ सं० 116)

[12] प्रद्युम्न चरित्र (संस्कृत) · शुभचंद्र (रचनाकाल 17वीं सदी)

दिगम्बर भंडार सूची, सवाई जयपुर (एच डी. वेलणकर जिन-रत्नकोष भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना)

[13] प्रद्युम्न कुमार चौपई : कमल शेखर

रचना काल संवत् 1926, आंचलिक गच्छीय परम्परा में वेलराज-पुण्यलब्धि-लाभशेखर के शिष्य। सर्ग 6, कडी 793, कार्तिक सुदी 13, मांडल मे रचित। 795 गाथा स्वर्णगिरि मधे, ऋषि लालाजी लिखितु 24–15, नं. 499, म. जै. वि.। मो. द. देशाई, जैन गुर्जर कवियो, त्रीजो भाग, खण्ड पहलो, पृ सं. 659–61,

[14] प्रद्युम्नरासो ब्रह्म : रायमल्ल (हिन्दी) (रचना काल 1571 ई)

(1) पत्र स० 13 पद्य सं. 195, रचना स. 1628, लिपि सं 1820, वेष्टन सं० 15 , आमेर भण्डार । सूची मे संस्कृत भाषा लिखी है जो अशुद्ध है। इसके स्थान पर हिन्दी उल्लेख होना चाहिए था।

(राज० जैनशास्त्र भंडार ग्रंथ-सूची, प्रथम भाग, पृ० 95)

इस प्रति मे मंगलाचरण और प्रशस्ति इस प्रकार है :—

मगलाचरण— हो तीर्थंकर वंदू जगनाथ।
तोह सुमरणि मन होइ उछाह तो हुवा छै अरु होय जी सी ।।
तिह कारण रहे घट पूरि गुण छियालीस सौभे भला जी।
दोष अठारह किया दूर तो रास भण्यो परदमरण को जी ।।

प्रशस्ति— हो मूलसंघ मुनि प्रगटे लोय, अनंत कीर्ति जांणै सहु कोय।
तास तणो सिष्य जारणज्यो जी, हो रायमल्ल ब्रह्म मुनि कियो बखान ।।
बुधि थोडी जाण नही जी, तिहि दीठो हरिवंश पुराण तो।
हो सोलासै अठबीस विचारो, भादवा सुदी दुतीय बुधवारो ।।
श्रावक लोक बसे भला जी, देवशास्त्र गुरु राखे मान तो।

(प्रशस्ति सग्रह, दिग० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी पृ० 239)

(2) रचना सं० 1628, लिपि काल स० 1750 गुटका सं० 5 वेष्टन सं० 295, लूणकरणजी का मदिर जयपुर में है।

(राज० जैन शास्त्र भंडार ग्रंथ सूची, द्वितीय भाग, पृ० 74)

(3) लिपिकाल सम्वत् 1784, गुटका सं० 2, वेष्टन सं 292, लूणकरण जी पाण्ड्या के मंदिर जयपुर में है।

(राज० जैन शास्त्र भंडार ग्रंथसूची, द्वितीय भाग, पृ० 93)

(4) लिपि सं० 1798 गुटका संख्या 71 वेष्टन स० 331 लूण-करणजी पाण्ड्या मंदिर में है। राजस्थान जैन शास्त्र भंडारो की ग्रन्थ सूची द्वितीय भाग पृ.93

(5) पत्र स० 29–44, रचना–काल सं० 1628 भादवा सुदी 2, लेखन सं० 1759 गुटका स० 15, वेप्टन स० 635, बधीचद जी के मंदिर जयपुर में है।

(6) गुटका स० 57, लेखक स० 1760, वेष्टन सं० 1050, बधीचद जी के मदिर जयपुर मे है।

(7) अपूर्ण प्रति गुटका स० 132, ठोलियों का मंदिर जयपुर में है।

(प्रति सं० 5 से 7 के लिए द्रष्टव्य : राज जैन शास्त्र भंडार ग्रंथ-सूची, तृतीय भाग, पृ० 113; पृ० 132 तथा पृ० 307)

(8) रचना 1628, लिपिकाल 1211, पत्र स० 123–151, भापा हिन्दी,

(9) शास्त्र भडार, दिग० जैन मन्दिर पाटौदी जयपुर मे ही है। गुटका स० 11

(10) "इसी ग्र थ के पत्रक स० 369–83 गुटका संख्या 65 में उक्त जैन मन्दिर पाटोदी मे ही है। रचना संवत् 1628 मे गढ हरसौर में की गई। लिपि संवत् 1661

(11) इसी ग्र थ की एक प्रति दिग० जैन मन्दिर सघीजी का मे गुटका स० 27 मे है।"

(12) इसी ग्रंथ की एक प्रति दिग० जैन मन्दिर गोधों का में गुटका स० 79 मे है। पत्रक स० 30 लिपि सवत् 181........

(13) गुटका स० 14, वेष्टन स० 102, ले स० 1653, पत्र स० 26–50, जैन मन्दिर विजयराम पाण्ड्या जयपुर में है।

(प्रति स० 8 से 13 के लिए द्रष्टव्य : राज० जैन शास्त्र भडार ग्रंथ सूची चतुर्थ भाग० पृ० 565; पृ० 639; पृ० 712; पृ० 737 तथा पृ० 749)

[15] **शाम्ब प्रद्युम्न चौपई . जिनचंद्र सूरि** (र. का. 17वी शताब्दी)
डॉ० कासलीवाल सम्पादित सधारु रचित प्रद्युम्न चरित, पृ० 13

[16] **प्रद्युम्न चरितम् (संस्कृत) रविसागर :** (रचना सवत् 1645)
कविवर रविसागर तपागच्छीय राजसागर के शिष्य थे। रचना

सवत् 1645, हीरालाल हमराज, जामनगर ने प्रकाशित किया है। भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इ स्टीट्यूट ग्रंथ सख्या 130

(एच० डी वेलणकर जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इ स्टीट्यूट पूना)

[17] प्रद्युम्न चरित्र (संस्कृत) वादिचद्र

ईडर भडार, वेष्टन स 53,54 (एच० डी. वेलणकर · जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इ स्टीट्यूट पूना)

[18] प्रद्युम्नकुमार रास · भट्टारक श्रीभूषण

भाषा हिन्दी, गुजराती मिश्रित (रचना काल स० 1656, श्री दिगम्बर जैन गुजराती साहित्योद्धारक फण्ड सूरत से प्रकाशित।

[19] साम्ब-प्रद्युम्न चौपाई : समयसुन्दर (हिन्दी)

(र० का० 1659 नाहटा जी : समयसुन्दर कृति कुसुमाजलि)

(1) पत्र स० 31, लिपि स० 1673, ग्रथांक 7401

(राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ग्रथ-सूची, भाग 2, पृ. 198)

(2) पत्र स० 19, लिपि स० 1724, ग्रथाक, 6539,

(राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ग्रंथ-सूची भाग 2, पृ. 199)

(3) साम्बप्रद्युम्न प्रबध-भाषा गुजराती, ले समयसुन्दर र का सं० 1659, प० अजितसोमगणि शिष्य जीतसोम, लिखा स० 1769 माघ बदी :, पत्र स० 23, स० 392, गोडी जी,

स० 1659 विजयदशमी दिने स्तंभ तीर्थे वृहत्खरतर गच्छाधीश्वर, दिल्ली प्रतिसाही श्री अकब्बर जलालदीन साहि प्रदत्त युगप्रधान पद धारक जिनचंद्र सूरिश्वराणा साहि समक्ष स्वहस्त स्थापित आचार्य श्री जिनसिंह सूरि सपरिकराणा शिष्य मुख्य प० सकलचन्द्र गणि तच्छिष्य वा समयसुन्दर गणिभि. कृता: श्री सबप्रद्युम्न प्रबन्धे द्वितीय खण्ड सपूर्ण. उभय खण्ड मिल ने गाथा 535, ढाल 21, ग्रंथाग्र 800 शुभं भवतु

जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्ड 2 ले. मोहन लाल दुलीचद देशाई, पृ. स० 1514, तथा इसी ग्रथ का त्रीजो भाग खण्ड 1 लो मे देखिए पृ स 846-849, जहाँ इसकी विभिन्न 50 प्रतियो का उल्लेख है।

(4) रचना संवत् 1630, (यह रचना सवत् अशुद्ध है। सवत् 1659 होना चाहिए) ए कैटलॉग ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि पजाब जैन भडार्स लाहौर भाग 1; 1929, सख्या 1773,

(एच० डी वेलणकर जिनरत्नकोष, भडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना)

[20] प्रद्युम्न चरितम् (संस्कृत) : रत्नचन्द्र (र का 1671)

(1) कवि रत्नचद्र तपागच्छ के शान्तिचद्र के शिष्य थे। यह ग्र थ भावनगर से प्रकाशित हुआ है। ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट बडौदा, ग्र थ स० 2866,

(एच० डी वेलणकर जि ारत्नकोष, भंडारकर ओरि एण्टल रिसर्च इ स्टीट्यूट पूना)

(2) जयपुर मे हस्तलिखिन प्रति प्राप्य।

(डॉ क. च कासलीवाल जैन ग्रथ भडार्स इन राजस्थान, पृ 149)

[21] श्री प्रजन कवर की सज्झाय गुणसागर (र का लगभग सं. 1672)

हस्तलिखित प्रति आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार जयपुर मे प्राप्य।

[22] प्रद्युम्न चरितम् · रत्नचद्र गणि (रचना काल सं० 1674)

श्री अगरचन्द जी नाहटा की सूचनानुसार वी० वी० एण्ड मण्डली भावनगर से पत्राकार 266 पृष्ठो में प्रकाशित। आमेर शास्त्र भडार मे प्रति उपलब्ध है। डॉ० कासलीवाल : जैन ग्र थ भडार्स इन राजस्थान, पृ० 149, डॉ० कासलीवाल के अनुसार र का. स 1671 है जब कि भावनगर से प्रकाशित प्रशस्ति के अनुसार र. का स 1674 है जो अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

[23] प्रद्युम्न–काव्य–पञ्जिका (प्राकृत) : अज्ञात (र का ×)

लिपि काल×, अपूर्ण, वेष्टन स० 342, रचना केवल 14 सर्ग तक है। प्रति ठोलियो का मदिर जयपुर मे है।

(राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रथ सूची, तृतीय भाग, पृष्ठ 213;)

[24] प्रद्युम्न चरित्र (प्राकृत गद्य) लेखक अज्ञात,

पत्र स० 102–134, वेष्टन सं० 205, सघवीपाडा भडार, पाटन।

(पाटन भण्डार की सूची . लालचद भगवानदास गाँधी, खण्ड प्रथम, प्र० गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज ग्र थाक 76, ओरिएण्टल इ स्टीट्यूट, बडौदा, 1937, पृष्ठ सख्या 136)

[25] प्रद्युम्न चरित्र : अज्ञात

विजय धर्म लक्ष्मी ज्ञानमन्दिर बेलनगंज, आगरा

(एच० डी० वेलणकर जिनरत्नकोष, भडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इ स्टीट्यूट, पूना)

[26] प्रद्यु म्न चरित्र (संस्कृत) : भोगकीर्ति
दिगम्बर भंडार, ईडर (डिस्ट्रिक्ट, अहमदाबाद) वेप्टन स० 120.
(एच० डी० वेलणकर : जिनरत्नकोप, भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1944)

[27] प्रद्यु म्न चरित्र (सस्कृत) जिनेश्वर सूरि
विमलगच्छ उपाश्रय भण्डार, हाजा पटेल की पोल, अहमदावाद, वेष्टन सं० 22
(एच० डी. वेलणकर : जिनरत्नकोष, भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना)

[28] प्रद्यु म्न चरित्र (सस्कृत) : यशोधर मद्रासXX, स 7939
(एच० डी० वेलणकर : जिनरत्नकोष, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना)

[29] प्रद्युम्नरास (हिंदी) कृष्णराय
पत्र सं० 4-27, वेष्टन सं० 233, दिगम्बर जैन मंदिर गोधो का, जयपुरमे है। (राज० जैन शास्त्रभण्डार ग्रंथ-सूची, पृ० 722)

[30] प्रद्यु म्न चरित : रामचद्र
राजेन्द्र शास्त्र भंडार, आहोर, इस भडार की सूची अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर मे है।
(डॉ० कस्तूचद कासलीवाल . जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान, पृष्ठ सं० 109)

[31] प्रद्यु म्न प्रबन्ध : देवेन्द्रकीर्ति (रचना स० 1722)
(1) पत्र सं० 37, वेष्टन स० 160, आमेर भडार
(राज० जैन शास्त्र भडार ग्रंथ-सूची, प्रथम भाग, पृ० 95)
(2) रचना सं० 1722, लिपि सं० × वेष्टन स० 699, आमेर शास्त्र भडार, जयपुर
(राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो की ग्रथ-सूची, द्वितीय भाग, पृष्ठ 224)
(3) पत्र स. 54, भाषा हिंदी, रचनाकाल 1722, लेखन स. 1840, प्रति पूर्ण एव सामान्य शुद्ध, वेष्टन स. 1159, जयपुर के बड़े मन्दिर तेरापथीयान मे प्राप्य ।
विशेष :—"महेश्वर माहि रचना रची चद्रनाथ गृहद्वार रे" गिरिपुर में नन्दलाल ने प्रति की थी।

(राज० जैन शास्त्र भंडार ग्रंथ सूची, द्वितीय भाग, पृ० 226)

(4) इसी ग्रंथ की प्रति खेडा भडार में है. पत्र 38, अपूर्ण, श्री मोहनलाल दुलीचंद देशाई ने देवेद्रकीर्ति के ग्रथ का नाम 'प्रद्युम्न कथा' और भाषा गुजराती तथा रचना-काल अनुमानतः 17वीं सदी का अन्तिम चरण बताया है।

उक्त देवेन्द्रकीर्ति दिगम्बर शाखा के सकलकीर्ति–भुवनकीर्ति–विजयकीर्ति–शुभचद्र–सुमतिकीर्ति–गुणकीर्ति–वादिभूषण– रामकीर्ति– पद्मनदि परम्परा मे है। क्योंकि रामकीर्ति के उपदेश से ब्रह्मचारी वच्छराज वादिचद्र ने सं० 1651 मे रचित श्रीपालकथा स० 1676 मे लिखी (लिपिकृत की) है अत:उनके प्रशिष्य की रचना 17वी सदी के अन्त मे रची गयी होगी।

आदि :— सकल भव्य सुखकर सदा नेमि जिनेश्वर राय।
यदुकुल कमल दिवसपती, प्रणमु तेहना पाय॥
जगदम्बा जय सरस्वती, जिनवाणी तुझ काय।
अवीरल वाणी आपजे, तु तुठी मुझ माय॥
गणधर गौतम ने नमूं, सकलकीर्ति गुरु धीर।
तास पटोदय दिनमणी, भुवनकीर्ति गभीर॥
ए गछपती पद नमी कहूं, प्रद्युम्न कथा प्रबंध।
हरीवश ग्रंथ थी उद्धरी, जोई सुद्ध सम्बन्ध॥

खण्ड 2 जो,

(जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्ड 2जो ले. मोहनलाल दुलीचंद देशाई, प्र० जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स आफिस, मुंबई. पृ० 1096)

[32] शाम्ब प्रद्युम्नकुमार रास ज्ञानसागर (र० का० स० 1727)

भाषा गुजराती, अचलगच्छीय परम्परा मे गजसागर सूरि-ललित सागर-मणिका सागर के शिष्य।

(जैन गुर्जर कविओ, बीजो भाग, ले मोहनलाल दुलीचंद देशाई, प्र० जैनेश्वर श्वेताम्बर कान्फ्रेंस आफिस, बम्बई, पृ० 79; 615)

[33] प्रद्युम्न कुमार रास : मयाराम भोजक (र० का० सवत् 1818)

फागण सुदी 6 सोमवार, वडनगर मे रचित, इसकी एक प्रति संवत् 1630 मगसिर सुदी द्वादशी के दिन आसलपुर पाटण के वागुलपाडा मे जगजीवन पानाचंद ने स्वअर्थे लिखी। श्रीरस्तु। मुनि जशविजय के सग्रह मे है। इस प्रति मे रचना सवत् दिया हुआ नही है। रचना सवत् लीवडी भडार की एक प्रति से दिया गया है।

आदि :— वचन निलास पद्युवण हरण कहु कथा आणंद
मयाराम मा अम्बिका पूरे परमाणद

अन्त :— वाछा उत्तम मोह अमीचद रायचंद मुत प्रकास जी
भोजक भाव धरी गुण गातो, वडनगर मा वास जी
शत्रुंजा मातम मा सुणीयो, वली हरीवश पुराण जी
गणता भणता सुणता भावे तस घर सकल निधांन जी

(जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्डा 1, मोहनलाल दुलीचंद देशाई, प्र जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेस, मुम्बई, पृ स० 70)

[34] **साम्ब प्रद्युम्न रास (हिन्दी और गुजराती) · हर्षविजय**

(र का स 1842 तपागच्छीय परम्परा मे हरिविजय सूरि शाखा मे गुणविजय–प्रेमविजय–जिनविजय–प्रतापविजय–मोहनविजय के शिष्य) रचना–काल स० 1842;

इसकी एक प्रति स. 1850 मगसिर सुदी 8 की लिखी प० प्रेमविजय शिष्य प रूपविजय–मुनि राज्यविजय न 144 ईडर के गोरजी भंडार मे है।

आदि :— प्रणमुं शांति जिणेसरु, जगगिरू श्रो जसवास
जन्म थकी भवभय टल्या, नामे ऋद्धि विलास × ×
साम्ब प्रद्युम्न तणी कथा, कहेता सरस सम्बन्ध
सुणतां शिव सुख ऊपजे, भणतां परमाणद

अन्त — हीरविजय से लेकर मोहनविजय तक की गुरु–परम्परा की स्तुति करता हुआ लेखक कहता है कि —

चौसठ ढाले करिने रचिओ सांब प्रद्युम्न सुजाणो जी
सवत वेद जे वेदने अर्थे, मगलीक इंदु प्रमाणो जी (1842)
ऊंमटराय नुं ग्राम वडेरूं, दोलरसो मे साथे जी
ऊंमता नगरी अधिकी जाणो, संपूरण भर आथे जी
जय जय मंगल अधिको प्रसरे, भवता लील विलासो जी
घरि-घरि उच्छव आणद पूरे, धाये श्रीधर वासोजी

(जैन गुर्जर कविओ त्रीजो भाग, 1 लो खड ,ले मोहनलाल दुलीचद देशाई, प्र. जैन श्वेताम्बर काफ्रेन्स, 20 पायधुनि, मुम्बई, पृ. 173–4)

[35] **प्रद्युम्न चरित्र (हिन्दी गद्य) . मन्नालाल, ज्वालाप्रसाद, बख्तावसिंह**

(1) पत्र सं. 190 भाषा हिन्दी गद्य, अपूर्ण, वेष्टन संख्या 1111, बधीचंद जी का मन्दिर जयपुर.

(राज. जैन शास्त्र भडार ग्रंथ-सूची, तृतीय भाग, पृ. 70)

(2) पत्र सं 501, हिंदी गद्य, रचना सं. 1916 ज्येष्ठ बदी 5, लेखन स 1937 बैशाख बदी 4, पूर्ण, वेष्टन स 494, क भडार वाली दुलीचद का शास्त्र भडार जयपुर मे है।

(3) इसी की प्रति, पत्र सं 322, ले. सं 1933 मंगसिर सुदी 2, वेष्टन स० 509, ङ० भडार दिग. जैन मन्दिर सघी जी मे है।

(4) इसी की प्रति पत्र स. 170, वेष्टन स० 638, 'च' भडार जैन मन्दिर छोटे दीवान जी जयपुर में है। इसमें रचयिता का पूर्ण परिचय दिया हुआ है।

(5) इसी की प्रति पत्र सं० 271, हिंदी गद्य, लेखन संख्या स. 1916, पूर्ण, वेष्टन सं. 420 'अ' भडार जैन मन्दिर पाटौदी जयपुर में है।

(प्रति स० 2 से 5 तक के लिए द्रष्टव्य. राज जैन शास्त्र भडार ग्र थ सूची, भाग चतुर्थ, पृ० 182)

(6) पत्र स. 244, हिदी गद्य र. का सं 1914, (वस्तुत. रचना सं 1916 मे पूर्ण हुई थी–ले०) लेखन काल×, प्रति पूर्ण वेष्टन स 1157, जयपुर के बडे मन्दिर में प्राप्य–विस्तृत प्रशस्ति दी हुई है।

पत्र सं० 174, केवल 101 से 174 तक के पत्र है, वेष्टन सं 1158, बड़े मन्दिर तेरा पंथी, जयपुर मे प्राप्य।

(7) भाषा हिंदी, गुटका संख्या 262, वेष्टन सं. 2658 लेखन संवत् 1936 भादवा बदी 10, जयपुर के तेरापथी बडे मन्दिर मे प्राप्य।

(प्रति स 6 एवं 7 के लिए द्रष्टव्य. राजस्थान जैन शास्त्र भडार ग्र थ–सूची द्वितीय भाग, पृ. 225 तथा पृ 382)

(8) चिम्मनलाल और वचनिकाकार मन्नालाल जैन कृत; विषय प्रद्युम्न कुमार मुनि की जीवनी आदिनाथ जी का मन्दिर आबूपुरा, मुजफ्फर नगर, संख्या 10–33, (सदर्भ–हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 586)

□ □ □

परिशिष्ट (1) (अ)

[प्रद्युम्न-काव्य-विमर्श]

शब्दानुक्रमणी

अंगारपर्ण—174
अन्तगडदसाओ—9
अर्जुनसुभद्रा प्रसंग—139
अद्‌भुत् तत्त्व—171, 179, 180
,, के विविध रूप—181
,, की धर्म-गाथा-मूलकता—182
अनाथ बालक या बालदेव—164
अभया—105
अलौकिक विद्याओं की प्राप्ति—168
अश्वसूत्र—181
असुर—174, 175, 177
आख्यायिका—133
उषा-अनिरुद्ध प्रसंग—139
एकार्थ काव्य—151
कथा—133
,, के भेद—135
करकण्डु—154
कृष्ण-प्रद्युम्न युद्ध—73
कनकमाला—4, 10, 70, 105
कनकरथ—70, 71
काम—136-138, 141
काम-कथा—136
कामदेव—2, 3, 5, 174
काम-मुद्रिका—162, 169
कालशंवर—1-10, 70, 109, 138
कुबेर—174
कोऊहल—168
गन्धर्व—174
गाथा सप्तशती—152
गुणवती—104
चरित-काव्य—146
,, तथा कथा-काव्य—148
,, के भेद—150
चैत्ररथ—174
छंद (प्रद्युम्नचरित में)—1241-28
जरत्कुमार—9
जैन प्रेमाख्यान—142
,, चरितकाव्य—149
णायकुमारचरिउ—154
दनु—177
दानव—177
द्वारका-विनाश—9, 163
दुर्गासप्तशती—152
देव—162
दैत्य—177
धर्म-कथा—166
नयनन्दि—154
नाग-पूजा—176
नारद—178, 179
पउमसिरीचरिउ—146

पुण्यजन—173, 175
प्रद्युम्न-कथा. वैष्णव तथा जैन
पौराणिक
भाव-भूमिया—1
,, विष्णु-पुराण मे—1
,, श्रीमद्भागवत मे—3
,, हरिवंशपुराण मे—3
,, वैष्णव पुराणो मे,
,, तुलना—4-8
,, पर हरिवंश का
प्रभाव—8
,, जैन आगम मे—9
,, जैन पुराणीय रूप—10-11
,, जिनसेनाचार्यकृत
हरिवंशपुराण मे—11-17
,, जिनसेन तथा
गुणभद्र की तुलना—17-19
,, पुष्पदन्त कृत महा-
पुराण मे—19
,, वैष्णव तथा जैन
पौराणिक रूपो का
तुलनात्मक अध्ययन—21-28
,, पूर्ववर्ती एव परवर्ती प्रसग--28-30
,, और चरितकाव्यत्व—145
,, जैन पुराण परम्परा
की विशिष्टताए—31-32
,, के पौराणिक रूपो मे
काव्य-सौन्दर्य—32-34
,, मे काम तथा प्रेम तत्त्व—136
,, क्या वीरकथा है ?—144
,, स्वरूप-विवेचन—132
,, की रूढिया—157-161,
168, 199
,, विश्व की लोक-वार्ता
रूढ़ियो से साम्य—161
प्रद्युम्न-कथा-चक्र—156
प्रद्युम्न-चरित : क्या वह
सतसई काव्य है ?—152
,, का हिन्दी साहित्य मे
स्थान—153
,, प्रेमकथाओ तथा
चरित काव्यो से तुलना—154
,, तेलुगु, मलयालम तथा
कश्मीरी मे—206
,, प्रणेता कवि (बीसवी
शताब्दी के)—134
प्रद्युम्न-हरण—3-5, 109
प्रेम-कथा—136, 138, 154
प्रेमाख्यानो के वर्ग—140
बालदेव अथवा बालवीर—166
बिम्ब (उज्जयिनीनरेश)—105
भविसयत्त कहा—149-154, 155
मधु-कैटभ—178, 179
मयणपराजय चरिउ—148
मलयसुन्दरी कहा—154
महासेनाचार्य—39, 43-47,
52-55, 73
मायावती—2
यक्ष—174, 175
लखमसेन पदमावती—144-145
लीलावई कहा—154
विद्याधर—173

इ

विमान-रचना—181

विश्वलोकवार्ता–रूढ़ियां—161-163

शालिहोत्र—181

षड्मातृका-पूजन—110

षोडशलाभप्राप्ति—110-111

सकल काव्य—151

सतसई काव्य—152

सिद्ध तथा सिंह—39-42, 54

सुदर्शन (नृप)—105,154

सुदसन चरिउ—154

क्षेत्रपाल—174-175

त्रिया-चरित्र—105

परिशिष्ट (II)

सहायक पुस्तक-सूची*

[अ] संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी

1 अग्निपुराण, प्र० सस्कृति सस्थान. बरेली

2. अथर्ववेद, स विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, होशियारपुर

3 अपभ्रंश साहित्य; डॉ० हरवश कोछड, भारतीय साहित्य मदिर दिल्ली

4. अप्रकाशित उपनिषद, अडयार लायब्रेरी, मद्रास

5 अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी

6 अष्टाध्यायी (महाभाष्य); पतञ्जलि, स कीलहार्न, बम्बई

7. अहिर्बुध्न्य सहिता, स एम० डी० रामानुजाचार्य, अडयार लायब्रेरी, मद्रास

8 आख्यानक मणि कोश; आचार्य नेमिचन्द्र सूरि, प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी वाराणसी

9 आचार-दिनकर,

10, आदिपुराण, जिनसेनाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

11 इतिहास पुराण का अनुशीलन, डॉ० रामशकर भट्टाचार्य, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी

12 उत्तराध्ययन टीका, डॉ० हर्मन जैकोबी

13. उत्तरपुराण; गुणभद्राचार्य. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

14 ऐतरेय ब्राह्मण, अनु० गगाप्रसाद उपाध्याय

15 ऋग्वेद; वैदिक सशोधन मण्डल, पूना

16 कथासरित्सागर, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

17 करकण्डु चरिउ, मुनि कनकामर, स० डॉ० हीरालाल जैन, कारजा सिरीज, बरार

18 करुण रस; डॉ० ब्रजवासी लाल श्रीवास्तव

---

* यह सहायक पुस्तक-सूची 'प्रद्युम्न देवत्व एवं व्यक्तित्व' तथा 'प्रद्युम्न-काव्य-विमर्श' दोनो पुस्तक-खण्डो की सम्मिलित सहायक पुस्तक-सूची है।

19 कवि-दर्पण, स० एच० डी० वेलणकर, राजथान राज्य प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

20 कालिकापुराण, स विश्वनारायण शास्त्री,

21 काव्यादर्श; दण्डी, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना

22 काव्यानुशासन, आचार्य हेमचन्द्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

23. काव्यालकार, रुद्रट ज्ञानमण्डल, वाराणसी

24 कुमारसभवम्, कालिदास; स० सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रथावलि

25 कूर्मपुराण, रामशकर भट्टाचार्य, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी

26 गरुडपुराण, सस्कृति सस्थान; बरेली

27 गीतारहस्य, लोकमान्य तिलक

28 गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद

29 गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्, हरिशकर शास्त्री, न्यूममुद्रणालय, बम्बई

30. छन्द शेखर, राजशेखर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

31 छन्द कोश, रत्नशेखर कृत कवि-दर्पण के परिशिष्ट रूप मे प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

32 छन्दोऽनुशासनम्; आचार्य हेमचन्द्र

33 जयाख्य सहिता, बी० भट्टाचार्य, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज बडौदा

34. जसहर चरिउ, पुष्पदन्त स पी० एल० वैद्य कारंजा सिरीज, बरार

35. जातक (प्रथम खण्ड); हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

36 जायसी ग्रथावली, स आ० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी

37 जैन गुर्जर कविओ; मोहनलाल दुलीचन्द देशाई,

38 जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रथ रत्नकार, बम्बई

39 जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश; जुगल किशोर मुख्तार, वीर शासन सघ, कलकत्ता

40. जैनागम अनुयोग द्वार सूत्र; स पुप्फ भिक्खु, सूत्रागम प्रकाशन समितिगुड गाव

41 ढालसागर, गुणसागर, यूनियन प्रिंटिंग प्रेस, राजनगर

42 णायकुमार चरिउ, पुष्पदन्त, स डॉ० हीरालाल जैन, कारजा सिरीज बरार

43 ताण्ड्य ब्राह्मण, चौखम्बा सस्कृत सिरीज ऑफिस, बनारस सिटी

44 तैत्तिरीयारण्यकम्, आनन्दाश्रम सस्कृत, ग्रथावलि पूना

45 तैत्तिरीय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावलि पूना

46. दशवैकालिक सूत्र, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
47 दैवत सहिता; (विश्वेदेव) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
48. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, ज्ञानमण्डल, काशी
49. नृसिंह पुराणम्, चौखवा सस्कृत सिरीज. वाराणसी
50 नारद पुराण, अनु० श्रीराम शर्मा, सस्कृति सस्थान, बरेली
51 नाट्यशास्त्र; भरतमुनि, चौखवा सस्कृत सिरीज, बनारस
52 निर्वाणकलिका,
53 नैषध चरितम् चौखवा सस्कृत सिरीज, बनारस
54 पउमचरिउ, स्वयभूदेवकृत, स० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी
55 पउमचरिउ, विमलसूरिकृत
56 पद्मपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
57 पृथ्वीराज रासो मे कथानक रूढियाँ, वृजविलास श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
58 पाञ्चरात्र रक्षाग्रथ; अडयार लायब्रेरी सिरीज, मद्रास
59. पद्मसहिता,
60. पारमेश्वर सहिता, स० श्री गोविन्दाचार्य, कल्याण मुद्रणालय श्रीरगम्
61 पुराण-विमर्श, बलदेव उपाध्याय चौखवा सस्कृत सिरीज, वाराणसी,
62 पुराणसहिता, चौखवा सिरीज, वाराणसी
63 पौष्कर सहिता;
64 प्रद्युम्न चरित (पज्जुण्ण चरिउ, परदवणु चरिउ आदि), द्रष्टव्य, इसी शोध-प्रबन्ध का एतद्विपयक परिशिष्ट
65. प्रद्युम्न सहिता (हस्तलिखित अप्रकाशित), गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास मे प्रति प्राप्य ।
66 प्रबोध चद्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा, श्रीमती सरोज अग्रवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
67. प्रबन्ध चिन्तामणि, मेरतु ग, स. मुनिजिनविजय, शान्तिनिकेतन से प्रकाशित
68 प्रशस्ति सग्रह, स. कस्तूरचद कासलीवाल, श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्र कमेटी, जयपुर
69 प्रशस्ति सग्रह, स. परमानन्द जैन शास्त्री
70 प्राकृत पैंगलम्, स भोलाशकर व्यास, प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी वाराणसी

71. प्राकृत साहित्य का इतिहास, जगदीशचन्द्र जैन, चौखंबा विद्या भवन वाराणसी

72. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास; कैलाश प्रकाश

73. बुद्धचरित, अश्वघोष

74 बृहन्नारदीयपुराण

75 बृहद्ब्रह्म संहिता, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना

76 ब्रह्मपुराण, सं० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली

77 ब्रह्मवैवर्तपुराण, सं० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान बरेली

78 ब्रह्मपुराण, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

79 भगवती सूत्र (चतुर्थ भाग), जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी शास्त्रोद्धारक फण्ड, राजकोट

80 भविष्यपुराण, संस्कृति संस्थान, बरेली

81. भविसयत्तकहा, सं० चिमनलाल डाह्याभाई दलाल तथा पाण्डुरंग दामोदर गुणे, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा

82. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय,

83. भारतीय प्रतीकविद्या; जनार्दन मिश्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

84 भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी

85. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल

86 भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, डॉ० बलदेव उपाध्याय

87. भारतेन्दु ग्रंथावली (प्रथम भाग). ब्रजरत्नदास

88. मत्स्यमहापुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

89 मदनपराजय, नागदेवकृत, सं० राजकुमार जैन

90. मधुमालती (मंझनकृत), सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त,

91 मध्यकालीन काव्य में कथानक रूढ़ियाँ, डॉ० बृजविलास श्रीवास्तव

92 मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा,

93 मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य, (श्री गदाधर सिंह का अप्रकाशित शोध ग्रंथ)

94 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद

95 मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, डॉ० सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

96 मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण, डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

97 मरीचिसहितायाम् श्रीविमानार्चनकल्प; स० प्रागदास, व्यकटेश्वर प्रेस मद्रास

98. महाकवि पुष्पदन्त, डॉ० राजनारायण पाण्डेय, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर

99. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर

100 महाभारत मीमासा, चिन्तामणि विनायक वैद्य

101 मार्कण्डेयपुराण, सस्कृति सस्थान, बरेली

102 माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध, गणपति कवि, ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, बडौदा

103 मेघदूत; कालिदासकृत, डॉ० ससारचन्द्र कृत हिन्दी टीका सहित

194 योगशास्त्र, ब्रह्मसहिता; वसुमती प्रेस कलकत्ता

105. रसगगाधर; पडितराज जगन्नाथ, विद्याभवन, बनारस

106 रसमीमांसा, आ० रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

107 राजवाडे लेख सग्रह; काशिनाथ वामन राजवाडे, केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

108. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

109 रामचन्द्रिका, आ केशवदास, टीका० लाला भगवानदीन

110 रीति-काव्य की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली

111 लखमसेन पदमावती, (दामोकवि कृत)

112. लघुभागवतामृत; रूप गोस्वामी

113 लक्ष्मीतन्त्रम्, स वी० कृष्णमाचार्य, अडयार लायब्रेरी सिरीज, मद्रास

114 लिंगपुराण, स श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति सस्थान, बरेली

115. लीलावई कहा (कौतूहल कृत), स डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन, बम्बई

116 वृत्तिजाति समुच्चय (विरहाककृत), स प्रो० वेलणकर, राजस्थान राज्य प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर

117 वराहपुराण, सस्कृति सस्थान, बरेली

118 वसुदेव हिण्डी, संघदास धर्मदास गणि, अनु० भोगीलाल सण्डेसरा, गुर्जर ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, अहमदाबाद

119 वाङ्मय विमर्श; आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

120 वाल्मीकिरामायणम्, द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी कृत हिन्दी टीका सहित

121 वामनपुराण, संस्कृति सस्थान, बरेली

122 वायुपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी

123 विश्वक्सेन महिना,

124 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अनु प्रियबालाशाह ,गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज बडौदा

125 विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर

126 वेदान्तसूत्र (शाकर भाष्य), श्री भाष्य टीका, रामानुजाचार्य

127 वैखानस आगम (क्रियाधिकार) भृगुसहिता, व्यकटेश्वर ओरिएण्टल इ स्टीट्यूट, तिरुपति

128 वैखानस आगम (मरीचि प्रोक्त), के० माम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयनम सस्कृत ग्रन्थावलि, त्रिवेन्द्रम

129 बृहद् जैन शब्दार्णव

130 शतपथ ब्राह्मण, अनु० गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसन्धान सस्थान, नई दिल्ली

131 शिल्परत्न,

132 शिवपुराण, सस्कृति सस्थान, बरेली

133 शुकरहस्योपनिषद्,

134 श्री कृष्णावतारलीला, दीनानाथ कवि कृत, जार्ज ग्रियर्सन द्वारा मूल कश्मीरी पाठ के साथ रोमन लिपि मे सपादित तथा बिब्लिओथिका इण्डिका सिरीज स० 247 मे प्रकाशित

135 श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर

136 श्रीमद्भागवत पुराण; गीताप्रेस, गोरखपुर

137 श्रीमहावीर स्मृतिग्रंथ; महावीर जैन सोसाइटी, आगरा

138 श्री रगराजस्तव,

139 सणयकुमार चरिउ (हरिभद्र कृत), सं० डॉ० हरमन जैकोबी,रोमन लिपि मे जर्मनी से सन् 1921 मे प्रकाशित

140 सतसई सप्तक; बाबू श्यामसुन्दरदास, हिन्दुस्तानी एकेडमी

141 सनत्कुमार सहिता

142 समयसुन्दर कृतिकुसुमाञ्जलि, नाहटाब्रदर्स, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता

143 समूर्तार्चनाधिकरण (अत्रिप्रोक्त), स० महाराय रामकृष्ण कवि

144 स्वयभूछन्द, स० प्रो० एच० डी० वेलणकर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

145. सात्त्वत संहिता,

146 साम्ब पञ्चाशिका, निर्णयसागर प्रेस बम्बई

147 साहित्य दर्पण, विश्वनाथ कविराज, मृत्यु जय औषधालय, लखनऊ

148 सुत्तागमे, स० पुप्फ भिक्खु, सूत्रागम समिति, गुडगाँव

149 सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य, डॉ० शिवप्रसाद सिंह

150 हरिवंशपुराण (वेदव्यास कृत), गीताप्रेस, गोरखपुर

151 हरिवंशपुराण (जिनसेनाचार्यकृत); भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

152 हरिवंशपुराण (पुष्पदन्त कृत) स० डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्य, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बम्बई

153 हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

154 हिन्दी और मलयालम में कृष्ण-भक्ति काव्य, डॉ० के० भास्करन नायर, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

155 हिन्दी काव्य-शास्त्र में रस-सिद्धान्त; डॉ० सच्चिदानन्द चौधरी, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर

156 हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास; कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञान पीठ, काशी

157 हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

158 हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, डॉ० शंभुनाथ सिंह

159 हिन्दी साहित्य, स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग

160 हिन्दी साहित्य का आदिकाल; डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

161 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ-संस्करण,

162 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

163 हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

164 त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्‌:

165. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्

(आ) कोश-ग्रंथ

1. भारतीय चरिताम्बुधि, चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा
2. भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोशमण्डल, पूना
3. शब्दार्थ चिन्तामणि; सुखानन्दकृत
4. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास
5. हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
6. हिन्दी विश्वकोश, नगेन्द्रनाथ वसु, विश्वकोश प्रेस, कलकत्ता
7. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 तथा 2, ज्ञानमण्डल, वाराणसी

(इ) पत्र-पत्रिकादि

1. अनेकान्त
2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
3. ब्रजभारती
4. भारतीय साहित्य (त्रैमासिक)
5. वीरवाणी
6. सप्तसिन्धु
7. हिन्दी अनुशीलन

(Bibliography of books in English)

1 A Classical Dictionary of Hindu Mythology–Dowson
2 A Dictionary of Psychology–James Drever
3. A History of Indian Philosophy–Dr S. N Das Gupta
4 A History of Sanskrit Literature—A B Keith
5 Antiquities of India–L D Barnett
6 Archaeological Survey Reports
7. Archaeological Survey of Western India
8 Asiatic Search Reports—Cunningham
9 Asiatic Study Journal (Base reliefs of Badami)—R D Bannerjee
10 Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss in C P. and Berar—Rai Bahadur Hira Lal
11 Classic Myth and Legend—A R Hope (Moncrieff)
12 Collected works of R G Bhandarkar, 1929
13. Dictionary of world Literature-Shipley
14 Early History of India—V. A. Smith
15. Encyclopaedia Britannica
16 Encyclopaedia of Religion and Ethics-Hastings
17 Epic India–Keilhorn
18 Epic Myths and Legends of India—P Thomas
19 Epigraphia Indica
20 Group Psychology—Freud
21 Hindu Gods and Heroes—L D Barnett
22 Hindu Samskaras–Raj bali Pande
23. History of Indian Literature—M Winternitz
24 History of Jehangir—Beni Prasad
25. History of Sanskrit Literature—C V Vaidya
26 History of Sanskrit Literature—S N Das Gupta and S K De

27. Hymns from Rigveda—selected and metrically translated by Macdonell
28. Indian Antiquary-Buhler
29. Indian Erotics and Erotic Literature—S. K De
30 Indian Myth and Legend—Donald A Maekenenzi
31 Introduction to the Pancharatra and the Ahirbudhnya Samhita —Schrader
32 Introductory Lectures—Freud
33 Jain Granth Bhandars in Rajasthan—K.C Kasliwal
34. Jain Iconography—B C Bhattacharya
35. Love–Ralph Waldo Emerson
36. Matsya Purana A study—Vasudeva Sharan Agrawal
37 Motif Index of Folk Literature–Steith Thompson
38 Origin of Love and Hate—Sutty
39 Outline of Religious Literature of India–Farquhher
40 Prakrit Mahakavyas—Ramji Upadhyaya
41 Proceedings of the Second Oriental Conference, Calcutta —S K Aiyangar
42 Purana Index——V R R. Dixitar
43 Sanskrit English Dictionary—Moniar Williams
44. Studies in the Epics and the Puranas —A. D Pusalkar
45 Studies in the Up-Puranas —R C. Hazra
46 The Age of Imperial Unity
47 The Ramayana of Balmiki—T H Griffith
48 The Vaishnava Upanishads–Adyar Library Series
49 Vaishnava Faith and Movement-Sushil Kumar De
50. Vaishnvism Shaivism and other Minor Religious sects of India—R G Bhandarkar
51 Vedic Index—Macdonell and Keith
52 Vishnu Purana—Tr. by H H Wilsoon